कोसला

अंतर्भारतीय पुस्तकमाला

कोसला

लेखक
भालचंद्र नेमाडे

अनुवाद
भगवानदास वर्मा

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

प्रथम संस्करण : 1992 (शक 1913)
प्रथम आवृत्ति : 1993 (शक 1914)

रु. 48.00
ISBN-81-237-252-5
Original Title : KOSLA (*Marathi*)
Translation : KOSLA (*Hindi*)
निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क
नयी दिल्ली-110 016 द्वारा प्रकाशित।

भूमिका

मराठी उपन्यास के क्षेत्र में 'कोसला' एक तरह से युग-प्रवर्तक रचना मानी जाएगी। सन् 1890-93 के दौरान हरिनारायण आपटे कृत 'पण लक्षात कोण घेतो' उपन्यास की रचना हुई थी। इस उपन्यास के साथ मराठी उपन्यासों का प्राचीन दौर समाप्त हो गया है। उस समय के वीर और श्रृंगार की जगह मानवीय जीवन-दर्शन और उसके गंभीर चिंतन को रचना के स्तर पर 'उद्घाटित' करने की क्रांतिकारी परंपरा शुरू हुई। लगभग यही स्थिति सन् 1963 में 'कोसला' की रचना के साथ दोहराई गयी। अब तक यह माना जाता रहा है कि उपन्यास-लेखन के लिए एक खास ढंग की कथा-वस्तु और चरित्र-चित्रण जरूरी होते हैं। पाठकों के मन में उपन्यास का यह खाका बैठ गया था, लेकिन 'कोसला' ने इसे बुरी तरह आहत किया। इसके साथ भाषा, शैली, पात्र रचना, वातावरण, आदर्शवाद, रोमांसवाद आदि सभी तरह की धारणाओं पर फिर से बहसें शुरू हुईं। आलोचकों और लेखकों, दोनों को 'कोसला' ने रचनाशीलता के बारे में फिर से सोचने पर मजबूर किया। 'कोसला' ने इस तथ्य का पहली बार एहसास कराया कि उपन्यास का रूपबंध उस केंद्रीय तत्व से निर्मित होता है जिसमें मानवीय जीवन का कोई अनुभव प्रमुख होता है और शेष सारे तत्व गौण एवं उसके सहायक होते हैं। प्रस्तुत उपन्यास ने अब तक की तमाम स्वीकृत संकल्पनाओं पर वार किये जिनमें और तत्वों के साथ विशुद्ध साहित्य-शास्त्रीय वैचारिक तत्व भी शामिल थे। वास्तव में 'कोसला' उन श्रेष्ठ रचनाओं में गिनायी जा सकती है जिनके कारण रचनाधर्मिता की तमाम प्रेरणाओं और प्रवृत्तियों पर पुनर्विचार की ज़रूरत महसूस होती है। अंग्रेजी में जो स्थान जेम्स जॉयस के 'युलिसिस' को, टी० एस० इलियट के काव्य को या फिर मराठी कविता में स्वर्गीय मर्ढेकर की कविता को और कहानी साहित्य में गंगाधर गाडगील को दिया जा सकता है वही स्थान उपन्यास साहित्य में 'कोसला' को दिया जाना चाहिए। इस पृष्ठभूमि पर 'कोसला' का स्वरूप, विशेषताएं, उसकी उपलब्धियां और सीमाओं का विवेचन करना होगा। मराठी में अब तक 'कोसला' पर लंबी बहसें हुई हैं।

मराठी उपन्यासों की भाषा एवं शैलीगत रूढ़ियों को 'कोसला' ने जिस स्तर पर तोड़ा है इसकी चर्चा करते हुए मराठी के ख्यातनाम लेखक एवं आलोचक

श्री दिलीप चित्रे कहते हैं—'कोसला में कला-चेतना के बाह्य तत्वों को बिलकुल अहमियत नहीं दी गयी है। इतना ही नहीं, शैलीगत रूढ़ियों का नकार ही लेखक के लिए एक नैतिक मूल्य क्यों है—यह अपने-आप साबित हो जाता है।''

हरिनारायण आपटे ने चरित्रात्मकता के विकास के लिए उस भाषा का उपयोग किया था जो पात्रों के मनोवैज्ञानिक व्यापारों, भावावेशी उद्वेलनों और मध्यवर्गीय संस्कारों के अनुरूप थी। वा० म० जोशी, केतकर, वरेरकर आदि लेखकों ने इसी परंपरा को आगे बढ़ाया। प्रो० ना० सी० फड़के ने अपनी खास तराशी हुई भाषा का प्रयोग किया। परिणामतः कृत्रिम शैली से अलंकृत लेखकीय व्यक्तित्व अनुभूति पर हावी होकर रचना को एकरस बना गया। इसी क्रम में वि० स० खांडेकर, माडखोलकर, पु० भ० देशपांडे आदि उपन्यासकारों ने आरोपित शैलियों से भाषा को बदला। जाहिर था कि अलकृत शैली में विकसित रचनाएं आशय के स्तर पर बिलकुल घटिया और एकरस होते हुए भी रसिकों का मन मोहती रहीं। आज भी इस तरह की अनुभूतिशून्य बाह्य आलंकारिता का प्रभाव कम नहीं है।

रचनागत चैतन्य भाषा में उद्घाटित होता है। इसीलिए भाषायी धारणाओं में बेहतर परिवर्तन करने वाली कोई भी कृति साहित्यिक क्रांति एवं संवेदनात्मक क्रांति का कारण बन जाती है। मराठी में 'कोसला' ने यह क्रांति की है। संवेदनाओं के स्तर पर क्रांतिकारी परिवर्तनों का जहां तक सवाल है—'पण लक्षात कोण घेतो' की तुलना में 'कोसला' को वरीयता हासिल है, क्योंकि 'पण लक्षात कोण घेतो' में व्यक्त संवेदनाएं, अनुभव तथा विचार तत्कालीन महाराष्ट्रीय प्रगतिशीलता के लिए नये नहीं थे। आखिर 'कोसला' की भाषा का रूप क्या है? इस सवाल का जवाब देने से पहले देखना यह पड़ेगा कि भाषा का वह कौन-सा रूप है जो 'कोसला' में नहीं है। इसके पहले हमें मराठी उपन्यासों के प्रचलित मुहावरों का विश्लेषण करना होगा। मराठी के उपन्यासकार अब तक उस भाषा का प्रयोग किया करते थे, जिसे हम अर्जित भाषा कह सकते हैं। 'कोसला' का नायक पांडुरंग सांगवीकर प्रचलित भाषा और मुहावरे पर व्यंग्य करते हुए अपने दोस्त जोग का मजाक उड़ाता है। कहता है, 'जोग, तुम्हारे निबंध बड़े दलिद्दर होते हैं।' तुम्हारी बातचीत भी बड़ी घटिया और गंदी होती है। तुम्हारे पास बात करने की तमीज़ भी नहीं है। जब देखो तुम्हारी शैली वही तुकाराम जैसी पोंगापंथी संतबानी और सुभाषितों के पेच से भरी पड़ी होती है।'

खांडेकर की अलंकृत भाषा-शैली का निषेधात्मक संकेत करते हुए पांडुरंग कहता है, 'सत्य ही प्रकाश है—इस तरह अगर कोई बकता रहे और बकने वाला अगर यही वह जोग हो, तो बताइये, क्रोध नहीं आयेगा?' रेस्टोरेंट को रेस्तरां कहने वाले अपने मित्र जोग को पांडुरंग 'कामटा' कहता है। उसे जब पता लगा कि

इचलकरंजीकर का नाम मधुर्मिलिंद है, उसने उसे मृदु कहकर उसकी बड़ी खिल्ली उड़ाई है। फैशननुमा वेशभूषा से रौब झाड़ने वाले मित्रों के बारे में उसके मन में जो तिरस्कार है वही तिरस्कार अलंकारयुक्त भाषा के बारे में भी है। अर्थात इसे विरोधाभास ही कहिये कि नेमाड़े की अपनी भाषा भी बहुत ही वैशिष्ट्यपूर्ण है। 'कोसला' में वक्तृतापूर्ण शैली को व्यंग्य का विषय इसलिए बनाया है कि लेखक को परंपरागत भाषायी रूढ़ियां और संकेत पसंद नहीं हैं। उसका विश्वास है कि भाषा की रूढ़ियां दूसरे स्तर पर विचारों, व्यवहारों और मूल्यगत रूढ़ियों का ही परिणाम होती हैं। इसलिए पिटी-पिटाई भाषा का प्रयोग वैचारिक एवं संवेदनात्मक दकियानूसीपन का परिचायक है। इस स्थिति में लेखकीय स्वतंत्रता पर रोक आ जाती है। आधुनिकता-बोध के आविष्कार पर अंकुश लग जाता है। मुक्त प्रतिभा के धनी लेखक रचनागत परिपाटियों को अस्वीकृत कर देते हैं—वे कोई रूढ़ि पैदा नहीं करते। वे भाषायी ताज़गी और नवीनता की तलाश में लगे रहते हैं। यही सजगता उसके व्यक्तित्व का अटूट हिस्सा बन जाती है। 'कोसला' के लेखक ने इसी सजगता का परिचय दिया है। सिर्फ 'कोसला' में ही नहीं, लेखक नेमाडे ने अपनी बाद की रचनाओं में भी भाषागत रूढ़ियों पर हमला किया है।

इसके अलावा भाषायी रूढ़ियों के बारे में लेखक नेमाडे के विरोध की एक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि भी है। मराठी गद्य के पास एक हज़ार वर्ष की अपनी परंपरा है। ब्रिटिश युग में भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग ने अंग्रेजी को, शेरनी के दूध का स्थान दिया था। उन्होंने विक्टोरियन मुहावरों को भाषायी आदर्शों के रूप में स्वीकार किया था। मराठी इन्हीं भाषायी मुहावरों से पुष्ट होती रही थी। नतीजा—मराठी भाषा जातीय चेतना में विकसित न होकर विदेशी प्रेरणा में पलने लगी थी। शब्द चयनों, वाक्य रचनाओं, विराम चिह्नों, परिच्छेदों आदि के प्रयोगों में, अंग्रेजी प्रारूप को आत्मसात कर लिया गया था। अंग्रेजी के संयुक्त वाक्य प्रयोगों, उसकी कृत्रिम लय, बलाघात पद्धति आदि ने मराठी को पूरा किताबी हुलिया प्रदान कर दिया था। परिणामत: बोली के सहज-अकृत्रिम सौन्दर्य से वह वंचित रह गई। सहज आवेगों की जगह शब्दनिष्ठ एवं स्वरयुक्त आवेगों को महत्व दिया जाने लगा था जिससे रागात्मक आविष्कार कुंठित हो गया था। नेमाडे ने इस स्थिति का विरोध किया है।

यह काम किसी सामान्य लेखक के बस की बात नहीं, इसके लिए बहुत ही समझदार एवं जागरूक लेखकीय चेतना की ज़रूरत होती है। यहां भाषायी रूढ़ियों का विघटन मात्र नवीनता के आग्रह का परिणाम नहीं है। वह नयी भाषा-नीति के प्रतिबद्धतापूर्ण स्वीकार का ही नतीजा है। इस संदर्भ में मराठी के एक श्रेष्ठ आलोचक ज्ञानेश्वर नाडकर्णी की राय देखी जा सकती है। उनके अनुसार, 'भाषा की शत-प्रतिशत पुनर्निर्मिति बहुत थोड़े लेखकों के बूते की बात है। नेमाडे

का 'कोसला' इस ढंग का पहला उपन्यास है। फिर भी इसमें अनुभवों, संवेदनाओं और उसके लिए प्रयुक्त अभिव्यक्त भाषा के बीच लेखक की कोई दखलंदाज़ी नहीं है। इसमें लेखकीय हस्तक्षेप बिलकुल ही नहीं है।'

'कोसला' की शुरुआत ही ऐसे कुछ विशिष्ट शब्दों के प्रयोगों से हुई है जो मराठी के लिए अब तक अपरिचित थे। 'मिसाल के तौर पर', 'वगैरा' शब्दों का पहली बार प्रयोग किया गया है। आगे-आगे ये लटके ज़रूर कम होते गये हैं। लेकिन पाठक शुरू में ही इनसे प्रभावित हो जाता है जिससे उसका ध्यान भाषा की तरफ सहज खिंचा चला जाता है। इस क्रम में पाठक लेखक की भाषायी सूझ से अधिकाधिक परिचित होता हुआ उसमें व्यंजित सहज भाव को अपने भीतर महसूस करने लगता है। ऊपर-ऊपर से यह भाषा बहुत ज्यादा अ-साहित्यिक अर्थात जनसाधारण की व्यावहारिक भाषा की तरह लगती है। इसी कारण सांगवीकर अपनी कथा-बयानी की ईमानदारी के कारण विश्वसनीय बन जाता है। वह सौ में निन्यानवें लोगों जैसा लगता है। हम आश्वस्त हो जाते हैं कि यह आदमी हमसे कोई बात छिपायेगा नहीं, झूठे आदर्शों और नकली नैतिकता का आवरण कभी ओढ़ेगा नहीं। इसके विपरीत शुरू में अपने पिता के बारे में बेबाक राय देकर वह अपने जीवन-विषयक दृष्टिकोण के प्रति पाठकों के मन में उत्सुकता पैदा कर देता है।

'कोसला' की भाषा जो अपने नायक की तरह ऊपर-ऊपर से अबोध एवं सपाट लगती है, भीतर से पैने व्यंग्यों, स्फोटक उपहासों, अर्थगांभीर्य तथा अंडर-स्टेटमेंट आदि के कारण समृद्ध बनी है। वास्तव में 'कोसला' के नायक की विशेषता, 'कोसला' की भाषा की ही विशेषता है।

नेमाडे की भाषा न तो नागरी सभ्यता के कृत्रिम लटकों से भरी पड़ी है और न आंचलिक प्रयोगों की भरमार से लैस है। पांडुरंग सांगवीकर ग्रामीण संस्कारों में पला हुआ युवक है। शहरी जीवन व्यतीत करते रहने के बावजूद अपने ग्रामीण संस्कारों पर नागरी संस्कारों को उसने हावी नहीं होने दिया।

ग्रामीण और नागरी भाषा के समन्वित प्रयोगों के प्रयास मराठी में इससे पहले भी हुए हैं। र० वा० दिघे, श्री० ना० पेंडसे, गो० नि० दांडेकर आदि के उपन्यासों में इस समन्वय को देखा जा सकता है। लेकिन 'कोसला' की विशेषता यह है कि इसमें प्रयुक्त भाषा की तमाम विशेषताएं नायक पांडुरंग सांगवीकर के व्यक्तित्व से प्रस्फुटित हुई हैं। यही फर्क 'कोसला' को प्राचीन परंपरा से अलगाता है। 'कोसला' का नायक खास व्यक्तित्व का धनी है। उसकी अपनी एक खास बोली है, जिसे पूरी तरह खोलकर दिखाना आसान नहीं है। 'वग़ैरा', 'मिसाल के तौर पर', 'महान', 'ग्रेट', 'भयानक', 'साला', 'भयंकर', 'भंकस', 'बंडल', 'प्रचंड', 'भलतंच'—इन शब्दों का अलग-अलग 'संदर्भों तथा अलग अर्थों में प्रयोग किया

गया है। प्रसंगों में गहरी व्यंजना लाने के लिए कहावतों और मुहावरों का भी अनायास प्रयोग किया गया है। कहीं-कहीं संदर्भों को पैना बनाने के लिए नये शब्द भी गढ़े गये हैं। फिर भी प्रयोगों में उसने (लेखक ने) इतनी कुशलता का परिचय दिया है कि भाषा अनायास और सहज लगे। इसीलिए तो पाठकों का ध्यान भाषायी लटकों की तरफ खिंच जाने की बजाय वस्तु पर केंद्रित हो जाता है। और यह सारी प्रक्रिया अत्यंत सहज और अनायास है। लेकिन कभी-कभी नेमाडे अपने पाठकों को भाषायी धक्के देते नज़र आते हैं। खासकर उन शब्दों और वाक्य-रचनाओं पर जिनकी अर्थवाही क्षमता निरंतर प्रयोग के कारण बिलकुल सपाट और स्थिर बन गयी है, वे टूट पड़ते हैं। यहीं पाठक चौंक जाता है। इस बहाने लेखक ने प्रचलित संकेतों. धारणाओं तथा विचारों पर हमला किया है और नवीनता के आग्रह का संकेत किया है।

खास बात यह है कि 'कोसला' की भाषा अपनी व्यक्तिगत पहचान को सामान्यीकृत करते हुए भी आम आदमी के साथ जुड़ जाती है। (नेमाडे ने 'कोसला' को सौ में से निन्यानवे लोगों को समर्पित किया है।) व्यक्तिगत-सार्वजनीन, नागर-ग्रामीण, सामान्य-विशिष्ट. सपाट-घुमावदार, सहज-कठिन, सुगम-दुर्गम, काव्यात्मक-व्यावहारिक, यथार्थवादी-रोमांटिक, ऐहिक-स्वप्निल, प्रतिबद्ध-अप्रतिबद्ध, नयी-पुरानी, प्रमाण भाषा-बोली भाषा आदि परस्पर विरोधी द्वैतात्मक स्थितियां नेमाडे की भाषा में एक साथ पायी जाती हैं।

लेखक नेमाडे और नायक पांडुरंग सांगवीकर का क्या रिश्ता है? क्या 'कोसला' को आत्मचरितात्मक उपन्यास कहा जा सकता है? इन प्रश्नों का सीधा जवाब संभव नहीं है। आम तौर पर लेखक अपने व्यक्तिगत जीवन में घटित घटनाओं, परिचित व्यक्तियों और परिवेशों का अपनी रचनाओं में भरपूर इस्तेमाल किया करता है। नेमाडे ने भी ऐसा ही किया है। लेकिन उपन्यास को पढ़ते हुए ऐसा नहीं लगता कि लेखक अपनी जीवनी बयान कर रहा है। वैसे देखा जाय तो यह सवाल रचनात्मक साहित्य से जुड़ा हुआ एक जटिल प्रमेय है। आखिर क्या कारण है कि कोई कलाकृति आस्वादन की प्रक्रिया में हमें इतनी अपील कर जाती है कि हमारे लिए उसका सारा परिवेश अपना लगे और लगे कि कृति का नायक खुद लेखक ही होना चाहिए। इस तरह की स्थिति पैदा करने के लिए लेखक के पास बहुत बड़ी प्रतिभा चाहिए। 'कोसला' में इस क्षमता का स्पष्ट संकेत है। इस संबंध में मराठी के एक विद्वान आलोचक डॉ० गंगाधर पाटील की राय है—'पांडुरंग सांगवीकर परिवेशगत सामाजिक व्यापारों की तरफ कभी बहुत अबोध एवं साफ नज़र से देखता है, तो कभी पूर्वग्रहों से नियंत्रित नज़रिये से इन पर टिप्पणी करता है। नायक का रचनाबोध श्रद्धा-अश्रद्धा, पूर्वग्रह एवं साफगोई, विक्षिप्तता एवं गंभीरता आदि परस्पर विरोधी तत्वों से प्रभावित

लगता है।'

लेखकीय तटस्थता का रचनात्मक लाभ यह होता है कि लेखक अपनी स्वतंत्र रचना-दृष्टि का परिचय दे सकता है। नायक से कई सवाल कर सकता है। भोंडी प्रचारात्मकता से बच सकता है। मौका पड़ने पर नायक पर निंदाव्यंजक टिप्पणी भी कर सकता है। कुल मिलाकर नायक को उसकी सीमाओं तथा उपलब्धियों समेत उभार सकता है।

'कोसला' के नायक का विशिष्ट व्यक्तित्व ही उपन्यास की विशिष्ट भाषा के लिए जिम्मेदार है। हमने पहले ही कहा है कि निर्माता और नायक के बीच इतने संकुल संबंधों की मिसालें मराठी उपन्यास में लगभग नहीं के बराबर है। प्राचीन दौर का लेखक अपने नायक तथा नायिका के द्वारा अपनी खुद की मूल दृष्टि को ज़बान देता था। चलते-चलते परंपरागत आदर्शों की खिल्ली भी उड़ाई जाती थी।

'कोसला' में ज़िंदगी जीने की एक विशिष्ट प्रक्रिया अपने सहज रूप में विस्तार पा गयी है। यहां लेखकीय तटस्थता और अनाग्रहता उस चरम सीमा को छू गयी है जहां विधात्मक अभिव्यक्ति की मजबूरी अगर छोड़ दें तो और कोई प्रयोजन नहीं बच जाता है। तब पाठक के लिए दो विकल्प बच जाते हैं। या तो वह अपनी औकात के अनुसार कुछ ग्रहण कर सकता है या नहीं तो पूरा खाली बचा रहता है। इसके पहले 'रणांगण' (विश्राम बेडेकर) जैसे उपन्यास में इसी स्तर की अभिव्यक्ति की अनिवार्यता देखी जा सकती है।

पांडुरंग सांगवीकर एंटी-नायक है। उम्र के सिर्फ पच्चीस बरसों की जिंदगी में वह एलिएनेशन (अलगाव) की पीड़ा का सहयात्री बन गया है। 'कोसला' के लेखक ने 'वस्तुतत्व' की कतई परवाह नहीं की है। सिर्फ इतना ही नहीं, उसने पाठकों एवं आलोचकों में एक ऐसा क्रांतिकारी रूप विकसित किया जिससे रूपवाद एवं तंत्रवाद को महत्व देनेवाली रचनाओं की मूल्यवत्ता पर ही शक किया जाने लगा। कहना नहीं होगा कि 'कोसला' ने इस अर्थ में मराठी में क्रांति की है। इसके साथ मूल्यांकन के पुराने प्रतिमान बदल गये और परंपरागत मूल्य-श्रेणी भी बदल गयी। इस स्थिति की ओर इशारा करते हुए ल० ग० जोग कहते हैं, 'उसमें कोई आश्चर्य नही है कि 'कोसला' को पढ़कर पाठक संभ्रमित न हो, लेकिन इसमे ज्यादा आश्चर्य तब होता है जब इसे पढ़कर अन्य रचनाकार संभ्रमित हो जाते हैं, रुक जाते हैं और परेशान हो जाते हैं। निश्चित रूप से ऐसी कोई वजह होनी चाहिए जिसके रहते लेखकों के मन में इस तरह की किंकर्तव्यमूढ़ता का भाव पैदा हो। वास्तव में 'कोसला' ने 'कथावस्तु', विशाल कैनवस, पारिभाषिक जंजाल को हास्यास्पद ठहरा दिया है। इस उपन्यास में वह चीज है ही नहीं जिसे हम 'कथावस्तु' कह सकते हैं। तब फिर रहस्यमयता,

विछोह-मिलन-समाधान आदि तत्वों का तो सवाल ही पैदा नहीं होता।'

'कोसला' का पच्चीस वर्षीय युवा नायक जो मराठी पाठकों के लिए नितांत नया था, ऐहिक स्तर पर असफल, समाज की ओर से तिरस्कृत और अपनी जगह हद दर्जे का अंतर्मुखी व्यक्ति है। वह अपनी जीवन-यात्रा का बयान कर रहा है। कथा की शुरुआत नायक की ऐहिक असफलताओं के संकेतों से हुई है। कथन-शैली कुछ-कुछ आत्म-चरित्रात्मक ढंग की है। कथायात्रा का एक निश्चित कार्य-क्रम भी है। सांगवी जैसे एक देहात का युवक पूना जैसे ज्ञान का मायका कहलाये जाने वाले शहर में शिक्षा प्राप्त करने के लिए आया है। शहरी संस्कृति और शहरी माहौल में रच-बस जाने का वह प्रयास करता रहता है। अंत में बगैर परीक्षा पास किये फिर से सांगवी लौट आता है। इस पूरी अवधि को छह हिस्सों में विभाजित किया गया है। पहले हिस्से में मैट्रिक पास करने तक के अपने पारिवारिक माहौल का आलेख प्रस्तुत किया गया है। दूसरे हिस्से में पूना के फर्ग्युसन कॉलेज में दाखला लेने के बाद कॉलेज के दो वर्षों की अवधि का मनोवैज्ञानिक तथा परिवेशगत विवरण प्रस्तुत किया गया है। यह देहाती लड़का क्रमश: अपने गंवारपन के खोल को चीरकर नागरी संस्कृति में मुक्त विचरण की क्षमता को बढ़ाता जा रहा है। तीसरे हिस्से में आगे दो वर्षों, अर्थात, जूनियर और सीनियर बी० ए० की अवधि से संबद्ध प्रसंगों का जिक्र हुआ है। इस हिस्से में सांगवीकर के व्यक्तित्व में कतिपय लक्षणीय आयाम जुड़ गये हैं। यात्रा का यही वह बिंदु है जहां वह धूर्त लोगों द्वारा ठगाया जाता है, जिसमें उसे पीड़ाओं से गुज़रना पड़ता है। इन स्थितियों में परीक्षा पास करना उसके लिए मुश्किल हो जाता है। चौथे हिस्से में डायरी शैली में परीक्षा की तैयारियों से संबद्ध मानसिक लेखा-जोखा प्रस्तुत किया गया है। परीक्षा के लिए फिर से वह पूना जाता है। लॉज में रुकता है, पर आखिर तक परीक्षा पूरी नहीं कर पाता। पढ़ाई के बहाने सांगवी, मुंबई और पूना रहकर ऐश करता रहता है। पर आखिर फिर एक बार परीक्षा का पक्का निश्चय कर लेता है। पांचवें हिस्से में सांगवी को घटनास्थल बनाकर पारिवारिक तथा गांव के माहौल से संबद्ध अंतर्कथाएं प्रस्तुत की गयी हैं। नायक के जीवन की यह अवधि व्यावहारिक दृष्टि से विफलताओं से भरी पड़ी है। नायक की समूची मानसिकता विफलता-बोध से आक्रांत है। परिणामत: वह क्रमश: अधिक अंतर्मुखी होता चला जाता है। पर पारिवारिक स्तर पर अति विफलतापूर्ण यह अवधि उसके लिए आध्यात्मिक दृष्टि से काफी उर्वरा है। इस स्तर पर नायक की आध्यात्मिक जिज्ञासाएं क्रमश: बढ़ रही हैं। छठे और अंतिम हिस्से में मानसिकता के स्तर पर एक गहरे रिसे हुए परायेपन का बोध है तो दूसरे स्तर पर तीव्र अध्यात्मिक जिज्ञासा उभरती है। भौतिक स्तर पर नायक की प्रस्तुत जीवन-यात्रा असफलताओं की गाथा है। शुरुआत में काफी कुछ बहिर्मुख,

पर धीरे-धीरे क्रमश: अंतर्मुख होता हुआ यह युवक अंत में एक तरह से आत्म-केंद्रित बन जाता है तथा एलिएनेशन की पीड़ाओं को भोगता है। संक्षेप में, नायक की यह आत्म-बयानी मात्र घटनाओं का विवरण नहीं है, अपितु एक बहु-आयामी व्यक्तित्व के आंतरिक परिवर्तनों का लेखा-जोखा है। वैसे देखा जाय तो नायक के यात्राक्रम में जो भी घटित होता है वह कहीं भी अजनबी नहीं है। किसी भी युवक की ज़िंदगी में इस तरह के हादसे हो सकते हैं। कोई भी छात्र इस तरह के माहौल से परिचित हो सकता है। इसी तरह के लोगों से उसका वास्ता पड़ सकता है। देहात का वातावरण, वहां के लोग—कोई चीज़ अपरिचित एवं अजीब नहीं है। पर नेमाडे की यह खूबी है कि परिचित लगने वाली इन सामान्य स्थितियों को वे कला की ऊंचाई देते हुए उन्हें असाधारण बना सके हैं। इसलिए 'कोसला' की साफबयानी की विशेषता यह है कि उसमें मात्र किसी भी व्यक्ति का आत्म-कथन नहीं है, बल्कि इस बहाने स्वयं को पाठकों के रू-ब-रू प्रस्तुत करने की विशिष्ट भूमिका विकसित हुई है। इस अर्थ में समूची निवेदन-प्रक्रिया अपने बारे में कुछ कहने एवं जानने की इच्छा से प्रेरित है, इसलिए इसकी प्रकृति आत्म-शोधात्मक है।

पांचवें हिस्से में कुछ लोककथाएं समाविष्ट की गयी हैं। इन छोटे-छोटे देहाती लोगों के किस्से-कहानियों में संकेतित जीवन-दृष्टि अपनी जगह बहुत ही निराली और खास है। वास्तव में यह हिस्सा लेखकीय रचनाशीलता का अनोखा चमत्कार है।

उपन्यास का बहुत बड़ा हिस्सा लेखक की उन प्रतिक्रियाओं में उद्घाटित हुआ है जो नायक और उससे मिलने-जुलने वाले लोगों के बीच आंतरक्रियात्मक स्तर पर विकसित हुई है।

पांडुरंग सांगवीकर परिवार के बीच सुख का अनुभव नहीं करता है, क्योंकि मानसिक स्तर पर वह वहां डाइजेस्ट हो ही नहीं सकता है। इसकी अहम वजह है—उसका बाप। अपने बाप के बारे में उसके मन मे तीव्र घृणा का भाव है। 'बचपन से ही पिताजी के साथ मेरी कभी पटी नहीं। एक तो यह कि उनकी देह-काठी असली बाप की तरह भयंकर रूप से भारी-भरकम है। पोला के त्यौहार पर गांव के बुर्जुग लोग यूं ही दिलबहलाव के लिए कबड्डी वगैरा खेलों की बाज़ियां लगाते रहते हैं। तब खेल के मैदान में पिताजी का वह नंगा बदन मुझे बड़ा अश्लील लगता है। मेरा पूरा लड़कपन उनकी धाक में बीता।"

क्या पांडुरंग के पास कोई ऐसी मौलिक क्षमता है जिसके रहते वह खुद को संक्रमित कर पाता है? तमाम आलोचकों ने इस क्षमता को नकारा है। क्या 'कोसला' में इसका कोई प्रमाण मौजूद है? कुछ लोगों की राय में पांडुरंग सांगवीकर विशिष्ट कथन-पद्धति के कारण बुद्धू करार दिया गया है। लेकिन

वास्तव में वह वैसा नहीं है । गौर से देखा जाय तो पता चल सकता है कि नायक ने छोटी-छोटी घटनाओं, विवरणों या लोगों से पेश आने के अपने तरीकों से अपनी खासी प्रतिभा और बौद्धिक क्षमता का परिचय दिया है । इन प्रतिक्रियाओं की मुद्रा व्यंग्य, विनोद, उपहास, हास्यास्पदता और छींटाकशी जैसे कई व्यंग्य तत्वों में उद्घाटित हुई है ।

'अजनबी का बोध', 'अकेलेपन की यातना' आदि विदेशी धारणाओं की तलाश के बावजूद भी हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि 'कोसला' की प्रेरणास्थली आद्योपांत महाराष्ट्र की सामाजिक चेतना है । और फिर इसे भी हम समझ लें कि पांडुरंग पर सामान्यत: यह आरोप लगाया जाता है कि वह सभी घटनाओं की ओर बिलकुल कोरी निगाह से देखता है या कि हर तरह की मूल्य-व्यवस्था को नकारता है, पूरा सही नहीं है । पिता के प्रति पांडुरंग का विरोध अर्थ-केंद्रित मूल्य-व्यवस्था के प्रति विरोध का परिचायक है । मात्र धन को सब-कुछ समझने वाली जीवन-दृष्टि के प्रति विरोध का विस्फोट है । संक्षेप में, मूल्यहीनता के प्रति जागरूक मूल्य-बोध का संघर्ष यहां चित्रित हुआ है । धूर्त पिता की बदमाशियां, झूठापन, पाखंड आदि के बारे में पांडुरंग के मन में भयंकर खीझ है । लेकिन उसके मन में प्रेम और करुणा जैसे संवेदनों के प्रति कोई आस्था नहीं है, सो बात नहीं । हां, वह कथनी और करनी के बीच सुसंवाद का पूरा-पूरा हामी है ।

रामप्पा के प्रति उसकी संवेदना देखिए—'मुझे काले मुच्च रामप्पा के प्रति हमेशा तरस आता रहा है । एक प्रकार का प्यार । मेरी यही आदत किसी चीज़ से भयंकर लगाव···।'

मूल्यों के प्रति इतना सचेत नायक क्या बाधाओं के प्रतिकार की क्षमता नहीं रखता ? ज़रूर उसके पास प्रतिकार की क्षमता है । हां, उसकी यह क्षमता कभी सक्रिय स्तर पर प्रकट हुई है, लेकिन कभी-कभी भय-ग्रंथि के कारण कहो या किसी और मूड के कारण कहो—यकायक ठंडी पड़ जाती है । फिर भी यह कहना गलत है कि पांडुरंग का व्यक्तित्व एकांगी और एक-आयामी है । उसमें सक्रियता और निष्क्रियता—दोनों एक साथ उद्घाटित हुई हैं । उसका व्यक्तित्व सम्मिश्र है । वास्तव में उसके जानदार व्यक्तित्व का यही रहस्य है । मौका आने पर कभी वह भावुकता में बहकर औरों से लड़ पड़ता है तो कभी भीतर-ही-भीतर कुछ न कर पाने के कारण कसमसाता रहता है । संस्कारशीलता उसका स्थायी भाव है । मूल्यों के प्रति उसकी प्रतिबद्धता कहीं भी विचलित नहीं हुई है । ज़िंदगी के अभावों से जूझने की लियाकत तो उसके पास है ही, पर जीवन को तहस-नहस करने वाली वृत्तियों से दो-चार होने की अंत:शक्ति भी उसके पास कम नहीं है । लगता है, आलोचक उसके एलिएनेशन के बोध को तूल देने की प्रक्रिया में उसके उक्त गुणों को नज़रअंदाज़ कर गये हैं । वास्तव में नायक की यही

वह अंतःशक्ति है, जिसका सीधा प्रभाव पाठकों पर पड़े बिना नहीं रहता। जैसे-जैसे पाठक उपन्यास से गुज़रता चला जाता है नायक की व्यंग्यात्मक प्रतिक्रियाओं की अपने-आप दाद देता हुआ नायक की मानसिकता को समझने का प्रयास करता है। यही वह बिंदु है जहां ऊपर-ऊपर विदूषकीय लगने वाले इस व्यक्तित्व के भीतर प्रवाहित मूल्यधर्मिता पाठकों को अपनी ओर आकृष्ट किये बिना नहीं रहती। अगर ऐसा नहीं हो पाता तो बकौल कुरुंदकर 'पाठक उपन्यास पढ़ते, हंसते, और छोड़ देते। लेकिन ऐसा नहीं होता। 'कोसला' के पांडुरंग को आलोचकों ने गंभीरता से लिया है।'

हमारे आलोचकों ने, लगता है, 'कोसला' में उभरे एंटी-हीरो पर बहुत अधिक बल दिया है। यह सही है कि पांडुरंग कोई पारंपरिक नायक नहीं है। पर फिर भी लोगों ने उस पर अस्तित्ववादी शब्दावली को कुछ ज्यादा ही थोपा है। माना कि वह आत्म-केंद्रित है, आउट साइडर है, उसे शायद अपना स्वर नहीं मिला है। वह संभ्रम की स्थितियों मे गुज़र रहा है।

हां, हमें डॉ० गंगाधर पाटील की इस टिप्पणी से सहमत होना पड़ेगा कि 'मर्ढेकर ने जिस प्रकार अपनी कविता में पहली बार आधुनिक मनुष्य की उस भयानक क्षति का संकेत किया जिसे वह इस युग में महसूस कर रहा है। उसी तरह एलिएनेशन को 'कोसला' में पहली बार अभिव्यक्ति मिली है।' ऐतिहासिक दृष्टि से यह मत गलत नहीं कहा जा सकता। इस क्रम में डॉ० अशोक केलकर का मानना है, 'अनुभवों का विघटन, उनका वर्गीकरण, असल में यह तो एक शुरुआत होती है।' जमीन को बोआई के लिए तैयार करना पड़ता है। और फिर उसमें अकेलेपन के बोध को बोना पड़ता है।···आधुनिक मनुष्य का संवेदना-जगत इसी अकेलेपन के मुख्य बोध से नियंत्रित है। इसी बोध की एक नस्ल शेक्सपियर के हैमलेट से अपना रिश्ता जोड़ती है तो दूसरी बुद्ध एवं जैनों के दर्शन तक पहुंचती है। समकालीन मराठी साहित्य में इसका संकेत मर्ढेकर की रचनाधर्मिता में मिलता है। लेकिन अपेक्षतया मर्ढेकर भी तो अंततः आशावादी एवं आनंददायी लेखक थे। पीड़ाएं अब असीम हो गयी हैं।··· मनुष्य का सवेदनशील होना बुरा नहीं है। लेकिन आज वह तो मात्र संवेदना ही बन गया है। तब तो सम् निकलकर केवल वेदना शेष रह जाती है। इस स्थिति में सामाजिक जीवन से संपर्क ही समाप्त हो जाता है।···'जैसा स्वये बांधोन कोसला मृत्यु पाये।' (जिस प्रकार कोसला का कीड़ा अपने चारों तरफ खोल बुनता है और उसी में अपनी मृत्यु को निमंत्रित करता है।) यह अच्छी बात है कि 'कोसला' का नायक खतरे के इस निशान तक आ तो जाता है लेकिन उसमें घिर जाने से पहले अपना कायांतर कर लेता है, क्योंकि उसके पास कायांतरण की अंतःशक्ति है। इसी क्रम में लगभग सभी आलोचकों ने 'कोसला' के एलिएनेशन की चर्चा

की है। पर आखिर सवाल यह रह जाता है कि क्या सचमुच यह एलिएनेशन पांडुरंग सांगवीकर की समग्र जीवन-दृष्टि का अंतिम तत्व है या ऐसा तो नहीं है कि यह बोध जीवन-क्रम के एक विशिष्ट बिंदु पर निर्मित हुआ है ? हां, आप पांडुरंग की कायांतरण की क्षमता को अगर नज़र-अंदाज़ कर दें तो संभवतः आलोचकों की यह राय सही लग सकती है। शिक्षा-संस्थाओं में न बैठना क्या निर्णय-क्षमता का परिचायक नहीं है ? या तो आप परीक्षा पास कर लो, अपनी क्षमता बढ़ा लो और फिर शिक्षा-संस्थाओं के खिलाफ सक्रिय बन जाओ। लोगों में आमूल परिवर्तन लाना तुम्हारे बस की बात शायद नहीं हो सकती। लेकिन इस संबंध में अपना रवैया ज़रूर बदला जा सकता है। माना कि माता-पिता, बहन, रिश्तेदारों के संस्कारों से खुद को मुक्त करना मुश्किल है, पर इनसे संबद्ध स्वयं की आकांक्षाओं को सीमित करके अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन असंभव नहीं है। मेरा खयाल है कि पांडुरंग सांगवीकर इसी रास्ते खोल को तोड़कर बाहर निकलने का प्रयास करता है। इसीलिए उसका यह व्यक्तित्वांतरण भविष्य की सक्रिय ज़िंदगी की भूमिका बनाता है।

पांडुरंग खुद के बूते खड़ा रहने के इरादे से मुंबई चला आता है। वह नहीं चाहता कि पिता के पैसों का मोहताज रहे। लेकिन उसके इस इरादे को उसी के रिश्तेदार विफल कर देते हैं। अब अगर कोई कहे कि पांडुरंग ऐसी स्थिति में अपना सिर क्यों नहीं फोड़ लेता, क्यों नहीं प्रतिकार करता ? बात सही है। वह अपनी इच्छाओं को ज़रूर रोक लगाता है और मजबूर होकर सांगवी लौट आता है और खुद को व्यस्त रखता हैं। लेकिन फिर भी फरार, झगडू नौकर को अपने बाप ने जिस ढंग से धोखा दिया था उसके बदले के इरादे से उसे वह ढूंढ़ निकालने की काफी कोशिश भी करता है। इसमें संदेह नहीं कि वह अपने परिवार और घर से एक अर्थ में पराया हो गया था। उसके मन में अपने 'मकान' को लेकर एक भयंकर घृणा का भाव है, क्योंकि वह 'मकान' उसकी दृष्टि में अच्छे कहलाने वाले नींव-तत्वों पर खड़ा है। मैट्रिक पास होने से पहले उसने कहा था, 'आखिर यह मकान खोखला होकर ढह जायगा। अच्छा ही होगा।' इस सब के होते हुए भी आदमियों से उसे नफरत नहीं है। बस्ती की युवक टोली में वह शरीक हो जाता है, उनके साथ घुल-मिल जाता है, वक्त गुजारता है। इस क्रम में आंतरिक स्तर पर बेचैनी का अनुभव करता हुआ अस्तित्वगत सवालों से जूझने की कोशिश करता है।

मराठी उपन्यासों के विकास-क्रम में 'कोसला' की चरित्रात्मकता जितनी नयी है, उतनी ही इस उपन्यास की भाषा, शैली एवं संरचना-विधि भी नयी है। इस नयी तरह की चरित्रात्मकता को जिसमें अनुभूति की ईमानदारी कूट-कूट कर भरी है, व्यक्त करने के लिए ज़रूरी है कि उतनी ही खरी, अनगढ़ और अकृत्रिम

भाषा संरचना का प्रयोग किया जाय। इसलिए 'कोसला' के नायक की ईमानदार कथाबयानी को लेकर पाठकों के मन में कई तरह के संभ्रम पैदा हुए हैं। इस संदर्भ में उपन्यास के प्रकाशक रा० ज० देशमुख की प्रकाशकीय टिप्पणी विचारणीय है। "मेरा खयाल है कि मराठी में इस विषय पर इस ढंग से लिखा गया 'कोसला' शायद पहला ही उपन्यास है। अगर पहला न भी हो, फिर भी इसमें किसी को संदेह नहीं होना चाहिए कि लेखक ने जो भी और जैसा भी लिखा है, बहुत ही दिलचस्प एवं पठनीय है। ऐसा नहीं लगता कि लेखक कोई व्याख्यान दे रहा है। अपने अनुभवों और निरीक्षणों की उसने ईमानदार अभिव्यक्ति दी है।' प्रस्तुत संस्तुति मेरी दृष्टि में काफी महत्वपूर्ण है। व्याख्यान शैली से मुक्त कथा-बयानी का इस तरह का प्रयास मराठी उपन्यास के लिए नया था। अब तक औपन्यासिक अनुभवों को व्याख्यानपरक शैली में व्यक्त करने की परिपाटी चली आयी थी। ह० ना० आपटे, वा० म० जोशी, केतकर, वरेरकर, फड़के, खांडेकर, पु० य० देशपांडे, माडखोलकर—इन सभी उपन्यासकारों का पाठक व्याख्यान शैली का पूरा अभ्यस्त था। इसलिए तो इन उपन्यासों की वैचारिकता को उनकी रचनात्मकता से आसानी से अलग किया जा सकता है। इनके विचार-तत्त्वों पर अलग से बहसें भी की जा सकती हैं। वास्तव में चरित्रात्मकता और विचारात्मकता के संबंध बड़े जटिल एवं संकुल होते हैं, होने चाहिए। किसी रचना में विचारों का रूपांतरण कथा-बिंबों में होता है। उपर्युक्त उपन्यासकार इस रूपांतरण में सफल नहीं हो सके थे। 'कोसला' ने पहली बार इस ठहराव को तोड़ा। इसकी शैली ने इतना ज़बरदस्त चकमा दिया कि विद्वान आलोचक भी धोखा खा गये। इसीलिए तो शुरू-शुरू में 'कोसला' की वैचारिकता और बोध को समझने में काफी गड़बड़ी हुई। रा० ज० देशमुख ने और एक महत्वपूर्ण बात कही है, 'इस उपन्यास को पढ़कर अगर किसी पालक, शिक्षक और समाज के किसी सदस्य का मन बेचैन हो जाय और उसके मन में सवाल उठें कि पांडुरंग सांगवीकर खुद के और समाज के बारे में इसी ढंग से क्यों लिखता-बोलता है, कि इसी शैली में अपने विचारों को व्यक्त करने की उसे क्यों ज़रूरत महसूस हुई, कि समाज की ओर देखने का उसका यही जाविये-निगार क्यों है? तो जानिए, हमने उपन्यास से काफी कुछ हासिल किया।' कइयों ने इस बेचैनी का अनुभव किया। पर कुछ आलोचक 'कोसला' के बड़प्पन को स्वीकार करते हुए भी उससे पूर्णतया संतुष्ट नहीं हैं। इसका कारण शायद मराठी पाठकों की उस अभिरुचि में ढूंढ़ना होगा जिसका वह अभ्यस्त हो चुका था। इस संदर्भ में प्रा० चन्द्रशेखर जहागिरदार की टिप्पणी दृष्टव्य है—'हमें 'कोसला' को एक साहित्यिक संस्कार के रूप में लेना होगा। संस्कार इसलिए, कि इस उपन्यास ने परंपरागत औपन्यासिक रचनाशीलता, भाषासंरचना, समकालिकता तथा मराठी पाठकों की अभिरुचि आदि

पर अपना निश्चित पर मुकम्मिल प्रभाव छोड़ा है और मराठी उपन्यासों के लिए नयी दिशा का संकेत किया है।'

इस टिप्पणी पर गौर करने की ज़रूरत है। 'कोसला' जैसी किसी कृति का निर्माण न केवल मराठी के लिए बल्कि सभी भाषाओं में पाठकों की अभिरुचि के सवालों को पुनर्मूल्यांकित करने की आवश्यकता पैदा करता है। नरहर कुरुंदकर जैसे ख्यातिप्राप्त रसिक, आलोचक एवं वक्ता ने 'कोसला' पर पक्ष-विपक्ष में अपनी राय प्रकट की है। पर कभी-कभी लगता है कि उनकी टिप्पणी भी उसी गलतफ़हमी का शिकार है जिससे मराठी का परंपरागत अभ्यस्त पाठक पीड़ित रहा है। वे कहते हैं—'पांडुरंग बचकाना है, अबोध है। वह कुछ-कुछ शरारती और गैर-ज़िम्मेदार है। लेकिन वह बुरा नहीं है। उसका रवैया कुछ विक्षिप्त और अजीब-सा ज़रूर लगता है, पर ईमानदार नहीं लगता। क्योंकि उसमें अहंकार है, वह संवेदनशील और भावुक भी है। सत्य की परतों का वह आकलन ज़रूर कर सकता है, लेकिन मुकम्मिल सत्य को जान पाने की प्रौढ़ता उसके पास नहीं है···पांडुरंग को कभी गंभीरता से लिया जाना संभव नहीं लगता···उसको यह भ्रम है कि वह कोई बहुत बड़ा विद्रोही चिंतक है, लेकिन वास्तव में उसके पास विचारों की उड़ान नहीं है, इसलिए वह आम आदमी की तरह समझौतावादी युवक बनकर रह गया है। अगर इस उपन्यास को विटनिक गुट का सफल उपन्यास कहा जाना पड़े तो शर्त यह होगी कि पांडुरंग को गंभीरता से लिया जाना चाहिए जो संभव नहीं लगता। ···इस शर्त के पूरी होने पर ही पाठक बेचैनी का अनुभव कर सकता है। जब तक पांडुरंग हमारे मनोरंजन का विषय बना रहता है और जब तक हम पांडुरंग की हर अदा को गंभीरता से न लेकर उस पर मुस्कुराते रहेंगे तब तक कोई गंभीर सवाल पैदा ही नहीं होंगे।' खुशकिस्मती से मराठी के सभी विद्वान आलोचक इस तरह धोखा नहीं खा सके हैं। पांडुरंग को कतिपय आलोचकों ने बड़ी गंभीरता से लिया है। कइयों ने उसे पढ़कर बेचैनी का अनुभव भी किया है। पु० ल० देशपांडे ने कहा है, 'इस नये लेखक ने हमारी पीढ़ी के रचनाकारों को झपकियां लेते हुए पकड़ लिया है। दे कॉट अस नैपिंग।'' आज़ादी के पूर्व से चली आयी आदर्शवादी एवं दिवास्वप्नी परंपरा को कोसला ने बुरी तरह तोड़ दिया था।

इसमें कोई शक नहीं कि 'कोसला' का कथ्य आकर्षक एवं पठनीय है। पर यह कोई उसकी खास विशेषता नहीं है। इसमें बौद्धिक लटकों का इतना सहज इस्तेमाल किया गया है कि उनके कारण संवेदनाओं का प्रवाह कहीं भी बाधित नहीं हुआ है। आकर्षक पठनीयता का यही रहस्य है। सांगवीकर के व्यंग्य का क्षेत्र बहुत व्यापक है। यहां कॉलेज की लड़कियां, प्रेम, प्राध्यापक, किताबें, परीक्षाएं, पूना के विद्वान व्यक्तियों आदि पर व्यंग्य किया गया है। पांडुरंग अपनी पैनी व्यंग्य-दृष्टि से उस रोमांटिक वृत्त को तहस-नहस करता है, जिससे व्यंग्य-लक्ष्य आमतौर

पर घिरे रहते हैं। परिणाम यह होता है कि इन्हें पढ़कर हम कभी मुस्कुराते रहते हैं तो कभी इनके कारण भीतर से बुरी तरह झिंझोड़े जाते हैं। कभी ज़ोर का ठहाका लगाने से अपने-आपको रोक नहीं पाते। पांडुरंग की खास व्यंग्य शैली है। वह कभी सीधे-सीधे किसी को अपने व्यंग्य का लक्ष्य बनाता है, तो कभी किसी विशेषण के प्रयोग से स्थिति की हवा निकाल देता है। नतीजतन पाखंड का मुलम्मा अपने-आप छूट जाता है। हम विनोद और करुणा का एक साथ अनुभव करने लगते हैं। कुल मिलाकर पांडुरंग सांगवीकर की रचना-यात्रा रास्ते में उसे मिले अनेकविध व्यक्तियों के संबंध में उसकी अपनी प्रतिक्रियाओं की गाथा है। परिणामतः दूसरों के बारे में नायक की प्रतिक्रियाओं से हटकर पात्रों की मानसिकता को गहराई से समझ पाना संभव नहीं होता। यहां इसकी गुंजाइश नहीं बनती। इसलिए कभी-कभी लगता है कि दूसरों की मानसिकताओं को कम महत्त्व दिया जाने के कारण 'कोसला' का रचना-संसार कुछ सीमित हो गया है। फिर भी कॉलेज और होस्टल का छात्र-जगत तथा सांगवी के लोगों का संवेदना-जगत जितने असरदार ढंग से चित्रित हुआ है उसमें उक्त सीमा निश्चय ही लांघी गयी है। आमतौर पर पांडुरंग खुद को केंद्र बनाकर दूसरों की तरफ देखता है। दूसरों के केंद्र से खुद की तरफ नहीं देखता। (संभव है, आत्मकथनात्मक शैली की यह सीमा हो।) इसलिए नायक को इस बात की जितनी पीड़ा है कि वह दूसरों द्वारा भोगा जा रहा है, उसके मुकाबले दूसरे उसके द्वारा कैसे भोगे जा रहे हैं, इसकी विशेष चिंता नहीं है। परिणामतः उसकी पीड़ाएं असीम हैं। इसलिए अकेलेपन की मानसिकता और उसमें उपजे एकाकीपन के बोध को जिस तीव्रता से फैलाया जाना जरूरी था शायद संभव नहीं हो पाया है। उदाहरण के लिए, आत्महत्या करने के प्रयासों की प्रेरणा बनी हताशा का अपेक्षित चित्रण नहीं हो पाया है। प्रस्तुत प्रसंग पाठकों को पूरी तसल्ली नहीं दे पाता। असल बात यह है कि 'कोसला' हमें बहुत बड़ी उम्मीदें देता है। कभी-कभी लगता है कि जो शिकायत पांडुरंग ने सुरेश के बारे में की है, कि 'वह खुद को पूरी तरह किसी के हवाले नहीं कर सकता', यही शिकायत हमें पांडुरंग से है। पांडुरंग को हम यह कहता हुआ सुनते हैं कि, 'मतलब कुल मिलाकर नौकरी वाली बात हवा में रह गयी थी। अपने से यह सब कुछ जमने वाला नहीं है। जहां-तहां घर बाधा बन खड़ा हो जाता है। हमारे पैर पूरी तरह घर में फंसे हैं। इकलौते जो ठहरे।' लगता है, अटके पड़े रहने का बोध पूरा विस्तार नहीं पा सका है। खैर। आखिर इस तरह की आबद्धता समूचे भारतीय मानस की ही सीमा होती है, या फिर विशेषता हो सकती है। यही कारण है कि 'कोसला' को बार-बार पढ़ते रहने की हवस बरकरार रहती है। पढ़कर असंतुष्टि का कुछ भाव भी बचा रहता है।

इस असंतुष्टि के बावजूद 'कोसला' ने मानवीय संबंधों के जिस विस्तृत पट

का परिचय दिया है, अपनी जगह बेजोड़ है। किसी को शक नहीं होना चाहिए कि इतनी व्यापक चेतना को रूपायित करने वाला दूसरा उपन्यास मराठी में दुर्लभ है।

तसल्ली देनेवाली एक और बात यह है कि खुद लेखक नेमाडे 'कोसला' का खोल तोड़कर आगे निकल गये हैं। बाद के उनके तीन उपन्यास 'बिढ़ार', 'ज़रीला' और 'झूल' प्रकाशित हो चुके हैं और पांचवां उपन्यास 'हिंदू' शीघ्र ही प्रकाश्य है। इन रचनाओं ने भालचंद्र नेमाडे को मराठी साहित्य में ऊंची प्रतिष्ठा दी है तथा उनका स्थान निश्चित कर दिया है।

—चंद्रकांत बांदीवडेकर

एक

मैं पांडुरंग सांगवीकर। मिसाल के तौर पर आज पच्चीस साल का हूं। वास्तव में तुम्हारे लिए इतनी ही जानकारी काफी है। वैसे देखा जाये तो इस दुनिया में पच्चीस साल कोई बहुत बड़ा समय नहीं है। लेकिन पिता के मुझ पर दस-बारह हजार रुपये खर्च हो गये, फिर भी मैंने इम्तिहान वगैरह कभी ठीक ढंग से नहीं दिये। हां, यह मेरा अपराध रहा। हमें यह मंजूर है। वैसे हम लोग अपनी माली हालत वगैरा के लिहाज से ठीक-ठाक हैं। फिर भी हमारे परिवार के सभी लोग कौड़ी-कौड़ी के लिए परेशान वगैरा रहते ही हैं। यानी इसमें नौकर-चाकर वगैरा सब शामिल हैं। अब किसान को एक-एक मूंगफली, एक-एक भुट्टा, एक-एक बिनौला चुन-चुन कर पैसा जुटाना पड़ता है। यह भी हमें मंजूर। और फिर उनका खयाल है कि चंद साल शहर वगैरा में रह लेने के बावजूद बातचीत में, रहन-सहन और रख-रखाव में जो कुछ थोड़ी-बहुत तमीज़ आ जानी चाहिए थी—वह भी मुझमें आ नहीं पाई। मैंने कहा, हम यह सब कह डालेंगे। यानी ठोक-बजाकर कह डालेंगे···तीन-चार बातें छोड़कर। पहली बात, मतलब मैं उधर अपने कमरे में क्या-क्या वगैरा किया करता था? दूसरी, मतलब मैं करीब-करीब साल भर बाकायदा व्यायाम करने का क्योंकर साहस जुटा सका? लेकिन मैं तमाम बातें पूरी की पूरी नहीं बताऊंगा, क्योंकि वो सब तो मेरी कमीजों को भी पता है।

मेरे पिता हमारे गांव में अपने रंग-रूप के कारण प्रतिष्ठित आदमी माने जाते हैं। फिर भी वे हर रोज एक बार तो मंदिर हो ही आते हैं। गांव में उनकी इज्जत वगैरा है। क्योंकि हम ठहरे अपने कारोबार के कारण बड़े किसान। यह तो है ही। लेकिन वास्तव में यूं है, कि हमारे यहां मिसाल के तौर पर परंपरा से काम आने वाली सभी किस्म की चीजों को गांठ बांध परखने का रिवाज दादा-परदादा से चला आया है। हमारे यहां कढ़ाई की हुई एक बहुत बड़ी दरी पड़ी है। किसी के यहां शादी-ब्याह में काम आती है। कुछ दिनों पहले हमारे यहां निमाड़ी जाति का सांड था। आपको पता नहीं होगा, सन् पचास वाली सांड-प्रदर्शनी में हमारे इस बुध्या-सांड को प्रथम पुरस्कार मिला था। मिसाल के तौर पर, इस तरह की कई चीजों वगैरा के कारण हम गांव वालों के काम आते रहते हैं।

पिताजी दिन में कभी भी सोते नहीं हैं। गांव के हर किसी सलाह-मशविरे में

उनका दखल होता ही है। लेकिन बचपन से ही पिताजी के साथ मेरी कभी पटी नहीं। एक तो यह कि उनकी देह-काठी असली बाप की तरह भयंकर रूप से भारी-भरकम है। पोला के त्यौहार पर गांव के बुज़ुर्ग लोग यूं ही दिल-बहलाने के लिए कबड्डी वगैरा खेलों की बाज़ियां लगाते रहते हैं। तब खेल के मैदान में पिताजी का वह नंगा बदन मुझे बड़ा अश्लील लगता है। मेरा अगर किसी के साथ झगड़ा वगैरा हो जाय और उस मामले में मेरी गलती न भी हुई हो, तब भी मिसाल के तौर पर वे मुझे ही लताड़ते। लेकिन दादी ने पिताजी के बारे में उनके बचपन की एक बात कही। तब से मुझ पर पड़ने वाले उनके चांटे वगैरा बड़े अपमान-जनक लगने लगे। यानी आप बड़े काइयां हैं। हुआ यों—पिताजी ने किसी बच्चे को एक बड़ा पत्थर फेंक मारा था। और मिसाल के तौर पर उसकी आंख फूट गयी थी। सो अपनी फूटी आंख लिए वह लड़का अपने बाप के साथ हमारे घर वगैरा आया। उसके बाप ने कहा, जिसने मेरे लड़के की आंख फोड़ी है मैं उसकी आंख फोड़ दूंगा। तब मेरी दादी ने हमारे पिताजी को ऊपर छत पर छिपा दिया था। और उस आदमी से कहा, वे घर में नहीं हैं। फिर तमाम दिन, तमाम रात भी, वह आदमी दरवाज़े पर और पिताजी ऊपर। दस सेर घी देने पर वह आदमी अपने घर चला गया था।

मेरा पूरा लड़कपन उनकी धाक में बीता। वो मुझ पर ज़ुल्म वगैरा करते ही रहते। खेत में हमने थोड़ी ज़मीन साफ की थी और वहां फूलों के पौधे वगैरा लगाये थे। सो उनको इस बात का जब पता चला तो उन्होंने पौधों को उखाड़ फेंका और मेरा कान मरोड़ कर कहा, इतनी ज़मीन पर केले के दस पेड़ लगवा लिये जायें तो पच्चीस रुपये की आमदनी हो सकती है।

अब देखिये, मैं बांसुरी बजाना सीख रहा था। उससे हो सकता है घर के लोगों को कभी कष्ट वगैरा होते होंगे। लेकिन पिताजी ने मुझे हड़काया और कहने लगे, यह क्या कृष्ण-कन्हैया का ज़माना है? चलो, किताब उठाओ। फेंक दो उस बांस को। इतना कहकर रुके नहीं, झपटकर मुझसे बांसुरी छीन ली—उसे दीवार पर पटककर तोड़ डाला और फेंक दिया।

मिसाल के तौर पर मैंने स्कूल के नाटक में पार्ट अदा किया था। उस रात बड़े उत्साह से घर वगैरा लौट आया था। तब उन्होंने यह कहकर सदा के लिए मुझ में दहशत पैदा कर दी थी कि मैं नाटक में हीजड़े की तरह बोल रहा था।

एक बार मैं और एकनाथ बड़े तड़के पहाड़ों पर प्रकृति का नज़ारा देखने के लिए गये थे। सैर में आनंद आया। लम्बी घास, भयंकर ऊंचे-ऊंचे बांसों के पेड़, छोटे-छोटे खैर के पेड़, अंजन वगैरा। हमने अपने साथ खाना-वाना कुछ भी नहीं लिया था। और सारा दिन बिलकुल भूख नहीं लगी। लेकिन दोपहर के वक्त हमें प्यास ज़रूर लगी। निश्चित रूप से पानी कहां पर मिलेगा, इसका मिसाल के तौर

पर हमें पता नहीं था। तब फिर सैर-सपाटों का आनंद लेने के बजाय हम पानी की तलाश में दौड़ने लगे। मैंने कहा, हम नीचे की तरफ तिरछे उतर चलेंगे। अपने-आप पहाड़ उतर लेंगे। संभव है कोई मिल जाय। पानी भी मिल जायेगा। लेकिन, दूर तक उतरने के बाद भी कोई फायदा नहीं हुआ। हां, तब हम काफ़ी घबरा गये थे। तिस पर लंगूर दिखाई पड़े। और फिर शाम हो गयी। थोड़ी देर बाद एक चरवाहा दिखाई पड़ा। उसने पानी का पोखरा दिखाया। वहां जाकर हमने कीचड़-सना खूब पानी पिया। घर लौटते वक्त हम भटक गये। घर पहुंचते काफ़ी रात वगैरा हो गयी। टांगों में भयंकर दर्द हो रहा था। उस हालत में भी बेंत से मेरी पिटाई करने में पिताजी नहीं चूके। वैसे, मैं जो कहो मान जाऊं लेकिन मिसाल के तौर पर कोई मेरी पिटाई करे, मैं सह नहीं सकता। मैंने उनसे कहा कि यह बात हिन्दू धर्म के खिलाफ है। तुम्हारा मंदिर जाना बेकार है।

इस सबके बावजूद वो मुझसे हाईस्कूल में फीस माफी के लिए नादारी की दरख्वास्त जबरदस्ती करवा चुके थे। कम आय लिखवाकर। इसलिए हमारे टीचर 'साने गुरुजी की जीवनी' वगैरा पढ़ाते समय मेरी बदनामी किया करते। पिताजी पैसों के पीछे बुरी तरह पड़े रहते थे।

हां, मां से मैं बहुत प्यार करता था। एक बार छुट्टियों में मैं फूफी के यहां इंदौर गया था। उस वक्त मां ने अपने पास रखी सारी पूंजी—तीस रुपये आठ आने—मुझे दे डाली। हमारी यही एक फूफी थी। उसके यहां जब भी जाता वह मुझे तमीज़ वगैरा सिखाया करती। बार-बार टोकती और कहती—भाषा शुद्ध बोलनी चाहिये वगैरा। तब मैं जल्दी ही लौट आता। हां, मैं उनके यहां कभी-कभार ही जाया करता क्योंकि उनकी मेरी मां से कभी पटती नहीं थी। वह हमारे यहां अपनी जचगी के लिए जब आयी थी तब मिसाल के तौर पर मेरी मां के 'मैं' पैदा हुआ था। दादी मेरा ठीक ढंग से ध्यान नहीं रखती थी। अपनी लड़की का लेकिन खूब ध्यान रखती। और फिर फूफी के लड़की पैदा हुई, तो अपनी मां के मिसाल के तौर पर मैं पैदा हुआ था। फूफी ने खुद मुझे मेरी मां के बारे में बताया था। कहने लगी, वह बहुत भली है। उस ज़माने में बचपन में ही शादियां हो जाती थीं। एक बार मेरे पिता, दादी, फूफी—ये सब इकट्ठे मां के मायके लड़की देखने गये। उस वक्त मां बाहर खेल रही थी। तब मां ने उनकी तरफ सिर्फ़ नज़र डाली। फिर ये सब लोग भीतर आये। मायके वालों ने मां को बुलवाया। फिर भी मां अपना खेल बीच में छोड़कर अंदर आ नहीं रही थी।

मेरी दादी और मां के बीच आये दिन झगड़ा होता रहता है। हमारी किसानी काफी बड़ी। इसलिए दादी को मज़दूरों पर निगरानी रखने के लिए खेत जाना पड़ता है। घर में मिसाल के तौर पर आवा-जाई बहुत। इसलिए मां पर घर

के काम का बहुत बोझ पड़ता है। दादी उलटे कहती है कि मैं खेत में खाती हूं और तुम तो घर में आराम से बैठी रहती हो। वैसे सही देखा जाय तो दादी खेत में मज़दूरों पर सिर्फ़ निगरानी का काम करती है। रास्ते के किसी पेड़ की छाया में वह बैठ जाती और वहीं से पगडंडी का खयाल रखती। मां या और कोई जब दूर से आता दिखाई देता, तब झट से उठ जाती और लुकती-छिपती वहां से चल देती। और फिर काम करने का दिखावा करने लग जाती।

दादी की यह चाल मां के ध्यान में आ जाने पर वह एक दिन खास कर दूसरे रास्ते से खेत में पहुंची। खाना आदि सिर से नीचे उतार दिया और दादी के पीछे जा खड़ी हुई। कहने लगी, बड़ी मेहनत से काम चल रहा है। दादी ने पूछा, तुम खेत में लुक-छिपकर दूसरे रास्ते से चली आयीं। सो क्यों ?

उन दोनों के बीच यह सब यूं ही मनोरंजन वगैरा के लिए चलता रहा है, ऐसा किसी को भ्रम हो सकता है। लेकिन दादी सचमुच मां से द्वेष करती है। वह दिन में एकाध बार तो मां को खेत में भिजवाती ही है। लेकिन घर का काम-काज कभी भी सही ढंग से उससे करते नहीं बनता। एक बार मिसाल के तौर पर हमारे यहां एक खास मेहमान आये थे। उस वक्त लड़-झगड़कर वगैरा मां को उसने खेत पर भिजवा दिया था। मेहमान को खाना परोसते वक्त दादी ने कहा, सुबह से काम करते-करते मेरी कमर टूटी जा रही है। किस-किस के लिए क्या-क्या करूं ? जो तैयार पड़ा है वही परोसे देती हूं। जब मां के शाम घर लौट आने पर हमने उसे यह सब बताया तब मां ने कहा, तुम अपने मज़दूरों पर निगरानी किया करो, बस। यही ठीक है। हमें घर की लाज नहीं उघाड़नी है। दादी ने कहा, तुम कौन होती हो यह सब कहने वाली ? क्या यह घर मेरा नहीं है ? और फिर तब वह गुस्सा होकर फूफी के यहां इंदौर चली गयी। कोई दो महीने बाद वह लौट कर आयी। उस वक्त वह मां के लिए चोलियों के कीमती कपड़े लायी थी। बहन के लिए लाल-पीली गुड़ियां वगैरा और मेरे लिए मिसाल के तौर पर पिंजड़े समेत एक बोलता तोता।

इससे ज़्यादा घर की प्राइवेट बातें हम नहीं बतायेंगे। क्योंकि बताने वाला या तो प्राय: मूर्ख वगैरा होता है। और सुनने वाला मिसाल के तौर पर सदा का लुच्चा होता है। और फिर घर के राज़ बताकर मैं एक बार धोखा खा चुका हूं। कुछ बातें मैंने सरल भाव से एकनाथ को बता दी थीं। तब उसका और मेरा भयंकर झगड़ा हुआ था। उस वक्त उसने मुझे भयंकर डर दिखाकर हमेशा के लिए मुर्दाबाद कर दिया। यही एकनाथ दोस्ती जब करता तो पूरा दोस्त हो जाता और जब दुश्मन बन जाता तो मुकम्मिल दुश्मन। वह कई वर्षों तक लगातार फेल

होता हुआ अंत में मेरी क्लास में मुझसे आ मिला। उसके बाद हाईस्कूल तक उसकी और मेरी जोड़ी बराबर बनी रही। यह वही एकनाथ है जो आज मुझे बिलकुल महत्वपूर्ण नहीं लगता। फिर भी मैं उसे कम नहीं लेखता हूं। अपने पास भी तो कहां डिग्री, नौकरी वगैरा रखी पड़ी है ? वह और मैं स्कूल की छुट्टी होते ही सीधे तैरने, गोता लगाने के लिए चल देते। हमारा मराठी स्कूल गांव के बाहरी इलाके में लगता। हाईस्कूल पड़ोसवाले गांव में था। वहां पास-पड़ोस के गांवों से विद्यार्थी आते थे। स्कूल की छुट्टी के बाद मैं और एकनाथ अंधेरा पड़ने तक इधर-उधर टहल कर ही घर लौट आया करते। रास्ते के खेतों में अनाप-शनाप चीजें खाते रहते। बेर, इमलियां गिराते रहने में मिसाल के तौर पर हमें हर रोज़ देर हो ही जाती। दूसरे सभी लड़के सीधे दौड़ते-भागते घर चले जाते। उनसे मैंने कभी भी दोस्ती नहीं की। एक रोज़ रास्ते में अंधेरे में हमारे सामने से एक बड़ा भयंकर नाग गुजरा। घर में मुझे कभी एकांत नहीं मिलता। इसलिए स्कूल की छुट्टी होने पर इस तरह मैं एकांत के क्षण ढूंढ़ लेता। हमारा मित्र एकनाथ उम्र और देह-काठी के लिहाज़ से क्लास में सबसे बड़ा जीव। और मैं अपनी क्लास के लिए मज़ाक का विषय। मैं कभी किसी दिन स्कूल नहीं आता तो लड़के उससे पूछते, क्यों, तुम्हारी लुगाई कहां है ?

तब से आज तक मिसाल के तौर पर मुझे हमेशा एकनाथ की तरह कोई एक खास दोस्त वगैरा मिलता ही रहा है। एक ही वक्त में मेरे दो-चार खास दोस्त वगैरा कभी नहीं रहे। इस मेरे मित्र ने आखिरकार मुझे बड़ा भयंकर धोखा दिया। एक दिन शाम के वक़्त उसने मुझसे कहा, पहले उसे बुला लो। और फिर तुम यहां खड़े रहो। कोई आ जाय तो सीटी बजा देना मैंने कहा, कहां ?···नहीं। उसने कहा, देखो सोच लो। मैं घबरा गया—और रुआंसा हो गया। उसने कहा, देख लो। समझ लो। नहीं जाओगे न ? तो फिर यहां से चलते बनो। मैं नहीं हटा। लेकिन वहीं डर के मारे कांपता खड़ा रहा था, क्योंकि पता नहीं एकनाथ कल को मुझ पर क्या-क्या गज़ब ढायेगा ? हमारे सारे राज खोल देगा ? वह चलने को था और मुझ पर, उसे क्या कहते हैं, तरस या कुछ आने के कारण वह लौट आया। और कहने लगा, रो मत लौंडे ! यूं ही मज़ाक किया तेरा। चल निकल। तेरे बिना भी मैं सब कर सकता हूं। फिर भी टांगों की मेरी कंपकंपी रुकी नहीं। मुझे लगा वह मेरे राज़ खोल देगा। तो यह जनाब वहां जाकर इस तरह के काम करते हैं—यानी कि मिसाल के तौर पर यह कैसा आदमी है ?

लेकिन एकनाथ ने हमारा कोई राज़ नहीं खोला। पर इसके बाद करीबन दो साल तक वह मुझे काफ़ी बुढ़ाया-सा लगता रहा। आगे हम जब सातवीं-आठवीं कक्षा में थे, सातपुड़ा की पहाड़ी वगैरा से कोरकू जाति के लोगों का एक जत्था हमारे गांव आ टिका था। उसमें से किसी एक लड़की को हथिया कर एक-

नाथ भाग गया। अब कहीं इस तरह के झमेले मेरी समझ में आने लगे थे। इसलिए मैं जान गया था कि एकनाथ बड़ी हिम्मतवाला युवक है। दो-तीन महीनों के बाद एक दिन पुलिस की परवाह किये बिना वह अकेला लौट आया था। उसके माता-पिता ने एक लड़की पक्की की। और मिसाल के तौर पर उसकी शादी कर डाली। और फिर उसके ससुर ने उसे रेलवे में लगवा भी दिया। लेकिन चूंकि मेरी राज़ की बातें उसने खोली नहीं, एकनाथ मुझे महान वगैरा लगने लगा। ये राज़ वाली बातें यानी यह कि हमारे दादा के ज़माने का गड़ा धन हमें मिला था और कि मैं हलवाई की दूकान में चोरी-छिपे पकौड़े खाता हूं···।

अब मिसाल के तौर पर मेरा परिचय। बचपन से मुझे बीच-बीच में एक ही ढर्रे के ढेरों सपने आते। मां कहा करती है, बचपन में मैं नींद में जाग जाता और बेतुकी-बेढंगी बड़बड़ाहट वगैरा किया करता। तब पिताजी मुझे बुरी तरह चांटे लगाते, इतना कि उनके हाथ दर्द देने लगते। मां रोने लगती। मैं होश में आ जाता और थकान के मारे सो जाता। ये सपने एक-से होते हैं। चंद तो इतने साफ और स्पष्ट वगैरा हैं कि उन्हें बताया जा सकता है। लेकिन मां कहती है कि मैं तरह-तरह की आवाज़ें करता, चीखता-चिल्लाता रहता था। कभी मैं खिड़की की सलाखें पकड़कर उसी गीत को मिसाल के तौर पर 'सजन मेरा प्यारा गुलाब का फूल' दुहराता रहता। कभी आहा, आहा, वाह, वाह, वाह की आवाज़ें लगातार लगाता। या कभी हू ऽ ऽ हू ऽ ऽ हू ऽ ऽ किया करता। इस तरह के सपने वगैरा मेरी ठीक से समझ में कभी नहीं आये।

कभी सपने में एहसास होता कि हम घोड़े की शक्ल के जानवर वगैरा हैं। और हमें खूब दौड़ना पड़ रहा है। भयंकर रफ्तार से। सीना फटने तक। चारों तरफ मैदान हैं। लेकिन फिर भी हम दौड़-दौड़कर और दौड़ रहे हैं। और फिर यकायक चीख मार कर हड़बड़ी से उठ बैठना।

या शायद ऐसा भी नहीं।

हमारे गांव के सभी मकान अपने आप यकायक आगे की तरफ चलते चले जा रहे हैं। उसमें से एक मकान यानी कि मैं खुद। चंद मजबूत मकान। कुछ ऊंचे मकान। छोटे मकानों को जमींदोज़ करके आगे निकलते हुए। सभी मकान मानो हलों की तरह एक दूसरे को पेलते आगे बढ़ रहे हैं। भयंकर भीड़। फिर भी कोई आवाज़ क्यों नहीं आ रही है? इसलिए मैं घबराया और चीख मार कर उठ बैठा।

या शायद ऐसा भी नहीं।

मेरी कमर से उग आया एक कैक्टस। सांप की तरह फन निकालता ऊंचा

और ऊंचा बढ़ रहा है। जड़ें नीचे दूर तक चली गयी हैं और ऊपर एक कंटीला फन। मेरा सिर और मेरे हाथ-पैर इस कैक्टस को दबोचने की फिराक में हैं। लेकिन लगता है, मैं भी क्रमशः मोटा बनता हुआ यकायक किसी पटाखे वगैरा की तरह फट न जाऊंगा। लगता है, अंत में या तो लंबी डोरी की तरह खींचा जाऊंगा या रबड़ की तरह आड़ा फैलाया जाऊंगा। मैं तब सोच रहा हूं कि थोड़ी कशमकश कर लें। इतने में नींद खुल जाती है और पिताजी मेरे दोनों हाथों को अपने एक हाथ से कसकर पकड़े दूसरे हाथ से मुझे फटाफट तमाचे जड़ते जा रहे हैं।

या शायद ऐसा भी नहीं।

दीवार में जड़े किसी जगमगाते गड्ढे में ताजमहल जैसी कोई इमारत दिखाई पड़ रही है। पर कोई पीछे मुड़ने के लिए मुझे कह रहा है। लेकिन मुड़ने पर मुझे कोई इमारत नहीं दिखती। हां, सामने वाले गड्ढे में परछाईं ज़रूर है।

या शायद ऐसा भी नहीं।

हाथी समान बड़ा कोई एक पत्थर चोटी से खिसकता हुआ नीचे और नीचे की तरफ गिरता-पड़ता ज़र्रा-ज़र्रा हो जाता है। उसके ये छोटे-बड़े टुकड़े यानी मेरे शरीर के ही हिस्से हैं। लेकिन मुझे फिर से जुड़कर उठ खड़ा होना है। पर इसके लिए टीले-तलहटियों में बिखरे ये टुकड़े एक-दूसरे के निकट आने चाहिए। लेकिन इन पत्थरों में निकट आने की ताक़त नहीं है।

या शायद ऐसा भी नहीं।

स्कूल के ज़माने में काफ़ी दिनों तक मेरे पीछे भयंकर संकट लगा हुआ था। हलवाई का एक लड़का मुझे बेवजह सताया करता था। वह कभी न नहानेवाला। लटों को एक हाथ से पीछे कर के मेरे पीछे दौड़नेवाला। भयंकर, क्रूर। स्कूल की छुट्टी के समय मैं बेचैन हो जाता। छुट्टी होते ही बाहर हो जाता और बच्चों की भीड़ में भेड़ की तरह घुसकर झूठी बेफिक्री वगैरा दिखाता। लेकिन वह उधर वाली दूकान के चबूतरे से लपककर हम तक पहुंच पाता। और गोता लगा कर मुझे पकड़ ही लेता। तब मैं भीड़ से बाहर निकल आता और चलने लगता। वह कभी मेरे बायें बाज़ू पर घूसा लगाता कभी दायें कंधे पर थप्पड़ मारता, कभी टांगों में टांग अड़ाकर मुझे लुढ़का देता। मैं कहता मिसाल के तौर पर कुछ नहीं। लेकिन वह मुझे छोड़ता नहीं था। मैं कभी कहता, मैंने क्या बिगाड़ा है तुम्हारा ? तब वह मेरा कुरता खींचकर कहता, क्या बिगाड़ा कहता है ? जड़ दूं एक जम कर ? दूं और एक ? तब मैं चुपचाप आगे चलने लगता। दूर तक वह इसी तरह मेरा पीछा करता रहता। मैं इतना घबराया हुआ रहता कि एक दिन मैंने अपने पास बैठे लखू से कहा, लखू आज हम अपने घर जायेंगे ही नहीं।

लखू ने कहा, आज हमारे घर बेंगन का भुर्ता बना है, मां ने कहा था। मैं तो जल्दी ही घर जाऊंगा।

मैं रमेश से कहता, स्कूल में आने को मेरा मन ही नहीं करता।

वह पूछता, क्यों?

मैं कहता, मुझे वह हलवाई का लड़का पीटता है।

रमेश कहता, तब तुम क्यों नहीं हो-हल्ला मचाते? मुझे अगर कोई पीटने लगता है तो मैं ज़ोर-ज़ोर से रोने लगता हूं। तब पीटने वाला अपने-आप भाग जाता है। फिर झूठ-मूठ के आंसू पोंछ डालो बस।

उस दिन मैंने रोकर आज़माया तो उस हलवाई के लड़के ने मेरे मुंह में मुट्ठी भर मिट्टी डाल दी। मैं थूकते-थूकते घर पहुंचा। किसी को पता न चले, इसलिए मुंह साफ करके घर में दाखिल हुआ था।

यह आखिरी हादसा था। पर बहुत बचपन में। सच था या सपना था, सही-सही याद नहीं।

बीच में कुछ दिनों के लिए यह सब बंद हो गया था, क्योंकि मैं पूरी रात बगैर सोये जागते रहने लगा था। वास्तव में यही मेरा मिसाल के तौर पर परिचय समझो। क्योंकि मुझ जैसा नींद पर काबू रखने वाला दूसरा कोई आपको मिलेगा ही नहीं। मतलब यह कि जब जगा रहता हूं तो दिन मिलाकर करीबन दो रातें जाग सकता हूं। और सो जाऊं तो रातें मिलाकर करीबन दो दिन लगातार सो सकता हूं। मगर अब इन दिनों घर पर इतना कुछ बन नहीं पाता। खैर छोड़िए इसे। हां, तो जब मैं नॉर्मल था उस वक्त का यह सामान्य परिचय। आजकल घर पर कभी सुबह जल्दी जग जाता हूं। और फिर शौच आदि निपटाकर बैठा रहता हूं, तो सोचता हूं, अब क्या किया जाय? ऐसे समय सुबह छह-सात बजे उठ जाने वाले को कभी देख लूं तो बड़ी उलझन में पड़ जाता हूं। यह हज़रत जब अभी इतने तरोताज़ा वगैरा दिख रहे हैं तो ये इसके बाद पता नहीं क्या-क्या करते होंगे? एक बात तय है कि एकाध घंटा तो ये ज़रूर जोश में मिसाल के तौर पर कुछ भला-बुरा करते ही रहते हैं।

तो मैं मैट्रिक पास कर लेने तक फालतू की बातें ही मिसाल के तौर पर ज़्यादा करता रहा। इसके बाद सिर्फ़ पढ़ाई वगैरा ही करता रहूं, इसका इंतज़ाम पिताजी ने कर रखा था। पर पहले आपको एक कहानी सुना दूं जो मुझे निहायत पसन्द है। इसे मैंने कहीं पढ़ा वगैरा नहीं। क्योंकि उस वक्त तक मैंने बहुत ज़्यादा अति-रिक्त पढ़ाई नहीं की थी। मतलब जगन बाबा की दी हुई गीता सिर्फ़ सरसरी तौर पर पढ़ी थी। पर ऊपर वाला श्लोक बार-बार जब देखना पड़ता तो समझो

गड़बड़ी हो ही जाती। इसलिए गीता ठीक से मेरी समझ में नहीं आयी। तो मैंने वह कहानी अपने मित्र गिरधर से सुनी थी। उसने मंदिर में किसी बाबा के मुख से पोथी बांचते वक्त सुनी थी। यह गिरधर गांव के सभी मित्रों में बड़ा प्रिय मित्र वगैरा था। उस पर कुल मिलाकर पोथी-पुराणों की धुन सवार थी, समझो। **'जीवे परमेश्वराधीन हो आवे'** इस सूत्र पर कहा गया दृष्टांत था वह। हैजे वाले किसी साल, एक अमीर आदमी के माता-पिता, बाल-बच्चे-पत्नी सब मर गये। निराश हो जाने के कारण वह आत्महत्या करने के इरादे से बावड़ी में कूद पड़ा। लेकिन नीचे गिर जाने पर उसे कुछ पश्चाताप वगैरा हुआ। उसने सोचा, चीखने-चिल्लाने से संभवत: आने-जाने वाला कोई सुन ले और उसे बचा ले। इस इरादे से उसने ज़ोर-ज़ोर से पुकारना शुरू किया। समय रात का। जिसने आवाज़ें सुनीं उसे यह भुतहा घटना लगी। लोग उलटे भाग पड़े। कड़ी सर्दी पड़ रही थी। फिर भी इस अमीर का चीखना रुका नहीं। अगले दिन सुबह इन चीखों को सुनकर काफ़ी लोग वगैरा जमा हुए। उन्होंने सर्दी से ठिठुरे उस अमीर आदमी को बाहर निकाला। उसने कहा, इतनी बड़ी ज़मीन-जायदाद को चोर लोग हड़प लेते। अपने बाप-दादाओं ने इसे बड़े परिश्रम से जुटाया है। इसलिए मरने की इच्छा नहीं हुई। उसमें उलटे जीने की तमन्ना अचानक जाग गयी। लोगों ने कहा, बात बिलकुल सही है। इसके बाद वह दो-तीन दिन जीवित रहा। उसे बुखार हुआ। और वह मर गया।

यह कहानी बड़ी विचित्र है।

हमारे दरवाज़े पर एक पीपल का पेड़ था। उसका तना ऊपर के घेरे की तुलना में काफ़ी छोटा। किसी बड़ी आंधी में वह ढह पड़ा। दूर-दूर तक फैली जड़ों के उखड़ जाने के कारण हमारी एक दीवार में दरारें पड़ गयीं।

यह भी विचित्र बात है।

लेकिन यहां तक का सारा ज़माखर्च ज़बानी।

मैं मिसाल के तौर पर एक बार बड़ा चिढ़ गया था। इसे भी कहे देता हूं। मैं मैट्रिक में पढ़ रहा था। उस वक्त मेरे तीसरे नंबर की बहन पैदा हुई थी। उस दिन मां ने बड़ा हो-हल्ला मचाया था। मैं ऊपर वाले कमरे में फालतू पड़ा पीठ-कोरे कागज़ वगैरा इकट्ठा करके एक भारी-भरकम कापी सी रहा था। ऐन उस वक्त पिताजी ऊपर आये। मुझसे पूछा, क्यों जी, खाना खा लिया ? मैंने हां कहा। पर मुझे दुख हो रहा था कि मुझ पर हमेशा इतना प्यार करने वाली मां मुझे उस दिन

भूल गयी थी। उसकी चिंता दूसरी ही थी। और फिर उस वक्त मेरे मन में जन्म-मृत्यु को लेकर नाज़ुक खयाल वगैरा आ रहे थे। फिर भी मैं जीवट की तरह कापी सी रहा था। एक बार फिर पिताजी ने पूछ ही लिया, खाना खा लिया ? उसके बाद मैं पैर पटकता हुआ वहां से चल दिया। और काफ़ी देर तक गांव में इधर-उधर भटकता रहा। लौटकर घर आने पर पता चला कि मेरे बहन हुई है। बाद में पूरी रात जागकर मैंने पूरे साल का एक लंबा-चौड़ा टाइम-टेबुल तैयार किया। रोज़ सुबह, अलजिब्रा। उसके बाद स्कूल। शाम को स्कूल का काम वगैरा। रात को अंग्रेज़ी। इतवार के दिन, शेष सभी विषय वगैरा। और खेत में या इधर-उधर कोई काम। इस तरह इम्तिहान तक सब महीनों का।

यह तो और भी विचित्र।

और एक बात।

चूहों के बारे में मेरी राय पुश्तों से ही खराब रही है।। हमारे दादा, दो बुआ, एक चाचा और चाचा का पूरा परिवार प्लेग ही के कारण खत्म हो चुका था। यह सबको पता है। चूहा कहीं भी अपना बिल बना लेता है, कहीं भी पेशाब कर लेता है, कहीं भी लेंडियों का ढेर लगा देता है। ठीक है, कभी-कभी इसे सहा जा सकता है। लेकिन अच्छी चीजों को बेवजह खराब करने की बात बहुत बुरी है। कभी चप्पलों को कुतर डालेंगे, तसवीरों की डोरियां कुतर उन्हें गिरा कर तोड़-फोड़ डालेंगे, लाल पेंसिलों के सिक्कों को चबा डालेंगे, नयी अलमारियो में छेद कर देंगे, अंगूठों को कटा लेंगे, बदन पर कूदेंगे—गणपति का वाहन हुआ तो क्या हुआ ?

मैं बहुत छोटा था तब एक घटना हुई थी। तब से मैंने निश्चय कर लिया, चूहा अपना दुश्मन।

हमारे खेत का रखवाला खरगोश के दो बच्चे ले आया था। एक तो शायद वह उस शाम पकाकर खा गया होगा। दूसरे को मैं ज़िद करके घर ले आया। थोड़ी देर के लिए मैंने उसे चूहे के पिंजड़े में रख दिया। उसकी ज़र्द लाल आंखें और शोख लाल जीभ। उसे छुआ नहीं कि वह एकदम दूर दौड़ जाता। मूंगफली तो वह टुपू-टुपू खाता।

मैंने रात में पिंजड़ा खटिया के नीचे रखा और सो गया। सो जाने से पहले कई बार पिंजड़े को उठाकर देखा। तब वह डर जाता।

बड़े तड़के मैं उठा। देखा, तो पिंजड़े में दो बड़े-बड़े घिनौने चूहे। और

खरगोश का वह नन्हा चूज़ा अपनी नाज़ुक टांगें ऊपर किये मरा पड़ा है ।

तब मुझे भयंकर क्रोध आया । चूहों ने उसे जगह-जगह काट खाया था । बेचारे नन्हें खरगोश को ज़िंदा रहते मैंने गौर से देखा भी नहीं था । पिंजड़े में चूहे सरेआम शोर मचा रहे थे । उनकी वे उग्र मूंछें, साइकिलनुमा लंबी काली पूंछें और पिंजड़े की छड़ों तक पहुंचने वाले तेज़ दांत, चमकीला काला बालदार बदन । मैं इन्हें सता-सताकर मार डालूंगा । मतलब, पक्का मार डालूंगा । लेकिन लल्लू की लाश को महफूज़ रखना होगा । फिर मैंने पिंजड़ा उठाया और गोयठे वाले हौज पर चला आया । पिंजड़े का दरवाज़ा खोला, पर चूहे हौज में कूद नहीं रहे थे । मेरे हम-उम्र कई दोस्त चूहों को मारने के लिए वहां तैयार खड़े थे । दोनों चूहे खरगोश की लाश को इधर-से-उधर फांद रहे थे । लेकिन बाहर नहीं निकल रहे थे । आखिर एक लड़के ने पिंजड़े को ज़ोर-ज़ोर से हिलाया । हमने खयाल नहीं किया । दोनों चूहे पानी में गिरने के बजाय छलांग लगाकर हौज की दीवार से सीधे फिर से घर की दिशा में भाग गये ।

तब मैं अरे ऽ अरे वगैरा बड़बड़ाता चूहों से पक्का चिढ़ गया । यह सारी नस्ल ही खराब । इसलिए उसके बाद चूहों को मार डालने का एक भी मौका मैंने गंवाया नहीं ।

बिल्ली को पालना मां को मंज़ूर नहीं था । ज़हर देकर चूहों को मार डालना पिताजी को मंज़ूर नहीं था । बिल में छिपे चूहों को सुमी और मैं मार डालते । वह बिल में पानी उंड़ेलने का काम करती, तो मैं बिल के बिलकुल सामने झाड़ू का निशाना लगाए खड़ा । वैसे सुमी का काम बड़ा खराब । लेकिन मेरे डर के कारण वह लगातार बालटियां लेकर आती । कभी ऐसा भी होता वह पानी लेने जाती और चूहा बाहर निकल आता । तब वह भी निराश हो जाती । इसके अलावा पिंजड़े में पकड़े चूहों को पानी में डूबोकर मारता रहा । चूहों के छिपने-भागने की जगहों को तलाश कर वहां इंतज़ार में बैठा रहता । और जूंही चूहा बाहर निकला, निशाना साधकर लकड़ी से वार करता—यह भी किया ।

एक बार तो एक चूहे पर मिट्टी का तेल डालकर उसे आग लगा दी । लेकिन वह था कि उछला और सीधे घर में घुस गया । और फिर पिताजी ने मेरी बड़ी पिटाई की । इस तरह यह काम बहुत दिनों तक चलता रहा ।

मैट्रिक वाले साल तो मैंने बेशुमार चूहे मारे । एक बार एक चूहे ने करीने से लगी मेरी किताबों को पीछे की तरफ से कुतर कर उन्हें तार-तार कर डाला ।

बताइए, इस तरह उनके नखरे कौन बर्दाश्त करेगा ? और फिर चूहों के मामले में एक बात बड़ी खराब । मतलब, फलां बदमाशी के लिए कौन-सा चूहा ज़िम्मेदार है, इसका पता लगाना मुश्किल हो जाता है क्योंकि ये सारे के सारे हू-ब-हू एक जैसे दिखाई देते हैं । फिर भी हादसे के बाद मैं तीसरी रात को घात लगाये बैठा रहा । तब मैंने एक चूहे को मिसाल के तौर पर धीरे से किताब पर उतरते वगैरा देख लिया, और मुझे लगा, यही वह किताबें कुतरने वाला हू-ब-हू चूहा है ।

मैं ऊपरवाली मंज़िल पर पढ़ाई वगैरा किया करता । कमरे में भयानक अटरम-सटरम चीज़ें । अनाज भरे पीपे, मटके वगैरा रखे-पड़े थे । दरवाज़ा बंद कर लिया जाय तो चूहों को बाहर निकालने के लिए मिसाल के तौर पर रास्ता सिर्फ़ दीवार के ऊपर से बच जाता । लेकिन दीवार पर चढ़ने वाले चूहे को बेशक मारा जा सकता है । उस चूहे को मैंने किताबों पर थोड़ी देर बैठा हुआ देखा था।

मैंने पहले ही से पूरी तैयारी कर रखी थी । हाथ बढ़ाकर लालटेन की बत्ती वगैरा तेज़ कर दी । बिलकुल उसी वक्त चूहा ट्रंक के पीछे भाग गया । तब दरवाज़ा बंद किया और टॉर्च की रोशनी ऐन ट्रंक पर फेंकी । अब तो पकड़े गये बच्चूजी—वगैरा बुदबुदाया और आगे खिसके ट्रंक को ज़ोर से मिसाल के तौर पर दीवार के सटा दिया । कुछ देर तक खामोश खड़ा रहा । बाद में ट्रंक को एक तरफ हटाके देखा । वहां तो कुछ भी नहीं ।

साला चकमा देकर जायगा कहां ? सोचता हुआ मैं खामोश खड़ा रहा । उस क्षण पीछे की तरफ कुछ हलचल-सी हुई । उधर कोने में मटकों वगैरा की कतारें । लेकिन उस जगह चूहे को मारना भयानक मुश्किल का काम । लेकिन अब तो हम उस चूहे के बाप को भी नहीं छोड़ेंगे ।

ऊपर छत के समानांतर कपड़े फैलाने के लिए लटकाये बांस को पार कर ये चूहे छत पर दौड़ते रहते हैं । इसलिए मैंने बांस को ही निकाल फेंका । घर के लोग गहरी नींद सो रहे थे । यह भी एक अच्छी बात थी । वहां दरातियां, कुल्हाड़ियां, कुदालियां हज़ारों किस्म के लोहे के सामन का ढेर । वहां रोशनी फेंकी, पर कुछ भी दिखाई नहीं पड़ा ।

फिर एक लंबा डंडा लिया और सामान पर काफ़ी पीटा-पाटी की । तब चूहा तपाक से एक ढेर के नीचे से निकला और मिसाल के तौर पर दूसरे ढेर के नीचे घुस गया । मैंने आगे एक जगह रोशनी फेंकी । चूहे की पूंछ सिर्फ बाहर दीख रही थी ।

वैसे मेरा निशाना वगैरा मिसाल के तौर पर काफ़ी कुछ ठीक-ठाक रहता है । एक हाथ से टॉर्च नीचे रखा और भयानक चुप्पी साधकर डंडे को पूंछ की दिशा में बढ़ाया । और सीधे फटाक से पूंछ दबोच डाली । सिर्फ चीं-चीं की आवाज़ और चूहा छलांग लगाकर खड़-खड़ वगैरा करता हुआ मिसाल के तौर

पर फिर से गायब हो गया। पूंछ के सिरे पर एक खरोंच के सिवा उसे कुछ भी नहीं हुआ।

फिर से मैं आड़ से झांकता हुआ धीरे-धीरे आगे सरकता रहा। दीवार के अंतिम सिरे पर कोने में एक भारी-भरकम कनस्तर रखा हुआ था। एक तरफ से झांका तो मिसाल के तौर पर कुछ भी दिखाई नहीं दिया, क्योंकि कनस्तर के पीछे भयंकर सामान पड़ा था। और फिर चूहों के कुतरे हुए कागज़ के बेशुमार गोले वगैरा बिखरे थे।

दूसरी तरफ से रोशनी वगैरा फेंकी। अब लेकिन मिसाल के तौर पर चूहे का पीछे वाला हिस्सा दिखाई दिया। और मैंने कनस्तर की इधर वाली बाज़ू को लकड़ी वगैरा की पटरी वगैरा फंसाकर बिलकुल बंद कर दिया। इसका भी खयाल रखा कि अपनी खुसर-पुसर के कारण कोई जाग न जाय। कनस्तर की दूसरी बाज़ू से भी चूहे पर हमला करना संभव नहीं होगा। इसलिए ट्रंक को वहां तक खिसकाया और उस रास्ते को भी पूरी तरह बंद कर दिया।

फिर रोशनी फेंकी। वरना भाग खड़ा होता बेटा। लेकिन इस बार उसका मुंह सीधे मेरी तरफ था। रोशनी के कारण उसकी आंखें मणियों वगैरा की तरह चमक रही थीं। मैंने सोचा मिसाल के तौर पर अब थोड़ा ही वक़्त लगेगा।

फिर मैं उस ऊंचे कनस्तर पर चढ़कर बैठ गया। वह इतना ऊंचा था कि ज़रा सिर उठाया नहीं कि छत की आड़ी पाटियों से टकरा गये समझो। जैसे-तैसे बदन की पोटली बनाकर डंडे को अंधेरे में भयानक रूप से धीरे-धीरे नीचे छोड़ा। अनुमान के मुताबिक डंडा सही पहुंच रहा था या उसकी लंबाई खत्म हो गयी थी, कुछ समझ में नहीं आया, सो मैं रुक गया। फिर फट से टॉर्च वगैरा जलाया। रोशनी नीचे तक पहुंच सकती है, इसका पता उस मूर्ख प्राणी को कहां था!

लेकिन वहां अब मिसाल के तौर पर दो चूहे नज़र आये। लो, यह और एक अजूबा! मतलब यह दूसरे वाला ऐन वक़्त यहां कब टपक पड़ा? यह और भी खूब! फिर मैंने धम से एक के बदन पर डंडा भोंक दिया और उसे मिसाल के तौर पर सही-सही ढेर कर दिया।

दूसरे ने मुक्ति का रास्ता वगैरा ढूंढ़ने की कोशिश की। लेकिन सारे रास्ते बंद थे। इसलिए उसने डंडे का ही सहारा लिया और सीधे ऊपर चढ़ आया। तब मैं ज़ोर से चीखा और हाथ के डंडे को फेंक दिया। चूहे समेत डंडा नीचे गिर पड़ा। इसे तुरंत ऊपर उठा लेना होगा। डंडे के सहारे मिसाल के तौर पर चूहा फिर से ऊपर चढ़ सकता था। किस्मत अच्छी कि चूहा सामान के नीचे छिपकर बैठ गया था। यह और एक अजूबा।

फिर मैं धड़ाम से सीधे नीचे कूदा। झट से लालटेन उठायी और उसे कनस्तर पर रख दिया कि कहीं इस बीच चूहा सीधे ऊपर न भाग जाय। फिर मैंने

एक छोटा डंडा लिया और उससे उस बड़े डंडे को ऊपर उठा लिया। तब फिर कनस्तर वगैरा पर चढ़कर मिसाल के तौर पर डंडा हाथ में पकड़ लिया। डंडे से सारा सामान भयंकर रूप से मथ डाला। फिर भी चूहा बाहर नहीं आ रहा था। मुझे काफी झुकना पड़ रहा था। इस हड़बड़ी में लालटेन कंधे को छू गयी और जोर से चटका बैठा। तब तो मैं और ज्यादा चिढ़ गया। लालटेन को नीचे रखकर ऊपर लौट आने तक की फुरसत कहां थी? हां, पर इस बार लालटेन से कंधा बचाने का खयाल निरंतर रखना पड़ा। फिर डंडे से एक-एक चीज को मिसाल के तौर पर एकतरफ करने लगा। हमारे घर सामान की कोई कमी नहीं। तिस पर मां कहा करती है कि ऊपर की मंजिल उसकी नहीं है। नीचे लेकिन वह अपना सारा सामान साफ-सुथरा और हू-ब-हू चमकदार रखती है। यहां ऊपर लेकिन हज़ारों पचड़े। नीचे नाकारा पड़ा हुआ सारा सामान ऊपर फिंकवा दिया था! यह भी एक अजूबा।

मैं बुरी तरह झुंझलाया।

अब लेकिन मैं पूरा घनचक्कर बन चुका था। एक-एक चीज को डंडे से उठा कर मिसाल के तौर पर फेंकते चले जाने के बाद कम-से-कम चूहे की पूंछ तो दिखाई दी। अब एक-दो चीजों को और हटा दें तो बस! फिर मैंने पसीना पोंछा। इसके लिए इतने कष्ट। यह ठीक नहीं।

लालटेन को थोड़ा एक तरफ किया। एहतियात से टॉर्च उठाया। वहां पड़ी लोहे की एक पट्टी को एक तरफ फेंक दिया। तब मिसाल के तौर पर चूहे की पीठ नजर आयी। यह फिर एक अजूबा।

मुझे लगा, इतना काफी है।

उसका मुंह कनस्तर के नीचे उकेरी मिट्टी में छिपा हुआ था। पर पीछे उसका वह भारी-भरकम माथा जो खुला पड़ा था वह कहां छिपेगा? और फिर पीठ पर डंडे की नोक ठीक सीधे भीतर तक चुभोयी। तब उसका मुंह भीतर ही था। हड़बड़ाकर उसने अपना मुंह बाहर निकाला। मैंने डंडे को और ज्यादा दबाया। तब थोड़ी देर के बाद वह शांत हो गया।

यह कुछ बात हुई न!

पर इतने भर से बात खत्म नहीं हुई। नीचे उतर कर कनस्तर से सटे हुए ट्रंक को मिसाल के तौर पर दूर तक खिसकाना पड़ेगा। मरे हुए उन दोनों चूहों को बाहर निकालना जरूरी था। इसके लिए मुझे फिर से ऊपर चढ़ना पड़ा। यह फिर एक अजूबा।

तब फिर चीजों के पीछे से, कभी चीजों के बीच से ढकेलते-पेलते उन दोनों चूहों को बाहर निकाला। देखा कि ये दोनों चूहे दूसरे ही थे। लो। यह भी खूब! मतलब, इसके पहले का वह पूंछ-छिला चूहा इनमें नहीं था। मतलब, वह खिसक

गया।

यह तो और भी खूब।

उसे ढूंढना अब असंभव था। क्योंकि सुबह होने जा रही थी। हमेशा की तरह इन दोनों चूहों को फेंकने के लिए मिसाल के तौर पर एक कागज़ पर रख-कर मैं छत पर चला आया। अब इसे बंद किया जाय।

चूहों को फेंककर मैं शांत हुआ और पूरब की तरफ देखता छत पर खड़ा रहा। आकाश में खूब तारे थे। लेकिन पूरब की लालिमा भी फैल रही थी। मेरे कपड़े पसीने के कारण गीले हो गये थे। ठंडी हवा के कारण चेहरे को मिसाल के तौर पर अच्छा लग रहा था। लेकिन बदन को सर्दी लगने के कारण थकान वगैरा बढ़ गयी। तब मैं वहीं आंखें खुली रखकर जरा-सा लेट गया।

मुझे लगा, सब कुछ व्यर्थ है। तब मैंने अपनी टांगें पसार दीं। और आंखें बंद कर लीं।

लगा, नींद जल्दी ही आ जायेगी। पिछली रात जल्दी उठकर इतिहास की पढ़ाई पूरी करनी थी। पर वह रात तो बीत गयी। आज की सुबह भी चली गयी। आज का दिन भी पिनक में बीतने वाला था। और फिर आज रात तो निश्चय ही जमकर नींद आयेगी। परसों सवेरे जल्दी उठने की तो बात ही मत कीजिए। देर तो बेशक हो ही जायगी। फिर वह दिन भी ऐसा ही निकम्मा चला जायगा। कुल मिलाकर कुछ ज्यादती ही हुई। और फिर से ये क्रूर चूहे, उनकी पूंछें। यह जीर्ण लंबा-चौड़ा मकान, गांव के ये निठल्ले तिकड़मी लोग और हमारे गंवार नौकर। पूरी बस्ती में कोई भी भला आदमी नहीं है। यहां चूहों को, मक्खियों को मार डालने वाला एक भी आदमी नहीं है। खेती का यह भारी सामान। यह बस्ती। तमाम रात चलने वाला कुत्तों का खौफनाक भौंकना। यह पढ़ाई—सब व्यर्थ बोझ है। इम्तिहान में जो होगा, देखा जायेगा। वैसे तैयारी दो-दो बार हो चुकी है। लेकिन मन नहीं लग रहा है।

फिर मैंने करवट बदली। देखा, चींटियों की बड़ी भारी कतार जल्दी-जल्दी आगे बढ़ रही थी। अभी सुबह होनी बाकी है। और ये चींटियां हैं कि अपने काम में व्यस्त। इन्होंने पूरे मकान को खोखला कर दिया होगा। सिर्फ सौ-दो सौ कहां हैं ये? बहुत ज्यादा हैं, लाखों दीख रही हैं। सारी रात ये कुछ-न-कुछ करती ही रही होंगी। पर अच्छा ही है। आखिर यह मकान खोखला होकर ढह जायगा। अच्छा ही होगा।

फिर मैं पीठ के बल सो गया। ऊपर अभी चंद स्पष्ट तारे। सुबह पहले आकाश में होती है, फिर रही-सही धरती पर। ऐसी कितनी सुबहें मैंने इस दरिद्र

गांव में गुजारीं, कोई ठिकाना नहीं। इन मकानों के ऊपर। इस बस्ती के ऊपर। इन चूहों के ऊपर। इन मक्खियों के ऊपर। आकाश में सब कुछ कितना साफ-सुथरा है। नीचे लेकिन कीच, विष्टा, कीचड़, धुंआं, अनगिनत सैंकड़ों आवाज़ें। भौंकना, चीखें। हां, पनघटों के रहटों की आवाज़ें कुछ अच्छी हैं। लेकिन कुल मिलाकर स्थिति ठीक नहीं है।

कोई तो महान काम करना चाहिए। बेशक ऐसा कुछ होगा जो महान कहलाया जा सकता है। या जिसे पूरा कर लेने पर महान कहते हैं। इसलिए हमें वैसा कोई काम करना होगा। कम-से-कम ठीक ढंग से मैट्रिक पास कर लें और यहां से चल देना चाहिए। वरना पिताजी एग्रिकलचर वाला कोई छह-माही कोर्स करने के लिए कहेंगे। कहेंगे, इतना काफी है। अब बताइये, छह महीने में क्या खाक महान होगा? इस गांव से दूर कहीं कई बरसों तक कुछ तो करना होगा। लाभ इसी में है। पर आखिर किसलिए इतनी परेशानियां?

इतने में मां खुद ऊपर आयी। लालटेन अब भी जल रही थी। मां ने पूछा, कपड़े फैलाने का बांस क्यों खोल दिया? देर रात तक पढ़ाई नहीं करनी चाहिए। कहने लगी, नीचे चलो। फिर मैं नीचे उतर आया। सुबह थोड़ी-सी झपकी लग रही थी। मिसाल के तौर पर पिताजी ने मुझे जगा दिया। बाद में पूरा दिन उनींदी आंखों से गुज़रा। और मैंने छोटे-बड़े काफी संकल्प वगैरा किये।

फिर परीक्षा आयी। मुझे नासिक वाले डॉक्टर से आंखों का चश्मा खरीदना था ही। इसलिए मैं नासिक गया। परीक्षा दी।

चश्मा भी लगवा लिया।

अब बस पूछो नहीं। जो कुछ हुआ कुछ ज़्यादा ही हुआ।

दो

पूना विद्या का मायका कहलाता है। वहां मैंने कम-से-कम छः साल गुज़ारे।

कॉलेज में दाखिला वगैरा करवाने के लिए हमारे गाँव के एक साहब को मेरे साथ भेजा गया। ये साहब दो-तीन साल पूना के कॉलेज में गुज़ार चुके थे और अब अपने घर बैठे हुए थे। इसलिए इनके जैसा कोई आदमी पिताजी मेरे साथ भिजवायें, यह ठीक ही था। मैं पहली बार पूना जा रहा हूं, इसलिए उनको चाहिए था कि पूना के बारे में पहले मुझे कुछ जानकारी देते। पर यह तो दूर ही रहा। उलटे उनकी यह धारणा कि मैं खुद उनसे उनकी जीवनी पूछूं। और यह जनाब पूरी यात्रा मुझसे अपने कॉलेज की बातें बताते रहें। लेकिन मैंने वैसा कुछ पूछा नहीं। इसलिए वे मुझ पर चिढ़ गये। मतलब, कल्याण स्टेशन पर मैंने चाय के लिए पूछा तो कहने लगे, मैंने पिछले स्टेशन पर ही पी ली। या मैंने जब पूछा कि तुम गांव में कभी सिगरेट पीते नजर नहीं आये। लेकिन यहां तो रात भर से पी रहे हैं। तो जवाब मिला, कॉलेज ग्यारह बजे खुलेगा। हम सबसे पहले तुम्हारी मौसी के घर चलेंगे। बंबई से ही गाड़ी खचाखच भरी हुई आई। फिर भी हमने जगह अच्छी बना ली। मुझे बाल-सुलभ आदतों के अनुसार भूख लगी। और फिर एहसास हुआ कि इतनी भयंकर भीड़ में हमारा कोई अस्तित्व नहीं है। इस शहरी दुनिया में हमारा कहीं कोई ठिकाना नहीं लग सकता। फिर भी चलिए, चलें पूना।

उसके बाद मैं घुटनों में सिर टिकाकर सो गया। जब जागा तो देखा कि हमारे वाले इन साहब ने बगल में बैठे मिलिटरी के एक जवान से काफ़ी अच्छी दोस्ती कर ली थी। ये साहब मजाकिया ढंग से पूछ रहे थे कि अब युद्ध तो कुछ होता-हुआता नहीं। और तुम्हारे तो मज़े हैं। तब जवान कह रहा था, अरे छोड़ो इन बातों को। फिर उसने पूछा, पूना किसलिए जा रहे हो, तब हमारे साहब ने जवाब दिया, बस यूं ही। थोड़ा-सा काम है, ऐसे ही जा रहा हूं। मतलब, वो दोनों मुझे फालतू समझ रहे थे।

खिड़की से बीच-बीच में प्रकृति की शोभा वगैरा दिखाई दे रही थी। पर भीतर पूरी बोगी में केवल एक महान आदमी नज़र आया। एक खचाखच भरे बेंच पर बैठे चार-पाँच लोगों के बीच वह बैठा था। फिर भी महान लग रहा

था। वैसे उस बेंच पर के सभी जने झपकियां ले रहे थे। लेकिन उस शख्स ने अपनी मफलर ठोड़ी के नीचे से लपेट कर ऊपर बर्थ पर रखे एक ट्रंक से बांध दी थी। इसलिए बेंच पर चाहे जितना शोर हो, या गाड़ी चाहे जितनी हिले, उसकी ठोड़ी आराम से मफलर पर तैर रही थी। इसलिए उसे नींद आ रही थी। ऊपर वाला बड़ा ट्रंक उसी का ही होगा। वरना दूसरा कोई क्योंकर अपनी ट्रंक से इस तरह मफलर बांधने की इजाज़त देता !

कुछ देर बाद हमारे साथ वाले साहब, मुझे जगाते हुए कहने लगे, पूना-पूना।

मैंने सोच रखा था कि पूना उतरने से पहले मुंह वगैरा धोकर फ्रेश होंगे, लेकिन आखिर बड़ी हड़बड़ी में हमें उतर जाना पड़ा। हमारे ये साहब कुली के साथ उलझ गये थे। इसलिए मुझे अपना भारी ट्रंक सिर पर ढोना पड़ा। हम लोग स्टेशन के बाहर आ गये। सिर पर ट्रंक। और इतना भारी। यह ठीक नहीं है। दो-तीन दिनों तक मेरी गर्दन दर्द करती रही। पूना पहुंचे भी तो इतने बुरे तरीके से। और फिर रिक्शा पकड़ने के लिए भाग-दौड़, सो अलग। जैसे-तैसे मौसी का मकान आ गया। पर फिर ट्रंक अपने सिर पर। और फिर मौसी रहती थी दूसरी मंज़िल पर।

शौच आदि से निपटकर हमारे साहब ने मुझसे बढ़िया कपड़े पहने और मुझे साथ लिये मौसी के घर से कॉलेज के लिए निकले।

जनाब बड़े रौब से चल रहे थे। रास्ते में उनका एक पुराना मित्र मिला। तब इन्होंने खुश होकर इससे कहा, चलिए चाय पी जाय। तब उस खूबसूरत दिखाई देने वाले मित्र ने घड़ी देखते हुए कहा, ठीक है।

मैं इधर कॉलेज पहुंचने के लिए उतावला। पर उनकी गप्पों के कारण तो और भी ज़्यादा ऊब गया। मुझे एहसास हो रहा था कि अब भी हम गाड़ी में ही बैठे हैं। सोच रहा हूं, मौसी के घर पहुंचते ही पहले सो लेंगे। उसके बाद फिर कॉलेज का कार्यक्रम बनायेंगे।

उनकी गप्पों में काफ़ी रंग भर गया था। वह पांडेकर आजकल क्या करता है ? और खांडेकर क्या कर रही है ? और वह माली ? और उसकी शादी हुई ? और वह फलां ?—यह कब तक चलता रहा, पता नहीं। पर जब मैं उठ खड़ा था तब तक उनकी वो नामावलियां खत्म हो चुकी थीं। पुरानी साइकिलवाले उनके इस मित्र ने विदा होते समय सिर्फ उनसे पूछा था—मुकाम कितने दिन ? और वह चल दिया। मुझे मिलने वाला यह पहला असली पूनाइट। भविष्य में इस साइकिल पर कई बार दिखाई पड़ा था। और कैसे हो ? कैसे गुज़र रही है ? इस

तरह कुछ बतियाता और चल देता।

फिर कॉलेज पहुंचने तक हमारे साहब बड़े जोश में थे। पूना के बारे में बताने लगे—मतलब, पूना में सब कुछ जान-पहचान पर निर्भर करता है। पूना में दूर-दूर के लोग आते रहते हैं। लेकिन जान-पहचान बढ़ा लेनी चाहिए। चाय-वाय पिलाने के लिए कभी आना-कानी नहीं करनी चाहिए। यह कोई अपना सांगवी गांव थोड़ा ही है। अब देखो, यह मेरा मित्र। इसके दादा मतलब, संस्कृत के महान पंडित कहलाये। इसके पिताजी मतलब, फलां उपन्यासकार हैं न, वही हैं ये। अब देखो ऐसे व्यक्ति से पूना के अलावा और कहां परिचय हो सकता है? और फिर पूना मतलब, महाराष्ट्र का सांस्कृतिक और ऐतिहासिक केंद्र है। यहां से पिंपरी की फैक्ट्री करीब ही पड़ती है। तीन साल मैं यहां रहा लेकिन फैक्ट्री देख आना मेरे लिए संभव नहीं हो सका। तुम देख आना। वहां सब कुछ यंत्रों पर चलता है। वगैरा-वगैरा बहुत सारा। कॉलिज के रास्ते यह सब चलता रहा।

हमारा कॉलेज जब मैंने देखा तो मेरी पहले ही से दहली हुई छाती कहने लगी, अपना यहां गुज़र मुश्किल है। और फिर कई सारे महान राजनीतिज्ञ लोग तथा साहित्यिक आदि आदि इसी कॉलेज के विद्यार्थी रहे हैं। मतलब कुल मिलाकर परंपरा बड़ी उज्ज्वल। इसलिए हमारे लिए भी महान बनने का यहां अवसर है। अब यहीं से जीवन-नैया के लिए काम आने वाली सामग्री बटोरनी होगी।

लेकिन कतार जैसे-जैसे आगे बढ़ रही थी मैं निराश होता गया। कतार में सुंदर-सुंदर लड़कियां भी थीं। और उनके पारदर्शी वस्त्र वगैरा देखकर मुझे यकायक डर लगने लगा। क्योंकि ये ज़रूर हमसे ज्यादा नंबर लेकर आयी होंगी। अपने कपड़े तो गांव के नाटू दर्ज़ी के सिले हुए। और फिर मुझे अभी से घर याद आने लगा था।

प्रिंसिपल साहब प्रत्येक लड़के से थोड़ी-थोड़ी बात करते। मुझ से उन्होंने पूछा, आर्ट्स क्यों नहीं ले रहे हो? मैंने कहा, पिताजी ने कहा था साइंस लो। लेकिन मैं उनसे झगड़ पड़ा और आर्ट्स लिया। मुझे इसमें रुचि है। उन्होंने कहा, ठीक है, उधर पैसे भरिए।

रात में मुझे भयंकर नींद आ रही थी। लेकिन नाना, यानी हमारे मौसाजी ज्यों ही काम पर से घर लौटकर आये उन्होंने मुझे सोने नहीं दिया। खाना खा चुकने के बाद भी वे मुझसे गांव की कई बातें पूछते रहे।

काफ़ी समय इसी चर्चा में निकल गया। तब फिर मेरे बारे में बातें शुरू हुईं। नाना ने सीधे कह डाला, कुछ इस तरह रहो, जिससे आगे बढ़ सको। कोई ध्येय सामने रखो और पढ़ाई करो। यह बात मुझे जंची। मैंने कहा, जी।

सिर्फ़ जी नहीं । उसके लिए कोशिश भी करनी चाहिए। मैंने फिर, जी हां, कहा ।

क्यों ऐन सोने के वक्त हमें ऊंचे विचार सुनाये जाते हैं ? फिर भी मैं बड़े आज्ञाकारी ढंग से बैठा हुआ, ध्यान से सुन रहा था। मतलब, अपनी ज़िंदगी को ही जब नया मोड़ मिल रहा हो और जब अपने ध्येयों आदि के बारे में बातें चल रही हों तो हमें भला नींद क्यों आनी चाहिए ?

उन्होंने कहा, इंटर तक की बातें मैं खुद अपने अनुभवों के आधार पर बता रहा हूं। उनकी बात खत्म हुई। तब मौसी ने चाय बनायी। मतलब, पिछली रात हमारा जागरण हुआ था। इसका किसी को कुछ नहीं। हमारे साथ आये साहब बड़े चतुर, इसीलिए अकेले फिल्म देखने चले गये थे।

चाय के बाद आमतौर पर कितनी देर तक गप्पें करनी चाहिए जिससे शिष्टाचार पूरा हो, इस पर मैं सोच रहा था कि नाना ने पूछा, बी० ए० में कौन-से विषय लोगे, सोचा है ?

मैंने कहा, अभी तय नहीं किया। लेकिन मुझे भाषाएं अच्छी लगती हैं।

उन्होंने कहा, यह तो पहले ही से तय हो जाना चाहिए। लेकिन तुम मेरी बात मानो। तुम इतिहास लो। आगे एम० ए० भी इतिहास ही से करो। अगर प्रोफेसर बन गये तो दूसरे विषयों के प्रोफेसरों की तरह ज्यादा अध्ययन करने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। भाषा तो बिलकुल ही ना लेना। इसमें हर साल नयी-नयी किताबों का अध्ययन करना पड़ता है। लेकिन इतिहास एक बार पूरा कर लिया तो फिर जिंदगी भर काम आता है। इतिहास में क्या बदलने वाला होता है ?

मुझे यह एक और अबोधक बात लगी।

आखिर मौसी ने कहा, अब बस करो भी। सोने दो उसे।

लेकिन मैंने कहा, ना, ना, मुझे नींद नहीं आ रही है।

लेकिन कुछ देर तक और तूल देने के बाद मैंने उनकी तरफ ध्यान दिया। तब वे कह रहे थे, अब सो जाओ।

फिर मैं सो गया।

अगले दिन काफ़ी काम निपटाने थे। काम जब ज्यादा होते हैं तो मैं सुबह से शाम तक उत्साही बना रहता हूं। जनाब और मैं खाना खा कर घर से निकल पड़े। अब की बार मैंने पूना सही-सही नज़दीक से देखा। साहित्य-परिषद के गेट के पास निकर पहने एक सज्जन दिखाई पड़े। ये ज़रूर कोई महान साहित्यकार होंगे। रिक्शे में से देख रहा था।

होस्टल पर आकर कमरा कब्जे में ले लिया।

उसके बाद मैं और हमारे साहब सारा शहर घूमे। गद्दा, चादरें, तकिये, आइना, तेल की शीशी, पॉलिश, पाउडर, स्नो, जूते, गरम कपड़े, कुरते, स्टोव, छलनी, पतीले, कप-प्लेटें, सुई-धागा, ब्रश, शेविंग का सामान आदि चीज़ें खरीद लीं। जवाब मुझ से बिलकुल राय न लेते। बस चीज़ें खरीदे जा रहे थे। उन्हें सब पता था। लेकिन उन्होंने इतना सब कुछ जुटा लिया था कि आगे करीब दो महीने चीज़ें खरीदने का मुझे मौका ही नहीं मिला। और तो और, उन्होंने मुझे बैडमिंटन का एक रैकेट भी दिलवा दिया। उन्होंने कहा, कॉलेज में सिर्फ़ पढ़ाई नहीं करते। व्यक्तित्व भी बनाना पड़ता है।

इसके अलावा उन्होंने खुद के लिए बहुत सारी चीज़ें खरीदी। मुझे तो लगा कि मेरा इंतज़ाम करने के बहाने ये जनाब अपने लिए घोड़े का खिलौना, छाते, तिलक की तसवीर वगैरा चीज़ें खरीदने यहां आये हुए हैं।

शाम को उनकी चीज़ें देखकर नाना ने कहा, अजी आपने तिलक की यह मढ़ी हुई तसवीर क्यों खरीदी? हमारे यहां मासिक पत्रिका में यही तसवीर निकली है। उसे ही फ्रेम करवा लेते।

फिर उन्होंने मौसी को पुकार कर वह पत्रिका मंगवायी। उसमें यह तसवीर थी।

नाना ने कहा, क्यों ठीक है न ?

फिर तिलक वाली तसवीर उन्होंने मुझे दे डाली।

कहा, कमरे में टांग दो लेकिन तिलक की तरह एफ० वाई० में ही ड्राप ना करो। तब तो ठीक है।

ठीक है, रहा-सहा प्रबंध तुम्हारी मौसी कर लेगी। यह कहकर हमारे साहब निकल पड़े। उन्हें घर पर पिताजी की वाहवाही ज़रूर मिली होगी।

कॉलेज शुरू होने तक मैं मौसी के घर टिका रहा। हां, हर रोज़ कमरे पर एकाध चक्कर काट लेता और पूना में क्या-क्या उपलब्धियां प्राप्त करनी हैं उस पर चिंतन किया करता और फिर घर लौट आता।

हमारे कॉलेज का फैलाव यानी समझो हमारे गांव के क्षेत्रफल के बराबर। होस्टल तो बहुत ही बड़ा। और हर लड़के के लिए अलग-अलग कमरे। इसलिए मुझे तसल्ली हुई।

होस्टल के करीब पास ही से छोटे-छोटे टीलों की कतारें शुरू होती हैं। आगे तो पहाड़-सा बड़ा जंगल पड़ता है। होस्टल के पिछवाड़े भोजन की मेसें। अतराफ़ बूढ़े और विद्वान प्रोफेसरों के चंद बंगले। एक बंगले पर प्रो० जे० के० शहा नाम की तख्ती थी। दूसरे वाले में हमारे वार्डन परांजपे रहते थे। और टीलों के बगल में

घने शांत माहौल के बीच कुछ ज्यादा विद्वान प्रोफेसरों के बंगले। प्रिंसिपल साहब उधर ही रहते थे। वहां एक बहुत बड़ा कुत्ता दिखाई पड़ा।

एक बंगले पर कोई तख्ती नहीं थी। इसलिए वहां खड़े एक आदमी से मैंने पूछा, यहां कौन रहते हैं? तो उसने कहा, मैं खुद। इसलिए उनके नाम का पता नहीं चला।

होस्टल से पांच मिनट की दूरी पर कॉलेज। और वहीं कैंटीन भी। वहां मैं नये-नये दक्षिणी भारतीय व्यंजन, जो मुझे अपने गांव में कभी नहीं मिल सकते थे, प्रतिदिन एक के हिसाब खाता रहा। मैंने उनके नाम याद कर लिये। आमलेट खा चुकने के बाद पता चला कि वह शाकाहारी नहीं था।

होस्टल के एक तरफ विशाल खेल का मैदान। और फिर कॉलेज के आहाते में विविध प्रकार के पेड़-पौधे वगैरा थे।

आखिरकार कॉलेज शुरू हुआ।

एकदम पहले ही दिन सुबह नहाकर आया और तेल की शीशी हाथ से फिसल कर टूट गयी। सिर्फ़ नीचे थोड़े-से हिस्से में तेल बच गया था। बाकी सारा फ़र्श पर फैल गया। मैंने सबसे पहले तल वाला कांच का टुकड़ा उठाकर परे किया। बचे तेल में दोनों हथेलियां भिगोकर सिर में बार-बार खूब चुपड़ता रहा। फिर भी काफ़ी तेल बेकार गया। और फिर घर पर तेल को ज़मीन सोख लेती है, पर यहां तो फ़र्श। इसलिए मुझे बहुत ज्यादा अफ़सोस हुआ। मैंने तेल हाथ-पांवों पर भी चुपड़ लिया। फिर भी काफ़ी तेल ज़ाया गया। घर से चलते वक्त मां ने कहा था, बालछोवा कैसे निभेगी तेरी ?

फिर मैंने मद्रास होटल में जाकर खाना खाया। लेकिन सिर में बेइंतहा तेल जो तैर रहा था इसका खयाल सता ही रहा था। सारा दिन इसी हालत में कॉलेज में गुज़रा। शाम के वक्त यूं ही उदासी के आलम में तकिये पर अखबार रखकर लेटा था। इतने में किवाड़ पर दस्तक हुई। ललाट पर उतरा तेल ठीक से पोंछ कर मैंने दरवाज़ा खोला। देखा, यह आदमी तो अपनी क्लास वाला दिखाई पड़ता है।

उसने पूछा, आप ?

पांडुरंग सांगवीकर।

मैं सुरेश बापट, हम एक ही कक्षा वाले।

हां।

मैं बस यूं ही चला आया हूं। सोचा, चलें परिचय कर लें।

ठीक है। चाय पिओगे ?

पी लेंगे।

आप कहां रहते हैं ?

बेलगांव। मेरे पिताजी मैजिस्ट्रेट हैं।

तुम्हारे कितने भाई ?

हम छः भाई।

और बहनें ?

तीन बहनें। कौन जात है तुम्हारी ?

जात-पात के पचड़े में नहीं पड़ना चाहिए।

मेरा जात-पात पर बिलकुल विश्वास नहीं। यूं ही पूछ लिया।

जो कहा करते हैं कि मैं जात-पात नहीं मानता वे खुद वैसा क्रेडिट लेना चाहते हैं।

यह सही है।

लेकिन सुरेश बार-बारे मेरे सिर की तरफ देख रहा था। आखिर उसने कहा, तुम्हारी शीशी टूट गयी लगती है ?

यह बात लेकिन महान है।

फिर हमारी दोस्ती हो गयी।

सुबह जाग जाने के बावजूद दो-दो घंटे तक वैसे ही पसरे रहना निश्चय ही भावना-प्रधान होता है। हमारा अपना घर यानी एक महाभयंकर गड़बड़। एक भयंकर चीज़, एक दूसरे पर चीखना-चिल्लाना, भगदड़, नौकरों की आवाजाही, लगातार जलता चूल्हा, ऊधम मचाने वाले बड़े-बड़े चूहे, छत पर के सफेद-काले, काले-सफेद भारी भरकम लाल आंखों वाले कबूतर वगैरा-वगैरा।

और फिर शहर आने से पहले, आखिर-आखिर में मां मेरे बारे में कुछ ज्यादा उम्मीदें कर बैठी थी। मुझे इसलिए बचपन से ही लगता रहा कि मैं बहुत बड़ा आदमी बनूंगा। गांव के अमीर घरों में इस तरह की बातें कुछ ज़्यादा ही चलती हैं। हर मां को लगता है, उसका लड़का बहुत बड़ा आदमी बने। पर बहुत बड़ा मतलब कौन, इसे कोई नहीं जानता।

वैसे मुझमें भी कई बार बड़ा आदमी बनने की इच्छा जगती थी। मतलब, बचपन में सोचता कि भीम की तरह गदा-युद्ध करके तमाम शत्रुओं को मार डालें। या थॉमस आल्वा एडिसन की तरह नयी ईजाद करें या फिर गड़करी की तरह व्यंग्य-विनोद लिखे जायें। स्कूल में मास्टर बनें, या फिर हाईस्कूल में सर। इस तरह कई-कई इच्छाएं होतीं। लेकिन होस्टल में जब दो-तीन मित्रों से परिचय हुआ तो पता लगा, कि अपना बड़ा बनना कोई मायने नहीं रखता।

तांबे नाम का मेरा एक दोस्त कह रहा था, अपनी मां को मैं कविता में पत्र लिखता हूं।

उसके लिए पहले मेरे मन में कोई खास आदर नहीं था। लेकिन यह जान लेने के बाद अब मेरे मन आदर में बढ़ गया है कि उसने नोबल प्राइज़ हासिल करने का लक्ष्य बना रखा है। उसने नाटक लिखने शुरू भी कर दिये थे। कभी देर से उठने पर मंजन करता हुआ मेरे कमरे पर आता। और बीच-बीच में खिड़की से थूकता हुआ—यह कहकर कि कल नाटक का एक दृश्य लिखकर पूरा किया, इस लिए देर से उठ पाया हूं, निकल जाता।

उठने में देर कई लोगों को होती है पर उसका देर से उठना बड़ी महान बात।

उसकी वह नोट-बुक जिसमें वह लिखा करता था, मैंने पढ़ने के लिए कभी भी नहीं मांगी। इसलिए मैं उसे भला लगता। वह कहता, सांगवीकर, तुम अकेले ही सही मायनों में रसिक आदमी हो। सब लोग मेरी सिर्फ प्रशंसा करते हैं। मैं उसे कई बार चाय पिलाता।

लिखने की उसकी शैली यों थी। रात में वह रफ़ लिख लेता और सारा दिन उन्हीं बातों को पक्की नोटबुक में अदल-बदलकर उतार लिया करता। वह कहता, इसी कारण मैं फेल हो जाऊंगा। मैं कहता, कौन महान लेखक बी० ए० पास हुए हैं? गड़करी, खांडेकर?

उसके नाटक का एक प्रसंग इस तरह था—

प्रभाकर : (पीछे हटकर) सुधा, इसका जवाब दो।

सुधा : लेकिन प्रभा, पगले, मेरे पिताजी मेरे साथ थे और तुमने मुझे पुकारा।

प्रभाकर : (आगे बढ़कर) अच्छा? मुझे लगा तुमने मुझे बंदर जो कहा, सो बिलकुल प्यार से कहा था।

शेक्सपियर का प्रसग संभवतः इतनी ही लगन से लिखा गया होगा। भविष्य में तांबे बड़ा आदमी बन गया होता। फिर भी रात-दिन लगातार इतनी आत्मनिष्ठा वगैरा से लिखते रहना निःसंदेह महान है।

उसके कमरे में Arise, awake and stop not till the end is reached—यह पंक्ति सामने की दीवार पर इस तरह लिख रखी थी कि बिस्तर से उठते ही सीधे पढ़ी जा सके। तांबे के मुकाबले मेरा लक्ष्य और परिश्रम बहुत ही नगण्य थे।

लेकिन दूसरा लड़का मधुकर देशमुख तांबे की तुलना में मेरा खास दोस्त था। शुरुआत में वह होस्टल में मेरे पड़ोस वाले कमरे में रहता था। पूरा एक सप्ताह उसका सामान उसी हालत में बंधा पड़ा था, जिस हालत में उसे वह ले आया था। मैंने पूछा, कमरा छोड़कर और कहीं जाना है क्या? लेकिन सही

वजह और ही थी ।

उसके पिताजी ने कहा था, साइंस करो। और नाम भी साइंस में दर्ज करवाया था । लेकिन उसे आर्ट्स करना था ।

उसने कहा, अभी सोच रहा हूं ।

फिर उसने तय कर लिया, चाहे कुछ भी हो जाय आर्ट्स ही करेंगे । फिर उसने अपनी पेटी वगैरा खोली और कमरा ठीक किया ।

कोई बात पक्की तय होने तक असुरक्षित टंगे पड़े रहने का अनुभव उसे होता । मैंने उसे जब पूछा, तुम्हारा ध्येय क्या है तो उसने कहा, ऐसे सवाल पूछने नहीं चाहिए । पहाड़ों पर सैर करने चलेंगे तब बताऊंगा ।

उसका ध्येय जब मैंने सुना तो मुझे अनुभव हुआ कि मैं बहुत ही क्षुद्र हूं । ध्येय था, सारे संसार में समता स्थापित करना । इस तरह का ध्येय अपने मन में अंकित करने वाले को बहुत ही प्रचंड होना चाहिए । उसने मुझे मेरे ध्येय के बारे में पूछा, तब मैंने यह कह कर बात टाल दी कि हमने अभी कुछ तय नहीं किया है ।

इसके बाद मैंने निश्चय कर लिया कि अपना ध्येय जो कुछ भी हो, उसे किसी को बताना नहीं है ।

हम अगर यह कहें कि हम चाहते हैं कि अपना पुराना मकान गिरा दें और उसकी जगह नया मकान बनवाकर ऊपर टावरवाली एक घड़ी लगवा दें ताकि गांव वालों को अपनी खिड़कियों से झांक लेने भर से समय का पता आसानी से चल सके । इस ध्येय की अगर हम बात करें तो लोग इसे सुनकर हमारा मज़ाक नहीं उड़ायेंगे तो और क्या करेंगे ?

मधु देशमुख लेकिन मुझे अपनी सभी प्राइवेट बातें बता देता । वह मुझे बेहिचक बता देता कि वायलिन सीखकर वह लड़कियों को बस में कर लेना चाहता है । इसीलिए वह नियमित रूप से वायलिन की क्लास में जाता । मधु मेरा खास दोस्त था । उसने मुझे खुले दिल से कई बातें बतायी थीं ।

एक बार दोपहर को वह कहीं बाहर से आया हुआ था । उसने दरवाज़ा खोला । फिर भीतर से धड़ाम से बंद कर लिया । किताबें फेंकने की आवाज़ें मेरे कमरे तक सुनाई दे रही थीं । उसके बाद वह खटिया पर धड़ाम से गिर पड़ा था । उस वक्त पूरा कमरा हिल गया था । बार-बार इस तरह धड़ाम से गिरने की आवाजें सुन कर मैं घबरा गया । मैं बाहर आया । मैंने कहा, मध्मा, दरवाज़ा खोलो ।

उसने दरवाज़ा खोला ।

क्या कर रहे हो ?

फिर उसने जो कुछ बताया वह महान है। उसने कहा था, मुझे पीड़ा हुई है। मैं बिस्तर पर अपने ढंग से धड़ाम से गिरना चाहता हूं। पर यह मुमकिन नहीं हो रहा है।

पहले-पहले कुछ दिनों तक मैं मौसी के यहां बार-बार जाता रहता। बाद में यह सिलसिला कम होता गया। मौसी बहुत ज्यादा मेक-अप वगैरा करती। पूना में सभी स्त्री-पुरुष मेक-अप करते हैं। लेकिन अपनी मौसी का इस तरह फैशन करना ठीक नहीं है। मौसी हर रोज़ बन-ठन कर सैर करने निकलती। उसके चार बच्चे हैं। पर यह ठीक नहीं है। मैंने यह बात एक बार नाना से रुकते-रुकते कह डाली। तब से मेरे और मौसी के संबंध बिगड़ गये। नाना ने कहा, तुम जब कभी यहां आते हो तुम्हें खाना मिल जाता है न ? तुम्हें और क्या चाहिए ?

उसके बाद से लेकिन मैं कभी-कभी सिर्फ खाना खाने के इरादे से वहां जाता रहता। पूना में नया-नया था। ऐसी बातें मेरे मुंह से ज़रूर निकल जातीं। पहले ही दिन पूना के अच्छे कहे जाने वाले इलाके में जब टहलने गया था तब मैंने कहा था, पूना में वेश्याएं काफी दिखाई देती हैं। लेकिन इतना सब कुछ होने पर भी अगर हर एक का पति उस औरत को अपनी पत्नी कहकर पुकारता है तो हमें क्या परेशानी है ?

एक संकट मुझ पर बार-बार आ पड़ता। मां के निरंतर पत्र आते। वह लिखती, तुम्हारी बहुत याद आती है। और फिर तुम्हारी चारों बहनें भी याद किया करती हैं। लेकिन मुझे कुछ ज्यादा ही याद आती है। तब मैं भी एकाध लंबी चिट्ठी लिख डालता।

लेकिन सच पूछो तो धीरे-धीरे मां की याद कम होती गयी। इधर नयी-नयी बातें घटती रहतीं। तब पुरानी बातों से ध्यान हटना ज़रूरी था। लेकिन कोई लंबा पत्र लिख चुकने के बाद मैं काफ़ी उदास हो जाता। तब चिट्ठी छोड़कर पास वाले मद्रास होटल में अटरम-सटरम खाकर लौट आता।

इसके बाद सिगरेट पीने लगा। ऐसी बात नहीं थी कि यह आदत सुरेश बापट की मित्रता के कारण मुझे लगी थी। पहले भी पिया करता था। इधर यह कुछ बढ़ गया था, बस। बचपन में एक बार सिगरेट की तरह तिली सुलगाकर पी रहा था। पिताजी ने देखा और मेरी पिटाई की थी। तब रोते-रोते मैंने कहा था, झूठ-मूठ की सिगरेट के लिए आपने मुझे पीटा है, तब तो मैं ज़रूर कभी

असली सिगरेट पिऊंगा। इसके बाद जब थोड़ी उम्र बढ़ी और फिल्म में हमने एक दृश्य देखा कि डाकुओं की टोली से घिरा एक नायक बड़े रौब के साथ सिगरेट पिये चल रहा है। सोचा, हम भी अगर कभी डाकुओं से घिर जायें तो हमें भी सही ढंग से सिगरेट पीनी आनी चाहिए। तब एक दिन रामनाथ के साथ मैंने एक ही बैठक में पूरा पैकिट साफ कर डाला। क्योंकि दो-तीन सिगरेटें पी चुकने के बाद बची हुई घर कौन ले जाय, सारी पीकर क्यों न मुक्त हुआ जाय ! इसलिए सारी पी डालीं।

इधर सिगरेट की सही ज़रूरत तब पड़ी जब पिताजी ने मुझे गुस्से से भरी एक चिट्ठी लिखी थी। वैसे इसके पहले सुरेश के साथ यों ही मज़ाक़ में पी लेता था। पिताजी ने लिखा था, तीन महीने में तुम्हें एक हज़ार रुपये भेज चुका हूं। खर्च का पूरा हिसाब लिख कर भेजो।

उसके बाद उनका मनिऑर्डर आया। उसमें लिखा था, तुम्हारे कहने के अनुसार दो सौ रुपये और भेज रहा हूं। सो पढ़ाई ठीक से करो।

यह बात मुझे बड़ी अखरी। लेकिन मैंने पहले वाले मनिऑर्डर-चिट्ठी के अंश देखे। उसमें भी यह बात लिखी हुई थी—सो पढ़ाई कसके करो।

मतलब ये पैसे सिर्फ इसलिए कि मैं पढ़ाई करूं। क्या सिर्फ़ पैसों से पढ़ाई की जा सकती है ? फिज़ूलखर्ची हम कहाँ करते हैं ? यह सही है कि दूसरों के मुकाबले हमारा खर्च कुछ ज्यादा हो जाता है। पैसा आते ही हम खान भैया को चाय पिलाते हैं। फिर उस दिन जितने भिखारी हमें मिल जाते हैं, हर एक को एक-एक अधन्नी बांट आते हैं। सुरेश बापट उस दिन हमारे साथ ज़रूर रहता, क्योंकि हम उसको पार्टी देते हैं। भिखारियों में पैसे बांटते वक्त सुरेश कहता रहता है, साला भिखारियों की तरह पैसे बांटता रहता है। मैं जब उससे पूछता हूं कि तुम्हें इन लोगों से कोई सहानुभूति नहीं होती ? तो वह कहा करता है, बुरा तो लगता ही है। लेकिन एम० ए० पी-एच० डी० पास कर लेने तक हमें इन बातों में ध्यान नहीं देना है। तब तक बाप का पैसा। बाद में अपना।

उसके बाद कबाड़ी बाज़ार से हम चंद चीज़ें खरीद कर ले आये। हमें पता चला कि वहां अच्छी हालत की किताबें सस्ते दामों में बिकती हैं। तब आगे एक-एक करके किताबें खरीद लाये। फिर सिगरेटों के लिए रोज़ आठ-दस आने।

लेकिन एकदम शुरुआत में फिज़ूलखर्ची हमने नहीं की। हां, भिखारियों पर खर्च ज़रूर हो जाता। पर महीने में दो-चार रुपये, कोई बड़ी बात नहीं थी। वैसे मित्रों पर चाय वगैरा के लिए उससे ज्यादा खर्च हो ही जाते। इसकी तुलना में भिखारियों को कुछ ज्यादा ही मिलना चाहिए था। अर्थात् हर किसी भिखारी पर हमें दया आती है सो बात नहीं। लेकिन जेब में पांच-दस रुपये जब यूं ही पड़े रहते हैं और रास्ता चलते अगर कोई गरीब भिखारी सिर्फ़ एक पैसा मांगता है

तो क्या उसे एक अधन्नी भी नहीं देनी चाहिए ?

वैसे भी तो रेगे, जोग, चव्हाण—ये लोग मुझसे चाय वगैरा वसूल ही लेते हैं। ये दोनों-तीनों पुणे के रहने वाले। बज़ाते खुद पुणेकर। अपने बेंचो पर नियमित रूप से पिछली कतार में बैठने वाले। इसीलिए तो मुझे वो भले लगते। यही वजह थी कि मैं उन्हें चाय पिलाता। दूसरा और कोई कारण नहीं था। वैसे ये लोग पुणेकर जो ठहरे। नागपुर के गुंडे तो ठीक, बंबई के मवाली भी चल जायेंगे, लेकिन पुणे के भामटे—उनके बारे में ज़रा संभलकर रहियो। घर से चलते समय पेंशनर चाचा ने चेतावनी दी थी। कहा था, गुंडे और मवाली कभी-कभार ही फांस पाते हैं। लेकिन भामटे, ये तो समाज का ही हिस्सा होते हैं। इसलिए इन्हें तलाशने के लिए और कहीं नहीं जाना पड़ता। ये तो रोज़ के उठने-बैठने वालों में ही मिल जाते हैं। पेंशनर चाचा की यह बात बिलकुल ठीक थी।

रेगे, चव्हाण वगैरा मुझसे कहते, तुम्हारे बाल बड़े सुंदर हैं और यह भी कहते कि तुम इम्तिहान में क्लास में पहला नंबर हासिल करोगे। यह सिर्फ चाय हड़पने के लिए नहीं था। केवल मेरे रहते मेरी तारीफ़ करते सो नहीं। मेरे पीछे दूसरों से भी वो यही कहते। बांसुरी बजाने की हमारी कला के बारे में इन्हीं लोगों ने तो औरों के पास हमारी तारीफ़ की थी। ये लोग मेरे कमरे में आते और चीनी, ओवल्टीन, दूध, बिस्कुट आदि मेरी उपस्थिति में चट करते रहते। एक नयी संस्कृति से हम परिचित होते जा रहे थे। इसलिए किसी बात का विरोध करना ठीक नहीं था। इसीलिए हमने उनसे कभी कुछ नहीं कहा। मन में ज़रूर कहते रहते, इन्हें अपने घर ये चीज़ें मिलती नहीं होंगी। क्या करेंगे बेचारे ! खाने दो। इन गरीब प्राणियों के कपड़े लेकिन बड़े महीन और महंगे हुआ करते थे। वह जोग तो कई बार हमसे उधार पैसे मांगा करता।

लेकिन एक बार उसने हमें बड़ी सफाई से धोखा दिया। उसने हमसे कहा, तुमने परसों मुझे दस रुपये दिये। मेरा बड़ा काम किया। चलो इस खुशी में हम तुम्हें पार्टी-वार्टी देते हैं। और वह हमें होटल ले गया। होटल का बिल अदा कर चुकने के बाद उसने कहा, बिल निबटा कर के बचा हुआ पैसा तुम्हें चुका रहा हूं।

तब से मैंने कहा, अब देखना फिर से कभी दमड़ी भी दूं तो। कहने लगा, मत दो। तुम जैसे और कई मिल जायेंगे।

तब हमें किसी न किसी बहाने जोग पर चिढ़ होने लगी। साला मैट्रिक में पहले तीसों में आ गया तो कौन तीर मारा ? हम भी तो शुरू के पांच सौ में कहीं तो होंगे कि नहीं ! या हमारा तांबे पहले पांच हज़ार में कहीं तो होगा ही। इस जोग के बच्चे की स्टाइल बहुत खास है। हर कोई गधे का बच्चा कहकर उसको

इन्हीं शब्दों में तारीफ़ करता। एक बार खुद मराठी के प्रोफेसर ने जोग के बच्चे का एक निबंध क्लास में पढ़कर दिखाया था। इसी बात पर हम उससे उलझ गये थे। कहा, जोग, तुम्हारे निबंध बड़े दलिद्दर होते हैं। तुम्हारी बातचीत भी बड़ी घटिया और गंदी होती हैं। तुम्हारे पास बात करने की तमीज़ भी नहीं है। जब देखो तुम्हारी शैली वही तुकाराम जैसी पोंगापंथी, संतबानी और सुभाषितों से भरी पड़ी होती है।

यह बात उसे काफ़ी चुभ गयी। वैसे वह बड़ा अभिमानी था। कभी-कभी शाम के वक्त मेरे कमरे पर पहुंच जाता। अब देखिए, आसमान साफ़ हो, नाजुक धूप पड़ी हो, खुश-गवार बयार चल रही हो, ऐसा खूबसूरत समां छोड़कर कौन निकलेगा बाहर सैर के लिए? लेकिन जोग कहता, चलोगे नहीं? हमारे ना कहने पर वह कहता, ठीक है। एकला चलो रे। पराधीन सपनेहुं सुख नाहीं। सबहि नचावत राम गुसाईं। या फिर, जाति न पूछो साधु की पूछ लीजिए ज्ञान— इस तरह अगर कोई बकता रहे और बकने वाला अगर यही वह जोग हो तो बताइए, क्रोध नहीं आयेगा?

एक बार उसने मुझसे कहा था, तुम रेस्टारंट कहते हो। यह गलत है। सही उच्चारण रेस्तरां है।

बहनचोद ये तीनों के तीनों के तीनों भामटों की औलादें हैं। इन्हें भामटा ना कहें तो और क्या कहें? हम जब से हर रविवार को बारी-बारी इनमे से हरेक के यहां खाना खाने के लिए जाने लगे तब से उनका हमारे यहां आना बंद हो गया।

इनके जैसे अटरम-सटरम दोस्त धीरे-धीरे जब कट गये तब सिर्फ मधु देशमुख, तांबे, सुरेश बापट और इचलकरंजीकर—बस इतने बने रहे। क्योंकि ये सभी भले थे। इनमें एक भी दलिद्दर नहीं था।

सुरेश और मुझमें दोस्ती का समान सूत्र यह था कि हम दोनों भीड़ से दूर शाम के वक्त किसी टीले पर सैर के लिए निकल जाते।

लेकिन इचलकरंजीकर मतलब, बड़ा कमीना। पर आदमी भला था। यह शहर पीढ़ियों से नागरी संस्कारों में पला था, इसलिए शहरी तहज़ीब में माहिर। वह मुझे जंगली कहता, लेकिन भला आदमी मानता था। इसके बावजूद भी मेरी और उसकी पटरी कैसे बैठी, समझ में नहीं आता।

दिन-ब-दिन हमारी दोस्ती काफ़ी गहरी होती गयी। शुरू-शुरू में वह शहर में रहता था। वैसे मूलतः वह बंबई का था।

हुआ यह कि एक दिन हमारे प्रोफेसर साहब फ्रेंच राज्य क्रांति के परिणामों वाला हिस्सा फिर से दोहराने लगे थे। इसे वह एक बार पहले पढ़ा चुके थे। तब

वह जनाब खड़े हो गये। और कहने लगे, सर यह तो हो चुका है, आगे पढ़ाइए।

मैं उसके पीछेवाली सीट पर ऊंघ रहा था।

तब सर गुस्से में आये। कहने लगे, नो, इसे आज ही शुरू कर रहा हूं।

तब आपने कहा, पिछली बार के मेरे नोट्स देख लीजिए।

तब प्रोफेसर साहब ने अपनी क्रोधी निगाहें पूरी क्लास पर दौड़ायीं और कहने लगे, और कौन-कौन हैं जो कहते हैं कि यह हिस्सा पहले हो चुका है।

लगभग पूरी क्लास ऊंघ रही थी। इसलिए किसी के कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था कि चल क्या रहा है। लेकिन बात मेरी समझ में आ गयी। मेज पर टिके सिर को बगैर ऊपर उठाये मैं चीखा, जी हां, यह पहले पढ़ाया जा चुका है।

मुझे यों ही इचलकरंजीकर पर तरस आया था। मतलब, यह शख्स अपना भारी-भरकम शरीर लिये मेरे आगे बैठा हुआ था, इसीलिए तो मैं बड़े आराम से सिर टिकाये ऊंघ रहा था।

लेकिन मैं कुछ परेशान जरूर था कि कहीं प्रोफेसर साहब हमें नोट्स दिखाने के लिए न कहें। हस्बे मामूल इतिहास वाली नोट-बुक हम आज भी नहीं लाये थे। लेकिन आखिर उन्होंने किसी दूसरे लड़के से नाम पूछा और पढ़ाना शुरू किया—पिछली बार मैंने सरसरी तौर पर बात समझायी थी, अब विस्तार से उसी का विश्लेषण करूंगा।

तब इचलकरंजीकर ने पीछे मुड़कर मुझसे कहा, तो तुम सो जाओ।

मैंने कहा, इस बकवास को फिर कौन सुनेगा ?

उसने कहा, साला प्रिपेअर करके नहीं आता है।

तब मैं अपने बेंच पर सीधे तन कर बैठ गया।

उसने पूछा, हां तो तुम्हारा सरनेम क्या है ?

मैंने कहा, पांडुरंग।

उसने हंसकर कहा, तब मेरा मधुमिलिंद।

तब मैं और ज़ोर से हंसा।

उसने कहा, इसमें हंसने वाली क्या बात है ?

मैंने कहा, कुछ नहीं।

उसका नाम मतलब बड़ा कोमल वगैरा।

फिर उसने पूछा, रहते कहां हो ?

मैंने कहा, होस्टल।

तब मैं भी अगली टर्म में होस्टल आ रहा हूं।

फिर पीरिएड खत्म हुआ। हम में थोड़ी और बातें हुईं।

तो ये जनाब कुल मिलाकर बड़े तिकड़मी। जब कभी उसका कहीं मन नहीं लगता तो यह एक काम करता। यानी मेरे कमरे पर आकर अनाप-शनाप बहसें

छेड़ता । वह बंबई का कोई किस्सा सुनाता, मैं सांगवीवाला सुनाकर उसे जवाब देता । आखिर मैं ही ऊब जाता । उससे कहता, साहब अब चलते बनो । वह अपने किसी दूर रिश्तेदार के यहां ठहरा हुआ था । वह जगह होस्टल से लंबी दूरी पर थी । फिर भी मेरे कमरे पर उसका एक चक्कर ज़रूर लगता ।

मैं सुरेश के कमरे में दाखिल हुआ । देखता हूं कि चारपाई की ऊपरवाली दीवार पर नया कलेंडर । उसमें एक नंगी औरत नाले के किनारे बैठी हुई । और गोद में राजहंस वगैरा ।

मैंने कहा, इस तरह उत्तेजना पैदा करने वाली तसवीर कमरे में रखनी नहीं चाहिए ।

उसने कहा, कपड़ों के भीतर सभी लोग नंगे होते हैं । कमरे में तसवीर रखने से कुछ भी फ़र्क नहीं पड़ता । मैंने कहा, सही है ।

उसने कहा, और तुम ? तुम तो बाथ-रूम में भी अंडरविअर उतारते नहीं । बड़े गंदे हो ।

सुरेश के कमरे में उसके माता-पिता की एक तसवीर थी । मैंने कहा, इस तरह की तसवीरें अश्लील लगती हैं ।

मां-बाप न होते तो हम भी न होते ।

तब तो बहुत अच्छा हुआ होता । हमारे इस चक्र के लिए वही तो जिम्मेदार हैं । हमारी हर स्थिति के लिए केवल वे ही जिम्मेदार हैं ।

तुम अपनी राय अपने पास रखो । अपने कमरे में मैं जो चाहूंगा रखूंगा ।

बहस वहीं खत्म हुई । मुझे बड़ा गुस्सा आया । लेकिन कुछ दिन के बाद टूट जाने का बहाना बनाकर उसने तसवीर ट्रंक में छिपाकर रख दी । दिवाली के अवकाश में घर जाने के लिए पेटी भरकर तैयार रखी थी ।

अवकाश में मैं घर लौट आया ।

पिताजी को पूरा हिसाब दिखाया । उनकी बातें सुनता रहा ।

दिवाली खत्म हुई ।

मैं पूना के लिए चल दिया ।

होस्टल पहुंचा । देखता हूं कि इचलकरंजीकर होस्टल में हाज़िर है । उसके बाद से उसने मेरा पीछा छोड़ा नहीं । उसके शर्ट, पेंट, जूते सभी चीज़ें साफ़-

सुथरी और सफ़ेद रहतीं। उसके पास उम्र के दसवें से आगे प्रत्येक महीने के वजन के नोटकार्ड खूबसूरत तरीके से पिरोकर रखे हुए थे।

अपना कमरा भी उसने बड़े अद्भुत ढंग से सजाया था। खाट पर वह चाय का सामान—स्टोव, दूध वगैरा रखता। और ऊपर मसहरी में किताबें-कापियां वगैरा। मसहरी कभी-कभी बोझ के कारण इतनी नीचे लटकने लगती कि स्टोव की लपटों से जल जाने का खतरा पैदा हो जाता। मेज़ पर स्कूल के ज़माने से लेकर अब तक के पुरस्कार, शील्ड्स, तमगे वगैरा। कुर्सी पर एक बड़ा टेबल लैंप। गद्दा लेकिन देसी ठाठ में ज़मीन पर। इसलिए कोई लोकल लड़का जब कभी कड़क कपड़ों में क्लास में आता तो हम उसे इसके कमरे में ले आते और गद्दे पर बैठाते।

वैसे इचलकरंजीकर हम सब से बड़ी तहज़ीब से पेश आता। इसलिए उसकी सभी हरकतें निभ जातीं। उसकी एक और शरारत देखिए। किसी भी लड़के को अपने कमरे पर बुलाता और उसकी उपस्थिति में सिर्फ़ एक कप चाय बनाकर बातें करता-करता अकेले पी जाता। तब वह लड़का अपमानित-सा महसूस करता। और हमसे में किसी के पास इचलकरंजीकर की इस बदतमीज़ हरकत के बारे में शिकायत करता। हम भीतर से बेहद खुश होते और यह बात इचलकरंजीकर को जाकर फिर से बता देते।

लेकिन उसे भी आखिर चक्रपाणि जैसा नहले पर दहला मिल ही गया। इचलकरंजीकर ने जब सिर्फ़ एक ही प्याला चाय बनायी और उंडेलने लगा तो चक्रपाणि ने उसे आश्चर्य से कहा, मतलब मैं चाय नहीं पीता तुम्हें पता है शायद ?

उसकी इस खासी फ़जीहत का पता हमें खुद इचलकरंजीकर से ही चला।

उसने एक और शरारत की।

होस्टल में युगांडा का एक अफ्रीकी विद्यार्थी रहता था। वह हमें हमेशा गालियां बकता। कहता, कि इंडियन लोग कपड़े उतारे बिना सोते हैं, जो हाइजिनिक नहीं होता। यह गंदी बात है। कपड़े उतार कर सोना चाहिए। कम-से-कम तुम जैसे पढ़े-लिखे इंडियंस को इसका खयाल रखना चाहिए।

गरमियों में तो वह लंगोट भी उतार लेता। एक बार काफ़ी रात गये इचलकरंजीकर, सुरेश और चार-पांच लड़के मेरे पास आये। कहने लगे, हम सभी ने अफ्रीकन को देखा है। वह औंधा लेटा पड़ा है। क्या मज़ेदार दृश्य है !

मैं किवाड़ों की सलाखें पकड़कर ऊपर चढ़ गया। भीतर झांककर देखा। बेडलैंप की खूबसूरत रोशनी। पर अफ्रीकन तो चित लेटा हुआ था। मुझे धोखा दिया गया था। मैंने उन सबको घूंसे रसीद किये। तब उन्होंने कहा, हमें भी तो

इचलकरंजीकर ने ऐसा ही धोखा दिया था। बाद में कई लोगों को हमने यही दृश्य दिखाकर धोखा दिया था। अंत में सुरेश ने भीतर झांककर कहा, मिलाओ हाथ। अब उसने करवट बदल ली है। तब मैं और इचलकरंजीकर दोनों एक साथ सलाखों पर लटक गये। देखा कि वह अब भी चित लेटा हुआ था। तब हमने सुरेश को पीटना शुरू किया।

बाहर काफ़ी शोर-शराबे के कारण अफ्रिकन की नींद खुल गयी। लेकिन वह तुरंत कमरे से बाहर निकल नहीं सकता था। इसका फायदा उठाकर सब लोग भागे-भागे अपने कमरों पर पहुंच गये।

सुबह उस अफ्रिकन ने मुझ से पूछा, कल मेरे कमरे के सामने देर तक क्या गड़बड़ चल रही थी ? मैंने जब उसे पूरा किस्सा सुनाया तो वह हंसा। और उसने कहा, इंडियंस और दूसरी क्या चीज़ देख सकते हैं ?

होस्टल में प्रधान नाम का एक लड़का रहता था। उसे इचलकरंजीकर और हम सब परेशान किया करते। वह बहुत ही लल्लू किस्म का था। रात में मैंने एक बार स्विच ऑफ करके उसकी बत्ती बुझा दी। अंधेरे में इचलकरंजीकर ने होल्डर से बल्ब निकालकर जेब में डाल दिया।

प्रधान ने कहा, सांगवीकर बत्ती जलाओ।

मैंने स्विच ऊपर नीचे करते हुए कहा, कहां ? बत्ती जल नहीं रही है। शायद तुम्हारे फ्यूज़ उड़ गये हैं।

फिर भी प्रधान को शक हुआ कि कहीं हमने बल्ब निकाल न लिया हो। अंधेरे में टटोलते हुए बल्ब ढूंढ़ने की उसने जब कोशिश की तो उसे शॉक लगा।

हर शाम हममें से कोई उसके होल्डर में तांबे का सिक्का डाल देता। शाम को जब वह स्विच ऑन करता तो उसका फ्यूज़ उड़ जाता। वह बल्ब निकाल कर देखता तो सिक्का नीचे गिरता।

तब वह हमें गालियां बकता हमारे कमरे में आता। लेकिन हम उसे कमरे से निकाल बाहर करते। फिर वायरमैन के आने तक वह अकेला अपने अंधेरे कमरे में बैठा रहता। फ्यूज़ लग जाने पर फिर से हम उसके कमरे में मटरगश्ती करने पहुंच जाते।

उसके घर से मिठाइयां-लड्डू आदि आते। हम लोगों को ज्यों ही इसका पता लगता, चीजें तुरंत साफ हो जातीं। तब से वह मिठाई का बक्सा छिपाकर रखने लगा था। एक बार मिठाई आने की खबर हमें लगी। लेकिन कमरे में बक्सा आसानी से मिल नहीं रहा था। तब हमने उसके कमरे को लग सकने वाली एक चाभी कहीं से प्राप्त कर ली। वह बाहर गया हुआ था। इस बीच हमने नयी चाभी

से काम लिया। पूरे कमरे को छान मारा। सोचिए तो ज़रा, बक्सा कहां छिपाकर रखना चाहिए था ? अखबारों की रद्दी के नीचे। ऊपर पुराने कपड़े, जूते वग़ैरा रखे हुए। फिर क्या, सारा माल उसी वक्त सफ़ाचट। और पहले की तरह सभी चीज़ें जहां की तहां रख दीं। ताला बंद किया और खामोश हो गये। हमने सोचा, कभी तो प्रधान हमारे नाम से चीखेगा। लेकिन जैसे कुछ घटा ही न हो, प्रधान भी खामोश था।

हम सारे के सारे दोस्त एफ० वाई० में पढ़ते थे। आगे वाली क्लास में पढ़ने वाले ज़्यादातर किताबी कीड़े। और फिर हम से वो बुज़ुर्गाना लहजे में बतियाते। तब फिर हम लोग भी उनके साथ तहज़ीब से पेश आते।

लेकिन उनमें से कुछ लोग अच्छे थे। वे हमसे पूछते, अंग्रेजी वाला अमुक पाठ शुरू हुआ कि नहीं ? कभी कहते, अमुक पाठ पर खास ध्यान देना। पटवर्धन साहब उस वक्त कभी will you make tea के बजाय will you take me वाला जोक करेंगे। तब खासकर ज़ोर-ज़ोर से हंसियो। हमसे पहले वाले लड़कों ने हमें ऐसा ही कहा था।

यह बात हमने सारी क्लास को बता दी। और उस विशिष्ट पाठ को विशेष ध्यान देकर सुनने लगे। प्रोफेसर साहब ने जब वही जोक किया तो सब लोगों ने ठहाका लगाया और पूरी क्लास सिर पर उठा ली। शायद यह बात सर की समझ में आ ही गयी। लेकिन हम जब इंटर में पहुंचे और एफ० वाई० के लड़कों ने इसी को दोहराया तो लगा, अपना परिश्रम बेकार गया।

लेकिन इतने लोगों का एक साथ हंसना मुझे बिलकुल मंजूर नहीं। इस तरह इकट्ठे हंसना इकट्ठे रोने की तरह भयंकर है।

कॉलेज में जान-बूझकर हास्य नाटक ही खेले जाते हैं। शो के वक्त सारा प्रेक्षागृह कहकहों से उमड़ पड़ता है। हमें लेकिन इन नाटकों को देखते वक्त इस तरह का कोई अनुभव नहीं होता। एक बार सुरेश और मैं ऊब गये और शो आधा छोड़कर बाहर चले आये। बाहर स्टॉल पर चाय पीते खड़े रहे। बाहर बहुत शांति थी। स्टॉल पर के कुछ लोगों के अलावा वहां एक परिंदा भी नहीं था। भीतर से थोड़े-थोड़े अंतराल के बाद अभिनेता या अभिनेत्री की हलकी-सी खुसर-फुसर पर पूरा हॉल ज़ोर से हा ऽ ऽ, हा ऽ ऽ, ठा ऽ ऽ, ठा ऽ ऽ, हो ऽ ऽ, हो ऽ ऽ करता हुआ हंसी से फट पड़ता। हम दोनों को बड़ी चिढ़ हुई। हमें यह सब बड़ा विचित्र लगा।

सुरेश और मेरे बीच एक और समान सूत्र था । हम दोनों में इस कारण पटती । सामने लड़कियां पड़तीं तो वह और मैं या तो पास वाली किसी दूकान में घुसकर भाव वगैरा पूछने का बहाना करते या कभी-कभी पान वगैरा खरीद भी लेते ।

एक बार उसने नाई के यहां जाकर अपने बाल साफ मुंडवा लिये । कहने लगा, तुम बालों में तेल नहीं लगाते हो, इसलिए बड़े भयंकर नज़र आते हो । बताओ, मैं अब बिना बालों के कैसा लग रहा हूं ? कुल मिलाकर मुझसे भी लड़कियां काफ़ी दूर भागती हैं ।

लेकिन सुरेश एक बात से बाज़ नहीं आता । शाम के वक्त कभी सड़क पर सैर करने निकल जाते । तब, लाल टमाटर मुंह में दबा लिया और लड़कियों की तरफ घूरते-घूरते खाये जा रहे हैं—एक के बाद दूसरा ।

फिर जब कभी लड़के-लड़कियां इकट्ठे ट्रिप वगैरा के लिए कहीं निकलते तब सुरेश और मैं अपने-आप टोली से अलग पड़ जाते । वास्तव में वह और मैं देर रात न सोने की समान आदत के कारण, तथा टांगों को खूब थकाओ तो झट नींद आ जाती है इस सिद्धांत की समान स्वीकृति के कारण दोस्त बने हुए थे । रात बारह के बाद होटल बंद हो जाते । चाय पीने के लिए दूर स्टेशन तक पैदल जाना और वापस आना सिर्फ हम दोनों के बस की बात थी ।

फिर भी लड़के-लड़कियों वाली मिली-जुली ट्रिप में हम सम्मिलित हो जाते । इस बहाने प्रकृति की शोभा वगैरा देख सकते थे । ट्रिप में अगर थोड़ी सावधानी रखें, तो लड़कियों से बचा जा सकता है ।

मतलब एक अपरिचित लड़की ने मुझसे पूछा कि आप म्यूज़िक की क्लास में क्या सीखते हैं ? तो मैंने जवाब दिया, मैं तबला सीखता हूं । तबला ! तब यह लड़की भला फिर से क्योंकर सवाल करती ?

सुरेश और मैं लड़कियों को मज़ाकिया नामों की उपाधियां देते । ट्रिप के दौरान हमने मनोरंजन का हीला ढूंढ़ लिया था । हम नीरा पीकर लौट रहे थे । पेट में ठंडा लगा । उसी वक्त सामने से आती लड़की को देखा और हमने उसे 'निराली' कहा । एक अलसाई बदनवाली थी । उसे हमने 'जंभाई' की उपाधि दी । एक लड़की बड़ी नज़ाकत से चल रही है, इसलिए वह हुई 'चालचलाऊ' और एक थी बिलकुल लालबुंद । उसे कहा 'बुंदी' । दूसरी एक थी जो बालों की लटें आगे खिसकाती रहती, उसे हमने 'छैल बटाऊ' कहा ।

लेकिन मात्र इतने भर से पूरा समय कैसे कटता ? यही एक दिलबहलाव कब तक ? जब ऊबे तो औरों की नज़रें बचाकर कार्ले की गुफाओं के ऊपर चढ़कर दूर निकल गये । जिज्ञासा थी कि गुफाओं के उस पार क्या है ? पर ऊपर लंबे घास के मैदान थे । वहां और कोई नहीं था । ऊंची-ऊंची घास । हम दौड़ते रहे । फिसलन

बहुत थी। इसलिए दोनों ने हथेलियां आपस में गूंथ लीं और खुद को संभालते हुए घिसटते चले गये। लुढ़कते-लुढ़कते अंत में कीचड़ में ऐसे धंसे कि चप्पलें भी गायब हो गयीं। दोनों अब एक-दूसरे से दूर थे। घास इतनी ऊंची थी कि ज़ोर से चीखने पर ही एक-दूसरे को जगह का पता लग सकता था। कीचड़ में मेंढकों के सैकड़ों बच्चे। बड़ी मुश्किल से ऊपर मैंदानी टीले तक पहुंचे।

लौट कर टोली में जब पहुंचे तो उन्हें हम बड़े रोमांटिक लगे। किसी ने हमें फिशपांड दिया। कहा, डोंगरे वालामृत कुछ कम पड़ा लगता है। लेकिन टीला उतरते वक्त पैरों में काफ़ी कांटे चुभ गये थे। होस्टल पहुंचने पर रात में इचल-करंज्या हमेशा की तरह कमरे पर आया। ट्रिप के बारे में हमसे सारी बातें बुलवा लीं। बोला, तब तो तुम्हें और एक फिशपांड देना चाहिए। साले, तुम हो फिश-पांडुरंग।

हमारे कारनामों के लिए उसी ने हमें चाय पिलायी।

दोस्ती वगैरा काफ़ी गहरी हो चुकी थी। लेकिन फिर भी सुरेश ने मुझे सिर के बल पानी में गोता लगाने की तरकीब नहीं बतायी। सांगवी में सिर्फ डुबकी लगाना सीख सका था। मैं ऊपर से कूद जाता और सीधे छपाक से पानी की सतह पर गिर पड़ता। छाती, कपाल, टांगें लाल हो जातीं। जलन होने लगती।

सुरेश कहता, हम सिखायेंगे नहीं। आठ-दस दिन तक इसी तरह चलने दो। फिर तुम अपने-आप सीख जाओगे।

एक रोज़ स्टेशन पर रात के समय देर तक टहल लेने के बाद बांध पर चले आये। वहां नदी की भयंकर आवाज़ें सुनते बैठे रहे। सुबह हो गयी। भयंकर बाढ़ थी। फिर भी उसने कहा, हम यहीं नहायेंगे। शहर में ऐसे अवसर कहां मिलते हैं? इसलिए शहरी माहौल से अलग चीज़ों का बड़ा आकर्षण रहता। सोचा, यहां पानी कुछ कम होगा। नदी के किनारे-किनारे धीरे-धीरे आगे बढ़ते रहे। इस तरह काफ़ी दूर तक चले आये। अब नदी काफ़ी विशाल थी और पानी कुछ कम दिखाई पड़ रहा था। तब उसने मुझे अचानक कपड़ों समेत पानी में धकेल दिया। खुद लेकिन कपड़े उतार कर तैरने लगा। पानी गरम था। मैं ऊपर आया, कपड़े निचोड़ कर चट्टान पर सो गया। मैं जब उठा तो देखता हूं कि सुरेश मुझसे काफ़ी दूर बड़े आराम से सो रहा था। दोपहर चढ़ आयी थी। मुझे कुछ भ्रम हो रहा था। सोचा, हम यहां कहां आ गये हैं? फिर मैं उठा और धीरे-धीरे उसके करीब गया। पट्ठा सोया हुआ था। और वह भी ऐसी चट्टान पर कि ज़रा भी इधर-उधर हो जाये तो सीधे नदी में गिर पड़े। फिर मैंने अचानक उसके हाथ पकड़े और उसे नदी में धकेल दिया। गिरते-गिरते उसकी नींद खुल गयी और वह चीखने

लगा। मुझे बड़ा मज़ा आया।

आखिर वह कपड़ों समेत जब पानी से ऊपर आया तो उसका मुंह खुला हुआ था। पेट में भरपूर पानी चला गया था। हिचकियां लेता, खांसता, कै करता हुआ वह भयंकर क्रोध से मेरी तरफ लपका। तब मैं आगे, और वह पीछे। इस तरह बांध तक दौड़ते रहे। बुरी तरह थक चुके थे, फिर भी दौड़ रहे थे। मैं रुक जाता, तो वह धीरे-धीरे दौड़ता। मेरे लिए ज़ोर से दौड़ना भी संभव नहीं था। इस तरह काफ़ी धकापेल करते हुए हम दोनों होस्टल पहुंचे।

सुरेश ने कहा कि मैं जब पानी में गिरा था तो मेरी चाभियां खो गयीं। वास्तव में उसकी चाभियां पहले ही कहीं गुम हो गयी होंगी।

तब फिर वह और मैं मेरे ही कमरे पर सो गये। दिन तमाम, पूरी रात और दूसरे दिन दोपहर तक। दोनों एक ही समय जाग गये थे। उसने कहा, इसी तरह पंद्रह-पंद्रह दिन लगातार नींद लेना आनी चाहिए।

लेकिन इसके लिए पंद्रह-पंद्रह दिन कतई सोना नहीं चाहिए।

आखिर जागना तो पड़ेगा ही।

खैर, यह पूरा साल ऐसा नहीं कि हमने इसी तरह की शरारतों में बरबाद किया। हम सब लोग पढ़ाई भी करते और इम्तिहान पास करते रहे। इचलकरंजीकर ने एन० सी० सी० और खेल-कूद में काफ़ी नाम कमाया था। कॉलेज की मैगज़ीन में उसकी तसवीर भी निकली थी। तांबे की एक कविता भी छपी थी। कविता का भाव कुछ ऐसा था कि मैं इन शब्दों का रचना कर रहा हूं, लेकिन ये मेरे नहीं हैं। यह बात मुझे कुछ जंची ज़रूर। लेकिन सबसे भयंकर था इस कविता का अंत—हे पाठक, तुमने अगर यह कविता न भी पढ़ी होती, तब भी मेरा कोई विशेष नुकसान नहीं होता। यह अजूबा शार्दुल-विक्रीड़ित में बंधा था। तांबे मतलब बड़ा महान शख्स। मैं उसे नाटक लिखने के लिए प्रोत्साहित करता रहा।

लेकिन मधु देशमुख पूरा साल इतने झमेले करता रहा कि इम्तिहान के एक सप्ताह पहले उसके होश ठिकाने आये। मतलब, उसने नगरपालिका वाले चुनाव के लिए करीबन एक सप्ताह प्रचार-कार्य किया। बावजूद इसके कि वायलिन की क्लास बंद हो चुकी थी, घर पर उसकी प्रैक्टिस चल ही रही थी।

इश्क के मामले में वह हम सब लोगों से आगे था क्योंकि बातचीत में वह काफ़ी ढीट था। इश्कवाला मामला जब टूट गया तब उसने इम्तिहान की तैयारियां शुरू कर दीं और हमसे आगे निकल गया। पर एक-दो विषयों में उसके अच्छे नंबर नहीं आये। वह बस प्रमोट कर दिया गया। उसके पिताजी ने कहा, तुमने

अपनी रुचि से आर्ट्स लिया है—फिर भी यह ठेलमठेल। इसलिए, तुम फिर से साइंस ज्वाइन कर लो। असल में उसकी और भी कई कारगुजारियां थीं जो पिताजी को बताने लायक नहीं थीं। इसलिए उसने सिर्फ इतना ही कहा, नहीं, मैं अगले साल पढ़ाई करके अच्छे नंबर लाऊंगा।

इसी साल वह गंजा होना शुरू हो गया था। इसलिए वह पिताजी से कहता कि कुछ दिनों के बाद तो आप मेरा बाल भी बांका नहीं कर सकेंगे।

कुल मिलाकर मधु देशमुख मतलब बड़ा तिकड़मी। इश्क की कला में पहला नंबर मार गया था। इसलिए इश्क में उससे जूनियर लड़कों पर वह काफ़ी रोब जमाता। कहता, अभी चलने दो बेटा। आगे मेरी तरह गंजे बनोगे तब पता चलेगा।

लेकिन वह मुझसे उधार पैसे लेकर इश्क की शर्तें पूरी करता। यह बुरा था। उसके पिताजी बदला लेने की नीयत से उसे बहुत कम पैसे भेजते। लेकिन इधर प्रेमिका के साथ कैंटीन में गपशप के साथ खाना-पीना तो होता ही। सो वह मुझसे उधार पैसे लेता। मेरे पचास चढ़ गये थे उस पर, लेकिन इम्तिहान खत्म हो गये। मैं घर जाने की तैयारी करने लगा। फिर भी दोस्त के नाते मैंने उससे पैसे मांगे नहीं। फिर अब मेरे पास किराये तक के पैसे नहीं बचे और फिर दो-तीन दिन तो सिर्फ पकौड़ों पर कटे।

तब मैंने उसे खूब परेशान किया। उसने कहा, ऐसा ही करना था तो पहले दिये ही क्यों !

मैंने कहा, तुम्हारे प्यार की खातिर मैं मजबूर था।

सिर्फ इसलिए कि उसने मुझे उसके अपने इश्क के सभी लफड़े—नाज़ुक वग़ैरा सभी बताये थे, मैंने पकौड़े खाकर दिन गुज़ारे। उस लड़की से उसका इश्क यत्न, प्रत्याशा, नियताप्ति, फलागम स्तरों से गुज़रता हुआ तयशुदा तरीके से पूरा हुआ था। हर बार होटल में बिल अदा करते वक्त वह उससे कहती, आज मैं बिल दूंगी। तुम मुझे कभी देने ही नहीं देते हो। इस पर सच पूछो तो उसे कहना चाहिए था कि तुम्हें शायद पता नहीं है, मैं पांडुरंग सांगवीकर से पैसे उधार लेता हूं और होटलों के बिल चुकाया करता हूं। ऐसा कहकर खामोश हो जाता और उस लड़की को बिल चुकाने देता तो क्या नुकसान होता।

यह हज़रत—मधुकर चिंतामणि देशमुख कहने लगे, अजी, तुम्हें आगे सारी जिंदगी हमें खाना बनाकर खिलाना है, रहने भी दो। अब बताइए यह बात कॉलेज की कोई पोंगी लड़की कैसे बर्दाश्त करती ? वह और ज़्यादा भावुक वग़ैरा होकर कहने लगी, रहने दीजिए। मैं ही देती हूं।

उसके बाद मधु देशमुख मुझसे यह कह कर कि अब इम्तिहान करीब आ ही गये हैं जो कुछ भी होता है अच्छा ही समझो, आखिर प्यार अमर है। वह पढ़ाई में लग गया। उसका यह रवैया बड़ा मजेदार था। लेकिन लड़कियों के बारे में प्यार वगैरा की बातें सुनकर मुझमें उनके प्रति बहुत ज्यादा आदर पैदा होने लगा था।

मतलब यह, कि लड़कियों में एक तरह की प्राकृतिक ऊर्जा होती है। पुरुष की स्थिति इसके बिलकुल विपरीत है। स्त्री के बारे में पुरुष के मन में दहशत पैदा हो सकती है। क्योंकि कोई भी स्त्री पुरुष की तरफ इस तरह घूर कर देख सकती है जैसे वह उसे गटगट पी जायेगी। इसके उलटा पुरुष का हाल है। इसीलिए इम्तिहान के दौरान मेरे मन में क्लास की लड़कियों को लेकर करुणा-भरे विचार पैदा हुए। इन साठ-सत्तर लड़कियों का भविष्य क्या होगा ? कोई कहां, कोई कहां। इनकी शादियां होंगी। इन्हें चित्र-विचित्र पति मिलेंगे। इस समय ये कितनी कोमल दिखाई दे रही हैं। तब इनको जचगियां होंगी। इन्हें छोटे-छोटे बच्चे पैदा होंगे। हमारे कुछ भी नहीं होगा। सभी माताएं अगर अपने लड़कों को बचपन से अच्छी सीख देती रहें, तो संसार में युद्ध क्योंकर होंगे ? समूची संस्कृति वास्तव में माताओं के हाथों सुरक्षित है।

लेकिन माताओं को चाहिए कि वे लड़कों पर ज्यादा प्यार न वारें।

आखिर मधु देशमुख ने ऐलान किया, मेरा वायलिन अगर कोई नकद खरीद सकता है तो खयाल रखना।

घर पर चिट्ठियां लिखता रहा। कहता रहा, बस आ ही रहा हूं। इस तरह कुछ दिन गुज़र गये। आखिर मधु ने जब पचास रुपये दिये तो मैं अपने घर के लिए रवाना हुआ।

छुट्टियां शुरू होने पर गांव चले आना और छुट्टियों के बाद फिर गांव से कॉलेज के लिए वापस आना, यह स्थिति शुरुआत में बड़ी रोमांटिक लगती थी। पर मैंने देखा कि मेरी मौसी मेरे रवाना होने के ऐन समय स्टेशन पर हाज़िर रहती और घर के लिए मिठाई वगैरा देती। वैसे खाली घर बैठे-बैठे कया किया जाय, यह सवाल तो उसके सामने भी था। मेरी गाड़ी चलनी शुरू हो जाती। तब वह कुछ कदम ग़ाड़ी के साथ चलती और हाथ ऊंचा करके मुझे विदा करती। उसे यह सब-कुछ रोमांटिक लगता। पर मुझे एहसास होता रहता कि मैं अब भी छोटा बच्चा हूं। और फिर घर पहुंचने पर पिताजी के वही सवाल तैयार रहते कि

परीक्षा कैसे रही ? कि होस्टल में रहने वालों को स्कालरशिप क्यों नहीं मिलती ? वगैरा-वगैरा और फिर नयी चीज़ें बनाकर मां मुझे खिलाती। और अपना प्यार व्यक्त करती, सो अलग।

वास्तव में हर बार जब यही दोहराया जाता तो इसका मज़ा निकल गया। अलग-अलग शहरों में पढ़ाई करने वाले गांव वालों परिचितों के साथ सारा समय काटना मुश्किल होता। तब मैं खेत पर चला जाता। और यूं ही प्रकृति-सौंदर्य वगैरा देखता वक्त गुज़ारता। फिर धीरे-धीरे किताबें पढ़ने की आदत बना ली। शुरू से ही एकदम बड़े ग्रंथों का पढ़ना शुरू किया। इस क्रम को बड़े जीवट तरीके से जारी रखा। इसके अलावा एक और काम मैं करता। गत वर्ष की अपनी उपलब्धियों और प्रगति का लेखा-जोखा नोट करता। अगर पिताजी से गरमा-गरमी हो गयी तो कहूंगा कि पढ़ाई भले ही न की हो—बांसुरी अच्छी बजा लेता हूं। यह क्या कम उपलब्धि है, वगैरा वगैरा। और फिर उस वर्ष के विशेष लक्ष्यों को अभी से तय कर लेना।

छुट्टियां खत्म करके शहर के लिए निकलते वक्त शुरू-शुरू में मां के —और अगर उसी वक्त पिताजी सामने होते तो उनके भी पैर छू लेता। बाद में इसे टालता रहा। पर इस बार इस रस्म को पूरा करके ही रवाना हुआ था।

इस साल गंभीरता से अध्ययन करने का इरादा करके मैं घर से निकला था। गाड़ी में नासिक के एक सज्जन से भेंट हुई। इन्हीं के कारण मेरे इरादों को और बल मिला।

यह सज्जन मुझे महान आदमी लगे। हर बात को वे बड़े निश्चयपूर्वक कहते। इसलिए मैंने अनुमान लगाया कि यह साहब ज़रूर अध्यापक होने चाहिए। लेकिन हमने यात्रा में कहीं भी अपने निजी मामलों के बारे में पूछताछ नहीं की। हमने दूसरी बातों पर बहस की।

उनकी एक आदत से लेकिन मैं परेशान रहा। किसी बात को ज़ोर देकर कह लेने पर अगर उनसे पूछा जाता कि ऐसा क्यों है तो वे सिर्फ इतना ही कहते—क्योंकि वह ऐसा ही है।

उन्होंने कहा, हमारे क्षेत्र में भी एक यूनिवर्सिटी होनी चाहिए क्योंकि इसकी ज़रूरत है।

उन्होंने ज़ोर देकर कहा, यूनिवर्सिटी नासिक में ही स्थापित होनी चाहिए।

मैंने कहा, आप नासिक के हो इसलिए न ?

उन्होंने कहा, नहीं। असली वजह यह है कि नासिक सभी दृष्टियों से सुविधा-जनक और केंद्रीय जगह है।

मैंने कहा, तो फिर मनमाड़ भी तो ऐसा ही है।

उन्होंने कहा, मनमाड़ भी है, लेकिन केवल नासिक सभी दृष्टियों से उपयुक्त है। छुट्टियों में मैंने न० चि० केलकर लिखित तिलक चरित्र पढ़ डाला था। उनके साथ तिलक का विषय छेड़ा। पता चला कि उन्होंने इसे पहले ही पढ़ लिया था। इसलिए इस विषय पर मैं ज़्यादा बोल नहीं सका।

उन्होंने कहा, तिलक के मुकाबले में आगरकर श्रेष्ठ है।

मैंने आगरकर की जीवनी अभी नहीं पढ़ी थी। इस वर्ष पढ़ने का निश्चय किया था। फिर भी मैं विवाद में उलझ गया।

उन्होंने कहा, समाज व्यक्तियों से ही बनता है। क्योंकि व्यक्तियों से ही समाज बनता है। सादा उदाहरण लीजिए—महाराष्ट्र में आगरकर के समान कोई और महान व्यक्ति पैदा हुआ है? सादा उदाहरण लीजिए—तिलक ने इतने बरस जेल में काटे और लिखा क्या? गीता रहस्य। इसे पढ़ने का इरादा करते-करते मेरा एक बरस निकल गया। अब बुढ़ापे में मुझ-सा आदमी इसे पढ़ ले सो संभव नहीं। लेकिन इतने साल खर्च करके तिलक ने लिखा गीता रहस्य, तो आगरकर ने शेक्सपियर का अनुवाद किया। तुमने गीता रहस्य तो नहीं पढ़ा होगा लेकिन विकार-विलसित ज़रूर पढ़ा होगा, इसलिए मैंने इन दोनों की तुलना की।

मैंने ये दोनों ही ग्रंथ पढ़े नहीं थे। बात मुझे बड़ी अखरी। मैंने निश्चय किया कि अब अध्ययन की शुरुआत इन्हीं दो ग्रंथों से करूंगा।

सुबह किसी स्टेशन पर उतरते समय उन्होंने कहा, आखिर तुमने मुझे काफी कष्ट दिये। रात एक बर्थ खाली हो चुका था। मैं सोच रहा था, उसे हथिया लें। और सुबह तक सो लिया जाय। लेकिन तुम थे कि बातें सुनने के लिए उत्सुक—सोचा···।

पूना पहुंचने पर अध्ययन शुरू किया। लेकिन परेशानियां कुछ ऐसी आती रहीं, कि इस वर्ष अध्ययन तो दूर, पाठ्यक्रम की पढ़ाई भी ठीक से नहीं हो सकी। फिर भी काफ़ी कुछ व्यक्तित्व बनाने में सफल रहे।

मधु मिलिंद इचलकरंजीकर, यह महाशय इस साल मेरे बिलकुल बगल वाले कमरे में आकर टिक गये। फिर एक छोड़ सभी प्रकार के शौक हमें लगने ही थे।

उसके बहकावे में आकर मैं इधर फिल्में देखने लगा था। वह तो एक भी हिंदी फिल्म नहीं छोड़ता। मुझसे कहता, जिस तरह शेक्सपियर का युग नाटकों

का युग कहलाया गया, उस जमाने का सारा समाज नाटकों से प्रभावित था, उसी तरह आज हिंदी फिल्मों का युग है। उस ज़माने में जिस तरह कीट्स और मार्लो और शेक्सपियर और जॉन्सन और ह्यूमाफलेचर और वर्वेज वगैरा और कई—अभी-अभी सर नहीं क्या बता रहे थे—इसी तरह आजकल नौशाद और बर्मन और मधुबाला और वहीदा रहमान और बिमल राय और लता मंगेशकर और किशोर कुमार वगैरा वगैरा।

एक तरह से उसकी यह बात सही थी। क्योंकि हमारे गांव में जबकि वहां कोई फिल्म-हाउस नहीं है लोगों में फिल्मों का पागलपन सवार है। पिजाजी भी कई बार सिलोन ऑन करते ही हैं। अब चूंकि हमारी आंखें खराब हैं, सो हमें डॉक्टर की सलाह के मुताबिक फिल्में नहीं देखनी चाहिए। फिर भी यह युग तो फिल्मों का ही युग है। इस सचाई को गले उतार लिया और बार-बार इचल-करंजीकर के साथ फिल्म देखने गया था।

वैसे इचलकरंजीकर जितना सभ्य है उतना ही गुंडा। लेकिन वह मुझे अपना मित्र मानता, इसलिए मैं भी उसका साथ देता। खेलकूद से लेकर डिटेक्टिव उपन्यास पढ़ने तक हज़ारों किस्म के काम वह करता। सुबह पांच बजे उठकर छः बजे वाली ट्यूशन-क्लास के लिए शहर जाता। आठ बजे तक होस्टल लौट आता। फिर खाने का समय होने तक टेनिस खेलता। खाना खा कर कॉलेज करता। शाम को एन० सी० सी० या फिर फिल्म और रात में मेरे साथ गप्पें। मैं उसे निकाल बाहर करूं उसके पहले ही वह चल देता और दस-ग्यारह बजे तक सोया पड़ा रहता। और फिर रविवार के दिन रिश्तेदारों के यहां ज़रूर हो आता। शेष सारा समय मुझे परेशान करने में बिताता।

यूं ही दिल-बहलाव के लिए बहस में मुझसे विरोध करता रहता। कहता, शिवाजी के मुकाबले औरंगजेब श्रेष्ठ है क्योंकि औरंगजेब न होता तो शिवाजी का मोल क्या था? या मैंने अगर यह कहा कि डॉ० अंबेडकर ने धर्मांतर की लहर शुरू करके अच्छा नहीं किया, तो इसका जवाब होता—अंबेडकर को अगर राज-नीति में घुस-पैठ का अधिक अवसर मिलता तो निश्चित समझो, वे दो वर्गों में संघर्ष पैदा करने में समर्थ हो जाते। और इस सूरत में सारे देश में कम्यूनिज्म फैला दिया जाता तो बताओ तुम लोग फिर क्या करते? इस तरह घंटों बहसें चलती रहें, तो बताइये कौन नहीं ऊबेगा?

लेकिन कुल मिलाकर यह शख्स पक्का शरारती ही था। रास्ते में अगर कोई प्रेमी जोड़ा हाथ में हाथ पकड़े बड़े प्यार से चल रहा होता तो यह जनाब मुझे जल्दी-जल्दी घसीटते उन लोगों से आगे निकाल लेते और फिर मेरा हाथ अपने हाथ में लेकर उन्हीं की तरह बड़े लाड़ से आगे चलते, पीछे मुड़ कर देखते। अगर वे लोग हाथ छोड़ देते तो यह भी वैसा ही करता। मैं रहा लंबा और यह साहब

बौने, दृश्य बड़ा विचित्र लगता।

होटल में कभी हम ज़ोर-ज़ोर से वाहियात चर्चाएं करते बैठे रहते। उस वक्त अगर कोई हमारी बातें सुनने के इरादे से या और कहीं जगह न मिलने के कारण हमारी टेबल के पास आकर बैठ जाता, तो यह साहब उस आदमी' को किसी बहाने पहले वहां से उठवा देते। और फिर से उन्हीं वाहियात चर्चाओं में लग जाते। इस काम के लिए वह कई तरह की तरकीबें इस्तेमाल करता। यहां से उठिए, तुमसे बदबू आ रही है। मेरी तरफ देखने का बहाना बनाकर सामने वाले को चेतावनी देता। या वह आदमी अगर कोई चीज़ मंगवा ले तो यह महाशय मुझसे कहते— पांडोबा, सुबह बहुत कोशिश की फिर भी टट्टी नहीं हो रही थी। मैंने क्या किया पता है—इस तरह शुरुआत करके किसी बहाने आगंतुक को वहां से उठवा देता। खाने वाले लोग तब खुद अपनी प्लेटें उठाकर दूसरे टेबिल पर चले जाते।

कुल मिलाकर नागरी तहजीब में कहां-कहां छेद हैं, उसे इस सब का पता था। इसलिए मैंने सोचा कि इचलकरंजीकर के कारनामों को गौर से ग्रहण करने की ज़रूरत है। एक बार इन्हें समझ लो तो शेष बातें जान लेने में बड़ी आसानी हो सकती है। हम इचलकरंजीकर की हर बात मानेंगे।

बचपन में हमारी गली में एक भयंकर घटना हुई थी। तब से मैंने पक्का इरादा कर लिया था कि लड़कियों से ज्यादा संबंध नहीं रखने चाहिए। हुआ यों— रामा नाम के एक लड़के ने एक बार किसी कमसिन लड़की को यह कहकर कि चलो तुम्हें एक जादू दिखलाते हैं, गोयठे में ले गया। वहां यकायक लड़की चीखने-चिल्लाने लगी। काफ़ी औरतें, बच्चे जमा हो गये। लड़की की मां ने जूतियों से रामा की पिटाई की थी। वह लगभग एक पखवाड़े घर में छिपकर बैठा रहा।

गांव में एक बात बड़ी अच्छी होती है, कुछ भी करो, दर्शक मिल ही जाते हैं। शहर में दर्शक हमें पहचानने मे इनकार करते हैं।

कुल मिलाकर शहरी माहौल इचलकरंजीकर जैसों के लिए फायदेमंद साबित होता है।

सच पूछो तो लड़कियों का मन बड़ा चंचल होता है। वह हर किसी पुरुष के खियाली जाल में ज्यादा देर फंस नहीं पाता। लेकिन इचलकरंजीकर का अनुभव था कि लड़कियां बुलंद आवाज़ पर फिदा हो जाती हैं। लेकिन कई कारणों से लड़कियों के साथ मेरा वास्ता पड़ा था, पर उनके बारे में इस तरह की कोई खास

पहचान नहीं बता सकता था। इस मामले में इचलकरंजीकर के अनुभव बड़े तगड़े हैं। वह ये सब अनुभव सिर्फ मुझे बताता।

मैं उससे पूछता, सामान्यतः एक लड़की के पीछे हर माह कितना खर्च आता होगा ?

उलटे कुछ लड़कियाँ हमारा ही खर्च ढोती हैं।

मतलब फोकट में ? सब कुछ मुफ्त में हो जाता है।

तू गधा है, बे पांडया ! बेटा, यह भी समझ लो कि कुछ लड़कियों को लड़के भी तो चाहिए होते हैं।

उसका यह एक मुद्दा सही था।

और फिर कौन लड़की चालू है, इसे वह सिर्फ उस लड़की को देखकर पहचान जाता। लेकिन वह कहता, अपना अनुमान गलत हो सकता है। क्योंकि इस तरह के मामले सही-सही कौन बताएगा ?

एक बार वह किसी लड़की के पीछे पड़ गया था। तब छूटते ही लड़की ने उससे कहा, पाजी !

उसने कहा, यह तो बड़ी कोरी दिखाई देती है।

कुछ दिनों बाद इसने उसी लड़की को भरी सड़क पर रोककर कहा, मुझे तुमने उस दिन पाजी क्यों कहा था ?

उसने कहा, मैं कल प्रिंसिपल साहब के पास कंप्लेंट करती हूं। मवाली कहीं के !

मैंने पूछा, ओ बे इचलकरंजीकर के बच्चे, लेकिन मान लो उसने सचमुच कंप्लेंट कर दी होती तो ?

उसने कहा, तो क्या ? प्रिंसिपल हमें फांसी पर लटका देता। इससे ज्यादा क्या करता ?

उसके बाद इसने उस लड़की को एक बार रास्ते पर धक्का दिया। तब वह ठिठकी और उसने इसे जंगली वगैरा कहा।

इसने कहा, हम तुम्हारे लिए क्या-क्या नहीं करते !

आखिरकार दोनों में पट गयी।

मैंने पूछा, पर मान लो कि वह तुमसे बात ही न करती ? मान लो, वह वहां से चुपचाप निकल जाती, तो ?

तो और कोई दूसरी मिल जाती है बे। फालतू के सवाल मत किया कर। गधों की तरह तुम लोग पहाड़ियों पर टहलने जाते रहते हो। उसके बजाय इधर सड़कों पर ज़रा टहलते रहो तो तुम्हें अपने-आप सब कुछ समझ आ जायेगा।

एक बार वह मेरा चाकू मांग ले गया था। मैं पहली बार जब पूना आया था तब यूं ही अपने साथ चाकू ले आया था। मैंने पूछा, चाकू किसलिए ?

उसने कहा, आम काटने के लिए।

लेकिन पता चला कि चाकू दिखाकर आप किसी लड़की को जबरन फिल्म दिखाने ले गये थे।

उसने कहा, पूना में वैसे भी बहनचोद बहुत पापड़ बेलने पड़ते हैं। बंबई में तो एक ही दिन में काम फतह हो जाता है।

फिर भी इस इचलकरंजीकर के बच्चे के कारनामों का राज़ खुल गया था। इसके पराक्रम से एक लड़की के पैर भारी हो गये थे। यह बात बिलकुल सच थी। इस मामले में उसने मुझ पर एक काम सौंपा, कि मैं उसके पिताजी को मनवा लूं कि वे हमें कश्मीर सैर की इजाज़त दें।

उसके पिता कुछ काम से पूना आये हुए थे। मैंने उनसे इजाज़त माँगी।

उसके पिता ने कहा, छात्रावस्था में ही कश्मीर वगैरा देख लेना संभव हो सकता है। तुम लोग ज़रूर हो आओ।

उन्होंने चार सौ रुपये दिये।

वह लड़की लेकिन उसके कमरे पर हर रोज़ आया करती थी। इचलकरंजीकर कहता, साली झंझट जब पीछे पड़ जाती है न तो फिर छूटना मुश्किल।

फिर किसी अज्ञात जगह उस लड़की का एबार्शन करवा लिया गया। सब झमेलों मे मुक्त हो चुकने के बाद उसने उस लड़की से कहा, आखिर तुम भी हमें खूब मिलीं।

मैंने पूछा, कमरे में एफ० एल० की कोई कमी नहीं थी तो फिर भी ऐसा क्यों हुआ ? तब उसने कहा, यह तुम्हारे दिमाग के बाहर की चीज़ है।

बाद में उस लड़की की शादी हुई। उस मौके पर उसने इचलकरंजीकर को भी निमंत्रित किया। मैंने कहा, शादी में तुम भी वहां पहुंच गये, उसे क्या लगा होगा ?

तब उसने कहा, भडुवे, उसे क्या लगनेवाला था ? मुझे कितनी शरम आ रही थी सो पूछो।

मैंने सोचा, साला लड़कियों वाला झमेला काफ़ी दिलचस्प हुआ करता है। चलिए हम भी ज़रा आज़माकर देख लें।

एक बार मैं जब अकेला क्लास में बैठा ट्यूटोरियल वगैरा लिख रहा था, उस वक्त किसी एक लड़की ने बाहर से दरवाज़ा बंद कर लिया। मैंने खुद यह देखा था।

लड़की दरवाज़े की तरफ पीठ करके इस तरह खड़ी थी, कि किवाड़ के शीशे से साफ दिखाई पड़े। अब बताइए, कौन उस लल्लू किस्म की लड़की से दरवाज़ा खोलने के लिए मिन्नतें करे? साला उस इचल्या की बात दूसरी है। और फिर ट्यूटोरियल लिखकर पूरा हो चुका था। अब क्या किया जाय? यह कमरा था ऊपर की मंजिल पर। उस लड़की से दरवाज़ा खोलने के लिए खुशामद करने के बजाय कमरे की खिड़की से बगलवाली क्लास में उतरा जाय और फिर उस क्लास की खिड़की फांदकर नीचे उतर पड़ना ज्यादा बेहतर था। इसलिए सांस रोके बगलवाली क्लास की तरफ खिसकता चला आया। लगा, अब क्लास के बाहर निकला जा सकता है। लेकिन जब खिड़की से नीचे उतरा तो देखा, कि क्लास लगी थी। प्रोफेसर साहब का ध्यान इधर नहीं था। इसलिए बच गये। तब मैं वहीं एक बेंच पर बैठ गया और केमिस्ट्री का लेक्चर सुनने लगा।

लेकिन उस लड़की के शरण नहीं आया। पी० जी० साहब को ट्यूटोरियल देकर अपने कमरे पर लौट आया। वहां सुरेश-पुरेश कोई भी नहीं थे। अपना कारनामा किसे सुनायें?

तब हादसा यों कलमबंद कर लिया—

लड़कियों के कारण हायर एज्यूकेशन का प्रचार कुछ बढ़ गया है। कुल मिलाकर यह स्थिति यूनिवर्सिटी के विकास के लिए ठीक ही है। संक्षेप में, कॉलेज का माहौल इश्क करने के लिए पोषक है। मतलब कॉलेज में गार्डन, फूलों के पेड़ और इस तरह की उन्मादक चीज़ों के कारण एक माहौल तो निश्चय ही बनता है। और फिर शहर से दूर। फर्स्ट और सेकंड इयर के पाठ्य-क्रम में शाकुंतल, शैली, कीट्स जैसे रोमांटिकों की पढ़ाई। फिर भी मज़ा यह कि लड़के-लड़कियां किताबों से परिचित होने के पहले ही प्रेम के तरीके आपस में तय कर लेते हैं। फिल्मों तथा उपन्यासों में इश्क का जो ढंग दिखाया जाता है उसकी सही-सही नकल यहां भी उतारी जाती है। यह बात बड़ी भयंकर है। दुख है कि प्रेम के मामले में भी कोई नवीनता नहीं होती।

यह लिख लिया सो तो ठीक ही हुआ। लेकिन इचल्या को अपने कारनामे तो बताने ही होंगे।

इचलकरंजीकर का एक और शौक था। मित्रों को किसी नये काम के लिए उकसाना, उन्हें एक्टिव करना। उसने सुरेश को जबरदस्ती एन० सी० सी० में दाखिल करवा दिया था। उसने कहा था, आगे फौज में जवानों की ज़रूरत बढ़ती रहेगी। और फिर युद्ध की संभावना बिलकुल नहीं है। इसलिए अगर तुम चाहो कि शिक्षा, नौकरी और बीवी जैसी समस्याओं से एक साथ मुक्ति पानी है तो आर्मी ज्वाइन कर लो। दो दिन बाद मेरे कमरे पर सुरेश और इचलकरंजीकर के बीच बहस हुई। आखिर सुरेश ने एन० सी० सी० ज्वाइन कर ली। चर्चा का

रुख मेरी तरफ भी था।

लेकिन मैंने कहा, मां-बाप अब बूढ़े हो गये हैं और मैं उनका इकलौता बेटा हूं।

पर उसने मुझे एक दूसरे विचित्र झमेले में एक्टिव होने के लिए प्रेरित किया।

इस साल उसने प्रारंभ से ही नयी-नयी शरारतें शुरू कर दी थीं। लड़कियों के तो सैकड़ों लफड़े उसके नाम पर थे। उसकी जेबों से चाकू, मवालियों की दी हुई अश्लील तसवीरें, चिट्ठियां, नोटिसें, पैसे, पिल्स, प्रोग्राम कार्ड, जैसी हज़ार-हज़ार चीज़ें बरामद होतीं। रात सोने से पहले वह इन चीज़ों से बड़ी एहतियात से निपटता। मतलब यह कि लड़कियों की चिट्ठियों को जला देता, सिक्के एक जगह महफ़ूज़ रखता। नोट पर्स में रखता, पिल्स फेंक देता, वगैरा। इस प्रक्रिया में वह बड़ा गंभीर और एकाग्र हो जाता। इस वक्त उसके कमरे में किसी का भी आना उसे पसंद नहीं था। लेकिन मुझे वह यह सब बेशक देखने देता। लेकिन शर्त यह थी कि मैं बिलकुल चुप रहूं। कोई बात न करूं।

एक बार किसी लड़की का पत्र जला डालने के लिए उसे माचिस नहीं मिल रही थी। मैंने कहा, मेरे कमरे में से ले आओ। वह चला गया। मौके का फायदा उठाकर मैंने उस फटी चिट्ठी के टुकड़ों को जल्दी-जल्दी पढ़ डाला—साइकिल-नाना-खो दिया तो क्या हुआ ? गमछा—हथौड़ा···और इचलकरंजीकर आ धमका। उसने यकायक मेरी गर्दन पकड़ी और मुझे धक्का देकर बाहर निकाल दिया।

उसके बाद से मुझे उसने ऐसी घड़ियों में अपने कमरे में कभी दाखिल होने नहीं दिया।

वास्तव में मैं इस तरह की कोई शरारत करना नहीं चाहता था। लेकिन आख़िर लड़कियां सामान्य तौर पर क्या-क्या लिखती हैं, इसे जानने की जबरदस्त उत्सुकता पैदा हो गयी थी। इसलिए मैंने चिट्ठियों के टुकड़े चोरी-चोरी पढ़ डाले। लड़कियां प्रायः बड़ा मृदु, सुंदर, नीला, लाडला कुछ लिखा करती हैं—अपने इस भ्रम की पड़ताल करने के लिए मैंने यह हिम्मत की थी।

इचलकरंजीकर ने एक और तगड़ा कार्यक्रम बना रखा था। होस्टल का जनरल सेक्रेटरी बनने की उसकी तमन्ना थी। तब ज़रूरी था कि उसके पक्ष में कम-से-कम पांच-छः लोग प्रारंभिक चुनाव जीतें। मैं भी उनमें से एक था। लेकिन सिर्फ इसीलिए, वह मुझे चुनाव लड़ने के लिए कह रहा था, सो बात नहीं थी। क्योंकि कॉलेज के डिबेटिंग सेक्रेटरी का पद मेरे लिए छोड़ देने से उसका कोई लाभ होने वाला नहीं था। फिर भी उसने ऐसा किया। सिर्फ इतना ही नहीं, इसके लिए उसने काफ़ी परिश्रम भी किया था।

मेस के सेक्रेटरी पद के लिए मेरा विरोध करनेवालों को उसने बहुत धमकाया था। बाद में उसने उन लोगों को चाय आदि पिलाकर अपने नाम वापस लेने के लिए मजबूर किया था। और मैं निर्विरोध चुनाव जीत गया। वह खुद भी दूसरी एक मेस का सेक्रेटरी चुन लिया गया था। हम लोगों ने बहुमत से उसे होस्टल का जनरल सेक्रेटरी चुना।

उसे पता था कि कॉलेज के चुनाव में उसकी जीत मुमकिन नहीं, इसलिए उसने होस्टल की हद तक ही पैंतरेबाज़ी की थी।

अब खुद जनरल सेक्रेटरी जब हमारा दोस्त था, मैंने अपनी पसंद का विभाग हासिल कर लिया। सांस्कृतिक कार्यक्रम, अर्थात् वेरायटी एंटरटेनमेंट तथा होस्टल के वार्षिक स्नेह सम्मेलन का कार्य-भार मैंने ले लिया। मैं इसका सेक्रेटरी बनाया गया।

उसने कहा, देख पांडया, एहतियात बरतो। अपनी औकात के अनुसार काम का बोझ उठाओ।

लेकिन इस बहाने चमकने का अवसर जो मिल रहा है, इसे क्यों कर खो दें? मुझमें अधिक उत्साह पैदा हुआ था। मैंने काम का पूरा बोझ अपने ऊपर ले लिया। सुरेश बड़ा चतुर। वह इस झंझट में पड़ा ही नहीं। कौन हिसाब-किताब रखे? कौन झंझट मोल ले? मधु कहने लगा, चुनाव जीतना अपने बस का रोग नहीं।

कॉलेज डिबेटिंग सेक्रेटरी के पद के लिए मैंने खुद अपनी इच्छा से चुनाव लड़ा था। चाहता था कि सभाओं में भाषण करने की कला प्राप्त करने का अवसर मिलता रहे। पिछले साल-भर में प्रत्यक्ष भाषण करना तो दूर ही था, भाषण की तैयारी भी संभव नहीं हो सकी थी।

एक बार मैंने जैसे-तैसे तैयारी कर ली थी। डिबेट में हिस्सा लेने के इरादे से अपना नाम भी दर्ज करवा दिया था। लेकिन ऐन वक्त जब मेरा नाम पुकारा गया, मैं अपनी जगह से उठा तक नहीं।

तब अध्यक्ष महोदय ने कहा, नाम दर्ज करवा के लगता है यह जनाब भाग गये।

तब खुद मैंने जवाब दिया था, जी।

अब इस वर्ष तो हम खुद कॉलेज डिबेटिंग के सेक्रेटरी थे। इसलिए मुझे लगा, अब तो कुछ अधिकार प्राप्त हो गये हैं जिससे अपने-आप आत्मविश्वास बढ़ सकेगा। और भाषण-कला आत्मसात करने में आसानी होगी। चुनाव मैं जीत गया। वैसे कॉलेज में हमारे जिले के बहुत सारे लड़के थे। और फिर इचल-

करंजीकर के समर्थक के रूप में लड़कियों के काफ़ी वोट मुझे मिले। होस्टल के तमाम लड़कों के लगभग चार सौ वोट मेरे ही पक्ष में गये। पिछले वर्ष गैदरिंग में मैंने बांसुरी पर भूप राग बजाया था। पहले-पहले तो लड़कों ने काफ़ी शोर मचाया था। पर बाद में जब मैंने बांसुरी पर 'बात-बात में रूठो ना' वाला गीत बजाया तब तो उसे वन्स मोर मिला था। मेरी इस कला का भी प्रभाव लोगों पर कुछ तो था ही। कुल मिलाकर परिणाम यह हुआ कि कुल वोटों में से मेरे दो विपक्षियों को क्रमशः बीस और दो सौ वोट मिले तो मुझे सात सौ वोट मिले।

चुनाव जीत जाने की खुशी में लड़कियों ने मुझसे चाय वगैरा मांगी। मैंने इचलकरंजीकर को पांच रुपये देकर उससे लड़कियों को कैंटीन में ले जाने के लिए कहा।

उसने कहा, तुम भी तो हमारे साथ चलो। तब मैं भी गया।

पिछले वर्ष कुछ लोग मुझे लल्लू-पंजू कहा करते थे। कहा करते कि यह वि० पी० किस गाँव से आई है? मेरा अपमान करते। उन लोगों को आखिर मैंने अपनी झलक दिखा दी। जब कोई इस तरह मेरा अपमान करता तो मैं मद्रास होटल में चला जाता और वहां बैठा सोचता रहता। क्यों हम किसी सभा में भाषण नहीं कर सकते? वैसे हमारी दृष्टि में वक्तृत्व की कला इतनी महत्वपूर्ण चीज नहीं है। संभवतः यही कारण होगा कि हमने कभी इसमें इतनी दिलचस्पी नहीं दिखायी। लेकिन देखता हूं कि बहुत ही सामान्य किस्म के लोग केवल इसी कारण कितने मशहूर हो जाते हैं। बदकिस्मती से हमें इस तरह आगे बढ़ने की बचपन से ही शिक्षा नहीं मिली। नाटक में तो सिर्फ एक ही बार हिस्सा लिया था। हमारा गाँववाला स्कूल तो दलिद्दर था ही। देहाती परंपरा में हमारी शिक्षा-दीक्षा हुई। इसलिए मन में यह इच्छा पक्की बैठ गयी कि इस वर्ष कुछ तो करके दिखाना ही है।

पिछले वर्ष मुझे कभी-कभी भयंकर हीनता का एहसास होता। यहां के मेरे किसी भी मित्र को देखिए, पता चलता कि उसका कोई-न-कोई रिश्तेदार ज़रूर कोई बड़ा आदमी होता है। किसी का मामा ससून अस्पताल में डॉक्टर है, किसी की बहन अमुक बैंक के मैनेजर की पत्नी है। मेरे क्लास की बहुत-सी लड़कियों की मांएं या उनके पिता या तो कोई बड़े कवि, लेखक या कवयित्रियां, प्रोफेसर वगैरा हुआ करते थे। वास्तव में जिन लोगों की चर्चा किताबों में या समाज में बार-बार सुनाई पड़ती, वे अकसर पूना के ही होते हैं। ज़ाहिर है, इन बड़े लोगों के लड़के, भाई, भानजे, भतीजे वगैरा भी कम नहीं होंगे। और फिर चूंकि मैं पूना में रहता हूं, कभी-न-कभी इन सब लोगों से मेरा वास्ता तो पड़ेगा ही। इस स्थिति में जब

मैं अपने बारे में सोचने लगता कि कोई बड़ा आदमी अपना रिश्तेदार नहीं है, तो मुझे बड़ी पीड़ा होती है। इसलिए कभी-कभी मैं कह डालता कि बालशास्त्री जांभेकर हमारे ही खानदान से संबद्ध हैं।

खैर, इस वर्ष मैंने यह पक्का सोच लिया था कि बांसुरी में कुछ ज़्यादा महारत हासिल करूंगा। पर हुआ उलटा ही। जो पांच-दस राग पिछले साल सीख चुका था उन्हें भी भूल गया। यह बहुत बड़ी हानि थी। सोचा था कि खूब अध्ययन करेंगे। पर सिर्फ एक बार लाइब्रेरी में जाकर 'गीता रहस्य' देखकर वापस चले आने के सिवा कुछ भी नहीं हुआ। और फिर तांबे देशपांडे, मधु देशमुख जैसे मेरे अच्छे-अच्छे दोस्त मुझसे कटते चले गये थे। ये लोग मेरी गिनती बेवकूफों में करने लगे थे। लेकिन सुरेश मेरा ढांढ़स बंधाता। वह कहता, सिर्फ़ भोजन और पढ़ाई करने वाले किताबी कीड़ों की अपेक्षा कॉलेज में एक बार यह भी करके देखो। लेकिन अपनी व्यस्तताओं के बावजूद हमारे वह सैर-सपाटे वाले कार्यक्रम को कभी मत भूलना। और हां, सांस्कृतिक कार्यक्रमों के पास हमें देते रहियो।

इस साल मधु देशमुख पक्के आदर्शवादी की तरह पढ़ाई कर रहा था। जितने पैसे उसके पिताजी भिजवाते, उसीं के भीतर अपने खर्च का नियोजन करता। अपने कपड़े वह खुद धोने लगा था। कहता, बहनचोद कभी हमने भी इस्त्री के कपड़े पहने ही हैं। लेकिन जिस दिन इन्हें पहनते हैं तमाम दिन कुछ बेचैनी-सी रहती है। हां, हौसला ज़रूर बढ़ता है। लेकिन फिर वह जोड़ा जब मैला हो जाता है, मन फिर उदास हो जाता है। इसलिए रोज़ाना हाथ से धुले कपड़े हर दृष्टि से बेहतर। मन सदा कैसा नॉर्मल रहता है।

फिर भी मधु मेरी कई मामलों में मदद करता। मतलब, नोटिसों को सुंदर अक्षरों में लिखता, मासांत में मेस का हिसाब पूरा करके लड़कों के बिल वितरित करवाता, मेस की आय का हिसाब रखता, वगैरा काम वह मेरे लिए करता। इसके एवज में मैं उसे हमेशा कैंटीन में ले जाता। जब मेस का बिल हर एक पर पैंतीस रुपये तीन आने आठ पाई बैठता तो मैं उसे कहता, बहनचोद यह क्या परेशानी है? पैंतीस रुपये चार आने क्यों नहीं कर देते? चार-चार पाई तुम रख लो अपनी मेहनत के। फिर वह पैंतीस रुपये चार आने के हिसाब से बिल फाड़ता।

इसके अलावा वह मेरे लिखे ट्यूटोरियल अपनी लिखावट बदलकर पूरे कर लेता और खुद क्लास में दे आता। बाद में मुझे बता देता। एक बार तो मेरा ट्यूटोरियल खुद लिख डाला था। तब से मुझे लगा कि अब ज़रा पढ़ाई की तरफ ध्यान देना ज़रूरी है। तब मैंने वही ट्यूटोरियल फिर से लिखा और सर को दे दिया। तब हमारे सर, महीने भर तक पूछताछ करते रहे कि यह पांडुरंग सांगवीकर कौन है? लेकिन मैं क्लास में तो था ही नहीं सो मेरी क्या फजीहत

होने वाली थी ?

उस वक़्त हमारे गैदरिंग चल रहे थे। पढ़ाई तो जनवरी के बाद ही शुरू करने का निश्चय जब किया था तो फिर क्लास में ज्यादा ध्यान क्योंकर लगता ? और कभी संयोग से अगर क्लास में चला भी जाता तो पिछली बार गैर-हाजिर रहने के कारण कहां क्या चल रहा है, इसकी कड़ी कभी नहीं बैठती। और फिर जिसे सिर्फ घर पर रहकर एक महीने में पूरा किया जा सकता है, उसे साल भर तक सुनते रहने की परेशानी कौन उठाये ? सच पूछो तो सिर्फ पढ़ाई के लिए पूना में पूरा साल गुज़ारने की ज़रूरत ही क्या है ?

यह मुद्दा ज्यादा मूलभूत है। लेकिन प्रेज़ेंट लगवाने के लिए क्लास में बैठना ज़रूरी था। बड़ी बोरियत होती।

बोरियत तोड़ने की हमने एक तरकीब ढूंढ़ निकाली थी। चह्वाण, भारंबे, भंडारदरे, देशपांडे आदि पीछे की कतार में बैठने वाले सब लोगों को यह तरकीब बड़ी पसंद आयी थी। किसी लोकप्रिय कविता की पंक्तियां कागज पर लिखकर उसे सबके पास घुमाया जाता। जो लड़का उस कविता पर सबसे अच्छी पैरोडी लिख भेजता उसे मैं चाय पिलाता।

इसलिए कई लोकल विद्यार्थी पीछे बैठकर बड़ी कोशिशों से पैरोडियां तैयार करते। तांबे, मधु वगैरा लोग आगे बैठते। लेकिन अचरज की बात यह थी, आगे वालों के मुकाबले पीछे बैठने वालों में काफ़ी लोग पैरोडियां बनाने में कुशल दिखायी पड़े।

लेकिन धीरे-धीरे इस शरारत की हद हो गयी। सर ने हमें बाहर निकल जाने का आदेश दिया। पीछे वाली खिड़की फांदकर बाहर निकल गया। बाद में मुझे पता लगा कि सर मुझे पुकारकर कह रहे थे—बाहर निकलने का वह रास्ता नहीं है, इधर दरवाज़े से निकल जाओ। काफ़ी ऊंचाई से नीचे कूदना पड़ा था। बाद में मुझे बुरा लगा।

सच पूछो तो प्रोफेसरों की विद्वत्ता के बारे में मैंने जो धारणाएं शुरुआत में बना ली थीं, एक या दो को छोड़कर बाकियों के बारे में गलत निकलीं थीं।

संस्कृत के एक विद्वान प्रोफेसर श्लोकों को तर्ज़ पर पढ़ लेने के बाद कहते, यह श्लोक बड़ा सुंदर है। आगेवाला इससे भी आसान है। और फिर एकदम आगे बढ़ जाते। बड़े भले आदमी थे। अब बताइए, सच्चा विद्वान क्योंकर किसी श्लोक का विश्लेषण करने में समय गंवायेगा ?

दूसरे एक विद्वान प्रोफेसर मराठी पढ़ाते थे। सेहत से बड़े कमज़ोर। पढ़ाने में उन्हें बिलकुल उत्साह नहीं था। वो कहते, अरे भाई अब तुम लोग इंटर में आ

गये हो। अब भैया भला इस कविता में पढ़ाने जैसी कौन-सी बात है ? वगैरा। अध्यापन करने वाला आदमी जब सिर्फ अध्यापन ही की बात करे तो समझ लेना चाहिए कि वह शख्स बड़ा महान है।

इन सभी में तर्कशास्त्र पढ़ाने वाले सज्जन बड़े दुष्ट थे। वो इतने ज़ोर-ज़ोर से पढ़ाते कि ऊंघना मुश्किल हो जाता।

दूसरे एक प्रोफेसर थे जो पहले मास्टरी किया करते थे, एकस्टर्नल परीक्षाएं देते-देते आगे बढ़ते गये थे। और धीरे-धीरे सीढ़ियां चढ़ते हुए इस बहुमान तक पहुंच कर रुक गये थे। क्योंकि अब उनकी उम्र हो चुकी थी, वरना ये साहब निश्चित रूप से आगे बढ़ते-बढ़ते यू० एन० ओ० के अध्यक्ष बन गये होते। इनके सब काम बड़े ढंग के होते। जब पढ़ाते तो यह भी देखते कि लड़के उनकी बात नोट कर रहे हैं ? इसकी जांच करने के लिए खुद विद्यार्थियों के बीच सारी क्लास घूमते रहते। किसी के पास अगर कलम न हो तो उसे अपना कलम पकड़ा देते। एक बार किसी ने उनका कलम लौटाया ही नहीं। तब वे पूरी क्लास में टटोल आये। और किसी विद्यार्थी का ठीक वैसा ही कलम हथिया लिया।

लेकिन प्रोफेसर जैसा भी हो, क्लास में जब तक जोग सरीखा सहनशील एक भी विद्यार्थी टिका रहता है, तब तक किसी को शरारत करने का नैतिक हक नहीं होना चाहिए। इसलिए तो अंत में मैंने तोबा-तोबा कर ली।

यह बदकिस्मती थी हमारी कि होस्टल के सांस्कृतिक कार्यक्रमों में मनोरंजन के साथ हर हफ्ते कोई बौद्धिक कार्यक्रम रखना जरूरी कर दिया गया था। इसका पता मुझे बाद में चला। हमारे वार्डन ने मुझसे कहा था कि वैराइटी से तात्पर्य नाच-गाना नहीं होता। यह भी साल में कभी-कभी ज़रूर किया करो। लेकिन व्याख्यानों का आयोजन हमेशा होता रहना चाहिए।

वैराइटी कार्यक्रमों में मसरूफियत के कारण मैं वक्तृत्व-मंडल की तरफ खास ध्यान नहीं दे सका। पर कम-से-कम उद्घाटन वाली सभा में तो दो-चार वाक्य ठीक ढंग से बोलने आने चाहिए। और फिर उद्घाटन के दिन प्रिंसिपल साहब भी हाज़िर रहते हैं। कहीं उन्हें ऐसा न लगे कि यह आदमी वक्तृत्व-सभा का सेक्रेटरी है, फिर भी इससे ठीक ढंग से आभार का भाषण भी करते नहीं बनता। इसलिए सोचा, आभार वगैरा जैसे भाषणों का अभ्यास वैराइटी कार्यक्रमों में अपने-आप हो जायेगा। आगे कभी फुरसत से वक्तृत्व-सभा का उद्घाटन समारोह करेंगे तब किसी महान व्यक्ति को आमंत्रित करेंगे। और उस मौके पर बढ़िया भाषण करेंगे। इसलिए अगर इस समारोह को देर भी हो जाये, कोई कुछ नहीं कहेगा। लेकिन बोलने का अभ्यास पहले हो जाना चाहिए। वरना चुनाव

में जिनको हमने हराया था, वे लोग हमारी खिल्ली उड़ायेंगे । हम पर हंसेंगे ।

इसलिए मैंने वैराइटी की तरफ खास ध्यान देना शुरू किया था। फिर भी मेस के काम मधु संभाल लेता सो ठीक था। वरना सभी लड़कों के त्यागपत्र देने की नौबत आ सकती थी।

वैराइटी अर्थात व्याख्यानों के कार्यक्रमों का पूरा जिम्मा मुझ पर और लड़कियों की प्रतिनिधि के रूप में साठे नाम की लड़की पर था। लेकिन यह लड़की सिर्फ़ ऐन कार्यक्रमों के समय हाज़िर रहती और आभार का भाषण कर के ज़िम्मेदारी से मुक्त हो जाती। बाद में तो धीरे-धीरे उसने कार्यक्रमों के लिए हाजिर रहना भी बंद कर दिया था। तब मैं, मधु या इचलकरंजीकर को आभार का भाषण करने के लिए कहने लगा था।

धीरे-धीरे मैं इसका अभ्यास कर रहा था। सबसे पहले मैंने पूनावाली भाषा के कुछ लटके आत्मसात कर लिये। फिर भी एकाध बार गांव वाली बोली का ठाठ गलती से बीच में टपक ही पड़ता। तब मुझे बुरा लगता। मैंने अब निश्चय कर लिया था कि आभार का भाषण खुद ही करेंगे। जो होगा देखा जायगा। कुछ लटको का प्रयोग अगर गलत भी हो जाय तो क्या फ़र्क पड़ेगा? सभाओं के भाषणों में जहां ऐन मौके पर मराठी बोलना भी गड़बड़ा सकता है वहां पूना की बोली या गांव की बोली को याद रखना कैसे संभव है! इसलिए जैसे भी हो दो-चार वाक्य फटाफट बोल लेता। और फूलमालाएं, गुलदस्ते वगैरा तो पकड़ा ही देता। वाक्यों को मैं पहले से ही कंठस्थ कर लेता था। इसलिए श्रोताओं का विश्वास होता कि यह आदमी यूं ही वक्तृत्व-मंडल का सेक्रेटरी नहीं बनाया गया है।

इन सभाओं में जब मेरी सही-सही तारीफ़ होने लगी तब मुझे लगा, अब समय आ गया है कि वक्तृत्व-मंडल का उद्घाटन करवा लिया जाय।

मैंने पूना की ही एक मशहूर समाजशास्त्री महिला को उद्घाटन के लिए आमंत्रित किया। यह महिला थीं हमारे क्लास के देशपांडे की बुआ। इसलिए कहीं कोई दिक्कत नहीं हुई। समाज-शिक्षा और नारी जैसे मुश्किल विषय पर भी वह बहुत अच्छा बोलीं। और फिर जब पता चला कि इतनी बड़ी लेखिका आमंत्रित की गयी है तो हाल श्रोताओं से भर गया। इसलिए लगातार दो घंटे मेहनत करके कंठस्थ किया हुआ अपना भाषण में पाँच ही मिनटों में भूल गया।

लेकिन हमारी यह महान लेखिका भी तो वैसा भाषण कहाँ करती है? वह एक निबंध लिखकर लायी हैं। लिखा हुआ पढ़कर सुना रही हैं। पढ़ते-पढ़ते दुरुस्त भी कर रही हैं। उन्होंने तो स्पष्ट कह डाला था कि मेरा यह लेख कल ही

फलां-फलां लोकप्रिय मासिक पत्रिका में जाने वाला है।

तब तालियां अभी रुकी नहीं थीं, कि हम हड़बड़ाते हुए स्टेज पर। हाल बड़े बुरे थे। काफ़ी देर तक वैसा ही खड़ा रहा। किस्मत बलवान समझो, मेरा इस तरह खड़ा रहना श्रोताओं को मेरी विनोदी बुद्धि का करिश्मा लगा। क्योंकि अब तक पीछे वाले कुछ लोग तालियां बजा ही रहे थे। इस बीच मैंने खुद को साव-धान कर लिया। और बोलना शुरू किया।

बोलने के दौरान मुझे मां की याद आ जाने के कारण मैं थोड़ा-सा गड़बड़ा गया।

मैंने यूं ही कुछ वाक्य कहे थे —

हर नारी अगर आज की अतिथि महोदया के कथन के अनुसार बर्ताव करने लगेगी तो दुनिया में युद्ध होने वंद हो जायेंगे।

इस पर श्रोता हंस पड़े। इस पर मेरा हौसला और बढ़ा।

मैं कहना चाह रहा हूं कि परंपरागत आभार-प्रदर्शन की अपेक्षा कुछ ज्यादा आभार मुझे व्यक्त करने हैं। इसलिए मैं उनका आभारी हूं।

सच पूछो तो मैंने यह सब हड़बड़ाते-हड़बड़ाते निपट लिया था। और रटे हुए भाषण की जो भी पंक्तियां स्मरण हो आयीं उन्हें पढ़ने के लहजे में कह डाला था।

सब लोग इस पर भी हंसे। इस वक्त मुझे चाहिए था कि श्रोताओं के इस प्रतिसाद का मुस्कराकर जवाब देता। उन्हें बता देता कि मैं भी विनोद वृत्ति का धनी हूं। पर मैंने अवसर खो दिया। उलटे मैं कुछ शरमा गया और मेरी हिम्मत पस्त हो गयी। मैंने आगे कहा—हमारे अध्यक्ष महोदय यहां पधारे इसलिए उनके आभार मानने ज़रूरी हैं। इस वाक्य के साथ तो मैं पूरा साफ हो गया। अध्यक्ष खुद प्रिंसिपल साहब थे।

तब से निश्चय कर लिया कि जब कभी बोलने का अवसर मिलता है, आत्म-विश्वास को डिगने नहीं देना होगा। इतना भर संभल जाय तो काफ़ी है। इसके बाद वक्तृत्व-मंडल का काम मैंने लेले नाम की लड़की पर, जो इसमें मुझे सहा-यता कर रही थी, सौंपकर एक महीने तक उस काम से छुट्टी पा ली। उद्घाटन समारोह जब समाप्त हुआ था, लेले मुख्य अतिथि की उपस्थिति में मुझसे कह रही थी, क्या आपका यह पहला ही मौका है? फिर भी आप ठीक ही बोले।

यह बात मुझे बहुत ज्यादा लगी! सबके सामने मुझे इस तरह क्यों अपमानित किया जा रहा है? इसका अपना वक्तृत्व पता नहीं कैसे होगा? बढ़िया तो निश्चय ही नहीं हो सकता। क्योंकि इसे भी तो सेक्रेटरी चुना गया है। पर मान

लो अगर बढ़िया भी है, फिर भी दूसरों को लेकर इस तरह की बदतमीज़ी क्यों ? ये लोग तो बचपन से ही बढ़िया संस्कारों में पले हैं। इसके विपरीत हमें इससे वंचित रहना पड़ा है। मन में निश्चय किया कि खूब परिश्रम करेंगे और पूरी तैयारियों के साथ इस लड़की को परास्त करके ही रहेंगे। वरना नाम के पांडुरंग क्या हुए ?

सिर्फ इसी सोच में एक महीना गुज़र गया, और बदला लेने की भावना से ग्रस्त मैं फिर से कार्यक्रमों के लिए हाज़िर रहने लगा। इस बीच लेले ने वाद-विवाद की दो सभाएं आयोजित की थीं। एक सभा में मैं हाज़िर तो रहा, लेकिन तबीयत ठीक न होने का बहाना करके उसमें हिस्सा नहीं लिया। मुझे तब उसका वक्तृत्व सुनने का मौका मिला था। वह बहुत अच्छा बोली। फिर भी पढ़ंत। रटारटाया-सा।

उसके बाद प्रिंसिपल साहब की सूचना के अनुसार उन्हीं के परिचित किसी गांधीवादी नेता का व्याख्यान रखा गया था। इस बार भी श्रोतागण बहुत बड़ी तादाद में जमा हुए। तब भी पहले ही से रटा हुआ भाषण मैं फिर से भूल गया था। लेकिन अब की बार आत्मविश्वास को टूटने नहीं दिया था।

शुरुआत में ही लेले बड़े गर्व के साथ अतिथि का परिचय कराने के लिए मंच पर पहुंची। उस समय एक बड़ा भारी मज़ाक हुआ। इसके लिए जिम्मेदार थे स्वयं हमारे अतिथि महोदय—गांधीवादी नेता। प्रिंसिपल साहब की सूचनाओं के अनुसार गांधीवादी नेता के सम्मान को शोभा दे, इसलिए भारतीय बैठक का प्रबंध किया गया था। हमेशा की तरह मंच पर टेबिल-कुर्सियों वाला प्रबंध नहीं था। इस स्थिति में लेले तो निश्चित रूप से गड़बड़ाने वाली ही थी। उसे बैठकर माइक पर बोलना पड़ा था। मज़ाक यहीं से शुरू हुआ था। उन्होंने शुरुआत की, बड़ी लगन से काम करने वाले नेता का परिचय करा देने के लिए आज मैं खड़ी हूं।

और पट्ठी तो बैठी हुई थी।

तब लोग हंसे। मैंने तो कमाल का ठहाका लगाया। लोगों के हंसने की वजह जब उसकी समझ में आयी तो वह पूरी तरह झेंप गयी।

और लगन से काम करने वाले वो गांधीवादी नेता भी हंस पड़े। अब तो उसका वह साहसपूर्ण गर्व एक झटके के साथ समाप्त हो गया। शरम के मारे उसका चेहरा लाल हो गया था। वह मंच से नीचे उतर आयी। मेरे साथ एक बात बड़ी अच्छी थी, कि मैं इतना काला हूं कि लाल पड़ ही नहीं सकता।

इसके बाद मुख्य अतिथि का भाषण शुरू हुआ। इस बीच मैंने अपना आभार

वाला भाषण तैयार कर लिया। लेले ने जो गलती की थी वह मेरे पक्के खयाल में थी। इसलिए मैंने कहा, अब मैं आभार व्यक्त करने के लिए बैठा हूं।

इस पर भी हंसी की लहर फूटी।

आभार व्यक्त करने के लिए बैठना, इस प्रकार का कोई मुहावरा मराठी में नहीं है। पर कइयों को लगा कि यह लेले पर कसी गयी ठिठोली है। तब मुझे बहुत खुशी हुई। वाह ! वाह ! खुशी के उत्साह में मैंने उससे कहा, तुमने इस तरह भाषण जब तैयार ही किया था, तो तुम्हें माईक पर खड़े होकर ही बोलना चाहिए था।

तो उसने कहा, नानसेंस।

इसके बाद के वाद-विवादों की प्रत्येक सभा के लिए मैं हाज़िर रहता।

इस वक्त यूनिवर्सिटी की तरफ से एक नोटिस निकला। जो लोग अहिंदी-भाषी हैं उनके लिए हिंदी वक्तृत्व प्रतियोगिता का आयोजन दिल्ली में होने जा रहा था। प्रत्येक कॉलेज से एक लड़का और एक लड़की। इस तरह दो नाम यूनिवर्सिटी को भेजने थे। उनमें से फिर चुनकर यूनिवर्सिटी की तरफ से एक लड़का और एक लड़की, दो ही नाम दिल्ली भेजे जाने थे।

प्रिंसिपल ने कहा, हमारे कॉलेज से दोनों का चुनाव अच्छा होना चाहिए।

लड़का तो मिल गया। लेकिन लड़की ढंग की मिल नहीं रही थी।

आखिर साठे ने होस्टल की एक लड़की का नाम सुझाया। कहने लगी, जबलपुर की है। हिंदी अच्छी बोलती है।

मैं वहां पहुंच गया।

कहा, आप जबलपुर के तरफ की हैं ?

जी हां।

अहिंदी-भाषी लड़कियों में से हिंदी वक्तृत्व प्रतियोगिता के लिए एक लड़की का चुनाव करना है। यूनिवर्सिटी को यह नाम भेजना है। आप हिंदी में ठीक ढंग से बोल सकोगी ?

क्यों ?

मतलब यह कि कॉलेज की तरफ से किसी को तो भिजवाना ही है।

वह अपनी स्कूली शिक्षा के बाद वक्तृत्व वगैरा जैसे पचड़ों में कभी पड़ी ही नहीं थी।

लेकिन मैंने कहा, तुम अपना नाम ज़रूर देना, ठीक है ?

उसने कहा, ठीक है।

बाद में मुझे याद आया। यह तो रमी थी।

बरसात के दिन। किसी किले की सैर। यह काफ़ी पीछे। किसी सीढ़ी पर खड़ी। हज़ारों सीढ़ियां। चारों तरफ घास। नीचे सिर्फ़ पेड़। यानी घाटियां। इसकी अपनी चप्पलें हाथों में। कीचड़ में लथपथ, इसलिए भारी। यह क्लास में भी शांत रहती। कभी नोट्स नहीं लेती। कभी वाहियात नहीं। बहुत सीधी। मैं पीछे रह गया, वह आगे। पैदल चलने के कारण उसके तलुवे गहरे लाल। लेकिन उसका चलना बड़ा धीमे-धीमे। बाद में किले पर हमेशा की तरह टहलना। खेलना-खाना वगैरा।

एक कार्यक्रम के लिए कोई महान सज्जन आमंत्रित किये गये थे। बहुत कम लड़के इक्टठे हुए थे। लड़की तो एक भी नहीं।

मैं लड़कों को बुला लाने के लिए होस्टल हो आया। साठे को लड़कियों के होस्टल भेजा।

अतिथि महोदय कहने लगे, लोगों को जमा हो जाने दीजिए।

साठे जो गयी सो गयी।

मैंने लड़कियों की तरफ भी एक चक्कर लगाया।

साठे पांच-दस लड़कियों को घेरकर इधर ही आ रही थी।

मैंने कहा, सेक्रेटरी बड़े परेशान हैं। लोग जमा होते ही नहीं।

रमी ने कहा, इसमें सेक्रेटरी को इतना परेशान होने की क्या बात है ?

सही भी तो है। उसकी राय ठीक लगी।

फिर उसने कहा, क्लास में सप्ताह भर से आपके नाम की पुकार हो रही है। आप आते क्यों नहीं ?

साठे ने कहा, इनका तो इन्हीं झमेलों में समय चला जाता है।

रमी ने पूछा, क्लास में पीछे वाली सीटों पर हमेशा इतना शोर-शराबा क्यों होता रहता है ? और फिर आपकी उपस्थिति में तो निश्चय ही होता है।

मैंने कहा, हम लोग लड़कियों पर पैरोडियां लिख-लिखकर एक-दूसरे को दिखाते रहते हैं। यह कोई नयी बात थोड़े ही है।

वाद-विवादों की सभाओं में जो लोग अकसर हिस्सा लिया करते थे उनमें अकेला मैं ही घटिया नहीं था। इस मामले में कई लोग मुझसे बाज़ी मार ले गये थे। अल्प-संख्यकों की समस्या — विषय पर बहस रखी गयी थी। इसमें हिस्सा लेने वाले एक साहब स्टेज पर आये। और सिर्फ इतना ही कहा कि आज मैंने तैयारी नहीं की है। इस लड़के जैसा वक्ता मैंने अब तक नहीं देखा था।

लेकिन जब मेरी बारी आती और ज्यों ही मैं खड़ा होता, नियमित रूप से मुझे क्रोध लाने वाली स्थिति पैदा की जाती। मेरी वह नालायक सहायक लड़की और जिसे मैंने चुनाव में हराया था वह लड़का, उन दोनों में प्यार था। वास्तव में ये दोनों सेक्रेटरी बनना चाहते थे। पर मैंने उनका यह इरादा मिट्टी में मिला दिया था। इसलिए वे दोनों पीछे की कतारों में बैठते और मुझ पर कमेंट किया करते। इसलिए उनके और शरारती साथी ज़ोर-ज़ोर से हंस कर मेरा हौसला पस्त करते।

मैंने सोचा कि वक्तृत्व मंडल के सक्रेटरी जब हम खुद ही हैं तो हमारा ही फर्ज़ है कि इसमें सुधार करें। इसलिए मैं अगले दिन सुबह-सुबह प्रिंसिपल साहब के घर पहुंचा। उनसे भेंट की और इस सम्बन्ध में अपने विचार उनके सामने रखे।

वक्तृत्व कला प्रोत्साहित करना हमारे मंडल का फर्ज़ है। इसलिए जरूरी है कि श्रोता सिर्फ़ सुनने का काम न करें। बहस में हिस्सा लें। चंद बोलने का अभ्यास करें। इसका परिणाम यह होगा कि धीरे-धीरे श्रोतागण भी इस कला में माहिर होते चले जायेंगे। इसका एक और अच्छा परिणाम यह होगा कि जो लोग सिर्फ वक्ताओं का मजाक उड़ाने के लिए जमा हुआ करते हैं, उनकी संख्या घटती जायगी जिससे सभा में भाषण करने वाले भयमुक्त हो कर, खुलकर बोल सकेंगे। आपको मेरे विचार कैसे लगे ?

उन्होंने कहा, इसे तुम अपनी जगह सोच लो। लेकिन मैंने सुना है, इस साल वक्तृत्व मंडल ठीक ढंग से चल नहीं रहा है।

इसके बाद मुझे उन्होंने चाय पिलायी और पूछा, पढ़ाई कैसे चल रही है ?

मैंने एक नोटिस लगवाया। लिखा था, हर श्रोता का बहस में हिस्सा लेना जरूरी है। परिणाम यह हुआ कि, इसके बाद से मेरा मजाक उड़ाने वालों की संख्या घट गयी। अब सभाओं में जितने उपस्थित रहते उनमें से पंद्रह-बीस लोग तो जरूर बोलते। बाद में धीरे-धीरे इसमें खास दिलचस्पी रखने वाले लोग ही उपस्थिति रहने लगे थे। अब तो लेले भी मेरा लोहा मानने लगी थी।

लेकिन एक बार बडी भयंकर स्थिति पैदा हो गयी थी। उस दिन हम सभी को पता नहीं क्या हो गया था। विषय था 'युद्ध और विश्वशांति'। आठ-दस लोग उपस्थित थे। अध्यक्षता कर रहे थे प्रोफेसर शाह। शुरुआत में उन्होंने विषय का प्रस्ताव किया। सबसे पहले उन्होंने मुझे बोलने के लिए आमंत्रित किया।

मैंने शुरुआत की और एकाएक उधर कहीं या शायद मुझ ही से—शोर की एक लहर उठी।

एक वाक्य खत्म हुआ, कि मैं हंसने लगता या सब लोग हंसने लगते।

क्या थी इसकी वजह, प्रोफेसर शाह भी ढूंढ़ नहीं सके। कहीं बोलने वाला अपना मुंह तो नहीं बना रहा है, इसकी पड़ताल करने के लिए उन्होंने अपनी कुर्सी एक तरफ खिसकायी और देखा। लेकिन बोलनेवाले सभी के सभी ऐसा क्यों कर करेंगे ?

उदाहरणार्थ, मैंने शुरुआत की—आजकल समूचे संसार को भयानक स्थितियों में गुजरना पड़ रहा है।

कितना गोलमाल वाक्य मैं बोल गया। इसलिए मैं मन-ही-मन हंसा। पर सभी लोग इस तरह मन-ही-मन हंसते-से रहे।

उसके बाद मैंने कहा, हमारे उपनिषद ज्ञान के भंडार है।

हंसी।

उनमें 'सर्वेङत्र सुखिन: संतु' कहा गया है।

हंसी।

राष्ट्रों के बीच आपसी भावनात्मक संबंध बढ़ने चाहिए। मानव-जाति की मुक्ति के लिए इसके अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं है।

हंसी।

देश-भक्ति यह पाप है।

हंसी।

सभी वाक्यों पर सब लोग हंसते। मैं भी हंसता। मेरे बाद चार-पांच लोग और बोले। लेकिन प्रत्येक वाक्य के साथ बोलने वाला भी हंसता और सुनने वाले तो हंसने के लिए ही जैसे तैयार हों। हर वक्ता दो वाक्यों के बीच रुकता। इसलिए कि हंसने के लिए समय मिले। उसके रुक जाने के बाद सामने वाले लोग इसलिए भी हंसते कि वक्ता उन्हें हंसने के लिए खास अवसर दे रहा है।

संसार में रूस और अमेरिका, ये दो शक्तिशाली राष्ट्र हैं। गांधीजी ने जिस महान विरसे को। गौतम बुद्ध को ही देखिए। विचार करने की क्षमता सिर्फ इंसान के पास है। अब अगर सारा माहौल इसी तरह बन गया हो। बोलने वाले के हर बयान को मजाक के अतिरिक्त और किसी भी ढंग से न लिया जाय तो फिर बताइए, शोर के अलावा और क्या हो सकता है ?

क्या सभी ने सोच लिया था कि हर वाक्य मजाकिया ही होना चाहिए। या कि वक्तृत्व का मतलब ही होता है, मजाकिया बयानों का जोड़। (सिर्फ बीच-बीच में जहां वक्ता रुक जाता है वही अपवाद)

अध्यक्ष महोदय ने ज़ोर से अपनी कुर्सी खिसकायी। तैश में आकर कहा,

अगर तुम लोग इसलिए यहां आते हो, तब तो इससे अच्छा है, कि मंडल को बरखास्त कर दिया जाय। मैं प्रिंसिपल साहब को यही राय दूंगा।

मैंने तुरंत अपनी सफाई देने की कोशिश की। मैंने कहा, हम लोगों से यह जो कुछ भी हुआ उसके पीछे कोई षड्यंत्र नहीं था। संभवतः प्रत्येक वक्ता को एहसास हुआ होगा कि वह खुद पर जबरदस्ती कर रहा है। परिणामतः हर कोई मजाक के स्तर पर अपने-आप फिसल गया होगा। जब सभी इसी स्थिति में उतर आये होंगे तो जाहिर है, सबकी संवेदनाएं समान सतह पर आ गयीं। वगैरा-वगैरा।

लेकिन फिर भी बाद में प्रिंसिपल साहब ने मुझे फटकारा था तब मैंने कहा, इस मंडल के लिए हमने साल भर इतनी मेहनत की, वह सब आखिर बेकार गयी।

इसके बाद से मंडल लेले को सौंपकर मैंने छुट्टी पा ली। केवल आखिरी कार्यक्रम के दिन एक बार मैं वहां गया।

हिंदी प्रतियोगिता के संदर्भ में रमी को केवल एक बार यूनिवर्सिटी तक ले जाने का मौका मिला था। वहां सभी कॉलेजों के लड़कों में अकेली रमी बहुत अच्छा बोली थी।

कार्यक्रम खत्म होने पर मैंने पूछा, टैक्सी ली जाय।

उसने कहा, शाम की सैर भी होगी। पैदल ठीक है।

ठीक है, पैदल सही।

टैक्सी के कितने लगते ?

यही कोई दो रुपये। पैसा कॉलेज देता है।

तब फिर क्यों न हम उन पैसों को एग्रीकलचर कॉलेज वाली कैंटीन में खर्च कर डालें ?

उसने सिर्फ अंगूर खाये थे। फिर गन्ने का रस। बर्फ वाला रस उसने वापस किया था।

उसका चुनाव हुआ है। मतलब वह दिल्ली जायेगी।

उसने कहा, मुझे दिल्ली तक का खर्चा वाया नागपुर मिलना चाहिए।

मैंने यूनिवर्सिटी को लिखा, पर यूनिवर्सिटी ने इसे मंजूर नहीं किया। तब वह नहीं गयी।

मैंने कहा, वाया नागपुर ही क्यों ?

उसने कहा, यूं ही।

तब मैंने साठे से जानकारी ली। पता चला कि उसे फेफड़ों की कोई बीमारी

है। अॅटॅक आने पर वह खुद अपने हाथ से इंजेक्शन लगा लेती है। घंटों लेटी रहती है। दूसरे रास्ते से दिल्ली जाते वक्त रेगिस्तानी इलाके से गुजरना पड़ेगा। मतलब फिर फेफड़े—और फिर परेशानी।

तो वक्तृत्व वाले मामले इस तरह समाप्त हुए।

फिर भी क्लास की उपस्थिति नियमित नहीं हो पायी, क्योंकि होस्टल की वैराइटी वाला मामला अब भी चल ही रहा था। मतलब, मनोरंजन के विविध प्रोग्राम वगैरा।

कोई पीरियड नहीं हुआ था। सब लोग बिखर गये थे। अगली क्लास तक मटरगश्ती का मौका मिल गया था। मैं ट्यूटोरियल लिखने बैठा। पांच-दस लड़कियां क्लास में शरारत कर रही थीं।

मैंने रमी से कहा, इससे तो अच्छा, कि कोई गीत हो जाय।

तब किसी ने मराठी गीत गाया।

बगलवाली क्लास के प्रोफेसर ने दरवाज़े तक आकर कहा, स्टाप दैट।

फिर हम सब लोग क्लास के बाहर।

रमी ने कहा, चलो ठीक ही हुआ। गीत भी तो इसी लायक था। बहुत ठीक कहा था उसने।

होस्टल के कार्यक्रमों में मैंने गलती से भी टालमटोल नहीं की।

लेकिन यहां भी क्या कम परेशानी थी ? वक्ता समय पर आ जाते, पर वहां एक भी श्रोता नहीं होता। फिर धीरे-धीरे एक-एक करके लोग जमा होने लगते और अंत में सभा जम जाती। तब फिर लड़कियों को इकट्ठा करने का काम मेरे जिम्मे। होस्टल के लगातार चक्कर लगाकर—चलिए, चलिए, क्यों भाई क्या हुआ, तुम्हारे बिना कैसे होगा, इस तरह रट लगानी पड़ती।

आठ-दस श्रोता भी हाजिर क्यों न हों, कुछ वक्ता बड़ी गंभीरता से बोलते।

लेकिन पूना के अधिकांश बड़े लेखक तथा नेता श्रोताओं की अच्छी-खासी संख्या के वगैर अपने महान विचार व्यक्त नहीं कर सकते थे।

खुशकिस्मती से पूना में इतने बड़े-बड़े लोग थे कि वार्डन साहब के आदर्श और हमारे परिश्रम कहीं कम पड़ने लगे थे। सप्ताह के या हर पखवाड़े के कार्यक्रमों के लिए हर बार नया-नया बड़ा व्यक्ति मिल ही जाता। इस बहाने मेरा कई बड़े व्यक्तियों से निकट का परिचय हुआ। उन लोगों से बात करने का मौका मिला, जिन महान व्यक्तियों के नाम मैं सिर्फ किताबों में ही पढ़ा करता था।

उनके मकानों का भी परिचय मुझे हुआ। उनके घर किताबों की अलमारियों और दीवारों के चित्रों को भी करीब से मैं देख सका।

ये सब महानुभाव बातचीत में बड़े विनयशील। दिन बड़े जल्दी-जल्दी गुजर गये। सच पूछो तो यह दौर सभी को अभिभूत कर देने वाला दौर था। ध्वजारोहण जैसा छोटा-सा कार्यक्रम ही क्यों न हो, कोई ख्याति-प्राप्त व्यक्ति आता और सामान्य-सा संदेश दे जाता और हम लोग अभिभूत हो जाते। कोई व्याख्याता जब यह कहता कि तुम जैसे उच्च-शिक्षितों से देश को बड़ी अपेक्षाएं हैं, तब आम लोगों की यह धारणा कि बी० ए० कर लेने के बाद दफ्तरों में बाबू की नौकरी भी मिलनी मुश्किल हो जाती है, हमें बिलकुल गलत लगती।

लेकिन पूना में महान व्यक्तियों की कोई कमी नहीं। हां, उनसे संदेश लेने वाले लोग जरूर चाहिए।

जलसे, सैरसपाटे, दूसरों से लगातार संपर्क वगैरा के कारण मैं पहले की तरह कमरे में घुसकर भविष्य के बारे में सोचता रहने वाला बेवकूफ नहीं रहा था। हां, रात देर से सोने की आदत पहले की तरह जारी रही। वैसे भी इन दिनों रात के समय कमरे में वाद-विवादों की महफिलें जमती रहती तथा पहाड़ियों पर सैर के कार्यक्रम बरकरार रहे। कभी-कभी तो बहसों में पूरी रात निकल जाती।

सुबह होते ही हम लोग सीधे पी०टी० के लिए ग्राउंड पर चले आते।

तमाम रात जागते रहने तथा व्यायामों के कारण थककर सुबह के नौ-दस बजते ही मैं सो जाता और दोपहर में मेस बंद होने के पहले जैसे-तैसे उठ जाता। कभी-कभी रात में तीन-चार बजे बहसें समाप्त होतीं। लेकिन रात बाकी रहती। तब इस करुण स्थिति का सामना करने के लिए मैं रात ही में दांत वगैरा मांज लेता और पी० टी० का ड्रेस चढ़ाकर सो जाता। सुबह ऐन वक्त पर उठकर सिर्फ जूते पहनकर एक मिनट में ग्राउंड पर। इस तरह नींद खुलने पर पी० टी० की तैयारी के लिए जो कष्ट हुए होते वो टल जाते।

लेकिन फिर भी शरारतों, बदमाशियों के लिए उत्साह वगैरा बना रहा था। आगे-आगे इनकी हद हो गयी।

फिर गैदरिंग आये। हमारे जिम्मे वैरायटी एंटरटेंमेंट और फिर प्रिलिमनरी एग्जाम।

त्रैमासिक परीक्षा के लिए तो मैं बैठा ही नहीं था। कॉलेज का पत्र घर पहुँच गया था। मुझे जब घर से चिट्ठी मिली तो मैंने बीमारी का बहाना लिख भेजा जिससे कॉलेज की शिकायत से मुक्त हो सका था। पर छमाही परीक्षा में जितने

विषयों में बैठा था, उन सब में पास हो गया। पता था कि इस संदर्भ में भी घर पर कॉलेज की चिट्ठी पहुंचेगी। इसलिए मैंने पहले ही घर पर पत्र लिख दिया था कि चूंकि मेरा अंग्रेजी मीडियम और वाष्र्णे साहेब खेर की पालिसी के कारण मैंने सिर्फ़ इतने ही विषय ठीक किये थे, शेष आगे। अब प्रिलिम के लिए क्या बहाना ढूंढ़ें ? या मेहनत करके प्रिलिम पास कर लें और वार्षिक परीक्षा का फॉर्म प्राप्त कर लें ? इन सब बातों पर सोच-विचार जारी था।

रात में बहसें, पहाड़ियों पर सैर, गप्पें, नोटिस लिखकर तैयार, मैस की निगरानी, और फिर दिन में अमुक-अमुक से मुलाकातें, लड़कियों के होस्टल जाकर पता करो कि कौन अच्छा गाना गाती है, कौन ढंग का नृत्य कर सकती है, फिर कार्य-क्रमों के लिए इन लड़कियों की मिन्नतें करो, अमुक महान लेखक महोदय से मुलाकात करो, उनसे कार्यक्रम का समय वगैरा तय करवा लो, फिर साठे को—वह अगर मिली तो—यह सब बता दो, फिर उसे लेने के लिए होस्टल जाओ, वापस पहुंचाओ, रिक्शा करो, टैक्सी ठहराओ, साइकिल मारो, नमस्कारों की लेन-देन करो, हर रोज़ रूटिन किस्म के नोटिस टाइप करवा लो, टाइपिस्ट के साथ गप्पे हांको, उसे चाय पिलाओ, नोटिस मैस में लगवाओ, होस्टल के नोटिस बोर्ड पर उन्हें चिपकाओ, प्रिंसिपल से मिलो, उनसे थोड़ी बातचीत करो, परचून के बिलों का भुगतान करने के लिए शहर जाओ, लौटती बार शिवाजी की प्रतिमा देखो, कल की सब्जी के लिए मैसवाले को हिदायत दो, रसोइये के हिसाब-किताब की जांच करो, मैस के बिल अदा न करने वालों की जांच करो, फिर उन्हें सख्त हिदायत दो, पैसे—कैंटीन हज़ारों-हज़ार लफड़े।

किसी को लगता होगा कि हमारे बाप ने हमें पूना जो भेजा है, सिर्फ़ इसलिए कि हम अपना बहुआयामी व्यक्तित्व पा सकें। इचलकरंजीकर ने कहा था, तुमसे इतना सब और वह भी अनायास कैसे क्या करते बनता है, बड़ा आश्चर्य होता है। पिछले साल तो बेलदारों की तरह अपने कमरे में पड़ा रहता था। सुरेश कहता, अरे साहब यह जनाब दिन भर इधर-उधर मटरगश्ती करते, चाय-कॉफी वसूलते घूमते रहते हैं। इसलिए तो इनकी सेहत बनी रहती है।

मुझे इधर पहले की तरह आत्मचिंतन वगैरा के लिए समय नहीं मिल रहा था। लेकिन जब भी कभी समय मिल जाता मैं भविष्य पर सोचने लगता। उस क्षण लगता, जो कुछ भी हम आज कर पा रहे हैं, क्या हमने कभी सोचा था कि हमसे यह सब बन पड़ेगा। बहुत खूब ! हम जिंदाबाद ! हममें जितना जोश है, शायद ही किसी में होगा। इंटर में ही जब हमारे सितारे इतने उरूज पर हैं, तो आगे क्या कहना ?

मतलब, हम कुछ कम नहीं।

गैदरिंग के संबंध में कोई अहम जानकारी देने के लिए दो लड़कियां मेरे कमरे पर आयीं। मैं कमरे में निकर और बनियान पहने बैठा था। दरवाजा बंद था। दस्तक सुनते ही मैं तड़का—इचल्या, क्यों परेशान कर रहे हो सालो !

और खामोश बैठा रहा।

फिर दस्तक हुई। दरवाज़ा खोलते हुए मैंने कहा, आओ भड़ुओ !

और फिर इतना झेंप गया था कि उन्हें जैसे-तैसे आइए, बस इतना ही कहते बना। पर स्थिति इससे भी खराब तब हुई जब वे दोनों पलंग पर बैठ गयीं और मैं सामने कुर्सी पर वैसे ही आधी निकर पहने बैठा था। शरम के मारे इधर-उधर की बातें करता रहा। रुक-रुककर अपनी टांगों की तरफ़ देखता रहा।

कॉलेज के बोर्ड पर लगवाने के लिए नोटिस उन्हें थमा दिया। वे चली गयीं। तब पलंग पर पड़ी पेंट पहनी और मद्रास होटल में नाश्ता करके लौट आया।

सोचा, यह होस्टल साला एक परेशानी है। यहां कपड़े बदलने, तैयार होने की कोई व्यवस्था नहीं। लेकिन हमें सोचना चाहिए था, ज़रा मधुर लहजे में उनसे प्रार्थना करते। कहते, ज़रा रुकिए। या और कोई बहाना सामने कर अपना पेंट उठा लेते। क्यों होती यह परेशानी ? आइंदा से पलंग के पीछे कभी कपड़े रखने नहीं चाहिए। हमें नंगे बदन देखकर उन्हें क्या लगा होगा ?

लेकिन इचल्या ने कहा, तो साहब आज से समझो, वो दोनों तुम पर फिदा हैं।

दूसरे दिन जब कॉलेज पहुंचा तो पता चला कि नोटिस लगवा दिया गया है। पर इस बात की जानकारी देते हुए उनमें से एक मुसकरा रही थी।

कुल मिलाकर इस तरह गैदरिंग खत्म हुए।

तो सुनो पांडवा, तुम गधे हो। मैंने तुम्हें पहले ही आगाह किया था कि जितना पोसाये उतना ही करना चाहिए। उस पूर्वज नामक एकांकी नाटक पर जब इतना ज्यादा खर्च आने वाला था तो उसे पहले ही रद्द क्यों नहीं किया ? गीतों के इतने रेकार्ड एक साथ ले आने की क्या ज़रूरत थी ? सब-के-सब रेकार्ड एक साथ बज रहे थे। ज़रूरत के मुताबिक रोज़ एक ले आते और तुरन्त वापस कर देते, तो तीस रुपये किराये पर खर्च नहीं होते। और फिर कैंटीन वाले के एकदम पचास रुपये ?

मैं घबरा गया। गैदरिंग का बजट था सात सौ रुपये। और मैं खर्च कर बैठा

था आठ सौ से ऊपर।

किसी ने कहा, सांगवीकर पैसे हड़प कर गया।

तब इचलकरंजीकर ने उसके एक घूंसा जड़ दिया। साले शास्त्रीय संगीत के दो-दो कार्यक्रम संपन्न हुए। दो नाटक देखने को मिले। सभी कार्यक्रम कितने ग्रेंड हुए। और साल भर व्याख्यानों का सिलसिला चल ही रहा था। फिर भी इस तरह उस पर इलज़ाम लगाते हो ?

सिर्फ़ घूंसे ने इस समस्या को हल कर दिया था।

मैंने इचलकरंजीकर से कहा, अब क्या होगा ?

उसने कहा, तुम प्रो० परांजपे से मिलो। उन्हें सब कुछ साफ-साफ बता देना।

मैंने सारा हिसाब ठीक किया और परांजपे साहब के यहां पहुंचा। वो नंग-धड़ंग बैठे थे।

मैंने कहा, आप से थोड़ी बात करनी है।

एक-दो मिनटों में निपटती हो तो कहिए।

ज़्यादा नहीं। दस-पंद्रह मिनट लगेंगे।

अरे साहब, स्नान का मेरा पानी पहले ही कुनकुना हो गया है।

तब तो पहले नहा लीजिए। मैं यहां रुकता हूं।

लेकिन इसके बाद तुरंत मेरी क्लास है। पर बात क्या है, बताइए तो।

मेरा बजट—बिल—

तो फिर परसों आइए। जल्दी क्या है ?

साहब, परसों तो मीटिंग रखी है।

वे उठ गये। मेरी तरफ पीठ करते हुए उन्होंने कहा, शाम को आइए।

मैं झुंझलाता हुआ कमरे पर लौट आया। दिन भर हिसाब के सभी आंकड़े बार-बार जांचता रहा। कभी गलती से कम जोड़ जाता, तो मुझे बड़ी खुशी होती। लेकिन फिर मिलान करने पर गलती मिल जाती।

मुझे सबसे ज़्यादा गुस्सा इचलकरंजीकर पर आया था। मधु मिलिंद इचलकरंजीकर। जनाब का वज़न डेढ़ सौ पौंड। साले ने खर्च के बारे में मुझे कभी सावधान नहीं किया। आज तो साहब एक लौंडिया के साथ गुलछर्रे उड़ाते दिखायी पड़े थे। और मैं हूं कि दो पाटों के बीच फंसा पड़ा हूं। सौ रुपये अतिरिक्त और ऊपर से पैसे हड़पने का आरोप। वास्तव में गैदरिंग के झमेले में मेरी अपनी जेब से करीब बीस-पच्चीस रुपये वैसे भी खर्च हो चुके थे। और अब अलग से सौ रुपये और अपनी जेब से भरने पड़ रहे हैं—घरवालों को क्या सफाई देंगे ?

और साली वह मारू विहाग या पता नहीं कौन-सा राग गानेवाली हरामखोर गायिका ? उसका गाना वैसे बहुत मामूली। लेकिन ढाई-सौ रुपये से नीचे नहीं उतरी। और वह पूर के पूरे बिस्कुट साफ करने वाले दिग्दर्शक महोदय। उन्हें शायद लगा होगा कि प्लेट में रखे, सब के सब बिस्कुट खाने पड़ते हैं। इसी को तहजीब कहते हैं !

हमसे भी गलतियां न हुई हों, सो नहीं । देशपांडे का आर्केस्ट्रा वैसे काफ़ी बढ़िया था। लेकिन सब लोगों को रोज़ दो-दो बार कॉफी किसलिए ? खैर छोड़िए इसे। पर वह साली। अपने घर प्रेक्टिस के लिए ग्रामोफ़ोन ले गयी और ऊपर से दो-तीन रेकार्ड तोड़ डाले। साले चारों तरफ हमें खड्डे में गाड़ने वाले लोग।

शाम को मैं गंदे कपड़े पहनकर परांजपे साहब के यहां पहुंचा। वे भीतर वाले कमरे में थे। मैं तस्में खोल रहा था कि उन्होंने कहा, मैं बाहर जा रहा हूं। रात वगैरा में आइए।

मैं खुले तस्में वैसे ही छोड़, सीढ़ियां उतर गया। एक जूते का तस्मा दूसरे में अटक जाने के कारण टांगें उलझ गयीं। और मैंने करीबन दस फीट लंबी छलांग लगायी और जैसे-तैसे अपना संतुलन संभालकर बाहर के दरवाज़े तक पहुंच गया।

परांजपे साहब पीछे से कह रहे थे, ज़रा दरवाज़े को भेड़ते जाइए।

मैंने बाहर का दरवाज़ा बंद किया, तब उन्होंने अंदर का भी दरवाज़ा बंद कर लिया।

फिर शाम तक मद्रास होटल में बैठा। मैं सिगरेट पीता रहा। बार-बार खर्च का ब्योरा जांच रहा था। शास्त्रीय गायन चार सौ, नाटक वगैरा दो सौ, वेरायटी सौ, कैंटीन पचास, टैक्सी वगैरा पच्चीस, और फिर फुटकर खर्च अलग। वहीं खाना खाकर करीब आठ बजे मैंने होटल छोड़ा। रास्ते में होस्टल के लड़के-लड़कियां। उनमें वह भी लड़की थी जो कार्यक्रमों की प्रेक्टिस में थोड़ी-थोड़ी देर से कॉफी मंगवाया करती। इसी लड़की के कारण बिल बढ़ गया था। और गीत पूछिए कौन-सा पेश किया तो, रहे न हाला प्याला साकी, तुझे मिलेगी मधुशाला। वगैरा। मधुशाला। बहनचोद।

मैं परांजपे साहब के यहां पहुंचा।

उनके सामने पूरा हिसाब रखा।

उन्होंने कहा, बिलकुल यही स्थिति पाछे एक बार···कब देखिए—हां, सन्

उन्नीस सौ अड़तीस में हुई थी ? मतलब यही मेरा जन्म-वर्ष।

कौन था देखिये उस वक्त सेक्रेटरी ? अभी-अभी कुछ दिन पहले मिला था।

बाद में उन्होंने काफ़ी देर तक उसका नाम याद करने की कोशिश की। मैंने सोचा, ये साहब उस आदमी का नाम क्यों याद करना चाह रहे हैं ? क्या उसने भी मेरी तरह बहुत ज़्यादा खर्च किया था। क्या प्रोफेसर साहब मुझे संकेत तो नहीं दे रहे थे कि मेरे समानधर्मा उस पुराने सेक्रेटरी से दोस्ती कर लूं ?

आख़िर सोचकर उन्होंने कहा, हां याद आया। वह केसकर था।

बाद में जब भी कभी किसी केसकर नामी आदमी से मुलाकात होती तो मुझे लगता, उसे पूछ लें, आप कभी इस कॉलेज में तो नहीं पढ़े थे ? गैदरिंग के बारे में क्या-क्या समस्याएं पैदा हुई थीं ?

बाल साफ करते हुए उन्होंने कहा, उस वक्त केसकर को ही अतिरिक्त खर्च अपने जिम्मे लेना पड़ा था। मैंने कहा, लेकिन मैं कतई नहीं भरूंगा। पहले ही मेरे खुद के करीबन पच्चीस रुपये खर्च हो चुके हैं।

तुम्हारे खुद के पैसे ? और गैदरिंग के लिए ? तुमने क्यों खर्च किये ? देखिये सांगवीकर, अपनी इस बेवकूफी को मेरे सामने कह डाला तो ठीक—मैं औरों की तरह शक्की आदमी नहीं हूं। लेकिन याद रखो, दूसरों के सामने इसे मत दोहराना। यह गलती फिर से करोगे तो लोग तो यही कहेंगे कि हिसाब में निश्चित ही कोई गड़बड़ है। मैं उन लोगों में से नहीं हूं। इसलिए कुछ नहीं कहता।

फिर वो अंदर गये। भूंजी हुई मुट्ठी भर मूंगफलियां लाकर मेरे सामने डालते हुए कहा, लीजिए, लीजिए।

उसके बाद मैंने हिसाब उनके सामने रखा। उन्होंने ठीक ढंग से जांचकर देखा।

नाटकों पर सौ रुपये ? यह कैसे ? पु० ल० देशपांडे दस रुपये ? एक एकांकी के ? निःशुल्क क्यों नहीं ? खैर, रसीद कहां है ? ठीक है। दूसरा एक नाटक तीस रुपये ? साठे वाला ? खैर, रसीद ? तुरंत ले आओ। हां, बिलकुल ज़रूरी है। टैक्सी के लिए कुल तीस रुपये ? किस के लिए ? टैक्सी से क्यों ? वह क्या इतना बड़ा दिग्दर्शक है ? बस भी चल सकती थी। खैर ठीक है। पर अन्य खर्च—बिल कहां है ? ड्रेपरी पचास ? यह देखिये सांगवीकर, बजट अगर ठीक-ठाक होता तो कोई बात नहीं थी। लेकिन जब खर्च इतना ज़्यादा हो गया है तब तो तुम्हें चाहिए था कि बस के टिकट भी यहां जोड़ते।

इसी ढंग से उन्होंने मेरे हिसाब जांचे। फिर मूंगफली खाते-खाते मेरी आलोचना करते हुए उन्होंने कहा, मि० पांडुरंग सांगवीकर, यह तो सब ठीक है। लेकिन मैं कहूंगा, तुम बिलकुल अव्यावहारिक आदमी हो। अभी तो इंटर ही पढ़ रहे हो। अभी से इतने सारे झमेले मोल लेने के लिए तुम्हें किसने दावत दी थी ?

देखते हैं, मीटिंग में क्या फैसला होता है। मैं तुम्हारे लिए कुछ-न-कुछ ज़रूर करूंगा।

थैंकयू।

अपने से कोई बदतमीज़ी न हो इसलिए मैंने सिर्फ़ पांच-छः मूंगफलियां ही खायी थीं। लेकिन छिलके सब उठाये और उनसे पूछा, कहां फेंकूं?

उन्होंने हंसकर कहा, वहीं रहने दीजिए।

मैंने छिलके फिर से टेबिल पर एहतियात से रख दिये।

कमरे पर आकर इचलकरंजीकर का इंतज़ार करता रहा। लेकिन जनाब आज जल्दी आनेवाले थोड़े ही हैं। मैं वक्त काटने के लिए सुरेश, तांबे, मधु—इन सब के कमरों पर हो आया। सभी लोग पढ़ाई में व्यस्त थे।

मधु ने कहा, देख रहा हूं, कल से तुम किसी झमेले में फंस गये हो?

कुछ नहीं साला बजट से ज्यादा खर्च हो गया है। बोर हो गया हूं। दो दिन में मामला निपट गया कि हम भी फिर पढ़ाई में।

मेरा हुलिया वगैरा देखकर मधु ज़ोर-ज़ोर से हंसने लगा। कहने लगा, बच्चम जी, अकलमंद हो तो यह घुमक्कड़ी खत्म करो। अपनी जेब से सौ रुपये भर के छुट्टी कर लो। और चैन से पढ़ाई में लग जाओ। बचे हैं सिर्फ़ दो महीने।

फिर हम दोनों में बड़ी गरमा-गरम बहस हुई। उसने कहा, औसत किस्म के लोग ही मंच पर मंडराते नज़र आते हैं। ये लोग कूड़े-करकट की तरह ऊंचे, और ऊंचे उठते चले जाते हैं। बाद में फिर अपने-आप धूल की तरह सतह पर बिछ जाते हैं। तुम भी थर्ड क्लास आदमी हो। इसलिए तो तुमने बीसियों लफड़े मोल लिये हैं।

मैंने कहा, तुम जैसे मूर्खों के बूते की बात नहीं है यह। तुम क्या चमकोगे, खाक?

क्या तुम इस भ्रम में हो, कि तुम्हीं से यह सब बन पाया है? कुछ लोग तुम्हें जानने लगे हैं, बस। इससे बढ़कर तुमने क्या हासिल किया?

मैंने जो हासिल किया, तुम उसे क्या समझो?

अबे, तुम्हारे जैसे दसियों सेक्रेटरी अब तक हो चुके हैं। उदाहरणार्थ, दस साल पहले जिनका नाम मशहूर था, आज उन्हें कौन जानता है? तुम भी उन्हें जानते हो क्या?

सन उन्नीस सौ अड़तीस में केसकर नामी एक सेक्रेटरी था। डॉ० परांजपे आज भी उसे जानते हैं।

केसकर या भेसकर जो भी होगा, अपना बजट पहले ठीक कर लो।

मैं खुद अपनी जेब से सौ रुपये भर दूंगा, उतनी हिम्मत है।

यह हुआ तो, तो हम यही समझेंगे कि तुमने ज़रूर रिश्वतखोरी की।

बहस के कारण शोर तेज़ हुआ। पड़ोस के कमरे वाले लड़के परेशान होकर बाहर आ गये।

मधु ने कहा, आज से तुम अपनेमैसवाले हिसाब को खुद संभाल लो। आईंदा तुम्हारे ट्यूटोरियल्स मैं नहीं लिखूंगा वगैरा।

तब दो-तीन लोगों ने हमें शांत करने की कोशिश की। भयंकर झगड़ा हुआ। पड़ोस वाले पहलवान जगदाले ने मुझे उठाया और कमरे में पटक आया। मैं छोड़ दो, छोड़ दो चीख रहा था। साले लाड़ी ने तो मेरा थोबड़ा दबोच लिया था। कमरों में पढ़ाई में लगे पचास-साठ विद्यार्थी फटाफट बाहर निकल आये थे। मुझे अपमान लगा। मैंने कहा, मैं भी पहलवान बनकर तुम्हें अगले साल मज़ा चखाऊंगा।

उन लोगों ने मुझे मेरे कमरे में बंद कर दिया। बाहर से कुंडी लगाकर वे लोग चले गये।

मैं चीख रहा था—मेरे हिसाब के कागज़ मध्या के कमरे में रह गये हैं। कागज़ बड़े महत्व के हैं। कुंडी खोलो।

थोड़ी देर के बाद किवाड़ों के नीचे से हिसाब के कागज़ सरका दिये गये थे। मैसवाला रजिस्टर जिसे मधु संभाला करता था वह भी भीतर पहुंच गया।

मैंने कहा, मधु, ओ मधु, दरवाज़ा खोल दो।

जगदाले की आवाज़ सुनाई दी। मैं मधु नहीं हूं।

बाद में मैंने सुना, बाहर कुछ खुसर-फुसर हो रही है। आहिस्ता-आहिस्ता बाहर एक-एक कमरा बंद हो रहा था। फिर एकदम सारा माहौल शांत।

मैंने कागज़ वगैरा परे किये और यकायक चीखने लगा—मेरी सिगरेटें मधु के पास हैं। मध्या के पास। मध्या देश ऽ ऽ मुख। सिगरेट पकड़ाओ।

पर किसी ने मेरी नहीं सुनी। कोने में पड़े लंबे-लंबे टोंटे पीता हुआ मैं लेटा पड़ा रहा। दराज़ में एक लंबी सिगरेट मिल गयी। उसे मैंने आखिरी वक्त केलिए छोड़ दिया।

बारह बजे इचलकरंजीकर वाला कमरा खुलने की आहट हुई। तब मैंने लंबी सिगरेट सुलगायी और खिड़की के पास से उसे आवाज़ लगायी। इचल्या, मेरा कमरा खोल दो, भाई।

उसने तुरन्त कुंडी खोल दी। फिर मैं हिसाब वाले कागज़ लिये उसके कमरे में चला आया। आज मेरे साथ जो-जो हुआ और फिर परांजपे साहबवाली चर्चा

मैंने उसे कह सुनायी।

वह सिर्फ लंगोट पहने खड़ा-खड़ा पेंट को ब्रश कर रहा था। फिर उसने अपनी मैली पेंट पहनी। जेब की लफड़ेवाली चीज़ों को ठीक करने तक वह मुझसे कुछ भी बोला नहीं।

फिर बर्कले सुलगाकर उसने कहा, हां, तो सुनाइये।

मतलब इतनी देर तक मैं जो कहता रहा वह बेकार गया।

फिर से कहो।

उसने पूछा, मतलब परांजपे ने कुछ भी नहीं किया ? कर देंगे—क्या मतलब हुआ इसका ? कहते हैं, देख लेंगे। कुछ नहीं। बहनचोद कल तुम प्रिंसिपल से मिल लो।

पर तुम चलोगे मेरे साथ ?

मैं क्यों चलूं ? ना, हम नहीं चलेंगे।

यह सब तुम्हारे कारण हुआ। तुम ही तो टैक्सी लेकर उन गायकों को लेने गये थे।

तुम तो जनरल सेक्रेटरी थे ना। मुझे बजट की जानकारी देना तुम्हारा फ़र्ज नहीं था ?

उसके बाद साले इचलकरंजीकर ने मुझे कमरे के बाहर धक्का देकर निकाल दिया। कहा, तुम गधे हो, अब चले जाओ। अपने कमरे में सो जाओ।

दूसरे दिन दोपहर मैं जल्दी उठा। साले इचलकरंजीकर से दिन भर बात नहीं की। वह खुद शाम को मेरे कमरे पर आया। कहने लगा, वाइस-प्रिंसिपल साहब से मैं मिल आया हूँ। सारी बातें उनको बता दीं। उन्होंने कहा, ठीक है। सिर्फ रिस्पेक्ट के तौर पर तुम आज रात उन्हें मिल आओ। ठीक है ?

मेरे पेट पर हाथ फेरते हुए उसने कहा, इतना घबड़ाने से कोई लाभ नहीं होता भोसड़ी के।

उस रात मैं वाइस-प्रिंसिपल साहब के घर गया। उनका अल्सेशियन कुत्ता बाहर ही बैठा था। मैं वहीं दूर खड़ा-खड़ा सोचने लगा। कुत्ता मेरे करीब आकर हंसता हुआ खड़ा था। हंसने वाला अल्सेशियन कितना भयानक होता है। फिर उसने पीठ थोड़ी-सी फेर ली। मैंने तब घंटी बजायी। तब कुत्ता घूम गया। और मुझपर हंसते-हंसते लपक पड़ा। सर अंदर से देख रहे होंगे। क्योंकि कुत्ते ने ज्योंही अपना एक पंजा मेरी कमर पर रखा था, वो चीखे, जॉनी, जॉनी। मतलब इसका नाम जॉनी। तब जॉनी चुप हो गया। कोने वाली अपनी जगह पर जाकर बैठ गया और फिर से मेरी तरफ देखकर हंसने लगा।

सर ने भीतर ही से कहा, बैठिये।

थोड़ी देर में उनकी पत्नी और वो दोनों बाहर कमरे में आये। उनकी पत्नी मेरी तरफ सहानुभूति की नजर से देख रही थी। मतलब मेरी बजट वाली बात इन तक पहुंच गयी है शायद। इचलकरंजीकर ने बता दिया होगा। मुझे अचानक खयाल आया कि मेरे पेंट का बटन खुला रह गया है। सोचा, इनका ध्यान मुझसे जैसे भी हट जाय, बटन ठीक कर लेना चाहिए। जब सर हिसाब जांचने में लगे हुए हों, समय का फायदा उठा लेना चाहिए।

हिसाब वाला यह पुलिंदा कल से इतना गंदा हो चुका था, कि सर को थमाते हुए मुझे शरम लगी। उन्होंने परांजपे साहब की तरह पूरा हिसाब जांचकर नहीं देखा।

उन्होंने कहा, तुम अभी तो इंटर कर रहे हो और इतने लफड़े करते हो? भविष्य में तुम्हारे लिए यह हरकत खतरनाक साबित हो सकती है।

मैंने पश्चात्ताप के लहजे में कहा, भविष्य में किसी भी चीज़ में हिस्सा नहीं लूंगा।

उन्होंने पत्नी से कहा, यह इंटर कर रहा है। कॉलेज का डिबेटिंग इसके जिम्मे है। गैदरिंग भी इसी ने संभाला। गैदरिंग वैसे ठीक-ठाक हुआ। और क्यों जी, तुम मैस के भी तो सेक्रेटरी हो न?

पत्नी अच्छा! अच्छा! कह रही थी।

उन्होंने कहा, देखिए, हमारे रहते कितने विद्यार्थी आये और गये। इनमें बहुतों को ठीक ढंग से भाषण जैसी मामूली बात करनी नहीं आती थी। लेकिन उनमें से कई लोग यहां से मशहूर वक्ता बनकर ही निकले थे। इसके उलटे कुछ लोग मंच के भय से इतने आतंकित हो जाते हैं कि फिर वे कभी स्टेज पर कदम ही नहीं रखते। इन लोगों का तो आगे नाम भी सुनने में नहीं आता। खैर। यह क्रम चलता ही रहता है। पिछले बीस वर्षों से मैं इसका गवाह हूं—हर साल वही गैदरिंग, कार्यक्रम, खेल-तमाशे, शोहरत के लिए लालायित विद्यार्थी। ऊब गया हूं। लेकिन मज़ा यह कि मैं भी वाइस-प्रिंसिपल के पद को छोड़ना नहीं चाहता। खैर छोड़ो। लेकिन तुम्हारी पढ़ाई कैसी चल रही है? ध्यान रखो, इंटर का रिज़ल्ट बहुत सख्त होता है। पता है?

मैंने कहा, मैंने पढ़ाई को कभी भी नज़र-अंदाज नहीं किया। मैं रोज़ रात में पढ़ाई करता हूं।

पर विडंबना यह कि मुझे फाइनल परीक्षा का फार्म प्राप्त करने के लिए उन से ही मिलना पड़ा था।

मैं चर्चा के मुख्य मुद्दे पर मुड़ा। हिसाब का पुलिंदा फिर से उनको दिखाने लगा। तब उन्होंने कहा, देखिए यह इस तरह चलता ही रहता है। बिलों को तुम

लोग इस तरह एडजस्ट करते ही रहोगे। इनकार नहीं कर सकते तुम लोग। ऐसा होता ही है। अब इसमें हिसाब जांचने वाली बात क्या रह जाती है ! हर साल कुछ न कुछ समस्या पैदा होती ही है। हम लोग देख लेंगे कि अतिरिक्त खर्च को ऑफिस से मंजूरी दिलाएं या और क्या करें ? कल देख लेंगे।

देख लेंगे। बाद में देख लेंगे। तब से मैंने मीटिंग तक उस पुलिंदे की तरफ झांककर भी नहीं देखा।

मीटिंग तक इचलकरंजीकरण से भी बात नहीं की। साला नालायक है। पर कुछ भी हो, मेरे पक्ष में वही अकेला लड़ा था। अब वह बात दूसरी है कि इसी के कारण मेरा नुकसान हुआ था। क्योंकि कमेटी में इसके दुश्मन ही ज्यादा। आखिर तक मैं परेशान था। इसके अलावा मैं कुछ कर भी नहीं सकता था। फैसला यह हुआ कि पैसे सेक्रेटरी को चुकाने होंगे। बजट से ऊपर खर्च करने का सांगवीकर को क्या अधिकार था ?

तब प्रो० परांजपे तथा वाइस-प्रिंसिपल वगैरा लोगों ने हस्तक्षेप करते हुए कहा, हम ऐसा क्यों न करें कि मनोरंजन के मद में प्रत्येक विद्यार्थी से तीन रुपये के हिसाब से पैसा वसूल किया जाता है। और फिर किसी भी साल हजार-बारह सौ की पूरी रकम खर्च नहीं होती। इस मद से सौ रुपये निकलवाने में क्या दिक्कत है ?

लिमये ने भयंकर चिढ़कर कहा, इससे होगा यह, कि इसके बाद हर साल गैदरिंग के सेक्रेटरी अपना खर्च बढ़ाते रहेंगे और बजट से ऊपर खर्च करने का एक सिस्टम ही प्रचलित हो जायेगा।

इचलकरंज्या टपक पड़ा, ऐसे कैसे होगा ? भविष्य में पांडुरंग सांगवीकर जैसा गंवार आदमी सेक्रेटरी बनेगा, इसकी कोई गुंजाइश है क्या ?

मज़ाक सबको पसंद आया था। खासकर साठे को। वह भैंस की तरह हंसी थी। पर बाद में मीटिंग का माहौल कुल मिलाकर सहानुभूतिपूर्ण हो गया। मैं बुरी तरह ऊब गया था।

चौधरी ने सूचना दी, कि सांगवीकर के जिम्मे कॉलेज का डिबेट भी है। उधर खर्च कुछ कम हुआ होगा। क्योंकि उसने इस साल डिबेट चलाया ही नहीं। तो उधर का बजट इधर इस्तेमाल क्यों न किया जाये ?

यह बात भी सबको मज़ाकिया लगी। वाइस-प्रिंसिपल ने कहा, ऐसा नहीं कर सकते।

भोसले ने कहा, मैस एक दिन के लिए बंद कर दें तो करीबन डेढ़ सौ रुपये बच सकते हैं। उन्हें इधर लगा लें।

गुप्ते तो मेरा दुश्मन। उसने कहा, क्यों न प्रत्येक विद्यार्थी से चार-चार आने वसूल किये जायें। कितने होंगे कुल लोग ?

चार सौ ग्यारह।

और लड़कियां ?

साठे ने कहा, निश्चित संख्या—लगभग—मान लो सब मिलाकर लगभग पांच सौ। तो पांच सौ गुणा चार आने कितने हुए ?

इचलकरंजीकर ने कहा, हटाओ। साला, चार आने कौन वसूल करता फिरेगा ?

मांगवीकर, और कौन ?

मैं बोर हो गया। अच्छा हो, इसे यहीं खत्म करें। वैसे भी मेरे पास साठ-सत्तर रुपये रखे हैं। करीबन चालीस रुपये और घर से मंगवा लेंगे। पूरे पैसे अपनी जेब से भर दें और हमेशा के लिए मुक्त हो जायें ? साला इतना अपमान कौन सहेगा ?

अंत में वाइस-प्रिंसिपल और प्रो० परांजपे के बीच खुसर-फुसर चलती रही। समय काफी हो चुका था। दूसरे खर्च भी तो मंजूर करवा लेने थे। वाइस-प्रिंसिपल साहब ने कमेटी के लोगों पर कुछ दबाव डाला और उन्हें खामोश किया।

पांडुरंग सांगवीकर के खर्च को मैं मंजूरी देता हूं। बजट के अतिरिक्त जो भी खर्चा हुआ है उसे इस तरह निपटा जाये—कमेटी का प्रत्येक सदस्य चार-चार रुपये भरे। हां, किसी पर इसकी जबरदस्ती नहीं होगी। यह उनकी मरजी होगी। शेष पैसा कॉलेज भरेगा। है मंजूर ? चलिए।

इस पर लिमये ने कहा, मान लो, मेरे लिए चार रुपये देना भी संभव नहीं हो सका तो ?

इचलकरंजीकर ने चिढ़कर कहा, सुना नहीं क्या तुमने ? शेष पैसा कॉलेज भरेगा। बैठो नीचे।

तब सभी लोग—मुझे छोड़कर—हंस पड़े। मैं भयंकर रूप से बेचैन हो गया था। सोचा, अब इसे यहीं खत्म कर देना चाहिए।

लिमये ने कहा, मेरी बात नहीं, मैं मतलब—मैं तो भरूंगा ही। सवाल पैसों का नहीं है। लेकिन···वगैरा।

आगे वाले बिल्स लाइए। फटाफट। अब बंद करो बहस। इचलकरंजीकर—तुम्हारा ? रेडियो, कैरम, नौकर, ठीक है। आगे ? लिमये, मिस्टर लिमये, क्विक प्लीज़। ठीक है। नाश्ता और खाना। हाँ चलिए। वेरायटी ? सांगवीकर, तुमने वेरायटी लेकिन बढ़िया पेश की भला। सब की यही राय है। बजट ? दुरुस्त है ? बजट से बीस रुपये कम। वाह, वाह। बहुत बढ़िया। अब तो निपट गया ?

मैंने अपनी जेब से बीस रुपये डालकर वेरायटी का खर्च कम दिखाया था। कम से कम यहां तो बजट ठीक बैठा लिया था। चाहता था कि लोग यकीन कर लें कि सांगवीकर ईमानदार है। इसलिए ऐसा करना जरूरी था। बाकी लोगों का खर्च बजट के अनुसार बिलकुल सही बैठा था। साले पैसे खाने की तरकीबें बहुत अच्छी तरह जानते हैं। पर आंकड़े बराबर जमा लेते हैं। भड़ुवे चतुर हैं। मतलब लुच्चे।

सारे बिल क्लर्क ने हम से ले लिये। उसने प्रो० परांजपे से पूछा, सर, घर पर ज़रा लड़का बीमार है। मुझे वैसे जल्दी जाना था। इजाज़त दें तो मैं इन बिलों को यहां छोड़ने के बजाय घर लिये जाता हूं। कल हिसाब पूरा करके परसों कॉलेज भिजवा दूंगा। सांगवीकर के लिए कॉलेज से पैसे निकलवाने हैं। यह काम परसों कर लें तो ऐतराज तो नहीं ?

प्रो० परांजपे ने कहा, ठीक है। आप जाइए। यह रकम तुरंत मंजूर करवा लो और सांगवीकर को दे दो। उन्हें बिलों का भुगतान करना होगा।

आखिर मीटिंग खत्म हुई। इचलकरंजीकर अब भी किसी न किसी के साथ उलझ ही रहा था। मैं चुपके से अंधेरे में बाहर खिसक आया। खाना खाने के लिए भी उधर मैस की तरफ नहीं गया। इधर-उधर टहलकर बाहर खाना खा लिया। मद्रास होटल में लगातार बैठा सिगरेट पीता रहा।

साला, हम क्यों ऐसे झमेलों में फंसते रहें ? आप चाहो तो कह लो कि हम से यह सब बनता नहीं है। चाहो तो यों समझ लो कि हमे इसकी जरूरत ही नहीं है। निहायत घटिया किस्म के लोगों से जो वास्ता पड़ता है और फिर इन लोगों की इज्जत करनी पड़ती है। किसी बेवकूफ किस्म की लड़की से वास्ता पड़ जाये तो उसकी मिन्नतें करनी पड़ती हैं। उससे गीत गवाने के लिए इसरार करना पड़ता है। और फिर उसे चाय पिलाओ, उसके नखरे झेलो। उसकी प्रशंसा करो, यह और अलग से। साले बेवकूफ लौंडों को अपने पक्ष में करने के लिए चाय-पार्टी पर खर्च करना पड़ता है। इस लिहाज से वह देवी नाम का लड़का भला— आर्केस्ट्रा में बांसुरी बजाने वाले तीन लोग चाहिए थे तो देवी ने कहा था, मुझे सम्मिलित कर लो। लेकिन उसे बांसुरी बजानी नहीं आती थी। पर पट्ठा सिर्फ बांसुरी ओठों पर टिकाए, बिना बजाए मंच पर बैठा रहा। शोभा तो बढ़ी। आर्केस्ट्रा खत्म होने पर सभी लोग चाय के लिए कैंटीन में आये। तब इचलकरंजीकर ने देवी से कहा, साले देवी, तुम सिर्फ बैठे ही तो थे न ? इसलिए सबके लिए केक और चाय। तुम्हारे लिए सिर्फ चाय।

लेकिन साला इस सबका मजा लूटने का हकदार होता इचलकरंजीकर।

और हम ? हम हैं कि स्टेज के पीछे हाथ में कार्यक्रम के कागज थामे खड़े हैं। परेशान हैं कि कहीं कार्यक्रम गड़बड़ा न जाये।

लेकिन फिर भी इस साल हमने वेरायटी के आयोजनों और नाटकों वगैरा की प्रस्तुतियों में कुछ तो जरूर हासिल किया है। इस बहाने कुछ अच्छे लोगों से परिचय हुआ। रमी के साथ जान-पहजान और गहरी हुई। सभाओं में अब भाषण करने लगा हूं। और भी बहुत कुछ परिचय, भाषण करना और क्या भला ? और भी बहुत कुछ। अटरम-सटरम। हां, इस साल अगर फेल नहीं हुए तो समझ लो बाजी मार गये।

अगर हमने यह सब न किया होता तो ? उस स्थिति में सुरेश, तांबे, मधु के साथ रहकर अधिक क्या करते ? क्या इतनी मौज कर पाते ? इनके साथ इतनी घुमक्कड़ी संभव थी ? ज़्यादा से ज़्यादा एकाध ट्रिप में शरीक हो जाते। अध्ययन करने का पुराना इरादा शायद पूरा कर लिया होता। संभवत: गीता रहस्य पढ़ कर पूरा किया होता। खैर छोड़ो इसे। इस पर सोच-विचार करने की आज ही क्या पड़ी है ? सबसे पहले इम्तिहान। बाद में और सब कुछ।

उसके बाद से मैं रोज हठात् क्लास में हाजिर रहने लगा था। लेकिन उस समय तक पाठ्यक्रम लगभग समाप्ति के करीब था। कुछ ने तो आखिरी पीरिएड ही किये थे। एक बार आगे वाली लाइन में मैं बैठा था। एक प्रोफेसर साहब ने मुझ से पूछ ही लिया, तुम नए लग रहे हो शायद।

मैस की झंझटों से अब भी मेरी मुक्ति नहीं हुई थी। सबसे उबा देने वाली स्थिति तब पैदा होती जब रसोइया हर शाम हिसाब की कापी लेकर मेरे पास पहुंच जाता। मुझे उसके हिसाब जांचने ही पड़ते। वह हर रोज बगैर भूले मुझसे पूछता कि कल क्या सब्जी बनाऊँ ? मुझे भिंडी पसन्द थी। इसलिए मैं हमेशा कहता रामप्पा, रोज भिंडी। शरारती लड़कों ने मैस के नोटिस बोर्ड पर एक उखाणा चिपका दिया था—

> भाजीत भाजी भेंडीची
> पांडुरंग आमच्या प्रीतीची

लेकिन अब मैंने पक्का तय कर लिया था कि आइंदा पढ़ाई में व्यवधान नहीं होगा। इसलिए मैंने रामप्पा से कह दिया था, कि इसके बाद से खाना खाते वक्त भी मुझसे वह मैस के बारे में बहुत कुछ न पूछे। ये सब मामले उस वैद्य के

जिम्मे। वैद्य एक गरीब लड़का था। इधर आने से पहले वह वार लगाकर भोजन किया करता था। मैंने उसे मैस के हिसाब-किताब का पूरा काम सौंपा था। मुआवजे के रूप में उसे सुबह का खाना मुफ्त मिलता।

मैस की झंझटों से तो मुक्ति मिली। इचलकरंजीकर से सम्बन्ध कम करने के लिए अलग से प्रयास करने की ज़रूरत नहीं पड़ी। मीटिंग वाला हादसा खत्म होने के बाद से मैं उससे वैसे भी बहुत कम मिलने-जुलने लगा था। अब तो सारा दिन लाइब्रेरी में बैठा रहता हूं। तो अपने आप तमाम झंझटों से मुक्ति मिल गयी। इचल्या के पास आइडेंटिटी कार्ड भी नहीं है। किसी एक लौंडिया ने तसवीर के लिए रख लिया था। बाद में उसने दूसरा कार्ड बनवाया ही नहीं। देखिये, लड़कियां कितनी भली होती हैं ? परीक्षा की मेरी तैयारी हो चुकी थी। कुछ ही दिनों बाद बेंगलोर में इचलकरंजीकर का फौजी अफसर के लिए चुनाव हो गया था। परीक्षाएं शुरू होने के बहुत पहले ही से होस्टल को अलविदा कहकर वह अपने रिश्तेदार के यहां चला गया।

जाते वक्त उसने मुझे अपनी ट्यूशन वाली कापियां दे डालीं। उसने कहा, तो पांडुरंग महाराज, हमने तुम्हें वैसे भी बड़े कष्ट दिये ही हैं। लेकिन अब सिर्फ इन्हीं कापियों को देखो। प्रश्न इन्हीं में से होंगे।

मैंने उन कापियों को बेफिक्री से कोने में फेंक दिया। उसने मुझे ढेर सारी किताबें भी दी थीं। उनमें ज्यादातर जासूसी थीं। मैंने उन्हें रद्दी में बिकवा दिया। नेपोलियन की जीवनी लेकिन रख ली।

बंगलौर के लिए रवाना होने के एक दिन पहले वह मुझसे मिलने आया था। मैं लाइब्रेरी में ही होऊंगा, उसे पता होगा। उसने बाहर ही से पांडोबा, पांडया, पांडू, पांडू सांगवीकर, पांडया सांगवीकर ओ सांगवीकर, पांडू ऽ ऽ ऽ इस तरह चीखना शुरू किया। मैंने खिड़की से उसे देख लिया था। लेकिन चुपके से आड़ में हो गया ताकि वह देख न पाये। आखिर जब तक चपरासी ने उसे निकाल बाहर नहीं किया वह चीखता रहा था। फिर ऊबकर खुद-ब खुद चला गया।

मैं शाम जब होस्टल लौट आया तो देखा कि किवाड़ पर उसकी चिट्ठी —

प्रिय पांडू,

तो हम कल बंगलौर। अपना पता वहां पहुंचने पर लिखूंगा। लेकिन आज तुम मुझे हमारे रिश्तेदार के यहां मिलो। या फिर कल सुबह कॉफ़ी हाऊस में। मैं चंद दोस्तों को वहां पार्टी देने जा रहा हूं। आओगे ?

वहां लड़कियां भी होंगी। इसलिए अगर तुम्हारा इरादा बदल जाय और

तुम ना आओ तो आज रात नौ बजे तक घर ही पर इंतज़ार करता हूं। वहीं मेरे साथ खाने पर ज़रूर आना।

तुम्हारा
मधुमिलिंद

मैंने चिट्ठी फाड़ डाली। सोचा, मिलिटरी लाइफ बहुत अच्छी है। वरना सिविल लाइफ में इचलकरंजीकर जैसों का क्या उपयोग ?

दूसरे दिन दोपहर में खाना खाकर लौटा तो देखा कि मेरे कमरे के सामने कोई खड़ा है। वह इचलकरंजीकर ही था। गैलरी की ग्रिल से टिका मेरे कमरे की तरफ मुंह किये वह खड़ा था। मैं उलटे कदम वहां से भागा। पेड़ों की आड़ लेता हुआ दूर के रास्ते से कॉलेज के आहाते के बाहर निकल आया। नाइट पाजामा, जेब में फूटी कौड़ी नहीं। इस स्थिति में बताइए, पूरा एक घंटा कहां गुज़ारें ? मद्रास होटल में लस्सी, सिगरेट वगैरा उधार लिये जा सकते थे। लेकिन इचल-करज्या मुझे वहां भी पकड़ लेगा। इसलिए मैंने मद्रास होटल के नारायण अप्पा से एक रुपया उधार लिया। और आगे वाले होटल में बैठकर अखबार देखता रहा। वीकली के सभी व्यंग्य पढ़ डाले। दो-बार लस्सी पी। एक सिगरेट सुलगायी। इस तरह रुपया पूरा किया। फिल्म फेअर के पन्ने पलटता रहा। संभव है, अब भी इचलकरंज्या वहीं खड़ा होगा। इसलिए मैं लुक-छिपकर होस्टल तक चला आया। शुक्र है, इचल्या वहां नहीं था। इतने में मैस का ज्ञानू नौकर वहां आया। उसने कहा, कि एक साहब आपको देखने आये थे। कहकर गये हैं कि आपको बता दूं।

उसके बाद मैं लाइब्रेरी गया। पढ़ाई लेकिन हो नहीं सकी।

इम्तिहान को एक महीना रह गया था। लेकिन अब तक कोर्स की किताबों को पूरा नहीं कर सका था। इसलिए पढ़ाई में मैंने इतनी हड़बड़ी से काम लिया कि पढ़ाई तो पूरी कर ली थी, पर याद कुछ भी नहीं रहता। मुझे स्मरण नहीं रहता कि अमुक कविता का भाव क्या है। या कि यूनिवर्सिटी के बारे में कार्डिनल न्यूमन की राय क्या है। तब मुझे डर लगने लगा। इसलिए मैंने मधु, सुरेश, तांबे वगैरा के साथ इम्तिहान के बारे में बातें करनी शुरू कर दीं। हम लोगों ने हिसाब लगाया कि सत्ताइस दिन बचे हैं और आठ पेपर्स तैयार करने हैं। मतलब एक पेपर तीन दिन में पूरा होना चाहिए। वरना ज़िन्दा रहना बेकार है।

मैं कमरे पर लौट आया। उस रात तीन बजे तक जागकर मैंने एक लंबा-चौड़ा टाइम-टेबुल तैयार किया। उस बीच सुरेश चाय के लिए मेरे कमरे पर आया था। उसने कहा, इस काम में जो इतना समय बरबाद किया, इसके बजाय

शेक्सपियर पढ़ लेते तो वह पूरा हो जाता। मैंने अभी-अभी उसे पूरा कर लिया है।

मैंने उससे पूछा, माना कि मेरा समय कई तरह की गतिविधियों में बरबाद हुआ। लेकिन तुम्हें क्या हुआ जो तुम्हारी भी पढ़ाई पूरी नहीं हुई ?

उसने कहा, इसका यह मतलब थोड़े ही कि मैं दूसरे कुछ भी काम नहीं करता। क्या तुम समझते हो कि मुझे सिर्फ पढ़ाई ही करनी चाहिए थी ? क्या तुमने मान लिया है कि या तो पढ़ाई करो या नहीं तो स्टेज संभालो।

उसके चले जाने के बाद मैंने सुबह तक जागकर प्रत्येक पेपर का तारीखवार टाइम-टेबुल बना लिया। पहली तारीख से तीन तक लॉजिक। चार से छः तक लॉजिक का दूसरा पेपर। सात से नौ तक अंगरेज़ी वगैरा इस तरह।

उसी दिन मनिआर्डर मिला। पिताजी ने पूछा था, तुम्हारे इम्तिहान कब शुरू हो रहे हैं ? अब ये दो-सौ पचास रुपये इस साल की आखिरी किश्त समझो। सो पढ़ाई ठीक ढंग से करो। मैं भीतर से कांप गया। सैकड़ों रुपयों का खर्च हो रहा है मुझ पर। और इधर इम्तिहान के सही परिणाम की कोई गारंटी नहीं।

वैसे भी यह महीना समाप्त होने जा ही रहा था। एक-दो दिन और आराम से गुज़ार लें। उसके बाद गदहों की तरह पढ़ाई में जुट जायेंगे। फिर मैंने बीस-पच्चीस रुपये खर्च करके सिर में लगाने का तेल, मिट्टी का तेल, चीनी, चाय, साबुन आदि चीज़ें खरीद लीं और एक महीने के लिए बेफिक्र हो गया। उसके बाद दो दिन बड़े चैन से गुज़ारे। अब टाइम-टेबुल शुरू हुआ और बड़े ज़ोर-शोर पढ़ाई शुरू कर दी।

मैं कभी-कभी तो केवल तीन-चार घंटे सोता। किताबें बड़ी एकरस थीं। इसलिए मैंने गाइड्स खरीदे। उन्हें रट लिया। इचलकरंज्या की कपियों को सरसरी देख लिया। बात समझ में आयी कि पाठयक्रम की किताबें पढ़ना बेकार है। उनकी छुट्टी कर देनी चाहिए। वास्तव में उन कापियों के ही कारण मेरे दो पेपर ठीक रहे थे। वरना तो बंटाढार था। इचलकरंजीकर दी ग्रेट। मुझमें एकदम आत्म-विश्वास जागा।

वो दिन बड़े भयानक थे। उन दिनों मुझे अपने एक पड़ोसी साथी के प्रति बड़ा लगाव अनुभव हुआ था। आप थे जोशी। इंटर ही में पढ़ते थे। लेकिन उन्होंने फ्रेंच ऑप्ट कर दिया था। इसलिए उनके बारे में मेरा आदर बढ़ गया था। जोशी ने साल भर तक बड़े साफ़-सुथरे ढंग से पढ़ाई की थी। और फिर लॉजिक के बजाय उन्होंने गणित लिया था। कभी किसी कठिन शब्द का अर्थ मैं उनसे पूछ लेता तो साहब मेरे कमरे तक आते और अर्थ बता जाते। जनाब हर शाम

साबुन से नहाते और मेरे कमरे पर आकर रोज़ वही एक सवाल पूछते—क्यों साहब, कहां तक आया है गैदरिंग ? फिर कहते, मैं तो इधर किताबें गट कर रहा हूं और गैदर कर रहा हूं। छः बजे स्टोव जलाते। उसे तेज़ करके मेरे कमरे के सामने आकर खड़े हो जाते। और पूछते, क्यों भाई, तुम्हें कौन प्रिय है ? शेली या कीट्स ?

मैं कहता, अभी फैसला नहीं किया। पढ़ना बाकी है।

फिर वो शेली पर कुछ कहने लगते। और यकायक हड़बड़ी में यह कहते हुए, बहनचोद दूध उफन गया होगा, फट से चल देते।

मैं इधर किताबों में डूबा हुआ हूं कि आप चाय की प्याली हाथ में लिये चुस्कियां लेते-लेते मेरे कमरे में टपक पड़ते। कहते, बहुत अच्छा, यही बढ़िया तरीका है। नोट्स ऐसे होने चाहिए कि जिन्हें इम्तिहान की पहली रात देख लो तो बस।

कभी कहते, तुम्हारे ये नाटक और गैदरिंग कॉलेज लाइफ के लिए समझो बेमिसाल ही हैं। या फिर पूछ बैठते, बी० ए० में कौन-से विषय लेने का इरादा है ?

चाय पी लेने पर बड़े उल्लसित लगते। मुझसे आकर कहते, ज़रा सैर करके आया हूं।

इस झमेले से बचने के लिए मैं कभी-कभी अपना कमरा बन्द कर लेता और भीतर पढ़ाई करता बैठता. पर जोशी मेरे दरवाज़े पर ज़ोर-ज़ोर से दस्तक देकर दरवाज़ा खुलवा लेते। कहते, कमाल है। इतनी उमस हो रही है और तुम हो कि दरवाज़ा बन्द करके भीतर बैठे हो। पढ़ाई के लिए ताज़ी हवा की ज़रूरत होती है। ज़रा दो आने मिलेंगे ?

तब सैर के लिए निकल जाते। लौटते वक्त मेरे लिए दो आने वाला ब्रेड ज़रूर ले आते।

हम दोनों साथ-साथ खाना खाने के लिए मैस जाते। वहां भी उनके वही इनेगिने सवाल। मतलब—कल आपने मुझे चार बजे जगाया तो सोचा, थोड़ी देर यूं ही लेटे रहें। पर क्या बतायें, नींद लग गयी। इसी तरह हर रोज़।

ये जनाब रात ग्यारह बजे तक पढ़ाई करते। सोने से पहले मेरे कमरे पर चक्कर लगाना कभी नहीं भूलते। मैं इधर अपनी हड़बड़ी में उलझा रहता कि अमुक पेज पढ़कर जल्दी खत्म कर लें। इस परिच्छेद को फटाफट पहले नोट कर लें। इस हिस्से को कल पर छोड़ने के बजाय क्यों न अभी पूरा कर लें। एक बार चाय हो जाय या पहले वायोला का चरित्र पढ़ लें। इस तरह की परेशानियों में फंसा रहता। तो आप मेरे कमरे पर हाज़िर। मुझसे पूछते, क्यों भाई, कब सो रहे हो ? अगर उनके पास पूछने लायक कोई सवाल न होता तो कोई खबर ज़रूर

सुनाते। कहते—पता है, प्रो० परांजपे फ्लू से बीमार हैं? अरे हां, वह अमुक व्यक्ति तुम्हारे बारे पूछ-ताछ कर रहा था। या फिर कहते—रमी मिली थी, पूछ रही थी। आजकल सांगवीकर कहां गायब हो गये हैं, इधर कहीं नज़र नहीं आते। लेकिन सोने से पहले उनका मुख्य काम यह होता कि वे मुझसे ज़रूर मिलते। पूछते, कितनी देर जाग रहे हो? जब सोने जाओ तो मुझे ज़रूर जगा देना।

देर रात जागते रहने के कारण आंखें लाल हो जातीं। मैं सुबह उसी हालत में उन्हें जगाता। तब वे पूछते, क्या बजा होगा?

उनका यह सवाल लेकिन बड़ा बोर। मान लो मैं जब कहता पांच बजा है, तो वे उठ बैठते और तकिये के नीचे रखी घड़ी देखकर कहते, पांच क्या? थैंक्यू। अगर कभी चार बजे हों तब भी घड़ी देखकर कहते, चार क्या? थैंक्यू।

कभी-कभी मैं जोशी के साथ ग्राउंड पर एक चक्कर लगा आता। लौटकर सुबह तक पढ़ाई करता रहता। उन्हें अगर एक बार चाय पिलाता तो वे विनिमय के तौर पर मुझे एक ही बार चाय पर बुलाते। मुझे उनके इस हिसाबी रवैये से भी बड़ी बोरियत हो गयी थी। साला सोचते रहो, कल किसने पिलायी थी, और कि आज कौन पिलायेगा? वगैरा। लेकिन कभी सुबह तक जागते रहने के बाद अगर मैं सो जाता तो वे खाने के वक्त मुझे ज़रूर जगाते। मैं उनसे कभी भी ऊबा नहीं। बड़े भले थे जोशी। किताबों पर किताबें निगलते रहने के इस दौर में जोशी जैसे सभ्य, शांत व्यक्ति की निकटता मेरे लिए ज़रूरी थी। और फिर जब वे मुझे नींद से जगाते तो किसी देवदूत की तरह उजले-उजले लगते। और जब मैं उन्हें जगाता, देखता उनकी आंखों में आभा है, बिलकुल मेरी मां की तरह।

वो दिन बड़े भयंकर थे। अभी होस्टल के सामने की मर्क्यूरी बत्ती जली नहीं थी। अंधेरे के रहते भी खिड़की में बैठकर पढ़ा जा सकता था। लेकिन मैं बाहर बरांडे में खंभे से सटकर खड़ा रहा था। लगभग सभी लोगों के कमरे बन्द थे। सब शाम की सैर करने चले गये थे। एक कमरे में रोशनी थी। कमरा खुला था। दो-तीन लोग बैठे पढ़ाई के बारे में कुछ बड़बड़ा रहे थे। उनकी आवाज़ें बड़ी भयंकर थीं। चन्द कमरों में वेंटिलेटरों के भीतर से निकलते तेज़ रोशनी के चौकोर टुकड़े अंधेरे में बड़े विचित्र दिखायी दे रहे थे। मैं खम्भे से सटा ठंडा, सुस्त गधे की तरह आंखें मलता हुआ खड़ा था। इतनी पढ़ाई करने के बाद आंखें मलने में कितना सुख है। खम्भे से कंधा टिकाये चैन से आंखें मलते रहो—बड़ी भयानक है यह स्थिति। केवल भयानक। लेकिन…।

उसी वक़्त प्रो० शाह का लड़का पीछे वाली खिड़की की सलाखें पकड़े खड़ा-

खड़ा चिल्ला रहा था। कह रहा था, सांगवीकर, हमारी परीक्षाएं खत्म हो गयीं। और फिर सलाखें छोड़ धड़ाम से नीचे कूदा और बंगले की तरफ भाग खड़ा हुआ।

मैंने कहा, कुछ भी हो जाय, मैं जरूर पास होऊंगा।

फिर इम्तिहान शुरू हुए। रमी ने कहा, मतलब कम-से-कम इम्तिहान के बहाने तो दिखायी दे रहे हो।

हर पेपर लिख चुकने के बाद आंखें दर्द करने लगतीं। पर्चा लिखते वक्त सोचता रहता, अमुक पन्ने पर साला कौन-सा पाइंट है? शीर्षकों को ढंग से रेखांकित किया था। हट स्साला, बहनचोद याद नहीं आता, सो क्या मतलब? तब अचानक कोई दूसरा पाइंट स्मरण हो आता, तब मैं पर्चे पर ऊपर थोड़ी जगह छोड़कर आगे लिखना शुरू कर देता। आखिरी दस मिनटों में इसी क्रम से बची जगहों पर कुछ भी लिखकर मैं पर्चा दे डालता।

पर्चा लिखते वक्त लगता कि कागज़ पर टिकी और पेन थामे हुए अपनी उंगलियां किसी विचित्र पक्षी की तरह दिखायी दे रही हैं। यही एकमात्र वजूद शेष है, बस। उस समय अचानक एक विचार कौंधा। लगा, कहीं अपना दिमाग कागज़ पर धीरे-धीरे तो नहीं चू रहा है। मैंने इस कल्पना को अंग्रेजी वाले निबंध में लिख भी दिया था।

पेपर खत्म करके सीधे कमरे पर चला आता और तुरन्त आगे के पेपर की तैयारी शुरू कर देता। जोशी ब्रेड ले आते। बहुत बढ़िया।

एक बार परीक्षा हॉल से कमरे पर चले आने के बजाय मैं कॉलेज के पीछे वाले ग्राउंड पर चला आया। आसमान की तरफ देखा तो आंखों में ज़ोर का दर्द होने लगा। भयानक तेज़ लाल रोशनी आगे दूर तक पहुंचकर गहरी काली बन चुकी थी। आंखें ठीक करते हुए मैंने ऊपर नज़र दौड़ायी। देखता हूं कि एक चील शांत और स्थिर उड़ी चली जा रही है। बहुत ऊंचे। एकदम छोटी आंखों की पीड़ा के कारण उस पर से दृष्टि हट जाती। वह ओझल हो जाती। तब मैंने विशेष प्रयास से उसे देखना शुरू किया। इतनी ऊंचाई पर परों को सीधे तानकर इन्हें तैरना कैसे आता है? ऊंचाई पर हवा में ठंडक जो होती है। जैसे-जैसे समुद्री सतह से ऊपर चलें, तापमान कम होता जाता है। और फिर परों को सीधा ताने, बगैर हिलाये हवा में तैरना, और फिर एकांत। चील को भगवान की निकटता नसीब है। तब मैंने सोचा, आइंदा भविष्य में इम्तिहान की यह स्थिति नहीं होगी। हम इसे बदलेंगे। अब कभी किसी गतिविधि में बिलकुल हिस्सा नहीं लेंगे।

इम्तिहान खत्म हुए। पास हो जाने की हलकी-सी उम्मीद थी। मतलब, कम से कम मधु के मुकाबले तो निश्चय ही मैंने ज़्यादा लिखा था।

सोचा, अब ज़रा दो दिन कमरे में आराम से लेटा रहूंगा, तो वह भी नहीं बन पाया।

बस, अब दो-एक दिन और। मैंस का हिसाब पूरा कर लेंगे। मैंस बंद करके अपने घर के लिए चल देंगे।

बड़े तड़के दरवाज़े पर धक्कों की आवाज़ें। मैं खीझ कर उठ बैठा। देखा कि परचूनी का नौकर खड़ा है। इसी की दुकान से मैंस के लिए सामान खरीदा जाता है। उसने कहा, मैं गंभीर सेठ के यहां से आया हूं। मालिक ने आपको अर्जेंट बुलाया है।

आ रहा हूं, कहकर मैं सो गया।

फिर ग्यारह बजे वही आदमी दस्तक दे रहा था। मैं झल्लाया। आखिर तैयार होकर उसके साथ चल दिया।

दुकान पर गंभीर सेठ बड़े आराम से बैठे हुए। मतलब हमेशा की तरह। गद्दी के सामने मुझे बैठने के लिए कहा। और इलायची पेश की। वो बोले, इम्तिहान कल ही खत्म हुआ ना ?

जी हां, सोचा था। आज थोड़ा आराम कर लें। पर आपकी यह झंझट।

लो खूब रही, सेठ जी कह रहे थे। रामप्पा ने ही हमसे कहा था कि सांगवीकर साहब इम्तिहान में लगे हुए हैं। आप समझिए, इसीलिए मैं पंद्रह-बीस दिन रुका रहा। मैं जानता हूं कि इम्तिहान, मतलब वर्ष में एक ही बार आने वाला पर्व। निपट जाने दो इसे। हिसाब कौन बड़ी बात है, वह तो कभी भी पूरा किया जा सकता है। लेकिन साहब, यह साफ-साफ कह देते हैं कि हिसाब के मामलों में हमें ढीलापन बिलकुल पसंद नहीं है। हम दूसरों की तरह रसोइये के साथ सांठ-गांठ करके सामान में कोई बदमाशी नहीं करते। इसे आप ध्यान में रखिये।

मतलब, मैंने कभी आपके बिल्स रोके हैं ?

नहीं, वैसी बात नहीं। अब तक हमारा लेन-देन बहुत साफ़ था। लेकिन पिछले दो-तीन महीनों में··· ।

फिर घुटनों के बल खिसककर उन्होंने मेरे सिर के ऊपर वाले खाने में डिब्बे पर रखा लाल कवर वाला खाता उठाया। पेंसिल उसमें पहले से पड़ी थी।

उन्होंने कहा, यह देखिए। जनवरी तक सब ठीक है। फरवरी में कुल जमा सिर्फ सौ। मार्च में कुछ भी नहीं। अब रोजनामचा दिखा दूं।

मैंने ऊबकर कहा, हटाओ इसे। रह गया होगा बाकी। इम्तिहानों की गड़बड़ियां। रह गया होगा। खैर। पर यह बताइए, आपको बिलों की रकम कौन दिया करता था?

रामप्पा। शुरू से आज तक वही आता रहा है। लेकिन मैं कहता हूं, बच के रहियो साहब। इस मामले में इस तरह के लफड़े हमेशा होते ही रहते हैं। पर हमारे मामले में ऐसा नहीं है। फिर भी जांच कर लेनी चाहिए।

न, वैसा कुछ होगा नहीं। मैंने सारे हिसाब वैद्य नाम के अपने एक दोस्त को सौंपे हैं। वही सब कुछ देखता है। उसके इम्तिहान भी तो करीब ही थे। थोड़ी-सी असावधानी हो गयी होगी। मैं पूरी जांच-पड़ताल कर लूंगा। कल आपका हिसाब पूरा कर लेंगे। आप फिकर मत कीजिये।

न-न साहब, हमें पैसों की चिंता नहीं। वो तो वसूल ही हो जायेंगे। हां, आप सावधान रहिए। इस तरह की गड़बड़ियां आये दिन होती ही रहती हैं।

लौटते समय रास्ते में शिवाजी की प्रतिमा तो थी ही। इस बार स्कूल के बच्चे उसे नमस्कार कर रहे थे।

कॉलेज लौट आया। सीधे मेस। रसोई में रामप्पा से मिला। वह भयंकर पसीने में लथपथ, रोटियां बेल रहा था। मुझे इस काले-मुच्च रामप्पा के प्रति हमेशा तरस आता रहा है। एक प्रकार का लाड़। मेरी यही आदत। किसी भी चीज़ से भयंकर लगाव। अब देखिए, इस रामप्पा का चेहरा झुर्रियों से भरा हुआ है। पूरा शरीर पीले पत्तों की तरह लिजलिजा। जब खड़ा रहता है, टांगें कांपती रहती हैं। इसका कुर्ता भी देखो कितना गलत है। लेकिन खाना बनाते समय मैली-कुचैली जनेऊ पहने वह अपना काम निपटाने के लिए कितना बेचैन रहता है। उसका यह कुर्ता पहले किसी बहुत स्मार्ट लड़के के बदन की शोभा था। वहां से उतर कर अब रामप्पा के बदन पर आ गया है। रामप्पा के निकट वर्ष का कोई लेखा-जोखा नहीं। दिन हों, महीने हों, या साल—सब कुछ गुजरता चला जाता है। बस इतना ही पता है उसे। सिर्फ इसी बिल्डिंग में रामप्पा की सूझ-बूझ वाली पूरी उम्र खप गयी थी। जूठी थालियों ने, लथपथ कटोरियों ने और चूल्हे के सामने की धुआंआलूदा दीवारों ने इसकी जिन्दगी धुन डाली थी।

इस साल तो रामप्पा बहुत ही घिनौना नजर आ रहा है। इसलिए, उसे नौकरी से निकाल देने के लिए सामंती किस्म के कुछ विद्यार्थियों ने हुल्लड़बाज़ी शुरू कर दी थी। लेकिन मैं और मेरे तीन-चार साथियों ने मिलकर उनकी इस बदमाशी का ज़ोरदार विरोध किया। उनमें से एक को तो मैंने बिल देर से चुकाने के इलज़ाम में होस्टल से निकाल दिया था।

हम में से किसी एक ने कहा था, रामप्पा का नेटा दाल में गिर गया है। इसी-लिए आज दाल बहुत बढ़िया बनी है। हम रामप्पा को प्यार करते हैं। रामप्पा हमको।

गांव के किसी आदमी के साथ रोज़ी-रोटी की तलाश में मां-बाप ने इस लड़के को भिजवा दिया था। यही वह बच्चा है जो बर्तन साफ़ करता हुआ अपनी काब-लियत से आगे रसोइया बन चुका था। उसके साथियों में से आज कोई भी नहीं बचा है। किसी ने इसे धोखा दिया। किसी की मृत्यु हो गयी। फिर इसकी बीवी मरी। अपनी राम-कहानी कहते समय रामप्पा के चेहरे की एक भी झुर्री कांपती नहीं है।

दोपहर बारह बजने के बाद मैस की इमारत सूनी हो जाती। नौकर-चाकर सभी लोग सैर-सपाटे के लिए शहर चले जाते। ऐसे कुछ लोग जिन्हें सफ़ेदपोश विद्यार्थियों के बीच घुटन महसूस होती, खाली समय में एक जगह बैठ जाते और ठेठ-ठाठ की गालियां बकते ठहाके लगाया करते।

रामप्पा लेकिन हमेशा मैस के एक खंभे से टिका बैठा रहता। सदा टूटा हुआ। इस महान कॉलेज में रामप्पा भूत की तरह बैठा रहता। इम्तिहान की परेशानियों से आतंकित लड़के उसे डांट-डपट किया करते। वह यह सब सह लेता। रसोई के उस विशाल चूल्हे पर नियंत्रण रखता। कोने में खड़ा रहकर अदब से अपनी तनख्वाह मांगता। गंभीर सेठ के लिए दी गयी रकम तुरंत पहुंचा देता। उसी शाम रसीद ले आता। और फिर बड़ी नम्रता से उसी कोने में खड़ा रहता। एक ज़माने में थाली की किनार छू जाने तक शुद्ध देसी घी परोसने वाला यही रामप्पा आजकल डालडा खाने वालों की किस्मत पर तरस खाता। एक वक्त में दस-दस रोटियां पचा सकने वाले विद्यार्थियों की उस पीढ़ी को अब तीन रोटियों पर उतरते उसने देखा है। इसने कई सेक्रेटरी देखे होंगे। पचास रुपयों से लेकर पेंसिल तक के सभी किस्म के जाली बिल ले आनेवाले वगैरा। इनमें ढोंगी, लुच्चे, मेरी तरह दयालु। सभी तरह के लोग होंगे। लेकिन रामप्पा ने कभी किसी से बदनामी मोल नहीं ली। इसलिए तो वह सुखी रह सका था।

सैकड़ों विद्यार्थी रामप्पा के हाथ का खाना खाकर यहां से निकल चुके थे। मैं कल्पना करता कि आज से तीस बरस बाद मैं कोई बड़ा आदमी बन गया हूं। रामप्पा अब भी जीवित है। वह मुझे अब भी पहचान पाता है। मान लो एकदम से न भी पहचान पाये, वह अपनी धोती की लांग से हाथ पोंछता हुआ मेरे करीब आता है। और फिर गौर से देखने पर मुझे जैसे-तैसे पहचान पाता है।

मैंने रामप्पा की एक बड़ी तसवीर खिंचवायी। यह उसकी पहली तसवीर थी। मैंने इसे मैस की दीवार पर टंगवा दिया था।

यह गरीब बूढ़ा आदमी काली-मैली धोती पहनकर हम सौ आदमियों का

खाना बनाता है। पसीने में लथपथ। बड़ा बुरा लगता है। यही ना, कि हम पैसे जो अदा करते हैं। पैसे ! और वह है कि हमें खिलाने के लिए खपता रहे। खिलाने के लिए। यह बात मुझे कभी अच्छी नहीं लगी। मैं सेक्रेटरी बनकर जब पहली बार मैस में गया था तब से यह बात मुझे सालती रही है। रामप्पा जैसा रसोइया ही क्यों मां के बारे में भी मुझे ऐसा ही लगता रहा है। किसी का खाना बनाने के लिए चूल्हे के पास निरंतर खपता रहे, यह ठीक नहीं है। खाने वालों का क्या ? वे सिर-पैर की बातें करते रहते हैं।

इसलिए जब भी मैस के नौकर ज्ञानू, मानू मेरे पास रामप्पा की शिकायत करते, मैं कभी भी उसे कुछ न कहता। ज्ञानू कहता, साहब मानू ने खुद अपनी आंखों से देखा है। दाल की एक बड़ी पोटली इसने पीपे के नीचे छिपा दी थी। साहब, कल इसने पतीली भर के श्रीखंड चुरा लिया था। मैं इतना ही कहता, ठीक है, मैं उसे फटकारता हूं। उसके बाद मे इन लोगों ने शिकायत करना बंद कर दिया।

मैं पसीना-पसीना हो गया था। सीधे रसोई में घुसा। रामप्पा ने मेरे लिए पटरा बिछाया। सब्जी वाले पतीले को ढांकते हुए उसने मुझ से पूछा, हो गये इम्तिहान ?

रामप्पा, परचून वालों का कितना बिल बाकी है ?

कल ही गंभीर सेठ का संदेशा मिला था। मैं आने ही वाला था। लेकिन आपके इम्तिहान। सोचा, बाद में मिलेंगे।

छोड़ो उसे। मैं पूछ रहा हूं, परचून का कितना बिल देना बाकी है ? आज तक कितना चुकाया है ?

वैद्य साहब जितना मुझे देते, उतना मैं पहुंचा देता। और तो मुझे कुछ भी पता नहीं है।

तब मैंने नौकर को भेजकर वैद्य को बुलवा लिया। यह वैद्य साला हमेशा आधी निकर पहनता। और चेहरे पर उसके हमेशा एक लाचारी-सी दिखायी देती।

उसने कहा, फरवरी तक सारा क्लीअर है। रसीदें लेकिन मिली नहीं। मार्च के दो सौ दे दिये हैं। और मेरे पास कुछ दस-बीस रुपये पड़े होंगे।

रामप्पा अंदर से दौड़ा-दौड़ा आया।

मैंने कहा, रामप्पा वैद्य का कहना है—फरवरी तक के सभी पैसे चुका दिये हैं।

रामप्पा ने कहा, सभी कहां ! सिर्फ़ सौ। सो मैंने पहुंचा दिये थे।

वैद्य ने झुंझलाते हुए कहा, झूठा। मानू को बुलाओ। मानू के सामने मैंने इसे तीन बार पैसे दिये हैं। यहीं, इसी जगह।

मानू गुरगुराने लगा था। कहने लगा, साहब, हमें इसमें मत खींचिए। हम रहे नौकर आदमी। बीस रुपयों की माहवार से हमारा मतलब।

मैंने पूछा, जो सच है, बताओ। तुम्हारे सामने दिये थे ?

पर मानू चुप था। इधर भोजन के लिए लोगों की आवा-जाई शुरू हो गयी थी। हमारे इस मामले को देखकर उन्हें मज़ा आ रहा था।

वैद्य को लगा, सेक्रेटरी को उस पर शक है। वह ज़ोर-ज़ोर से बोलने लगा था। मैंने उसे शांत करते हुए कहा, भले आदमी, खामोश भी रहो। पैसे किसने खाये हैं, इसका पता आखिर लग ही जायगा। तुम घबराओ मत।

मानू बताओ। ज्ञानू, तुम्हें कुछ पता है ?

ज्ञानू ने कहा, साहब परोसूं या यह काम करूं ? यह सही है कि वैद्य साहब हमारे सामने पैसे देते थे। लेकिन पैसे किस बिल के और किस महीने के होते, इसे हम कैसे समझें ? आप ही बताइए।

मतलब अब रहा रामप्पा। और वैद्य। लेकिन लगता है, आखिर में शायद मैं ही अकेला पकड़ा जाऊंगा। क्योंकि रामप्पा ने तो कह दिया था कि वह प्रत्येक भुगतान की रसीद लिये बिना कभी लौटा ही नहीं। हम चाहे तो गंभीर सेठ से इस बात की पड़ताल कर लें। वैद्य को उसने सभी रसीदें दी हैं।

वैद्य अपने कमरे पर गया और कागज़ों से खचाखच भरी फाइल ले आया। फरवरी से आगे का तमाम जमा-खर्च, हिसाब-जोड़, छोटे-बड़े बिल्स—सभी कागज़ो को छांटकर मैंने उनकी जांच की। जनवरी तक की सभी रसीदें ठीक थीं। फरवरी की लेकिन सिर्फ़ एक रसीद मौजूद थी। मैंने वैद्य से कहा, मतलब इसके बाद तुमने दो बार कुल चार-सौ रुपये दिये हैं। और इसकी रसीदें रामप्पा ने तुम्हें लाकर नहीं दीं। यही कहना चाहते हो न ?

उसने कहा, पहली रसीद ले आने के लिए मैंने उसे बार-बार कहा था। पर यह कहता, जब तक पूरा बकाया हम नहीं देते, गंभीर सेठ रसीदें नहीं देते।

तुम खुद क्यों नहीं गये सेठ के पास ?

मैं ? मैं—मेरे जिम्मे, मुझे सिर्फ हिसाब···मतलब···हो आया होता। लेकिन पढ़ाई। फिर भी मैं आपके कमरे पर एक बार आया था। आपने कहा था, रामप्पा ऐसा कुछ नहीं करेगा। उसके बाद फिर एक बार मैंने आपके कमरे पर चिट्ठी छोड़ी थी कि आप खुद दुकान पर जाकर पूछताछ कर लीजिए।

मैंने कहा, तुम मुझ से मिले थे। सच है। लेकिन चिट्ठी-विट्ठी मुझे कभी नहीं मिली। देखो वैद्य, ध्यान रखो। इसका नतीजा ठीक नहीं होगा।

उसने कहा, सांगवीकर, मैंने मैस का एक पैसा भी अगर इधर-उधर किया है

तो आप जो भी कहो, करने को तैयार हो जाऊंगा। वैसे सिर्फ़ एक वक्त का खाना पाता हूं, इससे ज्यादा मैं तुम्हारी मैस का कर्जदार नहीं हूं। पड़ोस की मैस में शाम का खाना खाता हूं। ऐवज़ में वहां का हिसाब-किताब देखता हूं। वहां के सेक्रेटरी से पूछिए। एक पैसे की भी धांधली नहीं। मैं सच कहता हूं, मैंने चिट्ठी ज़रूर छोड़ी थी। और फिर कभी आप रास्ते में मिल जाते और मेरी आप से बात करने की इच्छा होती तो साहब आपने कभी मेरे नमस्कार का भी जवाब नहीं दिया।

यह बात लेकिन सच थी। क्योंकि वैद्य जब भी मिलता, वही हिसाब, बिल्स, गंभीर सेठ, इस महीने का इतना डिपाज़िट बाकी है, फलां महीने का उतना बिल कल भिजवा देता हूं। कुछ लड़के बिल मेरे पास देते ही नहीं, क्या आप उनसे मांग लेंगे? रामप्पा अब तक रसीदें नहीं ले आया, या ले आया—वगैरा-वगैरा यही सब सुनना पड़ता।

मैंने वैद्य को सीधे धमकी दी। कहा, तुम्हें पुलिस के हवाले कर दूंगा। रामप्पा को भी झूठ-मूठ का धमकी दे डाली। बेचारा रामप्पा मेरे पैर छूने लगा। मैं उस पर झूठा गुस्सा वगैरा दिखाकर वहां से निकल आया।

शाम का खाना मैंने अपने कमरे पर ही मंगवा लिया। रामप्पा मेरी थाली लेकर आया था। डरा-डरा-सा एक कोने में बड़ी नम्रता से खड़ा रहा था। नोटिस-बोर्ड पर लगवाने के लिए एक सूचना मैंने उसे दी थी। लिखा था, आइंदा से वैद्य के साथ कोई भी पैसों का लेन-देन नहीं करेगा। सारा पैसा सेक्रेटरी के पास जमा करवाना होगा।

उसके चले जाने के बाद मैंने जनवरी से आगे के तमाम बिल्स देखे। पर इससे क्या लाभ होने वाला था? नमक, मिर्च, गेहूं, चावल जैसी थोक चीज़ों के खर्च के आंकड़े तो थे ही, लेकिन अंगीठी ठीक करवाने के चार आने, एक साबुन, मंडी तक ज्ञानू का साइकिल-भाड़ा, अगरबत्तियां, दूध आदि कई तरह के सैकड़ों लफड़े थे। इतने सारे आंकड़ों का जोड़ कौन मिलाये?

हर महीने लगभग तीन हज़ार रुपयों का जमा-खर्च। मुझे लगा, इतने बड़े मामलों में छ:-सात सौ रुपयों की धांधली मामूली बात थी। देखते-देखते शाम हो गयी। शाम को वैद्य रजिस्टर वगैरा लेकर मेरे पास आया। उसने अपने पास रखे पच्चीस रुपये और देय सूची मुझे पकड़ाते हुए कहा, सांगवीकर साहब, सच मानिए मैंने कोई धांधली नहीं की है।

मैंने कहा, गेट आउट।

देय रकम, चालू महीने का खर्च, जमा डिपाज़िट्स, हर एक के नाम निकली बाकी आदि झमेलों का हिसाब पूरा करते-करते काफ़ी रात हो गयी।

सारा हिसाब लगाने के बाद अन्त में इस नतीजे पर पहुंचा—हमारे पास नकद जमा हैं लगभग तीन हज़ार रुपये। डिपाज़िट्स लौटाने हैं तीन हज़ार दो सौ रुपयों के। यहीं दो सौ रुपयों का घाटा है। और फिर गंभीर सेठ, टालवाला, वगैरा लोगों का जो कर्ज़ बाकी है, सो अलग। मतलब अभी देय कितना है भला ?

यह सोचते-सोचते मैं बुरी तरह ऊंघने लगा था। रात-भर आंकड़े और आंकड़े, जोड़-घटाना, गुणा-भाग करते-करते मैट्रिक के बाद भूला हुआ गणित फिर से ताज़ा हुआ। अब सुबह हो ही रही थी। तब मैं सो गया।

उठा तो देखता हूं कि दस बज गये हैं। मतलब सिर्फ दो-तीन घंटे सोया। दिमाग से आंकड़े अभी निकल नहीं पाये थे। टेबिल पर फैले हिसाब के कागज़ वगैरा बता रहे थे कि आंकड़े मिलाना अभी शेष है। इसके अलावा कई और झमेले निपटाने थे। घर से चिट्ठी मिली थी—इम्तिहान कैसे रहे ? कब आओगे ? सुमी, मनी, जाई और छोटी नामी सब इन्तज़ार कर रही हैं। जल्दी आओ।

मैस के मामले जब तक साफ नहीं होते मैं घर नहीं जा सकता था। तब तक मेरा जाना स्थगित हो गया। सब से पहले तो यह देखना होगा कि हरेक के नाम कितना बकाया निकलता है। यह भी देखना होगा कि अब तक वसूल धन को डिपाज़िट धन से घटा देने के बाद मैस पर कितना देय निकलता है। सोचा, किसी मित्र की हिसाब-किताब पूरा करने के लिए मदद लें। पर जब हर कोई अपने घर जाने के लिए उतावला था, कोई क्योंकर इसके लिए रुकता ? अब तो अपने राम ही अकेले हैं। कमर कसनी होगी। पैसों का मामला साफ करके ही चैन लेंगे।

दिन-भर इसमें सिर धुनता रहा। अखिर शाम को इस नतीजे पर पहुंचा कि इस पूरे मामले से मुक्त होने के लिए अपनी जेब से छः सौ रुपये भरने पड़ेंगे। मतलब छः सौ रुपये वैद्य हज़म कर गया। छः सौ।

सुरेश, लाड़ी, जोशी वगैरा को मैंने यह सारा मामला बताया। लाड़ी ने कहा, आखिर जहाज को पंछी पुनि जहाज पर आ गया। सुरेश ने कहा, पुलिस में तुरन्त खबर कर देनी चाहिए। जोशी ने कहा, इससे क्या लाभ ? पुलिस तक जाने से पहले प्रिंसिपल साहब की इजाज़त ज़रूरी है।

लाड़ी ने कहा, हम एक काम करते हैं। उस साले वैद्य को दम देकर देखते हैं। संभव है, पैसा निकल आये।

महादेवन ने कहा, या तो वैद्य और रामप्पा की साझीदारी होगी। या अकेले रामप्पा ने खाये होंगे। अगर यह सच नहीं है तो फिर निश्चय ही अकेले वैद्य ने हड़प कर लिये होंगे।

लाड़ी ने पूछा, साला यह मद्रासी आदमी अंग्रेज़ी में क्या बोलता है ?

सुरेश ने कहा, उस पर निगरानी रखो वरना यह भड़ुवा वैद्य को जाकर सब कुछ बता देगा।

जोशी ने कहा, इतने पैसे हड़प कर लेने की हिम्मत वैद्य के पास नहीं है।

मैंने कहा, मुझे विश्वास है रामप्पा का इसमें कोई हाथ नहीं है।

सुरेश ने झट कहा, क्योंकि वह तुम्हें आते-जाते टमाटर ला दिया करता था।

लाड़ी ने कहा, पांडोबा, तुम्हें अकल नहीं है। गैदरिंग की तरह यहां भी गलती मत करना। यहां तुम्हारे नाम निकला पैसा कोई और नही चुकायेगा। साला छः सौ रुपये कोई छोटी बात नहीं होती। मतलब हमारा पूरे साल का खर्च समझो।

महादेवन ने कहा, पिछले साल हमारी मैस के सेक्रेटरी को सौ रुपये भरने पड़े थे। पर उसने खाये भी तो थे। सैंकड़ों हड़प कर गया था वह। इसलिए सौ रुपये भरने में उसे कोई परेशानी नहीं थी।

महादेवन को हमने वहां से भगवा दिया। फैसला हुआ कि वैद्य को कमरे में बन्द करके उसकी अच्छी पिटाई करें। देखते हैं, कैसे वसूल नहीं होता पैसा ?

तब सुरेश और मैं वैद्य के कमरे में घुस गये। कमरा बहुत ही गंदा था। वह लेटा पड़ा कागज़ का कोई पुलिंदा उलट-पुलट रहा था। हमीं ने दरवाज़ा बंद कर लिया। वह हड़बड़ा कर उठ बैठा। कहने लगा, बैठिए।

सुरेश ने कहा, बैठने के लिए नहीं आये हैं बेटा। तुम्हारी मरम्मत करने का इरादा है।

मैंने कहा, वैद्य के बच्चे, पुलिस के हवाले करने से पहले मैं तुमसे साफ़-साफ़ पूछना चाहता हूं, कि जो सच है बता दो। तुम्हें हम कुछ नहीं करेंगे।

वैद्य पसीने से भीग गया था। पहले तो वह कुछ बोला ही नहीं। हाथ के कागज़ मेज़ पर रख दिये। कोने में खड़ा हो गया। कांपने लगा था।

उसने कहा, सच कहता हूं सांगवीकर, यह काम रामप्पा का है। रामप्पा ने चलते-चलते मुझे भी झांसा दे दिया। मैं तो सिर्फ लड़कों के पैसे अपने पास जमा करता हूं। दो-एक सौ जैसे भी जमा हो जाते हैं, रामप्पा के हवाले कर देता हूं। सच कह रहा हूं। मैंने उसे एक बार दो सौ और परसों तीन सौ दिये। बहुत पहले जो सौ दिये थे उसकी रसीद भी मुझे अब तक नहीं मिली। यह बात मैं आपको बता चुका हूं। वह लुच्चा है। और फिर मैं इतनी बड़ी रकम अपने कमरे पर कभी नहीं रखता। मुझे डर होता है कि क्या पता, कहीं चोरी न हो जाय।

भड़ुवे, तुम्हें आखरी बार कह देता हूं वरना देख लो—सुरेश दायें हाथ की आस्तीन ऊपर चढ़ाने लगा था।

मैं नहीं चाहता था कि वैद्य को पाटें। इतने में लाड़ी और जोशी वहां आ गए। लाड़ी के हाथ में डंडेवाला झाड़ू था। लाड़ी ने झाड़ू का डंडा वैद्य की छाती पर रखकर उसे दीवार से दबोच दिया।

मैंने कहा, रुक जाओ लाड़ी। वैद्य के बच्चे, सच बता तूने कितने लिये, और रामप्पा ने कितने ?

वैद्य यकायक रो पड़ा। चीखकर उसने कहा, तुम लोग मुझे पीट रहे हो ? कोई कसूर है मेरा ? सुअर के बच्चे।

झटका देकर उसने झाड़ू अलग किया और दरवाज़े की तरफ़ भागा।

सुरेश ने फुर्ती से उसका कॉलर पीछे से पकड़ लिया और उसके थोबड़े में एक तमाचा जड़ दिया—भागना चाहता है, मोसड़ी के। निकाल पैसे। निकाल।

यह देखकर जोशी साहब बहुत घबरा गये थे। कहने लगे, दिस इज इनह्यूमन। उन्होंने दरवाज़ा खोला। खुद बाहर चले गये।

हम दरवाज़ा बन्द कर ही रहे थे कि पूरी ताकत लगाकर वैद्य ने सुरेश को झटका दिया और दहलीज फांद कर बाहर निकल भागा। सुरेश गुस्से में उसके पीछे-पीछे। इस शोर-शराबे को सुनकर आस-पास के लोग जमा हो गये थे। ये सब लोग बी० ए० के विद्यार्थी, इसलिए वैद्य के दोस्त।

वैद्य रोता-बिलखता कहने लगा था, ये लोग मुझे पीट रहे हैं।

उन लोगों ने वैद्य को अपनी तरफ कर के सुरेश को घेर लिया। तब लाड़ी उन लोगों से उलझ गया। उसने सुरेश को छुड़वाया। अब सुरेश और लाड़ी मिलकर वैद्य पर हमला करने लगे थे। ज़ोरदार छीना-झपटी हुई। मैं भी बीच में कूद पड़ा। मतलब, ये लोग हमारे लिए इतना कुछ कर रहे हैं और हम हैं कि सिर्फ खामोश खड़े रहें ?

इस बीच वैद्य बड़ी सफ़ाई से भाग निकला। वह भाग-भाग, प्रो० शाह के बंगले में घुस गया। तब हम लोगों ने यह कहकर कि पुलिस को खबर कर देंगे, वहां से मुक्ति पा ली। कमरे पर पहुंचे ही थे कि खान-मैंया आया। कहने लगा, शाह साहब ने आप सब लोगों को बुलाया है।

सुरेश और लाड़ी ने कहा, शाह साहब से कह दो, हम नहीं आते।

लेकिन मेरा जाना ज़रूरी था। साला जो कुछ हुआ, ठीक नहीं हुआ। यह तो खैर हुई कि वैद्य साला शाह साहब ही के यहां पहुंचा। प्रो० परांजपे के यहां पहुंच जाता तो और परेशानी। प्रो० शाह वैसे भले आदमी। एक बार क्लास खत्म हुई थी। नीचे उतरने के रास्ते पर बायें ज़ीने में लड़के-लड़कियों की बहुती भीड़ थी। इसलिए मैं दायीं तरफ के ज़ीने से नीचे उतरने लगा था। नीचे से प्रो० शाह ऊपर

आ रहे थे । मेरी कुहनी पकड़कर उन्होंने कहा, ऊपर चलिए। मुझे लेकर वे ऊपर चले आये थे। वहां मुझ से उन्होंने कहा था, तुम सेंसिबल विद्यार्थी हो। तुम्हारा नाम सांगवीकर ही है ना ? दिस इज द वे। तब खुद को दुरुस्त करते हुए बायें जीने से नीचे उतरा था —इसलिए लगा कि चलो अच्छा है, प्रो० शाह से कुछ तो बातचीत हो सकती है। परांजपे साहब के यहां तो सिर्फ़ उनकी गालियां सुनो। और पांच-रुपये फाइन सो अलग।

मैं शाह साहब के यहां गया। उन्होंने पूछा, ह्वाट इज़ दिस मैस, सांगवीकर ? आर यू ऑफ ?

मैंने मैस वाला सारा किस्सा सुनाया। उन्होंने कहा, संक्षेप में बताओ। आठ बजे ट्यूशन के लिए मेरे विद्यार्थी आते हैं।

मैंने कहा, ठीक है, तो अभी आधा घंटा बाकी है। संक्षेप यह है कि लड़के वैद्य के पास पैसा जमा करवाते रहे। लेकिन रकम गंभीर सेठ तक पहुंची ही नहीं।

उन्होंने कहा, दोनों के बीच रसोइया भी है, इसे मत भूलिए। डोंट फारगेट दैट। वैद्य को मैं अच्छी तरह जानता हूं। आई नो हिम वेरी वेल। और उसे अगर पुलिस-वुलिस के हवाले किया तो ध्यान रखिए मैं उसकी तरफ से गवाही दूंगा। वैद्य, यू केन गो नाऊ। डोंट वरी, आई विल सेटल दिस।

फिर भी वैद्य वहां से नहीं जा रहा था। शाह साहब ने कहा, पुलिस का कोई खतरा नहीं है। सांगवीकर इज़ नाट सो एबनार्मल।

फिर वैद्य चला गया।

उसके बाद प्रो० शाह मेरे साथ उलझते रहे।

उन्होंने कहा, मैंने यहां पंद्रह साल गुज़ारे हैं। इस तरह के केसेस बार-बार आते रहते हैं। लेकिन नाइंटी परसेंट झमेले जस्ट रसोइए के कारण होते हैं। 1942 में विश्वंभर नाम का एक सेक्रेटरी हुआ था। उसका भी इसी तरह कोई केस था। रसोइए लोग ही यह सब किया करते हैं। और अगर रसोइया इसमें कहीं नहीं है, तो समझ लो तब सेक्रेटरी लुच्चा है। वही पैसे हड़प करता रहता है। आप लोग एक बार पढ़ाई में बिज़ी हो गये कि रसोइये का नियंत्रण शुरू हो जाता है। आप लोगों को इम्तिहान के बाद इस राज का पता चलता है। फिर भी गेन कुछ नहीं। क्योंकि कहीं-न-कहीं इस मामले में सेक्रेटरी जिम्मेदार होता ही है। डू नाट से नो। वह पैसे खाने पर मजबूर हो जाता है। आप सोचिए, हर महीने दो-तीन हज़ार रुपयों का लेन-देन मुफ़्त में कोई क्योंकर संभालेगा ? खैर, अब बताइए आप पर कितने पैसे निकलते हैं ? वैद्य का इसमें कोई हाथ नहीं है। इट्स नाट इन हिम टु डू दैट। वह बी० ए० कर रहा है। बेचारे ने चार साल बड़े परिश्रम से गुज़ारे हैं। अगर अब ऐन मौके पर तुम उसे परेशान करोगे, तो

आई शैल बी वेरी सॉरी। लेकिन मान लो वैद्य ने कोई धांधली की भी है या रसोइये ने कोई गड़बड़ी की है। तब भी पुलिस-वुलिस क्या कर लेगी ? क्योंकि तुम्हारे पास कोई प्रूफ नहीं है और पुलिस को तो तगड़ा प्रूफ चाहिए।

मैंने उन्हें रोकते हुए कहा, प्रूफ यही है कि उसने लड़कों से पैसे वसूल किये हैं। और कि रसोइये के पास नहीं दिये हैं।

वह सब ठीक है। लेकिन तुमने रसीद-बुक पर दो महीनों की अग्रिम दस्तखते कर रखी हैं। इस तरह की रसीदें और भी बची होंगी। ठीक है कि नहीं ?

जी, यह सच है।

तब पुलिस में तुम क्या बयान दोगे ? वैद्य इसमें कहीं भी पकड़ा नहीं जायेगा। लेकिन वैद्य के बारे में तो मैंने पहले ही कहा है—ही इज ए गुड ब्वाय। रसोइये को भी तुम लोग नहीं फंसा सकते। ये लोग वैसे पक्के मवाली होते हैं। कल को भरी सड़क पर वे तुम्हें पीट सकते हैं। पुलिस में दाखिल करने लायक तुम्हारे पास कोई प्रूफ नहीं है। फिर भी अगर तुमने कंप्लेंट दर्ज कर दी तो समझ लो तुम्हें तमाम छुट्टियों में यहीं रुकना पड़ेगा। और तब लगातार परेशानियां। वॉर्डन तक जब यह मामला जायेगा तो वह यही कहेंगे कि पैसे सेक्रेटरी ने ही खाये हैं। हर साल यही किस्सा होता है। इसलिए अगर तुम मेरी राय सुनना चाहो, तो मैं यही कहूंगा।

मतलब छः सौ रुपये अपनी जेब से भर दूं, यही न ?

येस। देखिए। इसी में शराफ़त है। तुम्हारे पिताजी घर के कैसे हैं ?

ठीक-ठाक हैं। लेकिन इस तरह के मामलों के लिए वे पैसे नहीं भेजेंगे ?

तब फिर सोच लो। तुम्हारी मर्ज़ी हो वैसा करो।

मैं कमरे पर लौट आया। सुरेश, लाड़ी वगैरा वहीं थे। उन्होंने कहा, यह जबरदस्ती नहीं चलेगी। हम पुलिस में जायेंगे। कहते हैं, घर से पैसे मंगवा लो। क्या मतलब हुआ ?

बात बिलकुल सही है। घरवालों को कसे मनवायें ? यह तो और भी मुश्किल है। एक बार दुकान से घर आते वक्त रास्ते में मां की चवन्नी कहीं गिर गयी थी। तो वह घर से उसी वक्त मुड़ गयी और सारे रास्ते उसे तलाशती रही थी। और पिताजी की तो बात ही दूसरी है। वे तो हमेशा के मनिआर्डरों के लिए भी जब इतने कुरकुराते रहते हैं तब भला छः सौ रुपयों की मांग उनसे कैसे संभव है ?

तब सुरेश ने कहा, हम लोग जा रहे हैं। बहनचोद इसका हेमलेट शुरू हो गया है। क्या हम लोग निट्ठल्ले हैं जो तुम्हारे मामलों में वक्त बरबाद कर रहे

हैं ? हमें भी तो अपने घरों को जाना है।

मैंने कहा, मुझे कल तक समय दो। कल सुबह मैं पक्का बता दूंगा कि क्या फैसला रहा।

सुरेश ने कहा, मतलब तब तक चिंतन करते रहोगे तुम ? सुबह तक कौन रुकने वाला है इस होस्टल में ? कल तो हम चले अपने घर !

उसके बाद मैं मद्रास होटल चला गया। आंकड़ों को याद करता हुआ बैठा सिगरेट पीता रहा। रात बड़ी बुरी तरह कटी। सारी रात कई विकल्प सोचता रहा।

कमरे पर लौट आया। मैस बंद किये जाने का नोटिस लगवा दिया। जितना राशन बचा था, उसी रात गंभीर सेठ की दुकान लौटा दिया। शेष चीज़ें रामप्पा को दे डालीं। क्लब में नोटिस लगवा दिया—आज का यह आखिरी खाना। मेंबरों को चाहिए कि वे आज रात तक अपना पूरा हिसाब मेरे पास चुका दें।

उस रात मेरे कमरे पर मेंबरों की कतार लगी थी। पड़ोसवाले हमारे जोशी साहब को यह दृश्य इतना मज़ाकिया लगा कि वे पढ़ाई करना भी भूल गये और मेरे पलंग पर आकर बैठ गये।

एक आदमी अंदर आता। मैं उसका बिल देखता। डिपाज़िट की रकम घटा कर बाकी पैसे दे देता। दूसरा तैयार ही रहता। वह खुद अपना बिल देख लेता। मुझे पैसे दे देता। और डिपाज़िट ले जाता। उस रोज़ जो नहीं आ पाये थे उनसे मैं दूसरे दिन मिला था। इस तरह सबका हिसाब पूरा कर डाला। कुछ लोग बहुत गरीब नज़र आये। उन्होंने कहा, अगर बिल बाद में अदा करें तो नहीं चलेगा ? मैंने कहा, नहीं-नहीं। अभी चाहिए। कुछेक ने तो पैसा उधार लेकर बिल चुकाये थे। लेकिन कुल मिलाकर मुझ पर ही होस्टल का पैसा निकला था। बचाकर रखे हुए मेरे सारे पैसे उन दो दिनों में खत्म हो गये।

तब फिर बचा मैं, कंगाल आदमी। और छः सौ रुपयों के देय बिल्स। उन दो दिनों में गंभीर सेठ का आदमी कई बार आ चुका था। आखिरकार मैंने गुस्से में आकर उस आदमी से कहा, अपने सेठ से जाकर कहो, अगर मैं मर जाऊं तब भी घर नहीं जाऊंगा। वह इसके बाद फिर से आया नहीं।

अब उन क्षुद्र विद्यार्थियों की आवा-जाई कम हो गयी थी। मैं अकेला रह गया था। अकेले में मुझे यमराज याद आये। कितनी बुरी बात हुई। स्थिति से कैसे निपटा जाय ?

वैसे पैसों का महत्व हमारे लिए कभी नहीं रहा। दराज़ों में दो-दो सौ रुपये खुले पड़े रहते। कमरे में हर कोई आ-जा सकता था। कमरा हमेशा खुला

रहता। क्या पता कभी कोई सौ-दो सौ रुपये उठा ले गया हो। उस भीड़-भड़क्के में इसका पता चलता ?

अब इतनी बड़ी रकम किससे मांगी जाय ?

घर से तो पैसे मंगवाने ही नहीं हैं, चाहे जो भी हो। पर इतनी बड़ी रकम कौन उधार देगा ? छुट्टियों के बाद अगले जून में लौटा देने का किसी से वादा कर लें और मान लो खुद फेल हो गये तो उस स्थिति में अपना बाप फिर में हमें पूना क्योंकर भेजेगा ?

हमने कभी कोई काम ठीक ढंग से नहीं किया है।

मैंने सोच लिया था कि आज रात कहीं भाग चलें। या सच कहूं, मन हुआ आत्म-हत्या क्यों न कर लें ?

इस चाकू से वार कर लें ?

मैंने चाकू उठाया। अपनी उंगली पर धार चलायी। काफ़ी रगड़ने के बाद खून निकल आया था। साला चाकू भी भोथरा। बताइए, कौन इस भोथरे चाकू से अपना पेट फाड़ेगा ? मैंने चाकू जेब में रख दिया और नाना चौक चला गया।

पहले कभी किसी कार्यक्रम के सिलसिले में यहां आ चुका था। तब धार लगाने वाली वह मशीन यहां देखी थी। धारवाले ने मेरे चाकू को सान पर चढ़ाया। मैंने उंगली से धार आजमाते हुए कहा, और तेज़ करो।

तब तक उसने मेरी तरफ देखा भी नहीं था। वह एक बड़े छुरे को तेज़ कर रहा था। छुरे को गौर से देखते हुए मैंने सोचा, यह बढ़िया रहेगा।

उस आदमी ने सान पर चाकू को दो-तीन बार दबाकर तेज़ किया। चाकू लेकर मैं घर लौट आया।

रास्ते की भीड़ मुझे बड़ी राक्षसी लगी। साले सब लोग गधे हैं। कितनी क्षुद्र चीज़ें खरीदने में समय गंवा रहे हैं। साले हरामखोर।

मैंने कल खाना नहीं खाया था। क्योंकि मेरे पास शायद अब दो-एक रुपये बचे होंगे। क्या करें इन पैसों का ? क्यों न कहीं बढ़िया खाना हो जाय। सुबह से भूखा हूं। ज़िंदगी का यह आखिरी भोजन था, इसलिए एक अच्छा होटल पसंद किया। मीनू देखा। डेढ़-रुपये वाला खाना मंगवा लेना चाहिए। पकौड़े तैयार थे। पकौड़े और खाना मंगवा लें। पकौड़े। कांदा-पकौड़े।

वेटर आया तो मैंने सिर्फ़ पकौड़े मंगवाये। अब अगर मरना ही है तो भर-पेट खाना खाकर क्या फायदा ? खाना खा लेने पर कहीं मरने की इच्छा समाप्त न हो जाय ? इसलिए यही ठीक है। पिछली दो रातों से अच्छी नींद सोया नहीं था। फिर भी नींद कहां आती है ? इतनी ज़्यादा भूख लगी है, फिर भी कोई

उत्साह नहीं लग रहा है ।

पकौड़े खा लिये। अब कम-से-कम चाय पी लेने में क्या हर्ज है? कुछ तो ठीक लगेगा।

फिर चाय आयी। वेटर को टिप नहीं दी। कहीं से चार मिनार के दो पैकेट्स खरीदे। और चल दिया।

रास्ते में एक परिचित लड़की दिखायी दी थी। बहुत धीरे-धीरे चल रही थी। क्यों न इसे कमरे पर ले चलें? लगा, वह ज़रूर हां कहेगी। अगर उसे बता दूं कि मैं आत्महत्या करने जा रहा हूं तो वह इनकार नहीं कर सकती। लेकिन मैंने कुछ नहीं कहा। चलते-चलते उसे गौर से देख लिया और कमरे पर चला आया।

दरवाज़ा ठीक से बंद कर लिया। खिड़की भी बंद कर ली। चाकू खोला और उसे टेबल पर रख दिया। सारे कपड़े उतार लिये और एक ताज़ा सिगरेट मुंह में ठूंस लिया। खामोश लेटा रहा।

फिर उठ बैठा। सिर्फ पेंट पहन ली। दरवाज़ा खोलकर देख लिया कि कहीं कोई है तो नहीं। सब लोग अपने-अपने घर गये हुए थे। एक कमरे में ताला नहीं लगा था।

मैंने फिर नयी सिगरेट सुलगायी। दरवाज़ा ठीक से बंद कर लिया। तकिये को गरदन के नीचे खिसका लिया। खुद से कहा, अब यह आखिरी सिगरेट। और फिर ज़रा सुस्ता गया।

सच पूछो तो उस वक्त मुझे काफ़ी खुशी होनी चाहिए थी। लेकिन पता नहीं क्यों, मुझे यों ही क्रोध उमड़ आया था। सिगरेट खत्म हो चुकी थी। फिर से दूसरी निकाली और चाकू की तरफ देखता हुआ मैं फिर एक बार सुस्ता गया।

यह भी खत्म हुई। तब एक और सिगरेट निकाल ली। चाकू हाथ में थाम लिया। पेट पर नोक दबाकर देखी। मन में फैसला कर लिया कि हथेली से दिल की धड़कन वाली जगह टटोलकर दूसरे हाथ से बिलकुल उसी जगह चाकू चला दिया जाय। अब मैंने कुरता पहन लिया। फिर से चाकू हाथ में लेकर लेट गया। बिलकुल उसी क्षण खिड़की के ऊपर वाले झरोखे से एक चिड़िया भीतर आयी और फिर से बाहर चली गयी।

कुछ देर लेटे रहने के बाद मैं उठा और चाकू को फ़र्श पर इतना ज्यादा रगड़ा, कि धार भोथरी हो गयी। फिर मैंने उसे ट्रंक में फेंक दिया। हम आत्महत्या वगैरा नहीं करेंगे। फिर बची-बचायी तमाम सिगरेटें पी डालीं। और घनघोर

सो गया। जागा तब देखा घुप्प अंधेरा था। यह कल वाली रात है या परसों की? थोड़ी देर बाद कॉलेज के आहाते से घंटी का एक ठोंका बजने की आवाज़ सुनाई दी। साढ़े बारह या डेड़? थोड़ी देर बाद फिर से एक ठोंका बजा। मैं फिर सो गया।

फिर से नींद खुली तब भी अंधेरा था। क्या यह और आगे वाली रात है? पर अब नींद नहीं आ रही थी। मैं उठ बैठा। बत्ती जलायी। देखा तो दो-तीन चिट्ठियां, दूध वाले के बिल्स आदि चीज़ें कमरे में पड़ी थीं। चिट्ठियां देखीं। घर वाली चिट्ठी में लिखा था, हम लोग तुम्हारा इंतज़ार कर रहे हैं।

मैं सामने वाले कमरे से, जहां बत्ती जल रही थी, दूध ले आया। वह लड़का पढ़ाई में व्यस्त था। मैंने उस दिन की तारीख और वार उससे पूछा। फिर सिगरेट मांगी। उसने कहा, हम सिगरेट नहीं पीते। फिर मैंने अपने कमरे में पड़े टोंटे उठाये और एक एक करके उन्हें पीता रहा। कल के और परसों के भी कई टोंटे वहां पड़े हुए थे।

चाय पीकर पिताजी को एक लंबी चिट्ठी लिखने के लिए बैठा। मैस का पूरा मामला लिख डाला। वादा किया कि भविष्य में पढ़ाई के अलावा दूसरे कामों में बिलकुल समय बरबाद नहीं करूंगा। लेकिन जब पैसे मंगवाने की बात लिखनी चाही और छः सौ का आंकड़ा लिखना पड़ा तो मुझे अपने-आप पर बहुत गुस्सा आया। छः सौ काटकर मैंने पांच सौ लिखे। फिर चार सौ किये। सिर्फ़ दो सौ ही रह जाते हैं। गंभीर सेठ को दो-तीन महीने रुक जाने के लिए कहा जा सकता है। इसीलिए मैंने पिताजी से सिर्फ चार सौ रुपये की मांग की थी।

और फिर से सुबह तक लेटा पड़ा रहा।

इधर मैं काफ़ी संजीदा ढंग से जीवन के बारे में सोचने लगा हूं। मुझे पता है, कोई भी सेक्रेटरी इन मामलों में सैंकड़ों रुपये की कमाई कर सकता है। कइयों ने की भी है। पर मुझे इस बात की खुशी है कि मैं अपनी जेब से पैसे चुकाकर इलज़ाम से मुक्त हो रहा हूं। मैंने किसी के साथ कभी बुरा सुलूक नहीं किया। यहां तक कि वैद्य पर भी मैंने कोई ज़्यादती नहीं की। ज्ञानू, मानू, सदाशिव—इन सभी के साथ प्रेम से पेश आया। वैसे ये साले सब के सब चोर हैं। सदाशिव! यह तो बरतन साफ़ करने वाला नौकर, जिसकी तनख्वाह के करीब पच्चीस रुपये देने बाकी थे। मुझे उस पर बड़ा गुस्सा आया था। इसलिए मैंने झकझोला और कह दिया, कि कैसे पैसे? तुम्हारी तनख्वाह कभी की तुम्हें दी जा चुकी है। हमारी तरफ कोई बाकी नहीं। इस एक हादसे को छोड़कर मैंने कभी किसी से दुर्व्यवहार नहीं किया। मैस के दो मेंबर बड़े गरीब थे। उन्हें मैं एक थाली में दो आदमियों

का खाना दिया करता। हमने चार लोगों के लिए दिन के हिसाब से मुफ्त भोजन का इंतज़ाम करा दिया था। कई लोग समय पर बिल नहीं चुका पाते। और जब परिवार की परेशानी का ज़िक्र करते तो मैं उनके लिए कभी दो-दो महीने रुक जाता। ऐसे लोगों का मैंने कभी पीछा नहीं किया। कुछ गरीब लड़के ऐसे थे जिन्होंने डिपाजिट नहीं भरे थे। फिर भी उन्हें खाना मिलता था। पर ये साले सब के सब चोर हैं। तमाम मनुष्य जाति साली हरामखोर है। मुझ पर जब इस तरह गुज़र रही है तो किसी ने मेरी मदद नहीं की। हर कोई कानून और नियम की तरफ उंगली उठाकर खुद को बचाता रहा। उस एक लड़के ने तो सीधे कह दिया था, वह तो तुम्हारी कमजोरी थी, जो तुमने हमें बगैर डिपाजिट के भोजन करने की इजाज़त दी। इस वक्त मेरे पास पैसे नहीं हैं। कल-परसों भर दूंगा। और फिर जब मैंने गुस्से में आकर उसकी कॉलर पकड़ ली तो फिर कैसे पेटी में से पैसे अपने-आप निकल आये। पैसे मुझे पकड़ाते हुए उसने कहा था, तुम इतने नीच हो मुझे पता नहीं था। सच है, हम नीच ही तो हैं।

वास्तव में इस सब पर तुर्रा तो हम ही हैं। हम न निकले थे कॉलेज फतह करने? बहनचोद। बताइए इस साल हमने क्या कमाई की? देखिये लेखा-जोखा करके। पड़ा कुछ पल्ले? चले कमाई करने। बहनचोद।

सुबह-सुबह चिट्ठी पोस्ट कर दी।

उसके बाद किसी काम में कोई दिक्कत नहीं हुई। घर से तार मिला कि पैसे भिजवा दिये गये हैं। चिट्ठी भेजी है।

लेकिन इस बीच तीन-चार दिन तक फाकाकशी करनी पड़ी थी। सिगरेट न मिलने के कारण तो रुआंसा हो गया था।

एक बार मौसी के घर खाने के बहाने चला गया था। पर जब घर के करीब पहुंचा, सोचा अपनी इस हालत को देखकर मौसी क्या सोचेगी? हो सकता है, वह मेरे घर इसकी खबर कर दे। इसलिए मैं उलटे पैर लौट आया था। फिर मैंने कुछ किताबें बेच डालीं।

एक बार जोशी साहब से चवन्नी की भीख मांगकर ब्रेड, कॉफी वगैरा ले आया—दोनों वक्त यही खाया। सिगरेट के टोंटे भी नहीं बचे थे। उंगलियां झुलस-झुलसकर पीली पड़ गयी थीं। फिर से एक बार उनसे दो आने मांगे थे। इस बार जोशी ने मना कर दिया था। फिर किसी और के सामने हाथ नहीं फैलाया।

इस बीच घर से पैसे मिल चुके थे।

सारे पैसे मैंने गंभीर सेठ को दे डाले। कहा, बाकी जून में चुका दूंगा। सेठ

मान गया। फिर मैं ईंधन वाले की दुकान पर गया। उसने कहा, तुम पर हमारा कुछ नहीं निकलता है। परसों रामप्पा ने सब पटा दिया।

यही चालीस रुपये अब मेरे पास बच गये थे। जेब-खर्च इसी में से अब होना था।

ईंधन वाले के यहां से लौटते वक्त खयाल कहीं और भटक रहे थे। एक मोड़ पर मेरी साइकिल एक लड़की की साइकिल से टकरा गयी। लो, यह नयी परेशानी। देखता हूं, कि साइकिल वाली लड़की बुंदी थी। उसने कहा, बात ही करनी थी तो सीधे रोका नहीं जा सकता था क्या ?

मैंने कहा, मेरा ध्यान कहीं और भटक रहा था।

उसने पूछा, इधर कहां ? और अभी तक पूना ही में ?

मैंने कहा, मैस का एक झमेला निपटाने के लिए रुकना पड़ा।

उसने कहा, तो यह बात है। मैं भूल ही गयी—तुम सेक्रेटरी थे न ? अच्छा ऽऽऽ।

मैंने अब तय कर लिया, कि मैस के बारे में किसी से कुछ भी जिक्र नहीं करना है। सुरेश से भी नहीं। क्योंकि इन सालों को हमारी फजीहत में मजा आता है। इसलिए मुझसे इस संबंध में कोई कुछ पूछ लेता तो मैं सहज होकर कहता, कहां कुछ भी तो नहीं···बस मामूली बात थी।

कमरा छोड़ते वक्त वॉर्डन से भी यही कहा था, कि मौसी के बीमार हो जाने के कारण पूना में रुकना पड़ा था। मैस का चार्ज देते वक्त पता चला कि चार कटोरियां कम हैं। संभव है, कमरों पर खाना मंगवाने वालों के यहां पड़ी रह गयी हों, तलाश करने के लिए मुझे उनके कमरों पर जाना पड़ा था।

अपने गांव पहुंच गया। पिताजी ने पूछा, चिट्ठी मिली ?

मैंने कहा, नहीं। पैसे मिलते ही मैं तुरंत चल पड़ा था। संभव है, चिट्ठी उधर पहुंच गयी हो और मैं इधर निकल आया।

उन्होंने कहा, चिट्ठी में लिखा था कि तुम्हारे मां-बाप ने तुम्हें चार सौ रुपयों का मोल देकर खरीदा था।

मैंने मन ही मन कहा, चार सौ से क्या होगा ? उधर और दो सौ रुपये पटाने बाकी हैं।

तुम मौसी के घर तो कभी जाते ही नहीं। तुम्हारे नाना इतने बड़े अफसर। कम नहीं, तीन सौ रुपये माहवार पाते हैं। उनकी कोई राय तुम्हें जंचती नहीं।

खुद को अकलमंद समझ रखा है। इकलौते हुए तो क्या हुआ ? तुम्हारा यह सुलूक ठीक नहीं है। तुम कोई करोड़पति की औलाद नहीं हो। पता है, पैसा चक्के की तरह बड़ा होता है और तुम हो कि अनुभव पाने के लिए सैंकड़ों रुपये खर्च कर रहे हो।

छुट्टियों के दौरान पिताजी की बड़बड़ाहट के थे ये विषय।

अब एक बार आदमी धोखा खा ही गया हो तब तो उन लोगों की बातें बिलकुल सही होती ही हैं। वास्तव में उन लोगों की राय सही साबित तभी होती है जब हम पूरा-पूरा धोखा खा चुके होते हैं। जो धोखा खा ही नहीं सकता, वह क्यों-कर दूसरों के उपदेश सुने ? इसलिए हमने सोच लिया कि अब भविष्य में कभी धोखा खाएंगे नहीं। लेकिन चूंकि बाप ने हमें जब किसी से खरीदकर लिया है तब तो वह शख्स हमारा बाप नहीं हो सकता। तब तो यह हुआ हमारा मालिक। समझ लो, हम उसके ढाबे में खाना खाते हैं।

तीन

अगर फेल हो जाऊं तो आगे क्या करना है, इसका सारा कार्यक्रम मैंने रिजल्ट से पहले ही तय कर लिया था।

मैं पास हो गया था।

चलो, अच्छा हुआ।

इम्तिहान जिंदाबाद। साले जोशी साहब भी फेल और मधु भी। और जगदाले भी।

फिर मैं जूनियर में प्रवेश लेने के लिए पूना रवाना हो गया। पिताजी ने कहा, नाना जो कहें वही करो। इस साल एक हज़ार से ऊपर एक कौड़ी भी मैं तुम्हें देने वाला नहीं हूं। चाहो तो एक हज़ार रुपये अभी ले जाओ। और सुनो, छुट्टियां वगैरा में इधर आने की कोई ज़रूरत नहीं। छुट्टियां वहीं गुजारो। पढ़ाई-बढ़ाई सब उधर ही करो। अब तक जो हुआ, सो ठीक ही है।

मैंने सोचा, क्यों न उन हज़ार रुपयों को ले लें? पर फिर विचार आया, इतनी बड़ी रकम रास्ते में कोई हथिया ले तो? इसलिए मैंने उन पैसों को मौसी के पते पर भेजने के लिए कहा। हां, अब परेशानी बढ़ेगी जरूर। पैसों के लिए हर महीने मौसी के घर चक्कर जो लगाने पड़ेंगे!

इस बार मैं कंसेशन पर अर्थात् पैसिंजर से पूना आ गया था। हमारी गाड़ी चली और मैं कोरे कागज़ों पर उस एक हज़ार रुपये का बजट बनाने में जुट गया। इसीलिए सफर की बोरियत नहीं हुई। एक-एक कागज़ लेता। उस पर लिखता। कागज़ जब भर जाता तो उसे खिड़की से बाहर फेंक देता। बाहर की हवा में आराम से कागज़ का यह टुकड़ा गोल-गोल घूमता कहीं दूर चला जाता। उसके ओझल होते ही मैं दूसरा कागज़ ले लेता। बीच में सिगरेट पीने का मन हुआ था। लेकिन पूना तक सात रुपयों से ज्यादा खर्च न करने का निश्चय किया था। इसलिए सुपारी के टुकड़े, जिन्हें मैं घर से ले आया था, एक-एक करके खाता रहा।

बड़े एहतियात से पैसों का बजट बैठाया गया था। दो सौ रुपये कर्ज़ के देने

हैं। मतलब, अब बचे आठ सौ। इसमें मार्च तक के नौ-दस महीने काटने हैं। कागज़ की बाईं तरफ आठ सौ क्रेडिट किये। अब खर्च के मदों की एक सूची बना ली जाय। ठीक है। फिल्म? बिलकुल नहीं। सिगरेटें बंद। होटल बंद। और फुटकर खर्च पर? यार-दोस्तों के लिए चाय वगैरा? यह भी बंद। अब तो आठ सौ में आराम से बैठ जायेगा।

हमारी गाड़ी इतनी भयानक थी, कि दो-तीन स्टेशनों के बाद आने वाले प्रत्येक स्टेशन पर मेरा पड़ोसी यात्री ज़रूर उतर जाता। तब मैं टांगें पसारकर आराम से बैठने की सोचता—पर उसी वक्त कोई नया आदमी बोगी में चढ़ आता। और बिलकुल मेरी बेंच पर आकर बैठ जाता। देहु-रोड पर अंदर आने वाले एक यात्री से मैंने पूछा था, आप शायद पिंपरी तक चल रहे हैं?

उसने कहा, ना, पिंपरी में हमारा क्या काम है? मैं तो अभी आगे वाले स्टेशन पर—चिंचवड़ पर उतर रहा हूं। गाड़ी चिंचवड़ पर रुकती है न?

तो संक्षेप में, इस वर्ष पहले की तरह जेब में पांच-दस रुपये रखे—टहलने वाली बात समाप्त। इसलिए सिर्फ़ दो आने काफी हैं। मैं पूछता हूं—यह भी क्यों? होस्टल का कैंटीन कौन दूर है? और फिर टहलने के लिए शहर जाने की क्या जरूरत है? तब तो सिर्फ़ भोजन के पड़ेंगे, वही बस तीस रुपये। शनि-रवि नागा वसूलते रहेंगे। चाय वगैरा कमरे में बनेगी। वह भी सिर्फ़ सुबह। तब फिर चाय पर सिर्फ़ दस रुपये-भर खर्च। कभी-कभार सिगरेट और फुटकर चीज़ों पर आखिर कितना खर्च होगा? यही कोई पांच से अधिक क्या होता! इस तरह कुल मिलाकर एक महीने का खर्च इतना बैठता है। अब गुणा नौ। फीस अलग जोड़ लो। मतलब सब आठ सौ में बैठ गया। हमारे पास तो एक हज़ार रुपये हैं। अरे नहीं, बहनचोद गंभीर सेठ वाले दो सौ तो भूल ही गया था। बचे कागज़ फेंक दिये। खैर ठीक है। आठ सौ। केवल आठ सौ।

नाना ने जबरदस्ती की, इसलिए मुझे इतिहास ऑप्ट करना पड़ा। उसके साथ समाजशास्त्र जुड़ ही गया था। मेरी इच्छा भाषा लेने की थी।

नाना ने कहा, तुम्हारे पिताजी ने मुझपर यह जिम्मेदारी छोड़ी है। तुमसे मैं ज्यादा अनुभवी हूं। अब तुम चुपचाप पढ़ाई करो।

इसके बाद से हमने अपनी इच्छाओं को जैसे पूरी तरह दबा दिया था। कोई काम अपनी इच्छा के अनुसार करना संभव नहीं था। यह बहुत बुरी बात है।

होस्टल पर आया। मुझे ऊपर की मंजिल पर कोने वाला कमरा मिला। कमरा बड़ा भयानक। दो वर्ष पूर्व इम्तिहान के अगले दिन एक लड़के ने पोटाश खाकर इसी कमरे में आत्महत्या की थी। और फिर लकड़ी की पलंग। खटमल

ज़रूरी थे। कोने में होने की वजह से यहां गिलहरियां, कबूतरों, चूहों, बिल्लियों वगैरा की मुक्त आवाजाई चालू रहती। कमरे से गुसलखाना, टट्टी आदि दूर थे। लेकिन जिस वक्त मैंने कमरा देखा था, मुझे बहुत पसंद आया। दो खिड़कियां, फिर भी खूब अंधेरा। एक खिड़की से तो बाहर वाले पेड़ की टहनियों को छू लो। दूसरी से पूरी की पूरी खूबसूरत पहाड़ियां देख लो। काली स्याह पहाड़ियां। ऊपर नीला आकाश। नीचे छंटे-छंटे पेड़।

मौसी के यहां से पहली किश्त के रूप में दो सौ रुपये ले आया। कह दिया, अब दो महीनों के लिए ज़रूरत नहीं पड़ेगी।

सौ रुपये तुरंत गंभीर सेठ को दे आया। कहा, शेष अगले महीने दूंगा।

वह कुरकुराया।

मैंने कहा, भरोसा करो, डुबोऊंगा नहीं। खामोश रहो। लेकिन याद रहे, वार्डन तक बात नहीं जानी चाहिए। वरना नतीजा अच्छा नहीं होगा। तुम्हारा पैसा तुम्हें मिल जायगा।

बाद के महीने में सेठ की दुकान गया ही नहीं। मौसी के यहां जाने का अवसर केवल अगस्त में। तब जुलाई में गंभीर सेठ को क्या दें? मेरे पास बचे थे सिर्फ़ सौ रुपये। उसी में जैसे-तैसे दो महीने गुज़ारने थे।

गंभीर सेठ मुझे राक्षसी आदमी लगा। कौन जाने यह आदमी वॉर्डन तक अपनी शिकायत न कर दे। क्या पता कर्ज से मुक्ति की स्थिति कब संभव होगी? इधर बकाया चुकाते-चुकाते मुझे कई बुरी आदतें पड़ गयी थीं। अब मैं किताबें-कापियां-कागज़—इनमें भी कटौती करने लगा था। इधर सुबह का खाना भर-पेट खा लेता। इतना कि पिछले साल की तरह शाम तक और कोई चीज़ खाने की जरूरत महसूस न होती। शाम का खाना फिर इतना कि रात में भूख लगने की कोई गुंजाइश न रहे। इसलिए आजकल पहले की तरह फटाफट खाना नहीं खाता। बड़े आराम से भोजन का कर्म चलता रहता। तब कोड्डम मुझसे पूछता, अभी और कितने बजे तक बैठे रहना है?

मैं कहता, खाने की गति कम है भाई।

तब वह कहता, गति कम हो सकती है, कम होगी भी। लेकिन भैया खुराक भी तो कुछ कम करो।

कोड्डम साहब नये आये हुए थे। वैसे इस वर्ष काफी नये मित्र बने थे। लेकिन शुरुआत के कुछ दिनों में पुराने मित्रों के बगैर मन नहीं लगता था। आखिरी पंद्रह

दिन पढ़ाई करने वाले सुरेश और मुझ जैसे लोग पास हो गये थे। पर साल भर गंभीरता वगैरा से पढ़ाई करने वाले हमारे मित्र लोग फेल हो गये थे।

मधु फेल हो गया था। उसकी चिट्ठी आयी थी। उसने परीक्षा-पद्धति वगैरा पर चंद मौलिक बातें लिखी थीं। वह अब बंबई के किसी स्कूल में टीचर बन गया था। उसने लिखा था, मार्च में इम्तिहान के लिए तुम्हारे यहां ठहरूंगा।

तांबे फेल हो गया था और घर पर बैठ गया था।

जोशी साहब क्या कर रहे थे, पता नहीं चला।

सुरेश, कोड्डम और मैं शुरूआत से ही दोस्त बन गये।

पाटील नाम का एक लड़का जो नया-नया होस्टल में आया था, मेरा मित्र बन गया था। यह सिर्फ मेरा ही मित्र था। औरों के साथ उसकी दोस्ती नहीं थी। लेकिन मेरे कमरे पर कोड्डम, सुरेश वगैरा कभी बैठे होते और वह वहां होता तो उनसे बातचीत कर लेता, बस।

पाटील का और मेरा परिचय गुसलखाने में हुआ था। होस्टल के गुसलखाने एक कतार में थे। गुसलखानों को जोड़ने वाले पार्टिशनों के नीचे कुछ खुली जगह थी। आदमी जब अन्दर खड़ा रहता तो उसका ऊपरी हिस्सा बगल वाला आदमी आसानी से देख सकता था। लेकिन नीचे से सिर्फ़ पांव दीख सकते थे। एक बार मैं नहा रहा था। पड़ोस वाले गुसलखाने से साबुन की एक छोटी बट्टी मेरी तरफ फिसल आयी। फिर टटोलता हुआ एक हाथ इधर आया और साबुन लेकर उधर चला गया।

बट्टी बहुत ही महीन। फिसलेगी क्यों नहीं? दूसरी बार कपड़े धोने का साबुन इधर फिसल आया। हाथ भी आया। लेकिन इस बार साबुन तक हाथ नहीं पहुंच रहा था।

हम सभी के साथ हमेशा यही हुआ करता। लेकिन ज्योंही हाथ दूसरे गुसलखाने में होता, उधरवाला उस पर एक दम गर्म पानी उड़ेल देता। पर मैंने ऐसी शरारत नहीं की। मैंने बट्टी उठा ली और ऊपर की तरफ से उधरवाले को थमा दी।

उधर वाला लड़का था पाटील।

उसने कहा, यह कुर्ता अब धुल ही गया है। फिर से साबुन उधर नहीं आने दूंगा। थैंक्यू।

फिर वह धीरे-धीरे साबुन घिसता रहा।

पाटील ने अर्थशास्त्र ऑप्ट किया था। बड़ा सभ्य लड़का। चाय वगैरा कभी

नहीं लेता। मेरे लिए यह बात फायदेमंद रही।

कोड्डम, पाटील, सुरेश—हम तीनों में इतनी गहरी मित्रता थी कि होस्टल के लड़कों ने हमें एक बार दोस्त-राष्ट्र कहकर फिशपांड दिया था। लोग कहते, ये दोस्त-राष्ट्र वाले एक-दूसरे को अपने लंगोट दे देंगे। लेकिन किसी पराए को चाय की प्याली भी नहीं देंगे।

मुझे यह बात बड़ी अखरी थी। मैंने सैकड़ों लोगों को चाय पिलायी है, पर इसका जिक्र कभी नहीं किया।

पाटील का कमरा, यानी केवल कमरा ही समझो। शेल्फ में सिर्फ एक कंघी और तेल की शीशी पड़ी रहती। दरवाज़े के पास कोल्हापुरी चप्पलों का जोड़ा। खूंटी पर दो कुरते, एक धोने के लिए रखा रहता और दूसरा धुला हुआ। एक गमछा, जो रोज़ धुलता। इसलिए हमेशा गीला रहता। टेबल पर केवल पॉकेट डिक्शनरी। ढेर सारे पीले रफ़ कागज़, दराज़ में चंद चिट्ठियां और सिक्के आदि।

लेकिन यह सामान पाटील जब कमरे पर रहता, तभी दिखायी पड़ता। कमरे के बाहर जब वह निकलता, लगभग सभी चीज़ें उसके बदन पर साथ कॉलेज चली आतीं। पड़ा रहता वहां सिर्फ पलंग। गद्दे के बजाय वह एक मोटा कंबल बिछाया करता। इसे वह जाड़ों में ओढ़ा करता। तब चादर बिछाया करता। गरमियों में चादर ओढ़ा करता, तब कंबल बिछा रहता।

कोड्डम के कमरे पर भी लगभग इतनी ही चीज़ें थीं। सिर्फ एक चीज़ ज्यादा थी। उसके पिताजी का कोट। यह कोट वह हमेशा पहनता। सरदियों में तो सोते वक्त भी इसे उतारता नहीं था। टट्टी में भी और गुसलखाने में भी कोट साथ रहता।

वह कहता, मेरी संतान को—इच्छा है लड़का पैदा होगा—फिर से इसे इस्तेमाल करने का मौका नहीं मिलना चाहिए। इसलिए मैं खुद इसे इस्तेमाल करके फाड़े डाल रहा हूं।

लड़के कहते, यह कोट तुम्हारे पिताजी का है या उन्हें भी तुम्हारे दादा से मिला है?

तब वह कहता, मेरे दादा ही नहीं थे।

किसी मज़ाक को कोड्डम खुद पर झेलकर अपना बचाव कर लेता।

अपनी सफाई देते समय कोड्डम अपने दोनों हाथ कोट की जेब में कर लेता। तब चाहे कोई कितना भी मज़ाक क्यों न करें, कोड्डम साहब एकदम टाइट।

वह हमसे कहता, जिसके हाथ जेब लगी उसे ही तो जेबकतरा कहते हैं ।

कोट की जेबों में हाथ डाले खड़ा कोड्डम जब भी कोई बात कहता, उसकी हर बात के पीछे ज़रूर कोई अनुभव होता ।

कोड्डम विपरीत स्थितियों में भी अपने व्यक्तित्व को सुरक्षित रख सकता था। कॉलेज के हर लड़के को यह कला आनी चाहिए । यहां तिकड़मी लड़के कभी टेनिस का रैकेट हाथ में थामे और टेनिस के जूते पहने तो कोई अंग्रेजी उपन्यास पास रखे, कोई सफेद ड्रेस पहने अपने व्यक्तित्त्व का प्रदर्शन किया करते हैं । लेकिन कोड्डम की तरकीब बड़ी खास थी। उसने मात्र एक कोट पर सब-कुछ संभाल लिया था।

सुरेश वैसे हम लोगों के साथ घूमता रहता, सो सिर्फ मेरे कारण । और फिर कंजूसी करने की उसकी आदत भी थी, इसलिए भी । मेरे कमरे पर पहले की तरह बार-बार चाय नहीं मिलती थी, इसलिए वह कमरे पर बार-बार नहीं आता।

मेहता से मेरा परिचय अनायास हो गया था । मैं ब्रेड लेकर लौट रहा था । मुझे किसी ने पुकारा - पांडुरंग !

देखा, हमारी एक रिश्तेदार और उसका पति खड़े हैं।

पिछली छुट्टियों में उसकी शादी हुई थी ।

उसके पति का और मेरा परिचय हो चुका था। इधर-उधर की बातें होती रहीं । लेकिन मैं मन ही मन भयानक रूप से चिढ़ गया था । जेब में सिर्फ इकन्नी थी । कुछ नहीं तो कम-से-कम इन्हें चाय तो—इसके लिए कम से कम तीन आने तो चाहिए थे । अब क्या किया जाय ? छोड़िए । यह बहुत बुरी बात है । हम इन्हें चाय के लिए न ले जायें तो, ये लोग तो निश्चित ही बुलायेंगे। ठीक नहीं होगा । पूना में ये लोग हमारे मेहमान हैं । अब क्या किया जाय ?

इतने में मेहता सामने से आता हुआ दिखायी दिया । मैंने मेहमानों को ज़रा रुकने के लिए कहा और लपककर उसे पकड़ लिया । वैसे होस्टल की जान-पहचान थी ।

मैंने कहा, मेरा पर्स कमरे पर रह गया है । मेहमान मिल गये । प्लीज, एकाध रुपया दे दो । कमरे पर लौटते ही दे दूंगा ।

मेहता ने फौरन एक रुपया दिया। मैंने उसे इस तरह लिया कि मेहमानों को पता न चले ।

फिर से मेहमानों तक चला आया । एकदम चाय के लिए कहना ठीक नहीं

था। इसलिए मैं पांच-दस मिनट तक उनसे बातें करता रहा, फिर उन्हें होटल ले गया। मेहता न मिलता, तो कौन जाने कितनी फजीहत होती।

मेहता बहुत अमीर लड़का। उसके पास गुसलखाने के तीन-चार गाऊन। करीब पंद्रह ऊनी पैंटें कतार में टंगी। मेरे पास पिछले साल सिलवायी हुई सिर्फ चार थीं। लेकिन मेहता के दो-तीन भाई कलेकटर थे, बाप कोलंबो में कोई व्यापारी वगैरा। मां मुटल्ली और बहनें खूबसूरत थीं। यह सब उसके एलबम से पता चला। इसे कैमेरे का बहुत शौक था। बी० ए० के लिए उसका विषय था दर्शन-शास्त्र। मेहता डॉ० राधाकृष्णन को अपना गुरु मानता, क्योंकि राधाकृष्णन एक बार उसके मामा के यहां रुके थे। उस वक्त वह मामा के यहां था। मतलब अहमदाबाद। राधाकृष्णन ने मेहता से कहा था, आपका अध्ययन काफ़ी तगड़ा दिखायी पड़ता है।

मेहता मुझे अंग्रेजी साहित्य की बीसियों बातें बताता रहता। वास्तव में उसकी बातों में एक तरह की गम्भीरता होती। उसकी राय में फ्रायड, डी० एच० लॉरेंस और हक्सले महान साहित्यकार। इस संबंध में उसने मेरी राय पूछी। मैं खिसिया गया।

मेहता के साथ मेरा संबंध उसे मराठी सिखाने तक सीमित था। उसी ने कहा था, हर शाम हम लोग चाय पीकर पढ़ने के लिए बैठा करेंगे।

मुझे यह सिस्टम अच्छा लगा। चाय के साथ बिस्कुट, गुजराती व्यंजन वगैरा। उसे मैंने सिर्फ़ दो महीनों में मराठी पढ़ना-लिखना सिखा दिया था। उसके बाद एकदम 'श्याम ची आई' पढ़ने के लिए कहा। उसने दो रोज़ मेहनत करके उसे सही-सही पढ़ लिया।

उसने कहा, यह किताब सेंटिमेंटल है।

मैंने कहा, होगी। लेकिन अच्छी है।

उसने कहा, अच्छी होगी, लेकिन ग्रेट नहीं।

मैंने कहा, मतलब ?

उसने कहा, मतलब डी० एच० लॉरेंस को ही लीजिए। उसे कहते हैं ग्रेट लेखक।

तब मैंने एक सप्ताह खर्च करके लाइब्रेरी में लॉरेंस पढ़ डाला। मेहता किताबें खरीद लिया करता। इसलिए रात में सोते समय पढ़ पाना उसके लिए संभव

था। मैंने लाइब्रेरी में बैठकर जैसे-तैसे दो-तीन उपन्यास पढ़ डाले। और एक बार उसके साथ उलझ गया। मैंने कहा, लॉरेंस को न्यू कहा जा सकता है। मतलब मॉडर्न। लेकिन ग्रेट वह निश्चय ही नहीं है।

उसने कहा, वैसे नहीं। फोर्स्टर को ही लीजिए। लॉरेंस और फोर्स्टर में क्या कुछ भी फ़र्क नहीं है ?

तब मैं ऊब गया। मतलब यह नये-नये नाम गिनाता रहेगा और हम सिर्फ़ इससे उलझने के लिए फोर्स्टर पढ़ भी लेंगे। फिर मान लो उसने हक्सले का नाम लिया—तब फिर ? आखिर यह सिलसिला कब तक चलता रहेगा ?

तब मैंने गधे की तरह हुज्जत करके उसके साथ लड़ाई कर ली। अंत में मैंने अपने तईं फैसला किया—गुजराती लोग नालायक होते हैं।

उसने कहा, ठीक है।

बाद में मराठी पढ़ना बंद हो गया। इसलिए उसके मराठी के उच्चारण आखिर तक किताबी ही बने रहे।

वास्तव में तो मेरी जिंदगी मरियल की तरह गुज़र रही थी। जेब में ढंग के पैसे नहीं हैं। रोज़ रात सोने से पहले कई विचार दिमाग में चलते रहते—गंभीर सेठ के कितने देने बाकी हैं, अपने पास इस वक्त कितने बचे हुए हैं, मौसी के यहां इस हफ्ते जायें या अगले हफ्ते, रोज़ का खर्च प्लान के मुताबिक सही-सही होता है या नहीं।

मेहता सोते समय अरविंद घोष पढ़ता।

सुरेश, कोड्डम—ये लोग सरदारों के नये-नये किस्स सुनाते।

पिछले साल की बेवकूफियों का यह नतीजा था। कहें किससे ? चले थे न शाइन होने। बहनचोद फिशपांड भी मिलते और शोहरत भी बढ़ती। दर्जनों लोगों से संपर्क बढ़ाया। साला। किफायत का तो नाम भी पता नहीं।

कुल मिलाकर मुकम्मिल गधापन।

इतिहास वाली क्लास में वर्मा नाम का एक रंगीला लड़का था। वह एक नंबर का दिखावटी लड़का।

मतलब मंच पर कोट पहन गिटार वगैरा बजाता। स्पोर्ट्स वगैरा का सेक्रेटरी भी था। लेकिन पहले नंबर का ऊलजुलूल। अपने पैसे फौरन खर्च कर देता। और फिर दूसरों से उधार लेकर लौंडियों को साथ लिये मौज करता।

पूना की दलिद्दर लड़कियों की क्या कहें ? इनसे अपने घर से हथियाते कुछ

नहीं बनता। सिर्फ फीस चुका दी कि शहर में घुमक्कड़ी के लिए पूरा वक्त खाली। मतलब, पढ़ाई करीब-करीब मुफ्त में। और फिर वर्मा जैसे लड़कों को फांस कर उन्हें पुचकारते रहने में जो लाभ होगा सो अलग।

वर्मा मतलब बेहद तिकड़मी प्राणी। घंटों लड़कियों की टोली में खड़ा झक मारता रहता।

उसका और मेरा विशेष संबंध नहीं था। वैसे उसने मुझे कभी परेशान नहीं किया था। वह औरों की तरह क्लास और पढ़ाई के बारे में पूछताछ भी नहीं करता।

लेकिन एक बार यह जनाब मेरे कमरे पर आये। और बड़े रौब के साथ मुझसे पांच रुपये मांगे। मतलब अंग्रेजी में। कहा, कल-परसों लौटा दूंगा।

लेकिन महीना बीत गया, फिर भी पट्ठे ने पैसे लौटाने का नाम नहीं लिया। मुझे इसके पहले ऐसे कई लोग मिलते रहे थे। लेकिन इस बार हकीकत में पैसों के मामले में मेरी स्थिति बहुत ही खराब थी। मुझे इस चिंता से रात भर नींद नहीं आती कि आजकल अपने को एक-एक इकन्नी का कितना खयाल रखना पड़ता है। इसलिए दूसरों के पास पड़ा पैसा मुझे बहुत परेशान करता। अब तो मेरे पास सिर्फ कोई आठ-दस आने बचे होंगे।

पटवर्धन ने कहा, पांच रुपये को भूल जाओ। हमारे भी वर्मा पर पैसे निकलते हैं। कइयों के पैसे वर्मा डुबो चुका है।

टोनी ने कहा, साले सांगवीकर, पांच रुपयों के लिए इतने परेशान क्यों होते हो? क्या तुम वर्मा को नहीं जानते? अरे कभी तो दे ही देगा।

पटवर्धन ने कहा, साला यह टोनी और उसका दोस्त वर्मा दोनों गुंडे हैं। सांगवीकर, तुम उस साले वर्मा का काला कोट छीन लो।

मैंने वर्मा से सिर्फ़ आखिरी बार पूछ लिया।

उसने कहा, टुमारो, श्योर।

दो-तीन दिन प्रतीक्षा की। मेरे पास बचे आठ आने अभी पूरे खर्च नहीं हुए थे। मैंने एक लोकल पोस्ट-कार्ड खरीदा। पांच रुपयों के लिए यह खर्च कोई खास नहीं था। ऑफिस से वर्मा का पता मालूम कर लिया। और उसके बाप के नाम उसे एक चिट्ठी लिखी।

साले नालायक वर्मा,

मेरे पैसे तुरंत लौटा दो। बहुत दिन हो गये हैं। वरना सोच लो।

दो-तीन दिन के बाद वर्मा ने पहले ही पीरिएड में मेरी मेज़ पर पांच रुपये का नोट फेंककर कहा, साले! पांच रुपल्ली के लिए घर पर चिट्ठी लिखते हो? इडियट, टेकइट।

मैंने गुस्से में आकर कहा, वर्मा, ढंग से नोट मेरे हाथ में दो।

टोनी ने कहा, सांगवीकर तुमने बड़ी बदतमीजी की है। अगर मुझे बता देते तो मैं तुम्हें पांच रुपये दे देता।

पटवर्धन ने नीचे पड़ा नोट उठाकर मेरी जेब में ठूंस दिया। उसने कहा, सांगवीकर, टोन्या को देखो. कैसी डींग मार रहा है! टोन्या कहीं का, और पांच रुपये देगा!

टोनी चीखा। उसने कहा, पटवर्धन साले भड़वे, तुझे किसने बीच में मुंह मारने के लिए कहा था?

पटवर्धन ताड़ से खड़ा हो गया। उसने कहा, हरामी ऽ ऽ, सांगवीकर मेरा मित्र है। मैं क्यों नहीं बीच में पड़ूंगा?

अब उन दोनों ने एक-दूसरे की कालर पकड़ लीं। छीना-झपटी शुरू हो गयी। मैंने पटवर्धन को छुड़वा लिया। वर्मा ने टोनी को रोक लिया। लड़कियों को यह दृश्य देखकर आनंद आ रहा था।

टोनी ने कहा, पटवर्धन, तुम्हें पता है सांगवीकर की चिट्ठी वर्मा के बाप के हाथ पड़ी। चिट्ठी में आंकड़ा नहीं लिखा था। सिर्फ पैसे वापस करने की बात लिखी थी। उसके बाप को लगा, पैसे मतलब कोई बड़ी रकम होगी।

वर्मा ने कहा, नानसेंस!

टोनी ने कहा, सांगवीकर के और हमारे अच्छे संबंध हैं। चाहें तो हम उससे और दस रुपये ले सकते हैं।

टोनी और पटवर्धन के बीच भयंकर गाली-गलौज होने लगी।

वर्मा ने मुझसे कहा, छोड़ो, साले वो दोनों बेवकूफ हैं। लेकिन सांगवीकर, अब एक काम करो। फादर ने मुझे दम दे रखा है। कहा है, उस लड़के से लिखवाकर लाओ कि उसने मुझसे सिर्फ़ पांच ही रुपये लेने थे। जब तक इसका खुलासा नहीं होगा, घर पर आना मना है। फादर ने तो यह कहा, यह लड़का अगर अपने घर आता हो तो, उसे लेकर ही आओ।

डेम योर फादर। मैं नहीं जाता।

वर्मा ने कहा, प्लीज़ कम-से-कम लिखकर तो···।

अभी मेरे पास वक्त नहीं है। बीच की छुट्टी में लिख देता हूं।

बीच की छुट्टी में मैं कहीं और चल दिया। बहनचोद, ऐसे लड़कों के लिए कौन रुके?

बाद में मैं पीरिएड के लिए आया था। पर तब वर्मा क्लास में नहीं था। मुझे पता चला कि उसकी स्पोर्ट्स की कोई मीटिंग चल रही है। वह वहां गया हुआ है।

लेकिन मुझे यकायक अब वर्मा पर तरस आ रहा था। ज्यादा नहीं। इसलिए मैंने एक चिट्ठी जैसे-तैसे घसीटकर सुरेश के पास दे दी—वर्मा के फादर,

आपके लड़के ने मुझसे सिर्फ पांच रुपये लिये थे । वो मिल गये । खैर ।

सुरेश ने कहा, वर्मा मिल गया तो दे दूंगा ।

पीरिएड ख़त्म हुआ । उसी वक्त खुद वर्मा से मेरी भेंट हो गयी । मैंने कहा, चिट्ठी सुरेश वापट के पास दी है, सो ले लो ।

बापट कहां मिलेगा ?

मुझे क्या पता ? अब हम दुबारा चिट्ठी नहीं लिखते । सुरेश को पकड़ो ।

वर्मा सुरेश को ढूंढने के लिए चल दिया ।

पांच रुपये मिल गये । इस खुशी में पीरिएड खत्म होते ही मैं बाल कटवाने के इरादे से मंडी की तरफ चल पडा ।

रास्ते में सुरेश ।

क्यों बे सुर्श्या, इधर, कहां ?

फिल्म देखने । अरे हां, यह अपनी चिट्ठी ले लो । तुमने चिट्ठी दी और मैं सीधा इधर चल आया ।

सुरेश ने चिट्ठी मेरी तरफ फेंक दी । मैंने उसे उठाकर और दूर फेंक दिया ।

उसने पूछा, किधर जा रहे हो ?

बस यहीं । फिल्म । और क्या !

अब देखिए हम, मंडी की तरफ इसलिए आते हैं कि इस इलाके में बाल कटवाने के दाम सस्ते हैं । पर ये लोग ऐन मौके पर टपक पड़ेंगे और सवाल पूछते रहेंगे ।

फिर सुरेश होस्टल चला गया । वर्मा उसे ढूंढ ही रहा था ।

सुरेश ने कहा, चिट्ठी मेरे पास थी । लेकिन अभी इधर आते वक्त सांगवीकर से भेंट हुई । मैंने चिट्ठी उसे पकड़ा दी । पहले अगर तुम मिल जाते तो तुम्हें दे देता ।

वर्मा ने कहा, व्हाट नानसेंस ! हाऊ स्टुपिड ! अच्छा, बताओ । सांगवीकर इस वक्त कहां होगा ?

वह हिंद विजय फिल्म हाउस गया है । नौ बजे तक लौट आयेगा ।

इस उम्मीद से कि मैं इंटरवल में उसे मिल जाऊं, वह फिल्म हाउस पहुंचा । इंटरवल में मुझे काफ़ी देर तक ढूंढ़ता रहा । फिर सोचा कि मैं बाहर नहीं आया हूंगा—इसलिए फिल्म खत्म होने तक वह वहीं रुका रहा । पर मैं उसे वहां कहां मिलने वाला था ?

आखिर दस बजे वह होस्टल पर पहुंचा । तब मैंने उसे बड़ी खुशी-खुशी चिट्ठी लिखकर दे दी कि मेरे पांच रुपये मिल गये हैं । यह भी लिख दिया कि उसे घर पहुंचते ग्यारह क्यों बज गये ।

वह चला गया । मैं सुरेश के पास जाकर खूब हंसा । मैंने कहा, साला कॉलेज

में शाइन होना चाहता है।

कम-से-कम एक बार तो बिल्ली की पिटाई करनी ही चाहिए। लगतार तीन दिन दूध पीकर भाग गयी। पेड़ से खिड़की में उतर आती है। मैं दरवाज़ा खोलता हूं। देखता हूं कि कई बार खिड़की में से भाग जाती है।

एक दिन मैंने एक तरकीब की। एक खिड़की पहले ही से बंद कर डाली। दूसरी खिड़की आधी खुली रखी। एक डोरी खिड़की के किवाड़ को बांधकर दरवाज़े की दरार से उसे बाहर छोड़ा। दरवाज़े के बाहर बैठा दरार से देखता रहा कि यह कब अंदर आती है।

कमरे में घुसने का उसका समय निश्चित। साऽ ली ! हम रोज़ आधा पाव दूध लेते हैं। इससे यह भी सहा नहीं जाता। आंखें मूंदकर पी जाती है। आज हम उसे ज़रूर अच्छा सबक सिखायेंगे।

कुछ देर के बाद खिड़की पर आहट हुई। बिल्ली टहनी फांदकर खिड़की में उतर आयी थी। फिर आहिस्ता कदम दूध तक पहुंच गयी।

इधर मैंने फटाक से खिड़की बंद कर डाली। दरवाज़ा खोलकर अंदर घुस गया। दरवाज़ा बंद कर लिया।

बिल्ली खिड़की पर कूदी। बाहर निकलने के लिए परेशान थी।

मैंने चप्पल फेंककर उसे मारी। वह नीचे फ़र्श पर कूद पड़ी। झट से मैंने डोरी को ज़ोर से खींचा। खिड़की बंद कर ली।

साली पलंग के नीचे घुस गयी है। ठीक है।

अब इसकी मरम्मत कैसे करें ? कमर का बेल्ट ठीक रहेगा। दांये हाथ पर बेल्ट को कस कर बांध लिया। और पलंग के नीचे की ट्रंक को आगे खींचा और बेल्ट से उस पर फटाफट वार करने लगा।

बिल्ली फिस-फिस करती भीतर और भीतर छिपने लगी। पलंग के नीचे कोने में रद्दी का बहुत बड़ा ढेर था। बिल्ली उसके पीछे छिपने को ही थी, कि मैंने झुक-झुक कर बेल्ट से साली की भरपूर पिटाई की। मैंने उसे इतना पीटा था कि अब वह कभी कमरे में आने की जुर्रत नहीं करेगी। मैं पसीने से भीग गया था।

जब कभी वह अपने पंजों से बेल्ट को पकड़ लेती। मैं और ज़्यादा चिढ़ जाता। और फिर फटाफट मारना जारी रखता।

एक ज़ोरदार चोट सीधे उसकी आंखों पर। तब वह घबरा गयी।

एक बार तो उसने बेल्ट को अपने दांतों से पक्का पकड़कर दबा लिया था। लो इतना कीमती बेल्ट अब बेकार हो जायेगा।

गुस्से में आकर मैंने उसे इतने ज़ोर का झटका दिया कि बेल्ट समेत घिसटती हुई वह पलंग के बाहर आ गयी।

तब मैंने एक ज़ोरदार लात उसकी कमर में दे मारी। उसने बेल्ट छोड़ दिया। मेरे पैर पर नाखून के खरोंच उभर आये थे। खून निकल आया था।

वह लेकिन चीखती-चिल्लाती सीधे कोने में रद्दी के ढेर के नीचे छिपकर बैठ गयी। अब बेल्ट का कोई उपयोग नहीं है।

फिर मैंने एक और तरकीब ढूंढ़ निकाली।

स्टोव पर पतीली-भर पानी उबलने के लिए रख दिया। उबलता पानी पलंग से उस कोने में उंड़ेल दें तो साली अपने-आप बाहर निकल आयेगी।

लेकिन मेरा पैर भी काफ़ी जल रहा था। मैं थक गया था। और फिर पाटील दरवाज़े पर दस्तक देकर चला गया था। उसने पूछा था, सांगवीकर, क्या गड़बड़ हो रही है?

इधर पानी उबलने लगा था।

अब पानी उंड़ेल दिया जाय। साली को हमेशा के लिए मज़ा चखायेंगे। फिर भी अगर वह भागने की कोशिश करे तो उसे किवाड़ों के बीच कसकर दबोच देंगे। मतलब हमेशा के लिए इसे सबक मिल जाएगा।

फिर मैंने किवाड़ों को इतना खुला रखा कि वह जैसे-तैसे बाहर निकल सके। स्टोव बुझाया। गत्ते से पतीली उठायी।

बिल्ली स्टोव की आवाज़ सुन रही है। साली क्या सोच रही होगी? उसके मन में शायद आया होगा, कि मैं उसके लिए चाय तो नहीं बना रहा हूं।

ले साली अब चाय ले। यह कहकर मैंने पलंग पर से उस कोने में पानी उड़ेल दिया।

धड़ाम से मैं दरवाज़े तक कूद गया। अब इसे किवाड़ों के बीच दबोचना है। बाहर की तरफ इसका मुंह रहेगा और पीछे पूंछ। और फिर से एक ज़ोरदार लात इसकी कमर में दे मारेंगे। फिर उसे छोड़ देंगे।

बिल्ली ओय ऽ ओय करती पलंग के नीचे से भाग आयी। उसने देखा कि दरवाज़ा खुला है। उसने छलांग लगायी और दरवाज़े से बाहर भागने लगी।

मैंने फटाक से दरवाज़ा बंद कर लिया ज़ोर से।

बिल्ली तो निकल भागी थी। मेरी उंगलियां लेकिन किवाड़ों के बीच आ गयीं। मैं भयानक रूप से चीखा।

बायें हाथ के दो-तीन नाखून नीले-काले पड़ गये थे। पंद्रह दिन तक भयंकर दर्द होता रहा।

सभी काम दायें हाथ से ही करने पड़े।

पाटील ने कहा, सांगवीकर, बिल्ली अगर गला पकड़ लेती तो?

मौसी ने कहा, दो महीनों के बाद दर्शन दे रहे हो।

मैंने डेढ़-सौ रुपये लिये।

सौ रुपये सीधे गंभीर सेठ को दे आया। पंद्रह अगस्त था। सेठ का पूरा कर्ज चुक गया था। अब बिलकुल मुक्त। पर बचे हुए पचास में करीबन डेढ़ महीना गुज़ारना पड़ेगा। कैसे काफी होंगे? ज़रूरत पड़ी तो कोड्डम से बीस-पच्चीस रुपये उधार ले लेंगे। डेढ़-पौने दो महीने के बाद मौसी से चालीस और माग लेंगे, बस्स! मतलब, कुछ दिन और परेशानी में गुज़ारने पड़ेंगे।

कहीं कोई उत्साह नहीं है, कोई उमंग नहीं। सोचा, थोड़ा-सा गंभीर अध्ययन कर लें। लेकिन इधर छमाही इम्तिहान आ गये थे। इतिहास वाला पेपर हमारे लिए, लगता है भारी पड़ेगा। तब तो फेल हो गये समझो। यह बात मैंने नाना से, मिमियाते हुए कही थी। उन्होंने कहा, तुम्हें जैसा जंचे वैसा करो।

मैं प्रिंसिपल साहब वगैरा से मिला। यूनिवर्सिटी में चार-छ: चक्कर काटे। तब कहीं विषय बदलवाने में कामयाब हुआ।

छमाही इम्तिहान बिलकुल करीब थे। अब मराठी और अंग्रेज़ी मेरे अध्ययन के विषय थे। पंद्रह दिन तक लगातार परिश्रम करके इतनी पढ़ाई की कि पूछो मत।

वरना साला वह इतिहास। बड़ा घटिया विषय। इसे पढ़ाई का विषय बनाकर कैरियर बना लेना निरी मूर्खता है। इन बेवकूफों को शिलालेख मिल गये, इसलिए इन्हें अशोक की जानकारी पता हुई। जब इन्हें कोई सबूत नहीं मिलता, तो ये लोग मनचाहे अनुमान बांध लेते हैं। इनसे पूछो कि अमेरिका का इतिहास कहां से आरंभ होता है, तो ये कहेंगे कोलंबस से। इसका सीधा मतलब हुआ, कोलंबस के पूर्व रेड इंडियनों का जो अस्तित्व था और उसके भी पहले खुदाई में कोई और सुबूत मिल जाये तो फिर अमेरिका का इतिहास और लंबा हो जाता है। तब फिर हिन्दुस्तान के इतिहास का प्रारंभ आर्यों के आगमन से माना जा सकता है। ठीक है, इनकी खोजों से लिबास वगैरा ऊपरी झमेलों का अनुमान किया जा सकता है, लेकिन अब युग के लोगों की मानसिकता का पता कैसे लगेगा! खुदाई में अगर कुछ मिला ही नहीं तो, आज जितना ज्ञात है वही सत्य हुआ न? कुल मिलाकर इतिहास बिलकुल घटिया विषय।

सुरेश ने पहले ही से मराठी ले रखी थी। मैं इतिहास छोड़कर पहली बार मराठी की क्लास में बैठा। उस वक्त सुर्शा ने मेरा जयघोष किया।

नाना ने मेरे इस बदल की घर पर सूचना दे दी।

घर से पिताजी की चिट्ठी आयी, तुम मूर्ख हो। अगर ज्ञानेश्वरी ही पढ़नी थी

तो कॉलेज में जाने की क्या ज़रूरत ? घर पर हम लोग पढ़ते ही हैं कि नहीं ?

लेकिन मुझे उनकी यह डांट अच्छी लगी थी। उनके लिए बी० ए० में मराठी की पढ़ाई का मतलब कम-से-कम ज्ञानेश्वरी का अध्ययन तो हुआ। हमारे पाठ्य-क्रम में केशवसुत, मर्ढेकर और ना० सी० फड़के भी शामिल हैं, इसका पता अगर पिताजी को चल जाता, तो वे यहां चले आते और मुझसे कहा होता—सामान बांधो और घर चलो। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। बात टल गयी।

उन पंद्रह दिनों में छमाही इम्तिहान की बढ़िया तैयारी हो सकी थी।

लेकिन इधर सुर्शा ने एक नया शगल शुरू कर दिया था। पहाड़ियों पर सैर के वक्त क्लास में या कमरे पर कहीं भी सुर्शा के पास दिलबहलाव का एक ही विषय था। वह था, मेरा इतिहास छोड़ देना। मैं भी उसके इस दिलबहलाव में उसे सहयोग देता।

हम दोनों खुद को इसवी सन् की नौ हज़ारवीं शती के इतिहासकार फर्ज़ कर लेते और बीसवीं शताब्दी के बारे में ऐतिहासिक जानकारी दिया करते—

और उस युग में विश्वविद्यालय उपाख्य यूनिवर्सिटियां हुआ करती थीं। अब आप पूछोगे कि यह क्या बला है ? तो इन विश्वविद्यालयों में चंद विषयों का अध्ययन-अध्यापन हुआ करता था। अब सुनिए, अध्ययन किसे कहते थे ? तो अध्ययन यानी मराठी नामक भाषा के बारे में इसमें जानकारी दी जाती थी।

उस युग के लोग व्यायाम किया करते थे। व्यायाम का अर्थ संक्षेप में इस प्रकार है। व्यायाम से मतलब यह है कि इसके करने से लोगों का बदन मज़बूत और ताकतवर बनता था। चंद लोग तो दिन भर दंड-बैठकें लगाया करते या फिर बिलावजह दौड़ लगाया करते थे।

इसके अतिरिक्त ये लोग खुद को हिंदू या मुसलमान कहलवाते थे। हर एक को अपने बाप का पता हुआ करता था। ये लोग शौच के लिए बंद टट्टियों का इस्तेमाल किया करते थे ताकि इन्हें कोई देख न पाये। कुल मिलाकर ये लोग छिप कर बहुत सारे काम किया करते थे।

बीसवीं शताब्दी के लोगों की शादियां भी हुआ करती थीं। आप पूछोगे, शादी से क्या मतलब ? तो सुनिए। शादी याने एक ऐसी वस्तु जिसे एक पुरुष सिर्फ किसी स्त्री के साथ कर सकता था। इन शादियों में बाजे बजाये जाते थे। इस अवसर पर लोगों की बहुत भीड़ हुआ करती। अंत में वह स्त्री अपने विवाहित पुरुष के लिए खाना बनाया करती। और अपने पुरुष के घर लौटने तक उसकी प्रतीक्षा किया करती थी।

अब आप पूछोगे, उसका वह पुरुष कहां चला जाता ? इसके बारे में अभी खोज जारी है।

लेकिन आज उपलब्ध जानकारी के अनुसार महामहोपाध्याय गिरजाशंकर

मार्तंड का यह मानना है कि ये लोग विश्वविद्यालयों मे साल भर अध्ययन किया करते थे। पता है किसलिए ? तो सुनिए। साल के अंत में परीक्षा नामक वस्तु पास करने के लिए। परीक्षा वह वस्तु थी, जिसे अध्ययनशील लोग एक जगह बैठकर उन्हें मिली समान प्रश्नपत्रिका के उत्तर लिखकर पूरी करते।

पांच साल पूर्व महामहोपाध्यायय जी ने अपनी इस मान्यता को जब प्रस्तुत किया तो, सब लोगों ने उन्हें पागल ठहराया था। लेकिन आज उनकी यह मान्यता सर्वसम्मत हो चुकी है।

महामहोपाध्यायी ने अभी-अभी एक शोध पूरा किया है। पता चला है कि उन विश्वविद्यालयों में बीजगणित नामक कोई विषय हुआ करता था। इस विषय में पता नहीं कितने झमेले हुआ करते थे। इस संबंध में हमारी जानकारी अब भी अधूरी है। फिर भी नमूने के तौर पर इस तरह कुछ चलता—अ बराबर 5 और ब बराबर 4; इस प्रकार फर्ज करके अ—ब = 1 जैसा कोई निष्कर्ष निकाला जाता। इसे आप मात्र नमूना समझिए। इसी ढंग से बड़े-बड़े आंकड़े लिये जाते। आंकड़ों की हेरा-फेरी से सैकड़ों कापियां भरी जातीं और तब कहीं कोई निष्कर्ष निकलता।

ये लोग बारह बज चुकने के बाद आगे के समय की गिनती एक से शुरू करते। या जुलाई के इकत्तीस दिन पूरे हो जाने पर आगामी दिन को बत्तीसवां दिन न मान कर उसे अगस्त का पहला दिन कहा करते।

अब आप पूछेंगे यह इक्तीस-बत्तीस क्या मामला है ? जुलाई अगस्त, यह क्या मामला है ? तो इसके बारे में शोध जारी है।

अब आप पूछेंगे कि उन लोगों को यह कैसे पता होता कि अमुक आंकड़ों का मतलब अमुक ही होता है। तो साहब, इस मामले में ये लोग बड़े विद्वान थे। ये लोग अपने बच्चों को बचपन में ही स्कूलों में जबरन भेज दिया करते। वहां उन्हें तीस तक के पहाड़े और महीनों के नाम और क्रम आदि रटाया जाता। उम्र के आठवें-दसवें वर्ष तक इनके बच्चे जब छोटे-छोटे आंकड़े और चिह्नों की शिक्षा पूरी कर लेते तब आगे खुद-ब-खुद बड़े-बड़े आंकड़ों का ज्ञान प्राप्त कर लिया करते।

उस युग में पांच-पचास लोग बस में इकट्ठे बैठकर यात्रा नाम की चीज किया करते। हालांकि इन लोगों की कोई आपसी जान-पहचान नहीं होती थी।

ये लोग कपड़े पहना करते थे। और पैसा कमाया करते थे।

अब आप पूछेंगे यह पैसा, मतलब क्या हुआ ? यह वस्तु इधर खुदाई में प्राप्त हुई है। इसके अलावा ये लोग कविता भी लिखा करते। उस युग में यह रिवाज प्रचलित था कि प्रत्येक को पढ़ा-लिखा होना ही चाहिए। किताब नामक एक वस्तु हुआ करती थी। उस युग में इस तरह की लाखों किताबें थीं। लेकिन विश्व में

रोज़ इतनी किताबें निकलतीं कि उन्हें पढ़ पाना किसी भी भाषा के विद्वान के लिए असंभव था। इसलिए हमारी राय में महामहोपाध्याय जी की यह मान्यता मूर्खतापूर्ण है कि उस युग में सैकड़ों किताबें लिखी जाती थीं।

ये लोग समाज बनाकर रहने के लिए नालायक थे। क्योंकि इन्होंने सफेद शेरों, सिंहों, हाथियों, व्हेल मछलियों जैसे परमात्मा के समान बड़े-बड़े प्राणियों को केवल दिलबहलाव की खातिर बंदूक से मार डाला था।

आप पूछेंगे, यह बन्दूक क्या होती थी ? हाथी किसे कहते हैं ? आप आज भी चिड़ियाघरों में इन्हें देख सकते हैं। लेकिन व्हेल मछली किसे कहते हैं—इस पर अभी कोई प्रकाश नहीं पड़ा है।

सुरेश शुरू करता। आगे मैं दूसरा वाक्य जोड़ता। इस तरह यह वाहियात-गिरी ऊब जाने तक चलती रहती। या कभी दूसरी चीज़ों से बोरियत होती तो इसे शुरू कर देते।

कभी आठ-आठ दिन तक मेरी जेब में पैसा नहीं होता तो मैं स्थिति का सामना करने के लिए मनोरंजन का कोई नया हीला ढूंढ़ लेता। काल्या नाम के लड़के से मेरा परिचय इसी बहाने हुआ था। काल्या पहलवान था, कुश्तियों के सैकड़ों किस्से वह मुझे सुनाया करता।

कहता, पता है उस दूधनाथ पहलवान को हमारे सातारा वालों ने बिलकुल चित कर दिया।

एक बार शुरुआत हुई कि वह फिर विस्तार से मुझे समझाता कि किसने कैसा दांव लगाया और कौन कैसे चित हो गया। कभी-कभी तो जनाब अपनी बात समझाने के लिए किसी लड़के को सामने खड़ा कर देते और प्रत्यक्ष प्रयोग कर के कुश्ती की प्रक्रिया समझाते।

एक बार वह मुझे तलवार खेलने की कला समझा रहा था। पर सिर्फ़ हाथों के अभिनय से वह अपनी बात सही ढंग से समझा नहीं पा रहा था। इसलिए उसने अपना पाजामा उतार लिया। सिर्फ़ अंडरवियर पहने पाजामे को गोल-गोल इधर-उधर उलटा-सीधा तेज़ घुमाकर सारे दांव दिखाने लगा।

उसकी वह नाटी, काली, ठोस मूरत बेहद मज़ाकिया लगती। काल्या को अंग्रेजी बिलकुल नहीं आती थी। लेकिन कोई अगर उसके साथ अंग्रेजी में रौब झाड़ने की कोशिश करता तो यह जनाब कुछ चुनींदा कठिन शब्दों का प्रयोग करके सामने वाले की पूरी फजीहत कर देते। फिर अपनी बहादुरी को मुझे आकर सुनाया करते। कहता, साला हमारे मुकाबले कौन अंग्रेज़ी में बकवास कर सकता है ? साले का मेंढक बना दिया।

मेंढक बना दिया, यह था उसका तकियाकलाम। सातारा के अमुक पहलवान ने अमुक पंजाबी मुसलमान का मेंढक बना दिया। इम्तिहान का मेंढक बना दूंगा। इस लौंडिया का मेंढक बनाना पड़ेगा। कल मैस में हलुआ बना था। हमने हलुए का पूरा मेंढक बना दिया— काल्या की हर चीज बड़ी खास।

लेकिन काल्या से हमेशा मुलाकात कहां होती? तब फिर वक्त काटने के लिए क्या किया जाय? दिन भर के लिए नियत तीन सिगरेटों को क्या सुबह-सुबह एक बार में पी लें? तब फिर बाकी समय कैसे कटे? क्या लाइब्रेरीमें चलें? कोई उपन्यास पढ़ लिया जाय? सुरेश के साथ बेताल वाले टीले पर सैर करने क्यों न चल दें? चलिए, बोर्ड पर लगे सभी पुराने नोटिसों को नियमित रूप से पढ़ते रहें। और कुछ नहीं तो क्लास में उपस्थित तो रहना ही रहना है।

एक बार संयुक्त-महाराष्ट्र को लेकर या और किसी कारण से विद्यार्थियों की स्ट्राइक चल रही थी। क्लास में प्रोफेसर गुणे और मैं सिर्फ़ दोनों थे। गुणे सर और मेरे बीच सैकड़ों मामलों पर बहस हुई।

उन्होंने पूछा, क्या सचमुच संयुक्त-महाराष्ट्र होना चाहिए? तुम्हारी क्या राय है?

मैंने कहा, क्यों नहीं?

कुल मिलाकर कुछ-न-कुछ तो कर के व्यस्त रहना जरूरी था। पास में पैसा न हो तब भी कुछ तो करना ही चाहिए।

इस लिहाज़ से रमी ग्रेट। इधर काफ़ी दिन हुए उससे बातचीत नहीं हो पायी थी। पीरियड खत्म होते ही मैं फौरन कमरे पर चला आता। मुझे अपने कमरे से कमाल का लगाव था। सिर्फ़ लेटे-लेटे पहाड़ियों को ताकता रहूँ तब भी शाम तक का समय कट जाता।

लेकिन रमी ग्रेट! क्लास में नोट्स वगैरा के लफड़ों में कभी नहीं पड़ी। लाइब्रेरी में तो मैंने उसे कभी देखा ही नहीं। कहीं खेल-कूद में भी नहीं। सभा-वभा में तो बिलकुल ही नहीं। अब हम खुद शाम के समय कहीं बाहर निकलना नहीं चाहते, तो फिर कैसे संभव था कि रमी से हमारी मुलाकात होती?

एक बार मैंने एक भयानक संकल्प किया था। मौन-व्रत ले लिया था। आठ दिन तक किसी से बात नहीं की। क्लास में उपस्थिति के वक्त सिर्फ़ खड़ा हो जाता।

यस सर बोलना भी बंद। इन आठ दिनों में मैंने खूब पढ़ाई की। आगे वाले साल की किताबें लाइब्रेरी से ले आया। उन्हें भी पढ़ डाला।

और एक बार सुरेश मेरे कमरे पर आया। दोस्तों ने शर्त बांधी थी कि सांगवीकर का मौन तोड़ कर ही रहेंगे। बाद में मुझे यह बात पता लगा। सूर्शा ने शुरू किया—

उस युग में संसार का हर आदमी पढ़-लिख सकता था। लेकिन उस शती में सारे विश्व में हिंदुस्तान के लोग ही तहज़ीबयाफ़ता थे, क्योंकि यूरोप में सब को लिखना-पढ़ना आता था तो हिन्दुस्तान में सिर्फ़ सौ में से दस-पन्द्रह लोग पढ़े-लिखे होते थे।

मैं बोला नहीं।

सुर्शा का बोलना जारी।

विकास के क्रम में हिंदुस्तान भी पिछड़ गया, क्योंकि यहां भी शिक्षितों की संख्या बढ़ती गयी। उन लोगों की मान्यता थी कि इनसान के पास मन नाम की चीज़ होती है। लेकिन मन से क्या तात्पर्य था, इसे वे लोग आखिर तक स्पष्ट नहीं कर पाये। इस युग में पूरी जिंदगी किताबें पढ़ने में लगाने वाले कई लोग हुआ करते थे। ऐसे लोगों को विद्वान कहा जाता था।

अब मुझ से नहीं रहा गया। मैंने जोड़ा—

लेकिन इसी युग में हिंदुस्तान में कुछ अच्छे भी लोग रहा करते थे। उड़ीसा-बंगाल के इलाके में इनकी बस्तियां थीं। ये लोग पत्थर की पूजा किया करते थे।

सुर्शा ने कहा, हमने शर्त जीत ली।

उसके बाद से मैंने मौन खोल दिया।

पाटील के बार-बार इनकार करने के बावजूद मैं उसे एक दिन पहाड़ी पर ले गया था। बारिश हो चुकी थी और फिर ज़ोर से बरसने की संभावना थी।

पाटील ने कहा, ठीक है चलो। लेकिन जल्दी लौटना है, भला।

मैंने उसका हाथ पकड़ लिया और दोनों एक सांस में पहाड़ी पर चढ़ गये।

पाटील की सांस भयानक रूप से फूल रही थी। लेकिन मेरा उत्साह बढ़ा हुआ था।

यहां थोड़ा रुक जायें। थोड़ी देर उस जगह बैठ लेंगे। पाटील कह रहा था।

लेकिन मैं उसे घसीटता हुआ ऊपर वाली टूटी दीवार तक ले आया था।

मेरा मन खुशियों से भरा हुआ था। दीवार पर बैठा आर्द्र हवा को बदन पर

महसूस करता मैं प्रकृति की शोभा देखने में मस्त था।

अंधेरा छा गया था। और बूंदाबांदी शुरू हो गयी थी।

पाटील ने कहा, अब चलना चाहिए।

मैं सीढ़ियों के रास्ते नीचे नहीं उतरा। कठिन पगडंडी से चट्टानों को फांदता हुआ मैं नीचे उतर रहा था। पाटील मेरे पीछे-पीछे संभलता हुआ चला आ रहा था। मैं रुक जाता। वह मुझ तक पहुंचा नहीं कि फिर मैं उछलता, कूदता आगे बढ़ जाता। बारिश अब ज़ोर की होने लगी थी। आखिर हम लोग किसी और ही रास्ते पर उतर गये थे।

पाटील भीगे कपड़ों में सर्दी के कारण कुड़कुड़ा रहा था। उलटे मैं भीग जाने के कारण अधिक उत्साहित था।

उसने कहा, मुझे ठंड लग रही है। बस में चलेंगे।

मैंने कहा, ऐसा क्यों न करें कि बस के पैसों से केले ले लें। और पैदल चलें।

फिर हम भेल खाते-खाते होस्टल आ पहुंचे। मैं सीधे खाना खाने के लिए चल दिया। पाटील ने कहा, आज मैं खाना नहीं खाऊंगा।

रात में पाटील को भयानक बुखार आया था। मुझे सुबह पता चला।

मुझे बहुत बुरा लगा। पाटील इसे सह नहीं सका था। मुझे उस पर इतनी जबरदस्ती करने का कोई कारण नहीं था।

दूसरे दिन भी उसे बुखार था। वह कंबल ओढ़कर सारा दिन पड़ा रहा था।

मैंने होस्टल के डॉक्टर को बुलवाया। दो दिन तक उसकी तीमारदारी की। उसका खाना कमरे पर पहुंचा देता। अपने पैसों से उसे कॉफी पिलायी। दवाई लेने नियमित रूप से डॉक्टर के यहां जाता। उसके मना करने पर भी मैंने अपना गद्दा उसके पलंग पर बिछा दिया था। मैं दरी पर सोया था। रात में उसी के कमरे पर लेटा रहता। उसकी दवाई बराबर करता रहा।

वह ठीक हुआ। अब मैंने तय कर लिया था कि फिर से किसी पर जबरदस्ती नहीं करनी है। वास्तव में इस तरह जी भर के टहलना, भीगना, भटकना, मन-मानी करना, विक्षिप्त काम करते रहना—केवल सुरेश के साथ ही संभव है। बचपन की हमारी यह स्वच्छंद वृत्ति अब भी महफ़ूज़ है। सबको इसका पता कैसे हो सकता है? हर कोई हमारी तरह मुक्त व्यवहार करता रहे—यह कैसे संभव है? एक पत्थर की तरह हू-ब-हू दूसरा पत्थर भी तो नहीं होता। तब फिर एक आदमी की तरह हू-ब-हू दूसरा आदमी हो ही नहीं सकता। वास्तव में इस सत्य को ध्यान में रखना ज़रूरी है। हमारे सारे व्यवहार इसी के आधार पर होने चाहिए।

वैसे सुरेश और मेरे बीच भी तो कहां हू-ब-हू समानता है? अपने जैसे बिलकुल हू-ब-हू खुद हम ही हो सकते हैं। फिर भी सुरेश और मैं काफ़ी समान-

समान हैं। कदम उठाने से पहले इसे परख लेना जरूरी है कि दूसरा आदमी हमारी तरह कितना है ?

इसलिए साले पिछले साल एक्टिविटी वगैरा के बहाने लड़कियों के साथ हम दोनों के जो भी सम्बन्ध बने वे आज तक बहुत साफ और पाक रह सके हैं। मतलब, आखिर तक मैं अपना शील सुरक्षित रख सका हूं। कितनी लड़कियों के संपर्क में आया, पर बुरे मार्ग की तरफ कभी नहीं बढ़ा। वास्तव में लड़कियां हमें कुल मिलाकर बोर लगीं, भले ही उनके साथ रहकर थोड़ा-बहुत दिलबहलाव हो जाता हो।

मैंने खुद से कई बार कहा है, आखिर इतनी परेशानी किस लिए ? पहले तो हमें कोई भी असली लड़की नहीं मिली। सुना जरूर था कि असली लड़कियां हुआ करती हैं।

एक लड़की मुझे भली लगती। एक सैर में वह हमारे साथ थी। वह ग्रामोफोन पर उसी एक रेकार्ड को बार-बार बजाती और भाव-विवश होकर मेरी ओर देखा करती।

मैंने कहा, फ्याट्।

एक और दूसरी पसंद आयी थी।

उसने कहा, तुम बांसुरी बड़ी अच्छी बजाते हो।

मैंने कहा, फ्याट्।

और एक थी। वह कुछ बोली ही नहीं।

मैंने कहा, फ्याट्।

लड़कियां खुद होकर पहल करें तब तो ठीक है।

फिर भी केवल रमी उन सभी में बेहतर।

लेकिन वह भी पूरी बेहतर कहां ?

कॉलेज में लोग झूठ का पता हो कर भी सत्य का भ्रम खड़ा करते हैं। होस्टल पर हर साल रक्षा-बंधन का कार्यक्रम बड़े ठाठ से मनाया जाता है। इस अवसर पर होस्टल की लड़कियां लड़कों को राखियां बांधती हैं। मैं पिछले साल इसमें शामिल हुआ था। किसी एक हॉल में लड़के-लड़कियां इकट्ठा होते हैं, लड़कियां लड़कों को राखियां बांधती हैं और उस बहाने दो-तीन घंटे मधुर संभाषण चलते रहते हैं। बिलकुल भयानक।

रास्ते में रमी मिली थी। उसने पूछा, रक्षा-बंधन के कार्यक्रम में क्यों नहीं आये ?

मतलब, रमी वहां गयी होगी। कम-से-कम इसे तो नहीं जाना चाहिए था।

लेकिन हम कौन होते हैं इस पर मिलकियत जतलाने वाले ? एक-दूसरे पर अधिकार जतलाना कैसे संभव है ? कहीं वह केवल मुझसे मिलने के लिए तो वहां नहीं गयी होगी ? या यूंही सभ्यता का तकाज़ा था जो मुझसे सवाल कर रही थी ? आजकल हमारे कपड़े बड़े अव्यवस्थित और नूर कुल मिलाकर बड़ा ही दलिद्दर है। ठीक भी है — ऐसी स्थिति में हम से हर कोई कुछ भी सवाल कर सकता है।

इस बीच मधु देशमुख पूना आ चुका था। मेरे यहां ठहरा था। और लौटने का नाम नहीं ले रहा था।

उसने कहा, यहां सब कुछ कितना खूबसूरत है ! आ ऽ ऽ हा ! साला बंबई याने बोऽर। मास्टरी करते-करते जिंदगी काटो। आदमी चाहे जो बने लेकिन मास्टर नहीं बनना चाहिए। कोई एक आदमी किसी दूसरे आदमी को पढ़ाता रहे, यह बात वैसे भी बड़ी भयंकर है।

वह खिड़की से बाहर देखता हुआ कहता, आऽहा ! कितना खूबसूरत ! वह देखो पहाड़ी। उस पर कितनी बार बैठे होंगे। और यह गुलमोहर का पेड़। पिछले साल की कितनी यादें उमड़ पड़ी हैं।

फिर उसने अपनी प्रेमिका का ज़िक्र करते हुए पूछा कि कभी उससे मुलाकात होती है ?

मैंने कहा, कॉलेज में हमेशा दिखायी देती है। एक बार उसने तुम्हारा पता-ठिकाना मुझ से पूछा था।

मधु ने पूछा, फिर तुमने क्या जवाब दिया ?

मैं क्योंकर कोई जवाब दूं ? और साले, पूछताछ करने की उसे भी तो कौन ज़रूरत पड़ी थी ?

तब मधु चिढ़ गया। और आखिर बंबई चला गया।

किसी पुराने मित्र से मुलाकात हो जाती है और जब वह चला जाता है तो मेरा मन बहुत उचट जाता है। इस स्थिति में सिगरेटों का खर्च बढ़ जाता है। सोचने लगता हूं, हम भी तो कहां इन स्थानों, टीलों आदि के भाई-बिरादर लगते हैं। हमें भी तो कभी यहां से विदा लेनी पड़ेगी। सदा के लिए। लेकिन रात-दिन इसी कमरे में पड़े रहने के कारण, खिड़की से आने वाली वही परिचित धूप, वही पेड़, छाया के वही कोष—इन सब चीज़ों की आदत हो जाती है। यही कारण है कि विदाई का एहसास पीड़ा देता है। यही वह कमरा है जहां से मुझ जैसे कई विद्यार्थी चले गये होंगे। कॉलेज साठ-सत्तर वर्ष पुराना है। और कयामत तक सैकड़ों लोग यहां

आयेंगे और चले जायेंगे। उनका कोई नाम व निशान नहीं रहेगा। हमारा भी नहीं होगा। लेकिन पता नहीं क्यों, स्थानों के साथ जुड़ी भावना हमेशा के लिए वहीं अटकी पड़ी रहती है।

मन जब इस तरह के विचारों में लगा रहता, बाहर धूप की तरह फैली सफेद-लाल चांदनी बड़ी डरावनी लगती है। चार सौ कमरों की बत्तियां इससे भी ज्यादा डरावनी हैं। पढ़ाई करने वाले सभी लोग अस्थायी हैं। भूत की तरह चार साल कॉलेज में रह लेने के बाद ये सभी चले जाते हैं। और मैं बंद कमरे में बैठा हूं।

बहुत दिन हुए मैंने इसके पहले ऐसा सपना कभी नहीं देखा था। सपने में मैंने देखा, एक गहरा काला परदा है। और लो यह आकाश। ऊपर गोल चक्कर काटने वाले तेज ग्रह। तारे। सभी भयंकर गति से घूम रहे हैं। लगता है, प्रत्येक वस्तु की गति और मार्ग पूर्वनियोजित है। सभी चीज़ें निश्चित गति से दौड़ रही हैं। कोई वस्तु किसी दूसरी से कभी नहीं टकराती है। पर मान लो कभी टकरा जायें तो निश्चित समझो कि ये सभी कैरम की गोटियों की तरह एक-दूसरे पर गिरकर चकनाचूर हो जायेंगी। और फिर सारा खेल एकदम समाप्त हो जायेगा। अब हम लोगों को भयंकर लगने वाले जादूगर ने आमंत्रित करके किसी एक ग्रह पर उतार दिया है। हम सब विद्यार्थी। तमाम प्रोफेसर। सभी नौकर। पूरा शहर। सारे के सारे। हमारे चेहरे विद्रूप हो गये हैं। हम सब पिशाच योनि में बदल गये हैं। जादूगर ने क्रम से अपनी जादू की छड़ी घुमायी और एक-एक को पिशाच बनाकर छोड़ दिया है। अब हम केवल संकेतों की भाषा जान सकते हैं। हम आपस में कुछ भी बोल नहीं पा रहे हैं।

पर अब देखिये। यकायक उस जादूगर को किसी ने खत्म कर दिया। और यह लो। सब के सब पिशाच की काया से मुक्त होकर बाहर आ गये हैं। जादूगर का किला भी अब टूट गया है। पूरा माहौल तरल हो गया है। अब हमारा ग्रह दिशाहीन चक्कर लगा रहा है। अब इन असंख्य तारों के मध्य हमारा यह अनियंत्रित ग्रह पता नहीं कहाँ जाकर रुकेगा? और फिर उसकी अपनी भयंकर गति है। इस तेज़ गति के साथ ग्रह का टकराना कितना खतरनाक होगा? इसके कितने टुकड़े हो जायेंगे — पता नहीं।

बंद कमरा। खिड़की के रास्ते भीतर आयी चांदनी डरावनी। खिड़की के पास हमेशा खड़ा हुआ यह पेड़। साक्षात भय। कमरों से सुनायी देने वाली बेसुरी आवाज़ें। मेरा यह कमरा। एक साल के अनुबंध पर हस्तांतरित। इम्तिहान खत्म

हुए कि सामान बांधकर चलते बनो। लेकिन अभी तो जूनियर चल रहा है। मतलब एक और साल। पर तब संभव है, कोई और कमरा मिलेगा। फिर भी क्या फर्क पड़ने वाला है ? कभी-न-कभी तो यहां से चले ही जाना है। सदा के लिए। चाहे कमरे से प्यार हो या ना हो, होस्टल की इमारत से प्यार हो या ना हो, खुद से अगर प्यार है तो फिर कहीं भी रहिए—यह स्थिति अटल है। यह सांगवी थोड़े ही है। यहां से बहुत दूर। वह भी तो एक स्थान ही है। पर अपने गांव के मेलों में बचपन में सुना हुआ गीत आज याद आ रहा है। चंग बज रहा था। रसप्रिया गीत गा रहा था—

> क्रम होवे खत्म दोनों भाई लड़ा करते ऽ ऽ लड़ा करते ऽ ऽ ऽ
> आत्मा कुड़ीकाना होवे कहात है कोई ऽ ऽ कहात है कोई ऽ ऽ ऽ
> ओ' आत्मा कुड़ी का ना होवे कहात है कोई ऽ ऽ

या तो यह झूठ है या फिर प्रेम सत्य नहीं है। इनमें किसी एक को तो सही होना ही चाहिए। वरना यह सवाल ही क्योंकर उठता ? हां, हर स्थिति में दो सिरे जरूर होते हैं। उसमें केवल एक ही सत्य होता है। वरना खिड़कियों को सलाखों की क्यों ज़रूरत पड़ती ? यह कमरा अपने बाप का तो नहीं है।

कमरे के बारे में अपने ये विचार मैंने सुरेश को कह सुनाये।

उसने कहा, सुनो एक जोक सुनाता हूं।

एक आदमी मेरे कमरे पर दस्तक देकर जबरदस्ती अंदर घुस आया। उसने कहा, एक्सक्यूज मी ! यह मेरा पुराना कमरा। आऽहा। यही है वह कमरा। कितने अच्छे थे वो दिन। यही है वह खिड़की। यही वह पेड़। मेरी टेबल भी इसी तरह खिड़की के पास पड़ी रहती। आऽहा। पलंग भी तो यही था। बिलकुल यही। और मेरी यह अलमारी। इसी अलमारी में मैं अपने कपड़े रखा करता था। आऽहा। और इसी अलमारी में छिपकर बैठी हुई वही नंगी लड़की। बिलकुल यही।

सुर्श के जोक बड़े वज़नी। पता नहीं, कहां-कहां से बटोर ले आता है।

अंधेरा होने से पहले की शाम। बड़ी भयानक। महा भयानक। कहीं कोई हरकत नहीं। प्रोफेसरों के शरारती बच्चे। ये भी भयानक। अंधेरा जल्दी नहीं हो रहा है। ऐसे समय कमरे पर लेटे पड़े रहना गलत है। पागल हो जाओगे। ज़रा बाहर

खुली हवा में टहल लेना चाहिए। शाम का खाना भरपेट खा लें। शाम की इस उदासी से बचने का यही एकमात्र उपाय है। काफी सोच-विचार के बाद में यही मैं किया करता। भविष्य किसने देखा है ? कॉलेज छोड़ जाने के बाद अपना क्या होगा ? ये सारे दोस्त पता नहीं कहां-कहां चले जायेंगे ? इनमें कौन बड़ा बनेगा ? कौन आगे बढ़ेगा ? और कौन पिछड़ जायेगा—किसे पता है ? तीन साल पहले हमने कभी सोचा भी था कि हम दोस्त लोग इसी स्थान पर इसी शहर में, जिसे पृथ्वी के नक्शे पर सुई की नोक से संकेतित किया जा सकता है, कभी कुछ दिन रहेंगे। कौन जानता था कि यही हमारा कमरा होगा, यही हमारे मित्र होंगे, यहीं हम हंसेंगे, पढ़ेंगे, सोयेंगे, इसे भी किसने जाना था ? स्कूली ज़माने के दर्जनों छोटे-छोटे मित्र बड़े हो जाते हैं। फिर भी उनसे मुलाकात हो जाती है। उनसे बातें होती हैं। इस सबका आखिर राज़ क्या है ?

इधर इस तरह के विचार मेरे दिमाग में चलते रहते। इन्हीं से घिरा रहने के कारण मैं कुछ निस्तेज होता गया था। चार लोगों के बीच पहले की तरह ठीक ढंग से बात करने का साहस कहीं समाप्त हो रहा था।

ये सब विचार इसलिए भी पैदा होते क्योंकि काल्या पहलवान से हमेशा भेंट और गपशप नहीं होती। और इधर मैंने रोज़-रोज़ लायब्रेरी में जाना बंद कर दिया था। और फिर सुर्शा और मैं प्रत्येक रविवार को थोड़े ही सिंहगढ़ सैर करने जाते थे। इन सबकी अहम वजह थी—हमारे कमरे की वो दोनों बड़ी-बड़ी खिड़कियां जिनसे बाहर का विशाल दृश्य बहुत साफ देखा जा सकता था। बाहर चांदनी पड़ी है। तब कमरे में आराम से लेटे रहिए और पेड़ पर बैठे परिंदों को देखते रहिए। सिगरेट का कश लगाते रहो और पहाड़ियों को देखते रहो। सामनेवाले पेड़ का सारा विकास क्रम हमें पता है। निर्णय हो जाने से फल देने तक की इसकी सारी अवस्थाओं से हम परिचित हैं। बस फिर और काम ही क्या बचता है ? लेटे-लेटे पेड़ को देखते रहो और आत्मचिंतन में डूब जाओ। एक खिड़की से इस पेड़ को देखते रहो तो दूसरी से आकाश को।

और फिर इस संसार से विषमता कभी समाप्त नहीं होने वाली। और करने-कराने वाला परमात्मा तो है ही। फिर भी हर एक के पास कुछ तो धन होना ही चाहिए। वरना लोग धीरे-धीरे कम्यूनिस्ट बन जायेंगे।

पाटील शाम के वक्त बरामदे में झूमता लंबे-लंबे डग भरता यूं ही चहल-कदमी करता रहता है।

शौनक एक सिगरेट के दो टुकड़े करके उसे दो बार इस्तेमाल करता रहता है।

खाना जब तक न आये, मैं बैठा इन्तज़ार करता रहता हूं। इस बीच खान भैया के साथ मेरी बातचीत चलती है। खान भैया कहा करता है, हिंदू-इस्लाम

दोनों ही मज़हब अच्छे हैं। लेकिन आदमी लुच्चा है। मज़हब नहीं।

शेखर नियम से एक वक्त चाय-ब्रेड खाया करता है।

नायडू के कमरे में हज़ारों खटमल हो जाते हैं। क्योंकि दवा छिड़कने के लिए उसके पास पैसा नहीं होता। लेकिन वह किसी को यह कारण नहीं बताता। उलटे कहता, अच्छा है, खटमलों के कारण मेरे कमरे पर गप्पों में वक्त काटने के लिए कोई नहीं आता। बड़ी अच्छी बात है। हमारी पढ़ाई में कोई खलल नहीं होता। अच्छी पढ़ाई कर सकता हूं।

कोड्डम के कमरे में दीवार पर अश्लील-सा एकमात्र गंदा कलैंडर टंगा हुआ है। उसी पर वह रोज़ पिच-पिच अक्षरों में खर्च का ब्यौरा लिखा करता है। वहां केवल आने और पाई लिखा होता है। रुपयों के स्थान पर शून्य पड़ा हुआ होता है। किसी ने उससे पूछा था, तब फिर रुपयों का खाना बनाया ही क्यों? उसने कहा, रुपयों के हिसाब की कापी गोपनीय है। कभी कोई इनकम टैक्स वाला पहुंच जाय तो परेशानी नहीं होनी चाहिए।

धाड्जे स्टोव की आवाज़ों की दिशा से किसी के भी कमरे में घुस जाता है। गांव वाले किस्से सुनाकर चाय वसूल लेता है।

यहां जो कुछ भी घटित होता रहता है, कितना भयानक है। पैसा किसी के पास होगा और किसी के पास नहीं भी होगा। पर मैं इन मित्रों के बारे में कुछ भी नहीं जान सका था। हालांकि पिछले दो साल से मैं इनके संपर्क में हूं। संभव है, ये लोग पहले ही से इसी तरह रहते होंगे। अब—अब इनके बारे में हमें कुछ पता चल रहा है बस। कुल मिलाकर यह कि—ये सारे दोस्त लोग बड़े खर्चालू। बड़े बाप के बेटे जो ठहरे। मन नहीं लगा कि चले फिल्म देखने, गये मद्रास होटल, बैठे सुनते म्यूज़िक, फिर चले पार्कों की सैर करने, कहीं मूंगफलियां खायीं, कहीं भेल-चाट खायी। अब बताइए, शाम को भूख क्योंकर लगेगी? फिर यूं ही एकाध रोटी किनार तोड़कर खा ली। भात जूठा छोड़ दिया। फिर दही खाया और उठ गये। जो भी मिला, उसे साथ लिये चल दिये कैंटीन। इसी तरह फिज़ूलखर्ची के मामले चलते रहे। दोनों साल इस गर्दिश में खप गये। और अब स्थितियों के इस मलबे के नीचे मुझ जैसा बेकसूर दबकर बुरी तरह घबरा गया था।

कुछ दिन पहले कोड्डम को उसकी जाति के कारण कोई स्कॉलरशिप मिली थी। मैंने उसका नाम नोटिस बोर्ड पर पढ़ा था। वह पिछड़ी जातियों के अन्तर्गत आता है, इसका हम लोगों को तब पता चला था। हम लोग जाति वाली बात छेड़ना नहीं चाहते थे। कहीं उसे बुरा न लगे। इसलिए इस बारे में हमने उससे कोई ज़िक्र नहीं किया।

पंद्रह दिन के बाद कोड्डम खुद नारे लगाता हुआ मेरे कमरे पर आया था। कह रहा था, जाति जिंदाबाद। स्कॉलरशिप मिल गयी। सांगवीकर, पाटील, मुझे आज पैसे भी मिल गये हैं। चलिए तुम लोगों को पार्टी दूंगा।

सुरेश, मैं, पाटील और कोड्डम मद्रास होटल गये। वहां मेहता बैठा हुआ मिला। अब मेहता को भी तो पार्टी में शामिल करना जरूरी था। कोड्डम का बजट था सिर्फ एक रुपया। पांच लोगों के लिए इतने बजट में एक-एक आलू वड़ा और चाय, इतना ही हिस्से आ सकता था। हमने आलू वड़ा खा लिया। कोड्डम चाय के लिए कहने ही वाला था कि मेहता ने कहा, मैं चाय नहीं पीता।

कोड्डम परेशान हो गया। मेहता उसकी परेशानी जान गया। उसने कहा, कोड्डम, पार्टी तुम्हारी ही है, फिर भी मैं भी तुम लोगों को पार्टी देना चाहता हूं। उसने ऑर्डर दिया, रबड़ी, पांच रबड़ी। रबड़ी के बाद कोड्डम की चाय आयी।

मेहता का बिल हुआ पौने दो रुपया। कोड्डम का एक रुपया। कोड्डम की सारी खुशियों पर पानी फिर गया था। साला ऐसा नहीं होना चाहिए।

दिवाली पर इस बार घर तो जाना ही नहीं था। यहीं कुछ पढ़ाई-वढ़ाई करने का इरादा कर लिया था। पता था कि छुट्टियां यहीं गुज़ारना बड़ा ऊबाऊ होगा। पर सोचा था कि रातों में जागते रहेंगे और दिन भर खूब सोते रहेंगे। छमाही इम्तिहान खत्म होते ही मैंने इस चर्या पर अमल करना शुरू कर दिया था।

एक दिन सुबह होने तक पढ़ते रहने के कारण हाथ-पैर अकड़ गये थे। बत्ती बुझा दी और सीधे पहाड़ियों पर चला गया।

मेरे आगे दो महिलाएं चल रही थीं। संभव है, रोज़ आती होंगी। मैं तो कभी सीधे रास्ते से पहाड़ियां चढ़ा नहीं करता था। उनमें एक थी रमी।

मैंने कहा, हेलो रमि रेमिस !

सुबह-सुबह पहाड़ियों की सैर से व्यायाम हो जाता है ?

थोड़ा-सा।

मैंने कहा, पर्चे कैसे रहे ?

ठीक।

अच्छा, आप ? मैं भूल गया। आप जबलपुर ही की हैं न ?

जी जबलपुर।

छुट्टियों में घर जा रही हो ?

जी।

कब जा रही हो ?

परसों।

बहनचोद। यह तो एक ही शब्द बोलती है। मुश्किल है। और फिर हमेशा की तरह वही नज़ाकत भरा लहजा। बड़ा खास। मतलब, जबलपुर की जगह बोलेगी बलपुर। सातारा अगर बोलना है तो बोलेगी तारा। 'खास' शब्द के उच्चारण में आघात नहीं देती, इसलिए सुनायी पड़ता है 'हास'। बहुत खूब।

ऐन दिवाली वाले दिन मैं बेचैन हो गया था। होस्टल में एक भी विद्यार्थी नहीं था। वैसे विदेशी लड़के सामान्यतया छुट्टियों में भी इधर ही रहा करते थे। लेकिन इस बार ये लोग भी कहीं ट्रिप के लिए चले गये थे। इन लोगों के साथ घूमते रहने के कारण मेरी अंग्रेजी काफी ठीक हो गयी थी। चाय की चलनी को अंग्रेजी में क्या बोलते हैं ? नेट। अंग्रेजी में क्या हुआ ? इस तरह छोटे-मोटे कई शब्दों के बारे में ज्ञान हो गया था ! अब बताइए, इस तरह का ज्ञान और कहां मिल सकता है ?

छुट्टियां खत्म हुईं। होस्टल के सांगवी वाले एक लड़के के साथ घर से मिठाई आयी थी। मैंने इसे गोपनीय रखा। पहले पूरा महीना रोज़ सुबह चाय के पहले एक लड्डू खाता। सेब-चिउड़ा वगैरा काफ़ी दिन तक चलता रहा। लेकिन एक बार सुरेश ने दरवाज़े की दरार से देख लिया। फिर यकायक मेरे कमरे पर कोई बीस लड़कों ने धावा बोल दिया। और बचा-खुचा पांच मिनटों में साफ।

इस तरह टोली बनाकर हमला करने का होस्टल वालों का रिवाज बड़ा भयानक था। मुझे इस मामले में वैसे ज्यादा परेशानी नहीं हुई थी। लेकिन ठंडे दिमाग से सोचिये। उनकी यह हरकत उतनी अस्वाभाविक नहीं थी। कोई भी समझदार आदमी इसे बुरा नहीं कहेगा। जहाँ चार-पाँच सौ हमउम्र लोग एक ही स्थान पर अपने परिवारों से कटे कई साल गुज़ारते हों और फिर जब हरेक का रवैया जुदा-जुदा होता है, वहाँ टोलियाँ बनाकर लूट-मार, हंसी-मज़ाक की हरकतें करते रहना असंभव नहीं है। इन लोगों का यही एक विशेष शौक था। इकट्ठे जमा हो जाते। उत्साह में लापरवाह बने मनचाहा बरताव करते रहते। लल्लू किस्म के लड़कों को लक्ष्य बनानकर उन्हें बेवकूफ बनाने में इन्हें मज़ा आता।

अब महादेवन को ही लीजिये। बड़ा सज्जन लड़का। प्रादेशिक आदतों के अनुसार वह होस्टल में लुंगी पहने रहता। इन्हें पता चला कि महादेवन लुंगी के

भीतर कुछ भी नहीं पहनता है। लंगोट भी नहीं। तो फिर ये लोग उसकी लुंगी खेंच-खेंच कर उसे परेशान करने लगे। हफ्ते भर लगातार यही शरारत चलती रही। एक बार तो किसी ने उसकी लुंगी ही खोल डाली। इस घटना के बाद महादेवन लंगोट पहनने लगा था।

आखिर किसी के साथ यह ज्यादती किसलिए? किसी को ऐसे ही रहना पसंद होगा। एक साथ कई कपड़ों से बदन ढांपने की नहीं होगी किसी की औकात।

इस लिहाज से इचलकरंजीकर काफी अच्छा आदमी था। वह लफड़े ज़रूर करता। लेकिन इतने राक्षसी किस्म के नहीं। और फिर दिखावटी लटके वगैरा वह करता ज़रूर। लेकिन इसके लिए वह कोई बाज़ी नहीं लगाता। अजगर की तरह धीरे-धीरे वह कुछ-न-कुछ तो करता ही रहता। इचल्या जैसा आदमी जो भी करता उसमें उसका अपना स्वार्थ होता। औरों की तरह किसी टोली के लिए नहीं। इचल्या द ग्रेट। लेकिन साले ये सब लोग जब भी इकट्ठे होते हैं तो समझो, इनका प्रयोजन होता है समूह का स्वार्थ। सुअरों की तरह सामूहिक कहकहे लगाते रहते हैं। औरों की खिल्ली उड़ाते रहते हैं। सुरेश भी इसमें सम्मिलित हो जाता है।

एक और किस्सा सुनिये। एक लड़का सुभाष जो बड़ा बुद्धिमान था, अभी-अभी मेंटल अस्पताल से ठीक होकर लौट आया था। वह दूसरी टर्म में होस्टल में क्यों दाखिल हुआ था, इसका राज़ यार-दोस्तों पर खुल गया था। बात यह थी कि सुभाष पहली टर्म में डॉक्टरों की सलाह पर इम्तिहान में गैरहाज़िर रहा था। अपने गांव में आराम कर रहा था। इस साल वह इम्तिहान में बैठने वाला था। उसकी बातचीत से भी उसकी पागलपन की हरकतों का पता चल जाता। रास्ता चलते-चलते वह जगह-जगह थूका करता। पांच-छः कदम आगे बढ़ता। फिर से पीछे मुड़ जाता। और उसी जगह थूक आता जहां पहले थूक चुका था। फिर सीध आगे निकल जाता। उसकी इन हरकतों पर निगरानी रखने के लिए होस्टल के चंद लड़कों के पास निश्चय ही समय रहता।

पूरी जानकारी के बाद सुरेश वगैरा शरारती लौंडों ने सुभाष की फजीहत करने की कई तरकीबें ढूंढ़ निकाली थीं। मिसाल के तौर पर, उसे बाहर से कुंडी लगाकर कमरे में बंद कर देते।

एक बार तो उन लौंडों ने उसे टट्टी के भीतर ही बंद कर दिया था। गुस्से के मारे सुभाष ने इतने ज़ोर से धक्के लगाये कि दरवाज़ा टूट गया। पर प्रोफ़ेसर

परांजपे ने आकर सुभाष ही पर दस रुपये जुर्माना किया। बाहर से कुंडी किसने लगायी थी, किसी को पता नहीं चला। पर किसी एक ने तो ज़रूर लगायी थी।

परांजपे ने सफाई दी थी। उन्होंने सुभाष से कहा, तुम पर जुर्माना इसलिए कि जब उन लोगों को पता चलेगा कि तुम्हें बिना जुर्म के सज़ा मिल रही है तो उन लोगों को तुमसे हमदर्दी होगी और वे भविष्य में तुम्हें परेशान नहीं करेंगे।

बताइये, इस तरह गुस्सा पैदा करने वाली घटनाओं का सिलसिला निरंतर चलता रहे तो जहां मुझ जैसा पागल हो सकता है, वहां सुभाष जैसे पहले ही से कमज़ोर लड़के की क्या कहें !

आखिर मेहता, सुरेश वगैरा सब-के-सब धीरे-धीरे सुभाष के दोस्त बन गये थे। मतलब, सुभाष खुद समझदारी दिखाने लगा था। वह इन लोगों से बड़ी नम्रता से पेश आने लगा था। सुभाष उनकी शरण आ चुका था, फिर भी इस टोली की तसल्ली नहीं हुई थी। ये लोग हर रोज़ सुभाष का कुछ-न-कुछ ज़रूर मज़ाक उड़ाया करते। कभी उसे होटल ले जाते। वहां खूब खाते। और क्रमशः एक-एक करके बाहर निकल जाते। बिल सुभाष को चुकाना पड़ता। कभी सुभाष बाथरूम में होता तो ये लोग ऊपर से उसके कपड़े उठा लेते। तब सुभाष भीतर से चीखता-चिल्लाता। कहता, कम-से-कम मेरा पाजामा तो दे दो, भाई। एक बार उसने इतना शोर मचाया था कि प्रो० शाह अपने बंगले से गुस्से में बाहर आ गये। उन्होंने सुभाष को बाहर निकलने के लिए कहा। सुभाष एकदम चुप हो गया। मैं वहीं था। मैंने शाह साहब को लड़कों की शरारत बता दी। उन बदमाश विद्यार्थियों को गालियां देने के अलावा शाह साहब और कर ही क्या सकते थे ? फिर मैंने अपना तौलिया सुभाष को दिया। सुभाष तौलिया लपेटकर चुपचाप नंगे-बदन बाथरूम से निकलकर कमरे में चला गया।

ग्यारह बजे के पहले सो जाने की सुभाष की आदत थी। पर सुरेश वगैरा लुटेरे लोग उसके कमरे पर गप्पें हांकते देर रात तक बैठे रहते। उसे झपकियां आने लगतीं। पर ये वहीं डटे रहते। सुभाष ऊब जाता तो ये कहते, हम चार बजे तक यहीं बैठने वाले हैं।

बेचारा सुभाष इन लोगों का लक्ष्य बना चिंता से और कमज़ोर हो गया था।

एक बार ये सब लोग ग्यारह बजे तक सुभाष के कमरे पर बैठे रहे। फिर यकायक बाहर निकल आये। इधर सुभाष फौरन सो गया।

बाहर टोली बनी। सभी ने अपनी घड़ियों की सुइयां एकदम पांच पर कर लीं। अगल-बगल जो भी जाग रहे थे उन्हें अपनी साज़िश बता दी। उनको भी

अपनी घड़ियों पर पांच बजाने के लिए कह दिया।

फिर सुभाष के किवाड़ों पर दनादन लातें शुरू हुईं। दरवाज़ा खुला। ये लोग अंदर घुसे, बत्ती जलायी।

सुभाष ने कहा, क्यों परेशान कर रहे हो ? तुम लोग शांति से सोने क्यों नहीं देते ? यह तो बहुत ही ज़्यादती है।

मोड़क ने कहा, कितनी देर सो रहे हो साले। ग्यारह बजे सोये थे। करीबन छः-सात घंटे गुज़र चुके हैं।

गोरे ने कहा, अरे मेहता कोलंबो जा रहा है। उसके पिताजी का तार था। हम लोग उसे मद्रास मेल पर विदा करने चलेंगे।

सुभाष ने कहा, इस वक्त कहां मद्रास ? कहां हुए हैं सात घंटे ? सिर्फ़ साढ़े बारह बजे हैं। तुम लोग निकल जाओ मेरे कमरे के बाहर। भाई, मज़ाक ठीक है। लेकिन उसकी कुछ लिमिट होनी चाहिए। निकल जाओ।

सुरेश ने कहा, पागल तो नहीं हो गये ? पांच बजे हैं। अपनी घड़ी फेंक दो। चूने की डिबिया। भड़वे, पांच बज चुके हैं। उठो, उठो।

सुभाष ने उन लोगों की घडियां देखीं। एक में पांच बजे थे। दूसरी में पांच बजकर दस मिनट। तो तीसरी में साढ़े पांच।

उसे शक था कि कहीं ये लोग मज़ाक तो नहीं कर रहे हैं, वह बाहर आया। दो-तीन लोगों के कमरे में जाकर समय देख आया। सचमुच पांच बज चुके थे।

सुभाष इस बात का हमेशा खयाल रखता कि कोई यह जान न पाये कि वह कभी पागल था। इसलिए वह बड़ा सतर्क रहता। ऐसे मौकों पर उसका खुद पर से विश्वास भी उड़ जाता। इसलिए उसे कहीं धुंधला-सा एहसास हो रहा था कि शायद पांच बज गये हों।

फिर ये लोग उसे पकड़ कर नल तक ले आये। उसने कहा, क्या मेरा भी चलना ज़रूरी है ?

मोड़क ने कहा, क्या मतलब ? मेहता के तो तुम सबसे करीबी दोस्त। एक बार हम लोग ना भी चलें तो कोई खास फ़र्क नहीं पड़ेगा। लेकिन तुम्हें तो चलना ही चाहिए।

इस तरह की लुभावनी बातों में सुभाष बहुत जल्दी आ जाता और अभिभूत हो जाता। सुभाष खुशी-खुशी तैयार हो गया।

फिर सब लोग मेहता के कमरे पर।

मेहता इतनी देर तक पढ़ाई कर रहा था। लेकिन टाई-कोट वगैरा तैयार रखे थे।

मेहता सूटकेस लिये रौब के साथ बाहर निकल आया।

सब-के-सब बाहर आ गये। एक टैक्सी तैयार खड़ी ही थी। मेहता और सुभाष

को टैक्सी से भेजा गया। बाकी लोग यह कह कर कि हम लोग साइकिल से आ रहे हैं, वहीं से लौट गये। कपड़े बदल लिये और टोली बनाकर गपशप करते बैठे रहे।

आधे घंटे बाद मेहता अकेला टैक्सी से लौट आया था। उसने कहा, सालो तुम तो मज़े में रहे। मुझे कितने परिश्रम करने पड़े !

और सुभाष ?

सुभाष को मैंने एक जगह खड़ा कर रखा है। मैंने उसे प्लेटफार्म टिकट खरीदने के लिए इकन्नी दी और कहा, चलो मैं आता हूँ। वह उधर चला गया। इधर मैंने तुरन्त टैक्सी पकड़ी।

बहुत अच्छे, मेहता, ब्रेवो ! मेहता को शाबाशी देकर लोग अपने-अपने कमरे पर जाकर सो गये।

बाद में सुभाष अकेला होस्टल पर लौट आया था। सब लोग सो चुके थे। मैं पढ़ रहा था। वह सीधे मेरे कमरे पर आया। पूछा, क्या बजा है ?

दो।

मैं स्टेशन से पैदल आ रहा हूं। जेब में पैसे होते तो इतनी परेशानी नहीं होती। ये लोग मेरे साथ ऐसे क्यों पेश आते है ? अब तुम्हीं बताओ, मैं इनसे कैसे निबटूं ? उसने सारा किस्सा मुझे सुनाया।

उसकी कहानी सुनकर मैंने कहा, मेरे पास एक चाकू है। सबसे पहले मोड़क को उड़ा दो। उसके पेट में चाकू भोंक दो। उन सबका खून कर डालो। सुरेश का भी।

सुभाष मुझे मूर्ख जानकर बाहर निकल गया। उसे सभी पर गुस्सा आया था। उसने उन सभी के किवाड़ टूटने तक दरवाज़ों पर धक्के लगाये। उसने एक-एक करके सबको जगाया। मोड़क के कमरे में घुसकर उसने उसे एक थप्पड़ दे मारी। मोड़क ने उसे कहा, सुभाष तुम पागल तो नहीं हो गये हो ? तुम्हें किसने जगाया था ? मैं थोड़े ही तुम्हें स्टेशन ले गया था ?

फिर सुभाष ने मेहता का कालर पकड़ा।

मेहता ने कहा, लगता है तुम्हें कोई सपना आया था। हम सब लोग तो बारह बजे ही सो गये थे।

उसके बाद सुभाष मेरे कमरे पर आया।

मैंने चिढ़कर कहा, तुम बार-बार मेरे पास क्यों आते हो ? जाओ। अपने दोस्तों के पास जाओ। मुझसे क्या पूछते हो ?

गरदन नीची करके उसने कहा, मैं कल घर चला जाऊं ?

मुझे उस पर बहुत दया आयी। मैं उसे साथ लेकर वहां गया, जहां वो सब लोग खड़े थे। मैंने कहा, मोड़कया, मेहता, सालो तुम सब लोग गधे हो। तुम लोगों ने इसका क्या करना चाहा है ?

मोड़क ने कहा, तुम क्यों बीच में मुंह मार रहे हो ? चले जाओ यहां से। साला पांडू !

गुस्से में मैंने उसे दो-चार गालियां दीं और कहा, भड़वे देखना कल तुम्हारा नशा ठिकाने लग जायेगा। तुम लोगों को होस्टल से बाहर न किया तो पांडू नाम बदल देना।

इस बीच काल्या, पाटील आदि लोग जग गये। आंखें मलते-मलते ये लोग वहां पहुंच गये। काल्या ने जब सारा किस्सा सुना तो फट से उसका दिमाग सरक गया। उसने मोड़कया से कहा, क्यों बे मोड़कया, ज्यादा मस्ती चढ़ गयी लगती है। आइंदा सुभाष को जरा भी छेड़ा तो तुम्हारी टांग तोड़ दूंगा। हराम के।

मोड़क चीखा, जानता हूं तुझे। बहुत देखे हैं।

चोऽप, काल्या चीखा। अब ज़ुबान खोलेगा तो उठा के नीचे फेंक दूंगा।

काल्या इस तरह दहाड़ा कि वहां खड़े सब लोग चुप हो गये। फिर वो लोग चुपचाप चले गये। सुरेश चूंकि मेरा मित्र था, वहीं रुका रहा था।

मैंने सुरेश से कहा, सुभाष जैसे लड़के को इतना सताना क्या राक्षसी कर्म नहीं है ?

उसने कहा, सही कह रहे हो। लेकिन हम लोग उसे इस बहाने मज़बूत बनाना चाहते हैं। वह बहुत कमज़ोर है। इतना कमज़ोर आदमी कहीं भी टिक नहीं सकता।

यह सब ठीक है। लेकिन यह कितना अमानुपिक है।

होगा। मंच पर हीरोगिरी करने के मुकाबले हमारी हरकतें ज्यादा बुरी नहीं हैं।

संक्षेप में, इन जंगली लोगों के खून में ही यह प्रवृत्ति घुली हुई है। मात्र दूसरों को पीड़ा पहुंचाने का अनुभव जिन्हें मिला है, उनके बारे में हम क्या कर सकते हैं ? सुरेश के साथ झगड़ा मोल लेकर भी तो क्या लाभ ? इस सबके बावजूद उसके साथ अपनी दोस्ती टिकी रहनी चाहिए।

उसके बाद कुछ दिनों तक सुभाष को किसी ने नहीं सताया। सुभाष ने शांति से बहुत पढ़ाई की थी। पर कुछ दिनों के बाद उसे होस्टल छोड़कर चला जाना पड़ा था। यह अच्छा नहीं हुआ।

सुरेश वगैरा शरारती लोगों ने सुभाष के खिलाफ एक हरकत की थी। सुभाप पढ़ाई में तेज़ था। इसलिए उसके क्लास की एक लड़की उसके साथ अच्छा बर्ताव किया करती। सच पूछो तो प्रेम वगैरा के लफड़े सुभाष को पता ही नही थे। एक दिन मोड़क वगैरा लोगों ने उस लड़की के नाम से एक जाली प्रेम-पत्र

सुभाष के कमरे में डाल दिया। उसमें लिखा था—कल फलां जगह शाम सात बजे मिलो।

सुभाष को यह सच लगा। ढंग के कपड़े पहन कर वह उस स्थान पर गया। सुभाष के पीछे-पीछे ये सब लोग वहां पहुंचे। सुभाष को शक हुआ, कहीं उन लोगों ने वह प्रेम-पत्र पढ़ तो नहीं लिया है ?

सुभाष जहां खड़ा था वहां ये लोग आकर खड़े हो गये।

सात बज गये।

तब इन लोगों ने सुभाष का मज़ाक उड़ाना शुरू किया। क्यों सुभाष, किसका इंतज़ार कर रहे हो ?

सुभाष ने कहा, तुम लोग यहां से चले जाओ।

सुभाष ने सोचा, जब इतने लोग यहां पर हैं तो वह क्योंकर आयेगी ? वह लौट गयी होगी। उसके मस्तिष्क में कुछ भनक पड़ी—यकायक उसने एक बहुत बड़ा पत्थर उठाया और ठाकरे के सिर में दे मारा।

ठाकरे गश खाकर गिर गया। डॉक्टर आये। बाकी लोगों ने सुभाष को खूब पीटा। ठाकरे करीबन आठ दिन अस्पताल में रहा।

प्रोफेसर डॉक्टर परांजपे ने होस्टल में पूछताछ की। लोगों ने उन्हें बताया कि सुभाष पहले मैंड था और अब भी थोड़ा-सा मैंड है। उस समय मैं वहीं खड़ा था। लेकिन परांजपे साहब ने मुझसे कुछ भी नहीं पूछा। मैंने भी उन्हें खुद कुछ नहीं बताया।

परांजपे साहब ने सुभाष को होस्टल छोड़ जाने के लिए कहा। सुभाष के रिश्तेदार आये। मैंने सुभाष का सामान पैक करने में उसकी मदद की। पाटील टैक्सी लेकर आया। उसे सताने वाले वो लोग चोर की तरह गैलरी में खड़े-खड़े उसकी विदाई देख रहे थे।

सुभाष चला गया।

जाते वक्त उसने मुझसे इतना ही कहा था, अच्छा सांगवीकर।

उसके बाद मैं परांजपे साहब से मिला था। करीबन एक घंटा उनके यहां बैठा। सारा किस्सा सुनाया। परांजपे ने कहा, ठीक है जो भी हो सही होगा। लेकिन होस्टल क्या मेंटल अस्पताल है ?

मैंने परांजपे साहब से कहा, आपको बिलकुल सेंस नहीं है। होस्टल मेंटल अस्पताल नहीं है—सो तो ठीक है। लेकिन क्या फिर होस्टल किसी को खूब पीड़ा देकर उसे और पागल बना डालने की जगह है ? आप गधे हो।

मैंने यह सब मन-ही-मन कहा था। पर जो भी हो, जो कुछ मैंने कहा था वह

वास्तव में ज़ोर देकर कहने लायक सच था।

इनकी नज़रों में होस्टल वह जगह है जहां कोई आदमी पानी में डूब रहा है, अधमरा हो गया है, हिचकियां ले रहा है, ऊपर निकलने के लिए संघर्ष कर रहा है—और ये सब भले कहे जाने वाले लोग उस डूबते को और नीचे दबा रहे हैं, उसकी यातनाएं देखकर किनारे बैठे तालियां पीट रहे हैं, कहकहे लगा रहे हैं···।

मैंने अपने तईं आदमी को दो गुटों में विभाजित किया। पीड़ा पहुंचाने वाले और पीड़ा सहने वाले। तीनों लोकों के सभी प्राणी इन्हीं दो गुटों में विभाजित किये जा सकते हैं। यह अपनी मौलिक ईजाद थी।

क्रिसमस की छुट्टियों में मैं घर नहीं जाने वाला था। पर एक रोज़ अचानक हमारे गांव का एक ट्रक होस्टल पर आ गया। कमरे का नंबर तलाशता हुआ ट्रक का ड्राइवर मेरे कमरे पर पहुंच गया। कहने लगा, तुम्हारे यहां की भैंस एक हफ्ते के भीतर सू जायगी। तुम्हारी मां ने तुम्हें इन्नर खाने के लिए बुलाया है। आज रात चलेंगे।

दिवाली पर मैं घर नहीं गया था। मां को बुरा लगा था। और फिर इधर तीन साल हुए, घर का इन्नर खाने को नहीं मिला था। मैं खुद भी इसी चिंता से ग्रस्त था कि आखिर छुट्टियां कैसे गुज़ारें। मैंने तुरंत तैयारी कर ली और ट्रक से घर चला आया।

मैं बहुत कमज़ोर हो गया था। मुझे देखकर मां को बड़ी पीड़ा हुई। मैंने कहा, मां, मैंने कर्ज के दो सौ रुपये चुका दिये। और फिर मैस का भोजन। किफायत में चाय भी बंद थी। तब फिर तुम्हीं बताओ, इससे अच्छी क्या होती मेरी हालत?

मां ने कहा था, बालकोबा, तुम बहुत भोले हो। ऐसा नहीं करना चाहिए। मौसी के पास बचाकर रखे अपने सारे-के-सारे पैसे खर्च क्यों नहीं किये? मैं उसको लिखूंगी। जाते समय मुझसे सौ रुपये और ले जाओ। कम-से-कम रोज़ तीन पाव दूध तो पीना ही चाहिए। देर-रात जागरण को बंद कर दो। वैसे तुम बड़े अव्यवहारी हो। खर्च करने लगते हो तो वर्ष में तीन हज़ार भी कम पड़ते हैं। और किफ़ायत करते हो तो चालीस में महीना गुज़ार देते हो। यह ठीक नहीं है। सारे पैसे खर्च कर डालो। खत्म हो जायें तो घर पर चिट्ठी डाल देना। अरे पगले, यह सब तुम्हारा ही तो है। अधिकार से पैसे मांगने चाहिए। लेकिन हां, ध्यान रहे, खर्च का सारा हिसाब लिखकर रखा करो। छुट्टियों में आओ तब इनके मुंह पर फेंकने के लिए—झूठ ही क्यों न हो—कुछ तो चाहिए।

घर से विदा होते वक्त एक ही विचार मेरे मन में मंडरा रहा था कि भविष्य में ऐसा कुछ कर दिखायेंगे जिससे मां को सुख मिले।

मैं पूना चला आया। अब मैंने खूब ऐश करना शुरू किया।

मौसी को मां वाली चिट्ठी देकर उससे बचे हुए सारे पैसे ले लिये। नये कपड़े सिलवाये। बहुत सारी किताबें खरीदीं। बाल कटवाने के लिए अब मंडी तक पैदल जाना बंद। पर्याप्त दूध। खाना-पीना जमकर। रोज़ अंगूर। उत्साह के साथ खूब पढ़ाई। पर मां की हिदायत के अनुसार खर्च का हिसाब डायरी में लिखता रहा। इसकी आदत डाल ली। बड़े ठाठ से मैंने इस काम के लिए चार रुपये वाली डायरी खरीदी। डायरी के पहले ही पन्ने पर लिखकर रखा—जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरियसी।

लेकिन मैंने अपने साफ दिल के मित्रों को नहीं तोड़ा। न मैंने किसी तिकड़मी धनवान लड़के से मित्रता जोड़ी। कोड्डम, धाइंजे, पाटील, काल्या आदि से मेरी दोस्ती और गहरी हुई। मैंने उनसे अपनी निर्धनता का ज़िक्र किया था, पर यह मंशा भी बता दी कि भविष्य में हम ऐश करते रहेंगे। यही तो थे मेरे सच्चे मित्र। कोड्डम ने पिछली जुलाई में मुझे सिर्फ हलके संकेत पर तीस रुपये उधार दिये थे। पाटील भी मुझ पर कभी-कभी थोड़ा खर्च किया करता। वह मुझे कभी गन्ने का रस पिला देता। एक बार मैं मंडी से पंद्रह रुपये के फल ले आया था। हम चार-पांच दोस्तों ने मिलकर फलों का सफ़ाया कर डाला। मुझ पर मस्ती का आलम छाया हुआ था।

पांच, यह कोई मरने की उम्र थोड़े ही होती है? मुख्य सवाल यह, कि पांचवें साल मर जाने वाला बच्चा पैदा हुआ ही क्यों?

मेरी पांच बरस की बहन मर गयी थी। मुझे भयंकर पीड़ा हुई थी। उस वक्त हमारी दादी अगर मर जाती जिससे मृत्यु के बारे में चिंतन करने का अभ्यास तो हो जाता। और बाद में अगर मनी मरती तो उस स्थिति में विशेष पीड़ा नहीं होती। लेकिन हमारे परिवार में पिछले चालीस बरसों के इतिहास में दादा जी की मृत्यु के बाद मरी सो सिर्फ मनी। मेरी उम्र के बीस साल पूरे होने तक परिवार में यही एक मृत्यु हुई थी। मुझे बहुत पीड़ा हुई।

मैं इधर ही था। इसलिए तो और भी ज्यादा बेचैन था। मेरी बेचैनी और पीड़ा की तीव्रता मित्रों से भी छिप नहीं सकी थी। लेकिन मैंने मनी की मृत्यु की बात किसी को नहीं बतायी। मित्र कह रहे थे, अरे भाई दुखों के दायरे घूमते-घूमते

कब हमें घेर लेंगे, इसका कोई पता नहीं होता है। इनकी गति भयानक तेज होती है। ज़रूरी नहीं कि इसका कोई कारण हो।

लेकिन मेरे दुख का कारण था। जिस दुख का कारण होता है, वह दुख सच नहीं हो सकता। लेकिन ऐसा दुख हृदय में गहरे उतर कर चुभता रहता है। यह सच है।

मेरे बाद क्रम से चार बहनें ही हुईं। काफी बड़ा हो जाने तक मुझे कोई नयी चीज़, नया कपड़ा आदि नहीं मिलता था। तब मैं पांव पटकता और कहता, मैं इकलौता बेटा हूं फिर भी मुझे कोई लाड़-प्यार नहीं करता।

तब पिताजी कहते, तुम यह मत समझो कि तुम हम पर बड़े उपकार कर रहे हो। क्या हमें आगे कोई लड़का पैदा ही नहीं होगा ?

पर आखिर तक मेरी बहनें ही होती रहीं। और मैं इकलौता ही बना रहा।

हमारा परिवार विशुद्ध हिंदू संस्कारों में पला हुआ था। इसलिए बहनों के साथ जो व्यवहार होता वह खास हिंदू ढंग का होता। यह कि बहनों को भाई के मुकाबले ज़िद नहीं करनी चाहिए। और कि बड़ी बहन छोटी की कंघा-चोटी करे। या कि बड़की छुटकी की टट्टी धोये। और फिर लड़कियों को चाहिए कि वे मां का सब कहा मानें।

संतानें होती हैं माता-पिता की। लेकिन एक को दूसरी के काम करने पड़ते हैं। भाइयों को अपने से छोटे भाइयों की पढ़ाई देखनी पड़ती है। बड़े भाई को छोटी बहन की शादी की जिम्मेदारी लेनी पड़ती है। क्या यह सब राक्षसी नहीं है ? हमारे परिवार में भी यही राक्षसी रिवाज़ चला आया था। हमारे यहां भी मेरी बहन सुमी को विवाह के बाद मायके आने के लिए मना कर दिया गया था। उसी राक्षसी रिवाज़ की यह एक परिणति समझो। लेकिन मनुताई की मृत्यु की खबर से मुझे बहुत दुख हुआ।

बड़ी शांत मिजाज़ की थी मनुताई। काम में, बात करने में, गाना गाने में, स्कूल जाने में कहीं भी हड़बड़ी नहीं।

मां कहा करती, इसके दिमाग ही नहीं है। उधर गुसलखाने में लालटेन की कांच टूटने की आवाज़ आयी, और इधर मां चिल्लायी—मनी ही होगी, रुक जा मुई ! हालांकि कसूरवार कोई दूसरा ही होता तब भी। तब मनी किसी कमरे से

कहती, अम्मा, मैं नहीं। मैं इधर झाड़ू लगा रही हूं। दूध का बर्तन किसी और के हाथ से गिर जाता तब भी मां यही कहती, यह मनी ही होगी।

मेरी मां के हर बार लड़की ही पैदा होती है, इस अनुमान से ग्रस्त मेरी दादी मनी के जन्म के वक्त जापे के काम से पूरी ऊब चुकी थीं। उसे घर के सारे काम संभालने पड़ते और फिर मां का करना पड़ता सो अलग। इसलिए उसे छोटी मनी को नहलाते समय बड़ी झुंझलाहट होती। एक बार दादी गर्म पानी में ठंडा पानी मिलाना भूल गयी थी। बच्ची को उसने अपनी टांगों पर औंधा लिटाया और नहलाने लगी। गर्म पानी चटका लगा और बच्ची चीखने लगी। दादी ने सोचा, अब कौन उसे पहले झूले में लिटाये, पानी को गुनगुना करे, फिर इसे ले आये—और फिर टांगों पर रखे ? इतने में बच्ची की चीख सुनकर मां वहां चली आयी। पानी में हाथ डाला, तब रुआंसी होकर उसने दादी से कहा, उठिए, मैं नहला देती हूं। दादी ने मनी को ज़मीन पर पटक कर कहा था, लड़कियों को मां को इतना घमंड नहीं करना चाहिए।

लेकिन मां का भी तो मनी पर इतना प्यार कहां था ? वह जब पेट में थी मां ने सोचा था, इजा-बिजा-तिजा। अबकी बार तो ज़रूर लड़का ही पैदा होगा। पर हुई मनी। पिताजी भी मनी की तरफ तिरस्कार की निगाहें फेंका करते।

उस साल चेचक की बड़ी भयंकर बवा आयी हुई थी। हमारे गांव के कोई पचास बच्चे इस बीमारी के कारण मर चुके थे। उनमें यह एक थी।

हमारे खेत के पहरेदार का बेटा इसी बीमारी से मरा था। इसका किस्सा तो बड़ा भयंकर था। लड़के की बीमारी गंभीर मोड़ ले चुकी थी। लड़के की मां यह सोचकर कि वैसे भी बीमार की खाट के पास किसी को तो सिर्फ बैठना ही होता है। अपनी छोटी बच्ची पर यह काम सौंप कर खुद बाहर काम पर चली गयी थी। दोपहर में उस लड़के के बदन में इतनी जलन हुई कि छटपटाकर वह भागा और बावड़ी में कूद गया।

लेकिन मनी की मृत्यु खाट पर ही हुई।

इस बार दादी ने कार्तिकी के मेले पर जाने की तैयारी कर ली थी। लेकिन बिलकुल इसी दौरान मनी को भयंकर बुखार हो गया था।

मां ने दादी से कहा, इसी मेले पर जाना क्या ज़रूरी है ? छुटकी अब भी दूध पीती है। बस्ती में हालत बहुत खराब है। तुम आगे आषाढ़ी के मेले चले जाना। अभी मनी का खयाल करो।

अपना बंधा-बंधाया सामान गुस्से से खोलकर दादी ने पड़ोसन से कहा, तुम चली जाओ। क्या करें? बहू चाहती है कि मैं इसकी लड़कियों के लिए अपना नेम-धरम सब कुछ छोड़ दूं। इतना-सा बुखार क्या हुआ, पर इसे लगता है, कि मैं इसकी लड़कियों के आस-पास निरंतर घूमती रहूं। कौन किस्मत ले आयी है यह, जो इसके बच्चों को माता निकलेगी?

मां रोने लगी। उसने कहा, तुम्हें जाना है तो चली जाओ। लेकिन माता की बात मत करो। मुन्नी को संभालकर मैं मनी की देखभाल कर लूंगी। लेकिन हाथ जोड़ती हूं, अपनी ज़बान को ताला लगा लो।

दादी नहीं गयी। लेकिन दादी की ज़बान फल गयी। सचमुच मनी का बुखार चेचक का ही निकला। उसका पूरा बदन सुर्ख पड़ गया था।

अब उसके करीब छोटे-बड़ों का आना-जाना बंद कर दिया गया था। उसकी तीमारदारी के लिए अब दो महिलाएं बची थीं। इनकी भी आपस में पटती कहां थी? मां ने कभी पूछा, कि क्या पानी गरम हो गया? तो दादी सुना-अनसुना कर देती। जवाब न देती। दादी ने कभी कहा कि तुम मज़दूरों के लिए रोटियां बना दो, तो मां मौन हो जाती।

इसी बीच पता नहीं पिताजी को क्या सूझी कि उन्होंने हमारा पुराना गंदा मकान गिरवाकर उस वर्ष नया मकान बनाने का इरादा कर लिया। हुआ यूं कि अच्छे दाम मिल गये। पिताजी को खूब कमाई हुई थी। पिताजी ने कहा, ऐसा मकान बनवाते हैं, जिसकी तीन तो मंजिलें होंगी और फिर चौथा छत। बस्ती में इस मकान की बराबरी कोई नहीं कर सकेगा।

मां ने कहा, मनी जब तक ठीक नहीं हो जाती, मैं इस मकान को तुड़वाने नहीं दूंगी।

पिताजी को गुस्सा आया।

मैंने इधर मज़दूर, राज आदि पक्के कर लिये हैं और तुम हो कि अपनी ही बघारती हो। मनी आठ-दस दिन में अपने-आप ठीक हो जायेगी। लेकिन उसके बाद लागत कितनी बढ़ सकती है, सोचा भी है? बस्ती में दो और मकान बनने जा रहे हैं। वो लोग अभी से मज़दूरों को अटका देंगे, तब?

मां ने कहा, आप यहां से चले जाइये।

पिताजी को मां पर भयंकर क्रोध आया था। वो शाम के समय कभी मनी के बारे में यूं ही पूछ लिया करते, बस। दादी और पिताजी दोनों इस मामले में मां पर नाराज़ थे। इन दोनो का बड़बड़ाना चालू रहता। पिताजी कभी डॉक्टर ले आते, बस।

मुझे इधर पिताजी की चिट्ठियां आती रहतीं। लिखा रहता, हमें अबकी बार कपास का बहुत अच्छा दाम मिला है। चुनाव खत्म हो चुके हैं। छत तोड़ दी है। जल्दी ही नीचे की मंज़िल तोड़ देंगे। उसके बाद नये मकान का काम शुरू हो जायेगा। तुम परिवार में इकलौते पुत्र हो। परिवार की पूरी शान तुम पर निर्भर है। सुना होगा तुमने, अमुक साहब का लड़का जर्मनी गया है। तुम सिर्फ़ पढ़ाई में लगे रहो। वगैरा-वगैरा।

मैं इधर सचमुच पढ़ाई कर रहा था। और अचानक चिट्ठी मिली—चेचक के कारण मनी चल बसी। ज्यादा परेशान न होना।

मैं सुन्न रह गया। इस तरह अचानक क्योंकर किसकी मौत हो ?

पिछली छुट्टियों में जब मैं विदा हो रहा था, मनी मुस्कराती हुई मुझे कंघा देने आयी थी। उसे मैं इस छुट्टियों में कभी देख नहीं पाऊंगा। यह कैसी नियति है ? मैं बेहद सन्न हो गया।

उसके तुरंत बाद मां की एक लंबी चिट्ठी मिली थी। विस्तार से लिखा था—पिछले पंद्रह दिनों से मुझ पर जो गुज़र रही है उसे याद करते-करते मेरे आंसू बहे जा रहे हैं। आंचल भीग गया है। तुम दुखी न होना। तुम्हारी और तीन बहनें हैं।

मनी के बदन के फोड़े नींबू की तरह बड़े हो गये थे। उसकी दवा-दारू करने में दादी बड़ी लापरवाही किया करती। छोटी नली के डर से कि कहीं उसे छूत न लग जाये, मां मनी के बहुत करीब जाने से कतराती। वह दूर ही से उसे देखती रहती। मां को देखते ही मनी अपने दोनों हाथों को ऊपर उठा लेती। संकेत से कहती, कि मां मुझे गोद ले लो। लेकिन मां उसे नहीं ले सकती थी।

फोड़े बहुत फूल गये थे। तब मां खटिया के पास आकर बैठने लगी थी। बाकी सब लोगों को वहां जाने की मनाही थी। मनी की दोनों हथेलियों को कपड़े की थैलियों में बंद कर दिया गया ताकि वह खुजा न पाये। थैलियों को कलाई पर कसकर बांध दिया गया था। इसके बावजूद मनी खुद को रोक नहीं पाती थी और फोड़ों को खुजाकर फोड़ डालती। उसके दोनों कंधों पर खून बह रहा था। दादी को गुस्सा आया। उसने मनी के दोनों हाथ खाट की पाटी से कसकर बांध दिये।

मनी मिमियाने लगी थी, कहती, हाथ खोल दो।

मां ने उससे पूछा, मनुताई, तुझे क्या चाहिए, पानी ?

मनी कुछ भी नहीं बोली।

मां ने फिर पूछा, मनी, बोलती क्यों नहीं ? बोलो ना ? संभवतः कल से तुम

बोल भी नहीं पाओगी। कम-से-कम आज तो मुझसे बात कर लो, बेटी !

लेकिन मनी खामोश थी।

दादी ने कहा, मनुताई, दद्दा से तुम्हारे लिए कौन-सी चीज लाने के लिए कहें ?

तब उसने मुंह खोला। कहा था, लाल साड़ी।

लाल साड़ी।

जब उसने ये शब्द कहे होंगे, उस वक्त इधर मैं क्या करता रहा हूंगा ? कमरे पर बैठा था या पहाड़ियों पर सैर कर रहा था ? दोस्तों के साथ हंसी-मज़ाक में मस्त था या खिड़की से पहाड़ी को देख रहा था ? मुझे उसने उसी क्षण याद किया था। लाल साड़ी।

जब भी छुट्टियों में घर जाता वह मुझसे लाल साड़ी की मांग करती। हर बार मैं कहता, अगली बार ज़रूर।

मेरे वादे पर भरोसा करके उसके ऐवज में वह मेरे कई काम फौरन कर देती। पीठ खुजाने जैसे किसी काम के लिए जब वह आनाकानी करती और ज्यों ही मैं लाल साड़ी का ज़िक्र करता वह फौरन तैयार हो जाती।

धीरे-धीरे उसकी ज़ुबान बंद हो गयी थी। गले में फोड़े निकल आये थे। आंखों में भी चेचक फैल गयी थी। आंखों की पुतलियां सफेद हो गयी थीं।

मां ने पूछा, मनुताई, तुझे क्या चाहिए ऽऽ ?

मनी ने कहा, मेरे हाथ खोल दो, मां। जलन, जलन, मां, जलन हो रही है।

इसके बाद से उसका मुंह फिर कभी खुला ही नहीं। मुंह में जो भी डाला गया कंठ से नीचे उतरा ही नहीं। आंखों की बीनाई तो कभी की समाप्त हो चुकी थी।

खटिया की एक बाजू से खड़ी-खड़ी मां उसे जब पुकारती, मनू ऽ ऽ, तो वह ईसा की तरह जिसके दोनों हाथ बंधे हैं अपनी सफेद पुतलियों पर तनाव डालकर आवाज़ की दिशा में घुमाती रहती।

फिर मां सिरहाने खड़ी हो जाती और पुकारती, मनुताई ऽ !

वह अपने सिर को ऊपर उठाकर उधर दृष्टि फेंकती।

उसकी आंखें सीपियों की तरह सफेद।

दादी ने कहा, अभी सुन तो सकती है। और दो दिन बाद, उसे बगैर नहलाये-धुलाये बस्ती के बाहर गाड़ दिया गया था। खाट समेत उसका छुआ हुआ सारा सामान दफन कर दिया गया। उसका वह छोटा-सा बस्ता, उसकी चादर—सब कुछ।

दो-तीन दिन तक मैं भयंकर रूप से संतप्त था। पर समझ नहीं पा रहा था कि क्षोभ को कैसे निकालें? किस पर?

मैंने कहा, मैं पिताजी का खून कर दूंगा। मैं दादी को मार डालूंगा। मैं पूरे मकान को आग लगा दूंगा। सबकी लाशों को उस आग में जला दूंगा। मां को तो जीवित जला दूंगा। कितनी भयंकर मौत थी मनी की!

उन लोगों ने मनी को गाड़ दिया। गाड़ दिया। गाड़ दिया। मैं विह्वल हो गया था। मेरी भावनाएं भड़क उठी थीं। क्या मज़ाक लगा रखा है उन लोगों ने?

मैं छोटे बच्चों की पीली साड़ी खरीद लाया। फिर उसके चिथड़े-चिथड़े कर डाले। उसे आग लगा दी। लपटों के कारण मेरे हाथ जल गये थे। मैंने दवात की स्याही फर्श पर उंड़ेल दी। हाथों को उसमें भिगोया। ठंडक महसूस हुई। फिर स्याही में अपनी हथेलियों को भिगो मैंने जगह-जगह पंजों के छापे लगाये। तकिये पर, दरवाज़े पर, खिड़कियों पर, दीवारों पर।

फिर पतीली में रखा सारा दूध नीचे कुत्ते के उस लावारिस पिल्ले को पिला दिया।

मैंने कहा, मैं उनसे बदला लूंगा। हर महीने सौ रुपये फूंक दूंगा। हर महीने दो सौ रुपये मंगाऊंगा।

मैं अकेला बेताल टीले पर चला गया। वहां पागलों की तरह कभी दौड़ता रहा तो कभी बैठा रहा। शहर की सड़कों पर पैदल घूमता रहा। एक पुलिस वाले ने मुझे टोका था, तब मैंने कहा, मेरी बहन मर गयी है।

मनी की मृत्यु मेरे लिए बर्दाश्त से बाहर थी। मौसी मेरे कमरे पर अपने लड़के को साथ लिये आयी थी। कहने लगी, जिसका जन्म होता है मृत्यु निश्चित है। बचा रहने के लिए कौन पैदा हुआ है? फिर उसने कहा, एकाध सप्ताह हमारे यहां आकर रह लो।

मैंने कहा, सिर्फ़ हफ्ता ही क्यों? दस साल क्यों नहीं?

हिंदुस्तानी परिवारों में छोटे बच्चों की मृत्यु कोई अनहोनी घटना नहीं है। इसलिए असल में इस बात को लेकर इतना परेशान नहीं होना चाहिए। पर इससे मुक्त भी तो कहां हुआ जा सकता है? मरने वाले को छोड़कर बाकी सब लोग मृत्यु के बारे में सोचते रहने के लिए मजबूर हैं।

फिर भी मौसी मुझे जबरदस्ती अपने घर ले गयी।

एक-दो दिन में ही मैं वहां ऊब गया और कमरे पर लौट आया, क्योंकि मौसी के यहां के सभी लोग मेरे साथ असहज रूप से पेश आते थे। मुझे हमेशा अहसास दिलाते रहते कि मैं दुखी हूं। इसके उलटे कमरे पर जो चाहो—जैसे चाहो, रहा जा सकता है।

स्थितियां अपने-आप पैदा हो चुकी थीं। किसी चीज़ में कोइ दिलचस्पी नहीं हो रही थी। शाम को मेहता के साथ भीड़ में से गुज़रते वक्त लगातार मृत्यु के विचार आते। कोई रास्ता न दे तो बड़ा क्रोध आता। कभी कमरे से बाहर निकलकर गैलरी में खड़ा रहता। चहल-पहल बंद हो जाती। चारों तरफ सन्नाटा छा जाता। सामने वाले कमरों के ऊपर चांदनी का एक लंबा टुकड़ा सरकता-सरकता सीधे ज़मीन पर आ गिरता। फिर वही टुकड़ा आगे सरकता हुआ मेरे पैरों पर पहुंच जाता। फिर वही टुकड़ा ऊपर की तरफ बढ़ता। मेरी नज़रों को अपने साथ लिये चांद तक पहुंचा देता। फिर चांद भी उन कमरों की छतों के नीचे उतर जाता। फिर चारों तरफ अंधकार। इस तरह कई रातें गुजारीं। मित्र कहते, भूतों की तरह रात भर खड़े मत रहो, भाई !

उसके बाद अब तीनों बहनों को वे लोग प्यार करने लगे थे।

और फिर सुमी की शादी जल्दी ही हो गयी थी। रह गयीं सिर्फ दो। शादी में परिवार के सभी लोग खुशी के मारे नाच रहे थे। मां भी। कभी किसी के साथ मां को ज़ोर-ज़ोर से हंसता हुआ मैं देख लेता तो विचार आता, मां से कह दें और मनी जो मरी उसका तुम्हें कोई दुख नहीं !

लेकिन मनी की मृत्यु के बाद मैंने घर पर कोई चिट्ठी नहीं लिखी। मां मुझे लगातार चिट्ठी लिख रही थी। तब मैंने उसे लिखा था, तुम मुझे चिट्ठी लिखना बंद कर दो।

मेरी चिट्ठी के जवाब में उलटे मां ने एक बहुत लंबी चिट्ठी मुझे लिखी।

कॉलेज में अजंता की ट्रिप की कोई योजना बनी थी। मैंने सोचा, अजंता देख लें। कुछ अच्छा लगेगा। इसलिए मैं ट्रिप में शामिल हुआ।

अजंता।

यह ठोस विशाल पाषाण का अर्धवृत्त। सामने धो-धो की निरंतर आवाज़ करता जल-प्रपात। सारा दिन यह आवाज़ दिमाग में मंडरा रही थी। और मैं एक के बाद दूसरी गुफाओं को देखता आगे बढ़ रहा हूं।

एक गुफा में बुद्ध की महाकाय ऊंची मूर्ति। पालथी मारे बुद्ध बैठे हैं। गुफा के दरवाज़े से सीधे बाहर की तरफ देख रहे हैं। क्या देख रहे हैं ? अति विकल मुद्रा। पलकें अर्धोन्मिलित। उन अध-खुली मंगोल पलकों की ओर मैं घूर कर देख रहा हूं। अपने दाहिने हाथ की पांचों उंगलियों को ऊपर उठाये वह बायें हाथ की उंगलियां गिन रहे हैं। कुल उंगलियां दस। निर्माण और संहार की समूची

व्याप्ति को बुद्ध ने इन्हीं उंगलियों के सहारे गिना है। मैं पुनः मूर्ति को गर्दन ऊंची करके देखता हूं। इतनी भव्य मूर्ति को किसी एक कोण से मुकम्मिल देख पाना संभव नहीं है। दृष्टि को बार-बार घुमाना पड़ता है। पाषाण मुद्रा पर मंथर गति से सरकने वाले भाव। कितनी विकलता। विकलता जैसे अपने महाकाय डैनों को फैलाये आगे बढ़ रही है। मैं इसी के साथ ऊपर उठा जा रहा हूं। बहुत ऊपर। अब डैनों का सहारा छूट गया है। मैं मुक्त हूं। इस ऊंचाई से कहीं गिर न पड़ूंगा। मेरे सामने यह मूर्ति है। कितनी पीड़ाएं हैं इस चेहरे पर। अनगिनत। इन्हें कदापि गिना नहीं जा सकता। स्थूल और सूक्ष्म पीड़ाओं की इन परतों को पकड़ पाना संभव नहीं है। चक्कर काटती पीड़ाएं। पीड़ाओं को पी पाने के लिए भी तो पीड़ाओं की अंजलि चाहिए। तिनके जैसी मेरी नगण्य पीड़ा के नाप से रेगिस्तान जैसी इस विशाल पीड़ा को कैसे नापा जा सकता है? मेरी पीड़ा छोटे घेरे में आबद्ध। इस छोटी-सी दरार में वह विशाल मुद्रा कैसे समा सकेगी? मैं उस पाषाण मुद्रा की पीड़ाओं में ढह पड़ता हूं। इनकी तुलना में मेरी पीड़ाएं कितनी नगण्य हैं! इसकी तुलना संभव नहीं। मैंने कहा, मुझ पर दया करो। एण्ड पिटी फ्राम यू मोर डियर दैन दैट फ्राम अनअदर। लेकिन यह बुद्ध हम पर अनुकंपा नहीं करेंगे। इनकी करुणा हमारे लिए नहीं है। किसी एटम बम की तरह यह बैठे हैं; सारी आग को पेट में समेटे।

दूसरी गुफा में।

वही महाकाय भव्य मूर्ति। भीतर दूर मध्य में। आगे वाली गुफा में भी यही। प्रत्येक गुफा में यही दृश्य। छोटे बच्चों की तरह दबे पांव चलता मैं उन्हें देख रहा हूं। एक बुद्ध प्रतिमा। प्रसन्न मुद्रा। चेहरे पर मुस्कान। सिर पर घुंघराले बालों की पाषाण लटें। गोल-गोल वर्तुलाकार केश। भव्य कपाल। और संसार का सबसे महान मंत्र उच्चारण करने वाले वे सुंदर ठोस होंठ। इस मूर्ति का एक हाथ ऊपर उठा हुआ है। आशीर्वाद प्रदान करने के लिए। दर्शकों के लिए आशीर्वाद। जो-जो इसे देखेगा, उन सबके लिए। झाड़ू लगाने में जिसकी पूरी जिंदगी खप गयी है उस भंगी के लिए यह आशीर्वाद है। मिट्टी में विलीन होने वाले प्रत्येक मर्त्य के लिए यह आशीर्वाद है। मुट्ठी भर सरसों के लिए दर-दर घूमने वाली मांओं के लिए यह आशीर्वाद है।

पत्थर के जीने से मैं गुफा की पहली मंजिल पर। यहां तपश्चर्या करने के लिए बड़े-बड़े शीतल विहार बने है। शांत, गहरा काला अंधकार फैला है। एक बार मैं

माचिस ढूंढ़ रहा था। लेकिन अंधेरे के कारण माचिस मिल नहीं रही थी। मैंने माचिस के लिए आवाज़ लगायी। अंधेरे में चीज़ों को अलग करता मैं माचिस तलाशता रहा। मनी चुपचाप भीतर आयी थी। मैंने सिर्फ़ आहट सुनी। पूछा, कौन है? उसने कहा, मैं हूं। फिर वह मेरे लिए माचिस ढूंढ़ने लगी थी। हड़बड़ी में वह ट्रंक पर से नीचे गिर गयी, उसे संभालने के लिए मैं आवाज़ की दिशा में लपका। लड़खड़ाया, लेकिन इसके पहले वह अपने-आप उठकर बाहर निकल चुकी थी। अंधेरे में कोई अंधेरा हो नहीं सकता। वहां हमारे अतिरिक्त सारी वस्तुएं लुप्त हो जाती हैं।

सामने वाली गुफ़ा में केवल अंधेरा है। चलते-चलते हज़ारों मील चले जाइए गुफा खतम नहीं होगी। बहुत गहरी, घुप अंधेरे में व्याप्त है। मैं इसमें दिशाहीन चल रहा हूं। लेकिन वास्तव में यहां तो कुछ भी नहीं है।

आगे वाली गुफा में अंधेरे का हाल वही था। लेकिन यहां बायीं तरफ के छोटे-से झरोखे से भीतर प्रकाश आ रहा है। लंबा-चौड़ा आदमकद पाषाण-पलंग खुदा है। इस आड़े पलंग पर बुद्ध लेटे हुए हैं। पाषाण पर। दाहिनी पाषाण भुजा को सिरहाने लिये शांत निद्रा ले रहे हैं। चिर-निद्रा। पलंग के चारों तरफ ऊपर की तरफ बैठे हुए देवता। मृत्यु को आलिंगन देने वाले इस महानिर्वाण को देख रहे हैं। लगता है, बुद्ध इस संसार से ऊब गये होंगे। इसीलिए तो निर्वाण के क्षण में इनके मुख पर स्मित झलक रहा है। इन धमनियों ने जीते जी क्या कम अंधड़ झेले होंगे? क्या मृत्यु इनके लिए इतनी हलकी है? देखिए तो, सिर के नीचे दायां हाथ रखे दूसरे हाथ को रान पर सीधे छोड़कर दाहिनी करवट लिये कितनी शांत निद्रा में डूबे हैं? लेकिन आखिर यह भी तो मृत्यु ही है। भगवान बुद्ध भी मर्त्य मानव हैं। हां, इन्हें रेंगने वाले दुखों की रीढ़ का ज्ञान हो चुका था। वैसे सामान्य जन की तरह यह भी अंत में अपनी देह को धरती पर छोड़ देते हैं। एक सामान्य मनुष्य से उनकी मृत्यु भिन्न नहीं है। सामान्यतया हर गुफा में आसनस्थ बैठी मूर्ति किसी गुफा में जब निद्रस्थ लेटी दिखायी देती है तो वेदनाओं की एक अस्पष्ट तेज़ धारा चीरती हुई भीतर दौड़ने लगती है। वहां खून के बड़े-बड़े कतरे टप-टप चूने लगते हैं। कोथरी जीभ इन कतरों को चाटने लगती है। भगवान बुद्ध लेकिन अपने महाकाय शरीर को धारण किये हर्ष और विवाद के परे निकल गये हैं। इनकी लगायी हुई अहिंसा की नयी पौध भविष्य में कभी फूली-फली ही नहीं। मतलब, सब व्यर्थ हुआ। गुफा के बाहर निकल आया हूं। देखता हूं कि बाहर चांदी की तरह धूप। भीतर अंधेरे में लेटे हुए बुद्ध को इसकी कोई परवाह नहीं है।

और यहां बैलों की भिड़ंत। आवेश के कारण दोनों बैलों की पूछें ऊपर उठी वर्तुलाकार बनी हैं। घड़ों की तरह विशाल कंधे, नीचे लटकती लंबी गल कंबलें। कोई हार मानने वाला नहीं है। और यहां भिक्षुक वेश में यशोधरा के दरवाज़े पर खड़े बुद्ध। किसी एक मध्य रात्रि को गौतम महल छोड़कर चले गये थे। उसके बाद के अनेक वर्षों की अवधि को अपनी आंखों में समेटे वह यहां खड़ी है। आज गौतम उसके दरवाज़े भिक्षा मांग रहे हैं। इस भ्रम में कि उसका गौतम अब भी गौतम ही है, वह बुद्ध हुआ ही नहीं है, यशोधरा प्रतीक्षा में खड़ी है। और बुद्ध हैं कि दरवाज़े पर भिक्षा पात्र लिये साक्षात खड़े हैं। काफ़ी ऊंचाई पर। वह उन्हें इस तरह देख रही है जैसे किसी विशाल वृक्ष को देख रही हो। मतलब, बुद्ध अब महात्मा हो चुके हैं। और बौनी यशोधरा दरवाज़े पर राहुल को बगल में लिये खड़ी। स्तिमित। अधखुली उनींदी पलकें। क्योंकि बहुत ऊंचाई पर खड़े बुद्ध का वह आभायुक्त चेहरा। और गहरे नीले आकाश से आविष्ट परिवेश। दिल पिता का लेकिन कितना पराया। दिल पति का लेकिन कितना अविचल। इनका अब किसी से कोई रिश्ता नहीं है। भोली यशोधरा के ललाट की मोतियों की लड़ी कुछ नीचे खिसक आयी है। कितनी ग्रामीण लग रही है। कमर कुछ झुकी है। इसी भाव-भंगिमा से वह गौतम को निहार रही है। इस रंगीन भाव-संसार में संपृक्ति का कोई अंत नहीं। और हमारे हिस्से तो खेल है सिर्फ एक दिन का।

अजंता से लौटते वक्त किसी ने कहा था, ट्रिप बढ़िया रहा। दूसरे ने मेरी तरफ इशारा करते हुए कहा था, लेकिन हम लोगों में कुछ बोर लोग भी तो थे।

और मैं कह रहा था, धर्म की बची-खुची पूंजी अपनी गांठ बांध वह चली गयी थी। हमारे लिए उसने छोड़ी थी सिर्फ चल बसने के पहले की स्मृतियां। यही तो वह चीज़ थी जो उसके और हमारे बीच सुरक्षित थी। इसे, बस इसे उसने नष्ट नहीं किया। धरती पर अंकित, शेष सब-कुछ तमाम रेखाओं को उसने मिटा डाला था। अभी-अभी वह नियमित रूप से स्कूल जाने लगी थी। उसे सात बजने से पहले ही घर से बाहर निकाल दिया जाता। अभी-अभी तो वह बारह खड़ी सीखी थी। केवल स्कूल में पढ़ाये गये पाठों को पढ़ सकती थी। दीवार पर उसे सिर्फ़ परिचित अक्षर ही दिखायी दिये होंगे। उसकी जेबों में गुट्टे थे। फ्राक का कपड़ा बदन से चिपक गया था। इस सबको उसने त्याग दिया था। वह इस क्षण सर्वत्यक्त अंधकारमय लंबी रातों की राह से गुज़र रही होगी। जब मैं भी उस रास्ते जाऊंगा, वह कितनी आगे निकल चुकी होगी। मतलब, हमारी मुलाकात असंभव है। मानो वह यह कहते चली गयी थी, जो चला गया सो चला

गया, अब कुछ भी शेष नहीं है। उसके साथ उसका छोटा-सा गर्भाशय भी चला गया था। अपनी मृत्यु से जनगणना की बहुत लंबी पंकित से जोड़े जाने से उसने बचा लिया था। वैसे उस पर यह बात भी लागू नहीं होती। उसे किसी सीमा में बांधा नहीं जा सकता। उसका कोई तीर नहीं है। एक किनारा है जो एक ही बार प्राप्त किया जा सकता है। धर्म के नाम पर उसके साथ क्या जा सकता था? संसार में आते समय वह सिर्फ़ कर्म ले आयी थी। जाते समय केवल अंधकारमय यात्रा। उसकी यात्रा केवल उसकी अपनी थी। वह सर्वमुक्त, आदिमुक्त, अंतमुक्त। रंगमुक्त, अंगमुक्त। मनमुक्त। संज्ञामुक्त। वह मुक्तिमुक्त। मेरे पास सुरक्षित है केवल उसका धूमिल-सा मानस बिंब।

शेष समय जैसे-तैसे गुजर गया। छुट्टियां शुरू हुईं। मैं घर के लिए रवाना हो गया।

मैं घर पहुंच गया था।

हर कोई मुझसे कहता, तुम काफ़ी कमज़ोर हो गये हो।

मुझे बुरा नहीं लगा।

हमारे पुराने मकान का नामोनिशान नहीं बचा था। उसकी जगह नयी कोरी हवेली खड़ी थी। सब-कुछ बदला हुआ। अब बार-बार चीज़ों की जगह पूछनी पड़ेगी।

और ये छुट्टियां तो और भी लंबी। तीन महीने।

मुझे देखते ही मां ज़ोर-ज़ोर से रोयी थी। गर्मियों की छुट्टियों में हमारे इस क्षेत्र में रोने-धोने के दृश्य अकसर दिखायी देते। किसी की मौत हो जाने पर कविता के लहजे में सस्वर इस तरह रोना इस प्रदेश की विशेषता ही समझो। ऊषा देने वाले दृश्य होते हैं ये। किसी की मौत के बाद ऐसे लहजे में रोते हैं ये लोग, जैसे कविता पाठ कर रहे हों। अब हर साल आस-पड़ोस का कोई व्यक्ति मर ही जाता है। गर्मियों में इन लोगों को कोई काम-धाम नहीं होते। काम के कारण दूसरा कोई समय मिलता नहीं, इसलिए मातमपुर्सी के लिए गर्मियों की छुट्टियां इनके लिए सुविधाजनक होती हैं। बिरादरी के लोग इसी अवधि में यह काम करते हैं। तब फिर शुरुआत होती है सामूहिक रुदन से। पड़ोस की औरतें भी शामिल हो जाती हैं। इन्हीं दिनों विवाह भी होते हैं। इसलिए कहीं विवाह का शोरगुल तो कहीं मौत का प्रलाप। गर्मियां महान हैं।

मां काफ़ी देर तक रोती रही। पास-पड़ोस के लोग भी जमा हो गये थे। थोड़े-से आंसू मैंने भी बहाये।

मरने वाले की यादें जब पुरानी हो जाती हैं, उन्हें फिर से ताज़ा करना

ठीक नहीं है। मनुष्य की मृत्यु यानी उसका संपूर्णतया नष्ट हो जाना है। इसलिए हमें भी चाहिए कि हम अपने तईं उस अस्तित्व को समाप्त कर दें। लेकिन दाग पोंछा नहीं जा सकता, यह सच्चाई है।

छुट्टियां भर मा मनी की यादें सुनाती रहीं। पंद्रह दिनों का खेल उसके लिए जिंदगी भर काम आने वाला था। लेकिन हमारे लिए तो जिंदगी भर की बोरियत हुई कि नहीं? आप अपने पर चाहे जितनी ज्यादती कर लें। आपको कोई मना नहीं करता। लेकिन इसे आप औरों पर क्यों थोपते हैं? क्यों इसे बखानते हैं? यह उबाऊ है। पर क्या करें? सुनाने वालों को सुनाने का बड़ा शौक होता है। सुनने वालों के लिए लेकिन यह सजा होती है।

हमारा नया मकान मेरे लिए हमेशा के लिए एक भयंकर वस्तु बनी रही। मनी के गुज़र जाने के बाद उसकी लाश पर पिताजी ने इसे उठाया था। मुझे बार-बार यही लगता कि इसके मुकाबले पुराना ही अच्छा था। पुराने मकान में कितना अच्छा अंधेरा था। चारों तरफ खचाखच सामान पड़ा रहता। पड़ोस था। अब यह सब कहां? अब तो किला ही बना है, समझो। बचपन में हम लोग लोग अपना खाना लेकर पड़ोसियों के घर फौरन जा सकते थे। अब मिट्टी की दीवारें नहीं रहीं। अब तो पक्का फ़र्श। बहनों के रंगोली के शौक अब कैसे पूरे होंगे?

दादी ने कहा, पुराने मकान ने तो मेरी कमर तोड़ डाली थी। निरंतर लिपाई, पुताई। अब तुम्हारी मां के मजे हैं।

मां ने कहा, मैंने भी तो थोड़े नहीं, पच्चीस बरस काटे थे उस मकान में। अब मेरे बचे ही कितने हैं? नये मकान का सुख तो नयी बहू के भाग में है।

नयी बहू। वाह!

पिताजी ने कहा, ऊपरवाला कमरा तुम्हारा।

सबसे पहले मैं ऊपरवाला कमरा देख आया था। यह नया मकान भयानक लगा मुझे। कितना ऊंचा कमरा। भरपूर रोशनी, खिड़कियां, हवा। यह कोई कमरा है? पुरानेवाला मकान कितना अच्छा था। हर आदमी दूसरे को देख सकता था। किसी को भोजन करते वक्त, किसी को नींद लेते वक्त। किसी को गुसलखाने में, किसी को चूल्हे के पास। नये मकान में एक बात अच्छी है कि यहां दूसरी मंजिल पर कोई आता नहीं। इसलिए यहां भी मैं वैसे सिगरेट पी सकता हूं।

मैं उस मौके की तलाश में था कि पिताजी कभी तो सिगरेट के बारे में कोई सवाल करेंगे। कुछ तो बोलेंगे और फिर मैं तैश में आकर उन्हें उलटी-सीधी सुनाऊंगा। सोचा था, साल भर कर संचित क्रोध उस समय निकाल दूंगा। कह दूंगा कि आपकी मौत की प्रतीक्षा कर रहा हूं।

मेरी सिगरेटों के बारे में उन्हें पता चल गया था, फिर भी उन्होंने कोई जिक्र नहीं किया। एक बार तो टेबल पर पड़ा मेरा पैकेट उन्होंने उठाकर दराज में रख दिया था। यह मैंने देखा था। उन्होंने सिर्फ़ एक बार कहा था, जरा दूर से बात करो। सिगरेट की गंध हमसे सही नहीं जाती।

तीन महीने। सुबह, दोपहर, शाम, अंधेरा। तीन महीने यही स्थिति। फिर भी गुज़र गये।

रोज़ शाम छत पर बैठा मैं सिर्फ़ एक काम किया करता। एक दृश्य देखता रहता। बस्ती में नल का पानी पहुंचाने के लिए एक ऊंची टंकी बांधी जा रही थी। नीचे खड़ा मज़दूर चूने से भरी टोकरी ऊपर वाले को दे देता। सीढ़ी पर खड़ा आदमी उसे लेकर अपने ऊपर वाले को थमा देता। फिर वह उसके ऊपर वाले को। इस तरह एक टोकरी पच्चीस-तीस मज़दूरों के हाथों से दूसरों के सिरों पर और उनके सिरों से दूसरों के हाथों में और फिर सिरों पर। इस तरह क्रमशः आगे बढ़ती रहतीं। एक टोकरी जैसे ही छत तक पहुंच जाती नीचे से और तीन-चार टोकरियां ऊपर की तरफ बढ़ती रहतीं। आखिर में तो मज़दूरों की एक लंबी कतार बन गयी थी। एक साथ दस-दस टोकरियां ऊपर-नीचे आतीं, जातीं।

टंकी का काम खतम हो जाता। फिर मैं कबूतरों का दृश्य देखता रहता। लेकिन इसमें टंकी वाला आनंद नहीं आता।

इन तीन महीनों की छुट्टियों में मैं शुरू ही से गांव में रहकर ऊब गया था। वैसे वस्ती में कॉलेज में पढ़ने वाले काफ़ी लोग थे। लेकिन ये लोग अभी वहां नहीं आये थे। मुझसे इनकी मुलाकात नहीं हुई थी। हां, तब तक लालाजी जैसे शिक्षित कहलवाने वाले अधपगले तथा सोरम्या जैसे मुंह में निरंतर पान दबाकर रखने वाले मूर्ख लोग ही मुझसे मिलने आया करते थे। ये लोग बड़ी वाहियात बातें करते। लखू सेठ की वकालत चल नहीं रही थी, यह ठीक ही था। लखू सेठ को तो मैं बहुत ज़्यादा टालता रहता। कुछ दिनों बाद जब सबकी परीक्षाएं समाप्त हुईं और मई में लोग अपने घर चले आये थे, तब कुछ मज़ा आने लगा था।

इस बार मैंने खूब पढ़ाई करने का इरादा कर लिया था, क्योंकि यह मेरा सीनियर का वर्ष था। मैट्रिक की तरह खूब पढ़ाई। सिर्फ पढ़ाई। और बी० ए० कर लेने के बाद कहीं नौकरी की जुगाड़ कर लेंगे। और फिर इधर वाले तमाम झमेले हमेशा के लिए समाप्त हो जायेंगे। छुट्टियों में इधर आओ और

छुट्टियों के बाद लौट जाओ—इससे मैं ऊब गया था। बहुत हुआ यह। यहां आने पर पिताजी मेरे साथ जायदाद की ही बातें किया करते। हमारे पास कितनी पूंजी है या कि हमें कौन-सा नया खेत खरीदना है। और कि क्या-क्या नये काम करने हैं—खासकर इन्हीं मामलों को लेकर वो मुझसे चर्चा करते रहते। कहते, तुम ही जायदाद के वारिस हो। तुम्हारा धन हथियाने की हमारी कतई इच्छा नहीं है। तुम चाहो तो इसे ज़मीन में गाड़कर रख दो। हम तुम्हारे होते ही कौन हैं जो हमारी बात तुम सुनो ? मैं समझ जाता कि उनकी यह तमाम दौड़-धूप केवल इसीलिए है कि मैं बुढ़ापे में उनकी देखभाल करता रहूं। काश कि मेरा और कोई भाई होता, जो इन झमेलों को संभाल लेता। हमने फैसला कर लिया है कि हम इधर अब कभी कदम नहीं रखेंगे।

वैसे देखा जाये तो ये सारे-के-सारे बड़े खुदगर्ज़ लोग। इनकी-हमारी कभी पट नहीं सकती। किसान, फिर वह बड़ा हो या छोटा, निरंतर इसी फिराक में रहता है कि पैसा कैसे खींचा जाय। ये लोग इस धुन में सारी जिंदगी खपा देते हैं कि कैसे सोलह आने के बदले सत्रह आने वसूल लें। इसके उलटे पगार पाने वाले लोगों को पहले ही से पता होता है कि आगामी पंद्रह बरसों तक उन्हें कितना मिलता रहेगा ? पर इन किसनों का मामला कहीं कोई पक्का नहीं। इस वर्ष दस हजार की आमदनी हो सकती है तो आगे-वाले साल छः ही हज़ार पल्ले पड़ेंगे। उसके आगे वाले साल खूब मेहनत की तो पंद्रह हज़ार कमा लिये। अब बताइए, इस तरह के झमेलों में कौन सिर खपाये और अपनी ज़िंदगी बरबाद करे ?

और फिर इन लोगों का यह आग्रह होता कि प्रत्येक व्यक्ति की शादी होनी ही चाहिए। और यह भी कि परिवार में कम-से-कम एक लड़का तो पैदा होना ही चाहिए। कमसिन संतानों की मौत इनके लिए विशेष दुख की बात नहीं होती। परिवार में बूढ़ों का वजूद इसलिए कि जैसे केवल मौत के लिए ही जीवित बचे हों। इनकी नज़र में लड़कियों की मौत उतनी पीड़ादायक नहीं होती। लड़का मर जाय तो उसके भाइयों को खुशी होगी। क्योंकि जायदाद में हिस्सा मांगने वालों की गिनती घट ही तो जाती है। इसके विपरीत शहरों में इस्टेटों के ऐसे झमेले बिलकुल नहीं होते। बूढ़े पेंशनरों के रहने के लिए यहां बंगले बने होते हैं ? छोटे बच्चों की शुश्रूषा के लिए दवाखाने होते हैं। और जमीन-जायदाद के कोई झगड़े नहीं। किराये का मकान—वैसे इस संसार में किस चीज़ पर अपनी मिल-कियत होती है ? सारा घरबार मकान-मालिक की जायदाद। हमारी मिलकियत सिर्फ़ मकान की भीतरी खाली जगह पर। शेष सारा नश्वर। यहाँ दूध के लिए भैंस वगैरा पालने के लफड़े नहीं। पैसे दिये, बोतल ली, पी डाली।

आप जो भी कर रहे हों, शहरों में आपसे कोई सवाल नहीं करता। वहां हम किसी के कुछ भी नहीं लगते। जो बातें शहरों में धीरे-धीरे आम बन जाती हैं,

गांव वालों के लिए नयी होती हैं। आजकल शहरों में अनाड़ी लोगों के अतिरिक्त और कोई अच्छे कपड़े पहनने और एम० ए० करने कोअहमियत नहीं देते। लेकिन इधर तमाम लोग इन बातों को बड़ी अहमियत देते हैं। यहां तो किसी मंत्री का आगमन भी पूरे गांव के लिए महत्त्वपूर्ण खबर होती है। गांव में किसी का लड़का अगर प्रथम श्रेणी में आ जाता है तो पूरी बस्ती को इसकी खुशी होती है। लोग अपने परिवारों में अपने बच्चों के सामने इसी आदर्श का बखान करते रहते हैं। विदेश जाने वालों के लिए यहाँ सत्कार सभाएं आयोजित की जाती हैं। ऐसी सभाओं के लिए सारी बस्ती उमड़ पड़ती है। इन लोगों के लिए विदेश जानेवाला मानो भगवान होता है। चार सौ रुपये तनखाह पानेवाले लड़कों के बाप अपने लड़के की शेखी बखानने लगते हैं। लेकिन इन्हें जब इस बात का पता चल जाता है कि किसी दूसरे का लड़का हज़ार रुपया महीना पाता है तो ये लोग हीन भाव से ग्रस्त सारी ज़िंदगी कुढ़ते रहते हैं। पैसों के चक्के पर घूमने वाले स्वार्थी लोग हैं ये। कोई इसलिए परेशान है कि अमुक साहब के केले दो लाख पर उठ गये, पर इनको तीस-चालीस हज़ार की कमाई हुई। इनकी दृष्टि में तो अमुक साहब अच्छे, जिन्हें बैठे-बैठे कपास के लेन-देन में पचास हज़ार रुपये मुनाफा हुआ। ये होते हैं इन लोगों के पराक्रम के विषय। रोज़ सुबह इन्हें चाय चाहिए। अब देखिए, चाय तो शहर की चीज़ थी। चाय के गांव आने से पहले ये लोग सुबह क्या करते होंगे, पता नहीं। अपने लड़के-लड़कियों को शहरों में पढ़ाई के लिए भेजनेवाले परिवार की गांव के समाज में बड़ी इज्ज़त की जाती है। लड़कियों की शादी में जो पिता जितना तोला सोना, दहेज आदि अधिक देगा उसकी इज्ज़त उतनी बढ़ती है। और पक्का समझिए, ये लोग जब भी किसी की इज्ज़त करते हैं उसमें ढोंग छिपा हुआ होता है। जब किसी का अपमान करेंगे तो समझिए, गाली-गलौज और पैजार निश्चित है। यह बस्ती नालायक लोगों की है। यहां अपने जैसों की निभनी मुश्किल है। आपको चाहिए कि गांव के प्रतिष्ठित कहे जानेवाले लोगों में उठते-बैठते रहें। इसी में आपका महत्त्व बढ़ता है। पर अगर आप सामान्य लोगों से संबंध स्थापित करने की कोशिश करेंगे तो पता यह चलेगा कि खुद सामान्य लोग इसे नहीं चाहते —उलटे वे आपकी इज्ज़त करना छोड़ देंगे। शहरों में तो हम अपनी जगह आज़ाद होते हैं। वहां अपनी दिलचस्पी के दर्जनों मित्र मिल जायेंगे। यहां अपनी पसन्द का एक भी मित्र मिलनेवाला नहीं है। अगर कम्पनी चाहते हो तो आपको समझौता करना पड़ेगा।

एक बार मेरे और पिताजी के बीच कहा-सुनी हो गयी थी। उन्होंने कहा, कपड़े ढंग के पहना करो। हमउम्र मित्रों के बीच बस्ती में घूमते हुए तुम्हें चाहिए कि

अपना रख-रखाव ढंग का हो। अच्छे ढंग से बाल काढ़े हों। तुम्हें इस तरह बेढंगा देखकर कौन कहेगा कि तुम मेरे बेटे हो ?

हम दोनों में लगातार एक घंटा सवाल-जवाब होते रहे। मैं तू-तू, मैं-मैं पर उतर आया था। बात बहुत बढ़ गयी। उनका चेहरा बुझा-बुझा-सा हो गया। तब तक मां मुझे हाथ पकड़कर एक तरफ ले गयी थी।

उसके बाद लगभग एक महीना उन्होंने मेरे साथ बात नहीं की। एक बार कोई मेहमान आये थे। कम-से-कम मेहमानों के सामने इस अबोले का प्रदर्शन नहीं होना चाहिए इसलिए उन्होंने मुझसे कहा था, चलो भोजन कर लें। मैंने कहा, या तो आप उनके साथ बैठिए या मैं अकेला उनके साथ बैठता हूं।

जून में विदा होते वक्त मां ने मुझे उपदेश किया था। कहने लगी, तुम्हारे सलूक से इन्हें कितना बुरा लगा है ? तमाम छुट्टियां इन्हें यह घर काटने दौड़ता रहा था।

इस बार पिताजी ने मुझे काफी रुपये दिये। वैसे दो-ढाई सौ काफी थे लेकिन उन्होंने गुस्से और प्यार से ज्यादा दे दिये। कहा, ढंग से रहो। ठीक है। हम जो इकलौते ठहरे। हमारे कोई और भाई होता तो यही बाप हमारे साथ दुश्मन की तरह व्यवहार करता। ठीक है।

फिर मैं पूना के लिए रवाना हो गया।

कुल मिलकर अकेला सुरेश ही तो मेरा खास दोस्त। यही एक दोस्त सही था। ऐसे लोगों के निकट संपर्क में रहना अच्छा है।

इस वर्ष हमने शुरुआत से ही घुमक्कड़ी चालू कर दी थी। हमारा शौक था, बारिश के मौसम में सिंहगढ़ की सैर और बेताल-टीले पर टहल आना। ये शौक सीनियर में आने के बाद भी जारी रहे थे।

लड़के-लड़कियों के साथ कई बार हम लोग सिंहगढ़ की सैर कर चुके थे। लेकिन वह क्या सैर थी ? पर इधर इस वर्ष सिंहगढ़ पर जब भी हो आते, हर बार कुछ नया अनुभव मिलता।

हम लोग साइकिल से चले थे। ब्रेड-चिउडा साथ। मैंने यूं ही चाकू भी साथ रख लिया था। पहाड़ी के पास पहुंचते ही सुरेश की साइकिल पंचर हो गयी और हम लौट आये।

होस्टल के लड़कों ने पूछा, देख आये सिंहगढ़ ?

सुरेश ने कहा, पंचर जोड़ लेते तो जा सकते थे। उसने कहा, आइंदा साइकिल कभी नहीं लेंगे।

दूसरी बार पैदल रवाना हुए। लेकिन बीच रास्ते दोपहर हो गयी थी। खडकवासला के बांध में नहा कर वहीं से पैदल लौट आये।

होस्टल पर फिर वही सवाल — हो आये सिंहगढ़ ?

बाद के शनिवार को साइकिलें तैयार रखी थीं।

रात में तीन बजने तक गपशप चलती रही थी। इसलिए नींद आने लगी थी। उस वक्त अगर सो जाते तो फिर रविवार की दोपहर तक उठने की कोई संभावना नहीं थी। इसलिए बगैर सोये हम लोग सुबह चार बजे निकल पड़े।

सूरज निकलने के पहले-पहले किले तक पहुंच गये थे। ज़ोर-ज़ोर से पैंडल मारते रहने के कारण हम बहुत थक गये थे। आंखों में नींद भरी थी। इस स्थिति में सीढ़ियों के रास्ते कौन ऊपर चढ़ेगा ? हम लोगों ने सीधी चढ़ाई वाला एक रास्ता पकड़ लिया और सीधे किले पर आ गये।

सुरेश ने कहा, अभी तो सुबह बाकी पड़ी है। सारा दिन सिंहगढ़ पर आखिर कितना क्या देखेंगे ? मुझे साली भयानक नींद आ रही है।

मुझे भी तो नींद ने घेर ही लिया था। फिर भी मैंने कहा, पहले घूम लिया जाय। जल्दी घर लौट चलेंगे।

उसने कहा, तुम्हारा ठीक है। तुम और पंद्रह दिन लगातार जागते रह सकते हो। मेरी पावर खतम हो गयी है। मैं यहीं सो जाता हूं। यह कहकर सुरेश महाशय वहीं घास पर लमलोट हो गये। मैं बोर हो गया। तब मैं अकेला क़िले के दरवाज़े के किसी बुर्ज़ पर जा बैठा। काफ़ी देर तक प्रकृति की शोभा देखता रहा। झरनों की कल-कल वास्तव में महान। कुछ भी कहिए, प्रकृति मनुष्य से महान।

फिर मैं वहीं कहीं सो गया।

पता नहीं कब किसी आदमी ने मुझे जगाया। आंखें मलता हुआ मैं उठ बैठा था कि जागनेवाले साहब कहने लगे, ठीक है, सो जाइए।

मैंने गुस्से में आकर उनसे पूछा, क्या मतलब ? इन महाशय के साथ करीबन पचास लड़के-लड़कियां थीं। कोई ट्रिप होगी। मुझे जागाने वाले साहब शायद इनके प्रोफेसर होंगे।

किसी लड़के ने कहा था, हमें लगा शायद कोई मरा पड़ा है। आप अब सो

जाइए।

चंद लड़कियां हंस दीं।

मुझे गुस्सा आया। मैं फिर से लेट गया। और सो गया। जगा तो देखता हूं कि शाम हो गयी है, पानी बरस रहा है। पता नहीं, कौन-सी शाम थी वह। आज ही की हो तो गनीमत समझो।

मैं घबरा गया था। दौड़ा-दौड़ा वहां पहुंचा जहां सुरेश सोया हुआ था। पर वह कौन-सी जगह थी, मैं भूल गया था। काफ़ी आवाज़ें लगायीं। संभवतः वह ऊंचे घास में कहीं लेटा न पड़ा हो, मैं एहतियात से आगे बढ़ रहा था।

अंधेरा होने लगा था। मुझे लगा, मुझे ढूंढ़ते-ढूंढ़ते वह ऊब गया होगा और कहीं चला न गया हो।

मैं अकेला नीचे उतरने लगा। बहुत फिसलन थी। बीसियों दफे गिर पड़ा था। लेकिन नशा कुछ ऐसा था कि कदम आगे की तरफ बढ़ते ही गये थे।

मैं एक टीले पर चढ़ गया। नज़रें चारों तरफ घुमायीं कि कहीं सुरेश दिखायी पड़े। वहां लोहे की एक सलाख गड़ी थी, मैं उस पर बंदर की तरह चढ़कर बैठ गया। लगा जैसे सारा परिवेश चक्राकार घूम रहा है। अंधेरे में वन राशि और ज़्यादा हरी दीख रही थी। सफेद दिखायी देने वाले झरनों की कलकल। साला सुरेश बड़ा गधा आदमी निकला। अकेला चल दिया होगा। इस मामले में वह पक्का गुंडा है।

उसके बाद मैं अंधेरे को चीरता हुआ जो भी रास्ता दिखायी पड़ा, चलता गया। और किले की तलहटी तक पहुंच गया। देखता हूं कि दोनों साइकिलें वहां पड़ी थीं। मतलब, सुरेश अब भी ऊपर है। साला अब तक सोया पड़ा होगा।

मैंने खाने के लिए कुछ मंगवाया। काफी रात हो गयी थी। घास पर सोये पड़े सुरेश को नींद में किसी सांप ने न काट लिया हो, इस सोच में मैंने अपना नाश्ता पूरा कर लिया।

तब तक भी यह महाशय आये नहीं थे। मेरे पास सिर्फ़ माचिस पड़ी थी। सिगरेटें सुरेश के पास। मैं ऊब गया था और वहीं सो गया।

काफी देर बाद सुरेश ही ने मुझे जगाया था। सिगरेट पीता हुआ वह नीचे उतर आया था।

मैंने कहा, पहले सिगरेट दो।

उसने कहा, वह बिलकुल आखिरी है। किले पर किसी से एक जला ली। माचिस तुम्हारे पास थी। इसलिए एक से दूसरी जलाकर सारी खत्म कर डालीं। अब मैं खाना खा लेता हूं। तब तक तुम सो जाओ।

लेकिन सुरेश मुझे कहां सोने देने वाला था ? वह खुद दिन भर सो कर उठा था। ताज़ा था। उसने बड़बड़ाना शुरू किया—

ज्ञान-संपादन कर लेने के बाद ये लोग नौकरियां किया करते थे।

अब आप पूछेंगे, नौकरी किस चिड़िया का नाम है ? तो साहब नौकरी माने सारी ज़िंदगी हर रोज़ दिन के दस-ग्यारह बजे से शाम पांच-छः बजे तक किसी जगह बैठे एक ही काम करके घर लौटने का नाम नौकरी था। हां, उस ज़माने में प्रत्येक मनुष्य अपने खुद के घर में सोया करता।

ये लोग अपना हर शनिवार-रविवार प्रकृति के सान्निध्य में गुज़ारते।

प्रकृति से तात्पर्य ? तो प्रकृति उसे कहते जो शहर से बाहर दो-चार मील निकल जाने के बाद शुरू होती। प्रायः कवि कहलाने वाले लोग इस प्रकृति के परिवेश में झूम उठते थे। अब आप पूछेंगे, यह कवि कौन हुआ ?

अब उसका खाना निपट गया था। फिर हम दोनों बेतहाशा साइकिलें दौड़ाते पूना आ पहुंचे। रास्ते में सुरेश की बकवास जारी थी। होस्टल पर जब हम पहुंचे तब रात का एक बज चुका था। सुरेश महाशय ने मेरे ही कमरे में डेरा जमा दिया। और फिर बकवास शुरू—

ये लोग नियमित रूप से अध्ययन किया करते। कभी कविता-पाठ भी होता।

आप पूछेंगे, कविता क्या हुई ? तो जिसे सिर्फ कवि लोग लिखते उसी को कविता कहा जाता। जिसकी पंक्तियां लंबी न होकर छोटी होतीं। छोटी पंक्तियों में अंकित अक्षरों की संरचना अर्थात कविता। लेकिन कविता नामक इस आफत को बहुत कम ही लोग मोल लेते। क्योंकि इतना फालतू समय किसके पास होता जो इसमें गुज़ारते ? इसलिए संख्या का एक प्रतिशत भी कविता के पचड़े में नहीं पड़ता था।

आख़िर मैं सो गया। पता नहीं, वह कब वहां से निकल गया था।

अब की बार पूरी तैयारियों के साथ हम लोग सिंहगढ़ गये थे। ऊपर खूब घूमते रहे।

तानाजी की समाधि देखकर सुरेश हंसी रोक नहीं पाया था।

उसने कहा, साली प्रकृति की शोभा जाने दो भाड़ में। असली मज़ाक तो यही है।

हम लोगों ने वहीं बैठकर ब्रेड वगैरा खा लिया। बुर्ज पर बैठे हम दोनों शाम तक गंभीर चर्चाएं करते रहे थे। चर्चा का एक विषय यह भी था कि गधों की तरह इतनी सारी सीढ़ियां चल कर कौन नीचे उतरे। इसलिए तय हुआ, कि

सीढ़ियों को तो मारो गोली। और सामने वाले मोड़ से सीधे उतर जाओ नीचे। चाहो तो फिसलते फिसलते नीचे चलें। आखिर जैसे भी हो तलहटी तक तो पहुंच ही जायेंगे। बेशक मज़ा आयेगा।

हम दोनों टेढ़े-मेढ़े रास्तों से सरकते-सरकते काफ़ी नीचे तक उतर गये थे। बीच ही में जोर की बारिश हुई थी। पूरे भीग गये। बारिश के कारण फिसलन बहुत हो गयी थी। फिर हम लुढ़कते-लुढ़कते नीचे उतर गये।

रास्ते के एक खड्डे में बड़े-बड़े केकड़े थे। सुरेश ने दो केकड़े पकड़ लिये। बाद में उन्हें छोड़ दिया।

बड़े-बड़े खड्डों में हम लोग धड़ाम से गिरते-पड़ते आगे बढ़ते रहे थे। खड्डों में चूंकि लंबी-लंबी घास उग आयी थी, इसलिए हमें कहीं चोट नहीं आयी।

रास्ते में हमने देखा कि चट्टान पर सांप का एक नन्हा-सा बच्चा यूं ही चारों तरफ़ गोल-गोल घूम रहा था। उसकी गति तेज़ थी। सुरेश ने निशाना साधकर उसके सिर पर जूता दबा दिया। और फिर जोर से उसे दबोच दिया।

सुर्शा, उसकी अम्मा-सुम्मा आ जायगी भला। बड़ा सांप अभी तुमने देखा नहीं है।

मुझे एक बार तो उसे देखना ही है। देखें, आखिर कैसा होता है वह ?

सांप जब साफ-साफ दिखायी देता है तब वह काटता नहीं है। लेकिन अचानक काट लेने पर ही हमें उसका पता चलता है।

क्या मजाल है यूं ही सांप किसी को काट ले ? हमने उसका क्या बिगाड़ा होता है ?

काफ़ी देर तक हम वहीं बैठे रहे। फासला काफ़ी कट चुका था। सीढ़ियों के रास्ते नीचे उतरते तो अब तक बहुत ऊपर रहे होते।

फिर हम वहां से उठ गये और चलने लगे।

इसके बाद बड़े-बड़े खड्डे पड़े थे। घास होती तो हम उसे कूदकर फांद लेते। जहां कूदना खतरनाक मालूम पड़ता वहां पेड़ों की जड़ों, टहनियों, बेलियों आदि को पकड़कर नीचे उतर जाते। कहीं-कहीं इन जड़ों और टहनियों पर इतना शैवाल जमा रहता कि एक को छोड़ दूसरी तुरंत पकड़नी पड़ती। और फिर नीचे जमीन पर पैर फिसलते रहते, सो अलग। जब बिलकुल ही बस नहीं चलता

तो अपने आप संतुलन बिगड़ जाता और हम खड्डों में गिर पड़ते थे। फिर लटकते हुए नीचे की तरफ।

पर उन सैकड़ों सीढ़ियों के रास्ते बूढ़ों की तरह संतुलन बनाये नीचे उतरते रहने से यह बेहतर था। फिर से पानी बरसने लगा था। हवा में ठंडक बढ़ गयी थी। फिर भी हमारे बदन पसीने से तर थे।

आगे रास्ते में एक बहुत बड़ा खड्ड पड़ा था।

सुरेश ने कहा, खड्ड कहां ? यह तो छोटी-मोटी घाटी ही है। हम लोग इसमें कूदेंगे।

लेकिन कूदने की मेरी हिम्मत नहीं हो रही थी। और फिर शाम भी तो काफी हो चुकी थी। परिंदों की चहचाहटों के अलावा सारा सुनसान था।

सुरेश ने कहा, जल्दी करो। बारिश का ज़ोर बढ़ गया तो परेशानी होगी। आधे से अधिक रास्ता तो हमने पूरा कर ही लिया है। गनीमत है, आगे कोई गड्ढा नजर नहीं आ रहा है। और कोई कगार भी नहीं है। फिसलते चलें तो सीधे तलहटी तक पहुंच जायेंगे। संभवत: यह घाटी अंतिम ही है।

पेड़ों की टहनियां सुविधाजनक नहीं हैं।

मैं कैसे उतरता हूं, देखते रहो।

सुर्शा, अब बस करो। चलो फिर से ऊपर चलो। सीधे सीढ़ियों के रास्ते से उतरना ही ठीक है। और फिर इस घाटी का तल भी उथला है। आगे कगार दीख रहा है। वह देखो, गिद्ध वहां नीचे उतर रहे हैं। यह झरना थोड़ी दूर आगे चलकर प्रपात की तरह नीचे गिर गया है। कूदने में जरा भी गड़बड़ हो गयी तो समझो तुम सीधे कगार पर।

मैं मर भी जाऊं, मुझे परवाह नहीं है। मेरे और भाई हैं। मैं जरूर उतरूंगा।

उसने टहनी पकड़ रखी थी। अब दोनों टांगें नीचे छोड़ दीं। मुट्ठियों के कसाव से शरीर को उसने संतुलित किया। उसने कहा, नीचे पैर टिकाने के लिए कोई पत्थर मिल नहीं रहा है। चट्टान शैवाल से भरी है।

सुरेश, सुर्शा, चलो वापस ऊपर चलो।

पांड्या, अब कैसे ऊपर जायेंगे ? क्या फिर से उन पंद्रह-बीस खड्डों को पार करना है ? जड़ों-टहनियों को पकड़कर नीचे उतर जाना फिर भी आसान है, ऊपर चढ़ना तो बहुत ही कठिन है। अब जो होगा देखा जायगा। अब तो इधर ही से नीचे उतरना है।

मुझे डर लग रहा था कि कहीं सुरेश आत्महत्या तो नहीं करना चाह रहा था। देख रहा हूं कि बछड़े की तरह बेखटके, चौकड़ियां भरता वह आगे निकलता जा रहा है। फिसल पड़ता है, पर फिक्र नहीं। गिर पड़ता है, कोई चिन्ता नहीं। देखो, कितनी सहजता से कगार फांद गया है। और देखो, राक्षस की तरह कहकहे लगा रहा है। मेरी ओर देखकर मुस्करा रहा है। लेकिन अब तो कोई दूसरा चारा नहीं रहा है। वह सही कह रहा था, ऊपर जाना सचमुच कठिन है। लंबी-लंबी चढ़ाइयां, घास और पत्थर और खड्डे और केकड़े।

चलो, खड़े हो जाओ। पांडु, ऊपर वाली उस टहनी को कसकर पकड़ लो।

मैंने टहनी पक्की पकड़ ली। उसने मेरा टखना कस के पकड़ लिया और फौरन नीचे झूल गया। अगर वह मेरी टांग जोर से खींच ले तो सच मानो मैं नीचे सिर के बल गिर पड़ूंगा। तब फिर क्या करें ? अगर ऐसी स्थिति पैदा होगी तो मैं उस शैवाल जमी टहनी को कस के पकड़ रखूंगा। और पूरी ताकत लगाकर अपनी टांगों को गड़ाये रखूंगा। हर हालत में खुद को गिरने से बचा लूंगा। अब मैं चीख रहा था, सुरेश, मेरा हाथ फिसल रहा है। ऊपर की टहनी खिसकी जा रही है।

सुरेश नीचे लटका हुआ है। मैं ऊपर से सिर्फ उसका सिर और कंधों पर फटा गंदा गीला कुर्ता देख पा रहा हूं। अब उसने मेरी टांग पर अपने शरीर के बोझ को छोड़कर अपना दूसरा हाथ मुक्त कर लिया। मुझसे अब उसका भयंकर बोझ सहा नहीं जा रहा था। मैं चीखा, पूछा, तुम्हें अपने पैर टिकाने के लिए नीचे कुछ मिला कि नहीं ?

सुरेश खामोश था। लेकिन उसने मेरा पैर छोड़ दिया। और कगार को स्पर्श करता हुआ नीचे फिसलता चला गया था। बीच में कहीं उसने एक छलांग लगायी थी। काफ़ी नीचे पीठ के बल वह गिर पड़ा था। फिर लुढ़कता हुआ दूर नीचे तक चला गया था। अंत में नीचे वाले पानी भरे एक गड्ढे में वह गिर पड़ा था। बदन का भुरकस निकल गया था। मुझे लगा, वह मर गया है। लेकिन जनाब पानी से ऊपर फौरन निकल आये और किनारे की जमीन पर चित लेट गये। मेरी तरफ दृष्टि फेंककर उसने कहा था, आऽहा।

किस रास्ते से नीचे उतरें, इधर से या उधर से ?—इस सोच में मैं काफी देर तक वहीं रुका रहा। सुरेश आगे वाली कगार पर खड़ा था। और नीचे उतरने की जगह तलाश रहा था। वह मेरी तरफ फौरन मुड़ा और कहने लगा, आगे रास्ता बिलकुल साफ है, जल्दी उतर जाओ।

नीचे उतरने के लिए मुझे उसकी तुलना में दस गुना समय ज्यादा लगा था। मैं उसकी तरह कूद नहीं सका था। मैंने एक टहनी पकड़ ली। दोनों हाथ टहनी पर गड़ा दिये और लंबा झूला लेता हुआ मैं तैरने लगा। अब मेरी दोनों टांगें लटक रही थीं। पैर टिकाने के लिए कोई जगह नहीं मिल रही थी। अब किस दिशा में कूद पड़ूं, इस पर सोच ही रहा था कि टहनी टूट गयी। मेरे दोनों हाथ छूट गये। और मैं एक लंबी ढलान पर गिर पड़ा। फिसल-पट्टी की तरह थोड़ी दूर तक फिसलता चला गया। अब छलांग लगने ही वाली थी कि मुझे बचाने के लिए सुरेश आगे लपका। मैं उस पर गिर पड़ा। दोनों गिर पड़े थे।

उसने कहा, तुम्हारी हड्डियों की खूब मार पड़ी मुझ पर।

मेरी पेंट फट गयी थी। कुहनी में इतनी ज्यादा चोट लगी थी कि काफी देर तक तो हाथ होने का एहसास ही जाता रहा। लगा, हाथ सदा के लिए सुन्न हो चुका है। पर हाथ में धीरे-धीरे दर्द होने लगा और फिर कुछ ठीक लगा। लेकिन अब दर्द बहुत ही बढ़ गया था।

फिर मैंने झरने का पानी पिया। वहीं काफी देर लेटा पड़ा रहा। सुरेश भी लेट गया था। हम दोनों की सांसें फूल रही थीं। दोनों खामोश लेटे थे। मेंढकों के टर्राने की आवाजें आने लगी थीं। अंधेरा काफी गहरा होने लगा था। निशाचरों की चहल-पहल शुरू हो गयी थी।

मैंने कहा, चलना चाहिए।

कहां?

नीचे।

नीचे क्या है? मील भर ऊंची कगार है।

तुम्हें कैसे पता?

मैं पहले ही देखकर आया हूं।

फिर मुझे क्यों नहीं बताया?

तुम्हें बता देता तो तुम उतरते ही नहीं। तब फिर मैं अकेला यहां नीचे रह जाता। मैं घबरा गया था। अब तो हम दोनों जैसे-तैसे कुछ तो करेंगे।

तुम नीच हो। कहकर मैं कगार की दिशा में दौड़ा। पीछे से सुरेश चीखा, दौड़ो नहीं। कहीं पैर फिसल गया तो समझो, बोटी-बोटी हो जायेगी।

फिर मैं धीरे-धीरे कगार की चोटी पर आया था। हम लोग बड़ी भयंकर जगह पर चले आये थे। देखता हूं कि कगार कुछ तिरछा होता हुआ दूर नीचे ओझल हो गया है। फिर उसके आगे एक और ढलान है, जो सीधे नीचे तलहटी के खेतों तक पहुंचती है। मान लो यहां से कूद जायें, तलहटी तक आसानी से

अपने-आप पहुंचा जा सकता है। लेकिन कगार भयानक रूप से तिरछा और नीचे की तरफ झुका हुआ था।

इधर सुरेश शांति से हाथों से सिर ढंके लेटा पड़ा था।

मैंने कहा, यहां उस सांप की मां आ जाये तो – तो कहां भागोगे ?

सुरेश घबराकर उठ बैठा था।

उसने कहा, अभी थोड़ी रोशनी है, तब तक कुछ तो करना ही होगा। यहां रात गुज़ारना खतरनाक है।

यह घाटी वैसे बड़ी खतरनाक थी। एक तरफ डोंगा कगार। दोनों तरफ ऊंचे टीले। और एक तरफ झरना 'घों-घों' की आवाज़ करता हुआ नीचे बह रहा था। कगार की चोटी से नीचे के पेड़ों की चोटियां दिखायी दे रही थीं। और अब तो ये पेड़ भूत की तरह भयंकर लग रहे थे।

फिर हम एक पत्थर धकेलते-धकेलते ले आये थे। पसीने से हम दोनों तर हो गये थे। पत्थर खूब बड़ा था। हमने उसे एक सीधी ढलान पर ढंग से रख दिया। पत्थर से काफी ऊपर एक बहुत बड़ा खड्ड था। वहां तक हाथ पहुंचने जरूरी थे।

तैयारी हो चुकी थी। जिस ढंग से नीचे उतरे थे अब उसी ढंग से फिर से ऊपर चलना था।

इन स्थितियों में सुरेश का दिमाग बहुत चलता। उसे भयानक तरकीबें सूझने लगतीं। लगता है, सारे संसार में अगर किसी के दिमाग होगा तो वह इसी के। उसने कहा, ऐसा करो, मेरी गर्दन पर बैठ जाओ और अपनी टांगों को मेरे कंधों पर लटका दो। फिर मैं इस पत्थर पर खड़ा हो जाऊंगा। आगे तुम्हारी होशियारी।

फिर सुरेश के कंधों पर मैं। मान लो मेरा संतुलन बिगड़ जाये या फिर सुरेश का पैर फिसल जाये, दोनों स्थितियों में मौत तो मेरी ही होगी। इसलिए मैं बहुत ही सावधानी से काम करता था।

पहले सुरेश पत्थर पर बैठ गया। मुझे अपने कंधों पर लादे वह धीमे-धीमे खड़ा हो गया। उसने बड़ी ताकत लगाकर मुझसे कहा, हां। मैंने अब ऊपर की तरफ देखा। सिर के ऐन ऊपर एक बड़े पत्थर की नोंक आगे निकल आयी थी। दोनों हाथों से मैंने पत्थर को पक्का पकड़ लिया और पहले एक टांग को फिर

दूसरी को सुरेश के कंधों पर ढंग से जमाकर धीमे-धीमे खड़ा हो गया।

फिर पत्थर की लंबी नोंक पर एक हाथ रखा और ऊपर वाले दूसरे पत्थर पर दूसरा हाथ गड़ा दिया। पत्थर को पकड़कर मैं झूल गया और बीच वाले एक लंबे पत्थर पर चूतड़ टिका दी—नीचे सुरेश लड़खड़ा ही रहा था। चाह रहा था कि जल्दी से टांगों को उसके कंधों पर से हटा लूं। पर उस पत्थर पर सही ढंग से बैठ पाना मुश्किल जान पड़ रहा था।

शायद सुरेश लगातार ऊपर देख रहा था। वह कह रहा था, हाथों को ज्यादा मत रगड़ो। मिट्टी गिर रही है। मेरी आंखें मिट्टी से भर गयी हैं। कोई कड़ी चीज़ पकड़ पा रहे हो कि नहीं ?

मैंने कहा, नहीं। पेड़ की एक जड़ दीख तो रही है लेकिन काफी ऊपर है।

उसने कहा, नीचे उतर जाओ।

मैंने पत्थर पर रखे अपने दोनों हाथ निकाल लिये और फिसलता हुआ नीचे उतर गया।

सुरेश ने पूछा, क्या तुम मेरा वज़न सह सकोगे ?

मैंने कहा, हो सकता है मैं संतुलन खो बैठूं। सुरेश बोला, तब तुम एक काम करो। मुंह फेरकर मेरे कंधे पर बैठ जाओ और पत्थर की तरफ पीठ करके ऊपर चढ़ जाओ। इससे उस नुकीले पर बैठ सकने में आसानी होगी। फिर ऊपर चढ़ पाना मुश्किल नहीं होगा।

मैं फिर से उसकी गर्दन पर। अब उलटी दिशा से ऊपर तक आ पहुंचा। ऊपर वाले पत्थर को टटोलकर उस पर चूतड़ टिका दी।

सुरेश, अब बताओ वह जड़ कहां है ? मैं देख नहीं सकता उसे।

तुम तो आराम से बैठ गये हो।

उसने कहा, तुम जिस पत्थर पर बैठे हो उसपर पहले अपनी टांगें रख लो। मुझे मुक्त कर दो तो मैं तुम्हें दिखलाता हूं।

मैंने पहले एक टांग उठायी। उसे चूतड़ से चिपका दिया। दूसरी टांग नीचे झूल रही थी। एक हाथ से पत्थर को पकड़ रखा था।

ज्योंही सुरेश मुक्त हुआ, दूर जाकर खड़ा हो गया। जोर से कह रहा था, देखो ऊपर बायीं तरफ एक खड्ड है। लेकिन तुम्हें बड़ी एहतियात से अपने-आप खड़ा होना पड़ेगा। तुम तो ऐसे टिके हो जैसे कुर्सी पर बैठे हो।

फिर मैंने दूसरी टांग ऊपर उठा ली। दोनों टांगें ऊपर गड़ा दीं और फौरन अपने बायें हाथ को उस खड्ड में पक्का गड़ा दिया।

सुरेश ने कहा, बहुत बढ़िया। अब जूते नीचे फेंक दो। वरना फिसल जाओगे।

बड़े परिश्रम से मैंने एक हाथ से जूतों को पत्थर पर रगड़-रगड़ कर उतारा

और नीचे फेंक दिया। सुरेश ने उन जूतों को उठाया और ऊपर दूर घास पर फेंक दिया। उसके बाद उसने अपने जूते भी उधर फेंक दिये। थैली भी फेंक दी।

अब मैं पत्थर पर उकडू बैठा था और एक हाथ खड्डे में मजबूती से गड़ा हुआ था।

सुर्शा, बताओ, अब आगे ?

अब एकदम खड़े हो जाओ और ऊपर सीधी तरफ—मतलब तुम्हारी दाहिनी बाजू—एक लंबी जड़ है, उसे पकड़ लो। लेकिन संभालकर. भला।

फिर मैंने अपनी गर्दन ऊपर उठायी। जड़ अस्पष्ट-सी दिखायी दे रही थी। मैंने अपनी टांगों में ताकत बटोरकर जड़ पर एकदम छलांग लगायी और जड़ को पकड़कर लटकने लगा। अब दोनों टांगें पत्थर पर और दोनों हाथ जड़ पर थे।

लेकिन शैवाल के कारण जड़ लगातार फिसल रही थी। फिर भी मैंने जड़ की गेंडली बना ली और अपना पूरा बोझ उस पर टिका कर ऊपर वाले खड्ड में अपनी एक टांग रख दी। उसके बाद दूसरी। फिर एक हाथ से दूसरी एक जड़ पकड़ ली। कमर लगातार हवा में झूल रही थी। इसी स्थिति में मैं काफी देर तक रहा। फिर मैं चीखा, क्यों भाई, जड़ को छोड़ दूं ? इस घास को पकड़ लूं ? उसने कहा, मुझसे क्या पूछ रहे हो ? अब थोड़ी-सी चढ़ाई बाकी है। थोड़ा और चढ़ लो, बस ऊपर हो गये। फिर मैंने अपना सारा वज़न एक ही हाथ पर डाल दिया और मुट्ठी से घास को पकड़ लिया। घास पक्की थी। फिर दूसरे हाथ से आगे वाली घास को पकड़ लिया।

इस तरह घास के सहारे सीधे ऊपर चला आया था। हाथ कांप रहे थे। रानें बिलकुल सुन्न हो गयी थीं। सारी ताकत बटोरकर मैंने अपनी टांगों को जैसे-तैसे ऊपर उछाल लिया। दो कदम चला। सामने ऊंचा किला खड़ा है। मुझे यकायक ग्लानि-सी हुई। और मैं घास पर गिर पड़ा। चित लेटकर मैंने आंखें बंद कर लीं। बड़ा सुख मिल रहा था।

सुरेश नीचे चीख रहा था, पांडया, पांडू ! मैं कैसे ऊपर आऊं ?

मैं भयंकर रूप से थक गया था। लगभग बेहोश था। मुझे कुछ होश आया तो मैंने सुना—पांडू, तुम वहीं हो कि कहीं निकल गये ?

मैं चिढ़कर उठ बैठा। मैंने कहा, मैं जिस रास्ते से ऊपर आया हूं, वह खतरनाक रास्ता है। मैं कोई और रास्ता तुम्हारे लिए तलाशता हूं। संभव है, कोई अच्छा रास्ता मिल जाये।

फिर मैं ऊपर अच्छे रास्ते की तलाश में काफी देर तक घूमता रहा। मैंने देखा, एक रास्ता है जो और रास्ते के मुकाबले कुछ आसान था। पर इस पर से एक झरना गिर रहा था। सीढ़ियों की तरह बड़े-बड़े पत्थर ऊपर तक बिछे पड़े थे। और फिर ऊपर एक पेड़ भी था।

सुर्शा, इस रास्ते से ऊपर चले जाओ। पर सारे रास्ते झरने का पानी बदन पर झेलना पड़ेगा।

अब सुरेश उस भयंकर पत्थर को अकेले ढकेलते-ढकेलते झरने के नीचे तक ले आया था। पानी की मार उसके बदन पर पड़ रही थी। उसे झेलता हुआ वह ऊपर काफी दूर तक चढ़ आया था। मैं ऊपर से जैसे-जैसे उसे संकेत देता, वह चढ़ता जा रहा था। अंत में मैंने अपना हाथ बढ़ाया और उसे ऊपर खींच लिया।

उसने कहा, तुम लगातार क्यों चीख रहे थे ? पानी की आवाज़ में मैं कुछ भी नहीं सुन सका।

फिर वहां घास में हम दोनों लेट गये थे। थैली से ब्रेड निकाल लिया और खाते रहे। अब हमने सोचना ही बंद कर दिया था कि आगे किस रास्ते नीचे उतरना है।

अंधेरा गहरा गया था। रास्ते के गड्ढों और चढ़ावों के सिर्फ खयाल से ही हमें हंसी आ रही थी।

इस बीच कोई तीन-चार जने ओऽयऽ ओऽयऽऽ की ऊंची आवाज़ करते हुए वहां पहुंचे। हम डर गये। लेकिन वे लोग हमारे करीब आये। हमसे उन्होंने पूछा, इधर आप लोगों ने कोई भैंस जाती हुई देखी ?

हमने कहा, नहीं।

एक ने पूछा, अयसी बखत तुम लोग इहां कइसे ? तुम लोग किले पर कहीं रास्ता तो ना भटक गये हो ?

हमने कहा, हां।

उन्होंने पूछा, तुम लोग बिचित्तर लगते हो। जीव-जनावर, बखत-बेबखत पूछ कर नहीं आती।

फिर वे हमें वहां से ले गये और एक पगडंडी पर लाकर छोड़ दिया।

सीधे चले जाओ, यह पगडंडी तुम्हें सीढ़ियों तक पहुंचा देगी—यह कहकर वे आगे निकल गये।

सीढ़ियों तक पहुंचते-पहुंचते काफ़ी रात हो गयी थी। हम नीचे उतर आये थे। मुंह से एक शब्द भी निकल नहीं रहा था। पैडल मारते बड़ा कष्ट हो रहा था।

आखिर हम पूना आ पहुंचे ।

गुफाओं वगैरा की सैर में सुरेश की कोई दिलचस्पी नहीं थी । कार्ले की गुफ़ाओं को तो वह सिर्फ़ पांच मिनट में देख आया था । और मुझसे कहने लगा, अब बस करो महाशय, इन पत्थरों की प्रशंसा । चलो, हम लोग गुफ़ाओं के ऊपर पहाड़ों का दृश्य देखने चलेंगे ।

काजा की गुफाओं पर ऊपर से एक जल-प्रपात गिरता है । उसे देखकर मैं कुछ चिंतित हो गया था । मैंने कहा, आखिर सरकार क्या कर रही है समझ नहीं आता । इस प्रपात के कारण इतनी सुंदर गुफाएं चंद बरसों के बाद टूट न जायेंगी ?

तब सुरेश ने कहा था, आगे चंद और बरसों के बाद यह पृथ्वी भी टूट जायेगी तो सरकार उसके लिए क्या करेगी ? सरकार जो कर रही है ठीक ही कर रही है । उलटे ये गुफाएं-वुफाएं, ताजमहल वगैरा जल्दी से टूट जायें तो अच्छा ही होगा ।

क्या कह रहे हो तुम ? इतनी सुंदर गुफाएं और···।

यह सब ठीक है । लेकिन इनकी हालत आज थोड़े ही खराब हुई है । बहुत पहले ही से इनमें दरारें पड़ गयी हैं । मान लो इनकी मरम्मत कर भी लें, तब भी ये क्या अनंत काल तक बचने वाली हैं ? हर किसी वस्तु को चिर करने की कोशिशें वास्तव में मूर्खता के अलावा और क्या हो सकती है ? असल में निर्माण-कर्त्ताओं को चाहिए था कि इनकी सृष्टि के साथ ही इन्हें तोड़ देते । वैसे देखा जाय तो इस तरह की वस्तुओं का प्रयोजन तत्कालीन होता है । पुरानी किताबें, पुरानी इमारतें, पुराने राग, पुरानी चीज़ें वगैरा ये सब उन लोगों ने अपने युग के लिए ही बनायी होती हैं । इनका प्रयोजन हमारे युग के लिए नहीं होता । जो आज बन रहा है वही सिर्फ़ सच पूछो तो, हमारा है ।

यह गलत है । मुझे ये गुफाएं अब भी आज की लगती हैं ।

लगती रहें । इससे कुछ फ़र्क नहीं पड़ता । चीज़ें जब पुरानी पड़ जाती हैं तो उन्हें मरने दिया जाना चाहिए । इसी में भलाई है । तुम इतने सेंटिमेंटल मत बनो । तुम्हारा और इन गुफाओं का संबंध आज ही के दिन तक सीमित है । इससे अधिक नहीं । इसके पूर्व इनका होना या न होना तुम्हारे लिए एक जैसा है ।

केवल आज की बात नहीं है । मैं भविष्य में बार-बार इन्हें देखता रह सकता हूं । आंख बंद करके मैं इन्हें जीवित रूप में प्रतिदिन देख सकता हूं ।

आखिर यह कब तक ? तुम्हारी मृत्यु तक ही ना ? इससे आगे तो नहीं ? तब फिर उसके बाद तुम्हारा और इनका क्या होगा ? वास्तव में तुम्हें इसका

पता नहीं होता है कि तुम्हारी मृत्यु के बाद इनका क्या हश्र होगा। यही क्यों ? जीते जी भी क्या तुम प्रतिक्षण ध्यान करते रहोगे ? क्या कई महीनों तक बिना इनका ध्यान किये तुम जी नहीं सकोगे ? तब फिर बताओ इस अवधि में क्या तुम्हारे लिए इनका कोई अस्तित्व भी होगा ? इसलिए मैं कहता हूं, वर्तमान क्षणों की सीमा में आबद्ध जो भी भला-बुरा आता हो उसे अनुभव करके मुक्त हो जाना चाहिए। तो अब चलो, हम लोग इस जलप्रपात के नीचे खड़े रहें।

सुरेश हमेशा अंत तक पहुंच जाता है।

होस्टल के पीछे के टीलों से हम इतने ज्यादा परिचित हो चुके थे कि उसके मुकाबले टेक्स्ट की किताबों से हमारा परिचय कुछ कम था। कभी वहां ऊपर हमारी चाभियां गुम हो जातीं, तो यहां कमरे में बैठे-बैठे हम सही जगह का अनुमान लगा सकते थे। कई बार हम अकेले वहां टहलने निकल जाते थे। कमरे पर ऊब जाने के बाद व्यायाम के बहाने कभी टीलों की सैर कर आते थे। लेकिन इधर एफ०वाई०, इंटर तक आते-आते इन टीलों पर पहले की तरह मजा नहीं आ रहा था। इसलिए इस वर्ष हम पहाड़ियों पर भी भीतर दूर तक निकल जाते। सीनियर में जब से आये हैं सिर्फ़ वेताल टीले पर ही सैर का कार्यक्रम बनता रहता है। वेताल टीला, यानी एक महान वस्तु। कभी-कभी तो वहां सारा दिन या कभी पूरी रात गुज़ार देते। हां वेताल पर, सुरेश और मैं मिलकर ही जाते। अकेले कभी नहीं। अकेले आदमी के लिए यह जगह बड़ी खतरनाक। शहर के तरफ वाली पहाड़ियों में यह सबसे ऊंची पहाड़ी।

दिन में वेताल टीले पर मज़ा नहीं आता। क्योंकि दिन के उजाले में शहर साफ दिखायी देता था। तब टीले पर घूमने का संतोष कहां ? हां, जब अंधेरा हो, तब अनुभव होता है कि हम कहीं ज़मीन से बहुत ऊपर किसी द्वीप पर उतर आये हैं।

एक बार दोपहर के वकत हमने टीले पर एक प्यारी चीज़ देखी। एक जगह घुंघचियों की बेलें फैली थीं। ज़मीन पर लाल-लाल घुंघचियों का ढेर। कड़ी धूप। सूखी घास। खूब खायीं घुंघचियों की पत्तियां। जेब भर-भर के घुंघचियां ले आये थे।

चांदनी रातों में तो और मज़ा आता। एक बार पूनम की रात इधर ही गुज़ारी। सोये भी यहीं थे। होस्टल के और पांच-छः दोस्त साथ थे। सिर्फ़ ओढ़ने के लिए चादरें साथ थीं। भरपूर चांदनी। समतल चरागाहों पर लेटने में बड़ा मज़ा आया था। लेकिन सुबह-सुबह भयंकर सर्दी। सर्दी के कारण सब लोग जल्दी जाग गये थे। और फिर बड़े तड़के कुड़कुड़ाते हुए होस्टल लौट आना

पड़ा था। होस्टल पहुंचकर बहुत गर्म पानी से खूब नहाये।

निर्जन! यहां दिन दहाड़े शराब चुआने वाले लोग मिल जाते हैं। लेकिन हमसे इन लोगों ने कभी कोई बात नहीं की।

रातों में कभी-कभी किसी चोटी पर आग की ज्वालाएं दिखायी देतीं। संभव है, शराब चुआने वालों का यह काम होगा। एक बार यह दृश्य हमने देखा था। सिगरेट जलाने के लिए हमारे पास माचिस नहीं थी। इसलिए ज्वालाओं की दिशा में चल पड़े थे। पर चोटी पर ज्योंही पहुंचे, देखा कि ज्वाला गायब थी।

उसके बाद से हम ज्वाला के रहस्य के बाबत निरंतर सोचते रहे थे। काफ़ी दिनों के बाद फिर से एक बार वैसी ही आग नज़र आयी थी। हम लोग लुकते-छिपते पेड़ों की आड़ से चुपचाप उस दिशा को चले गये थे। लेकिन अभी एक-दो मोड़ भी पार नहीं किये थे कि अचानक ज्वाला गायब हो गयी।

फिर लौटकर नीचे रास्ते पर उतर आये थे। वहां से देखा तो ज्वाला फिर दिखायी दी थी।

मैंने कहा, ज्वाला वगैरा गड़बड़ है। ज़रूर कोई भूत का मामला है।

उसने कहा, तुम पक्के गंवार हो।

मतलब, भूत वगैरा क्या होते नहीं हैं?

होंगे या नहीं होंगे। वे होते ही हैं, इसका भी क्या कोई सबूत है?

इस ज्वाला को ही देखो।

ज्वाला? इसमें क्या है भूतहा? किसी खोह में सुलग गयी होगी आग। यहां से हमें उसका मुंह दिखायी देता है, इसलिए आग नज़र आ सकती है। हम लोग ऊपर निकल आते हैं तो दृष्टि से ओझल हो जाती है।

सुरी, इसकी हमेशा थोड़े ही कोई एक ही जगह निश्चित है? कभी टीले के माथे पर होती है तो कभी दूर उधर चरागाह पर।

इस वकत वहां दीख रही है न? चलो, वहीं चलें। चलो, सीधे उसी दिशा से चलें। चाहे जितनी देर हो जाय।

मैंने उसे मना कर दिया था। इसके बाद काफ़ी दिन गुज़र गये। मशाल जैसी कोई चीज़ एक दिशा से दूसरी दिशा में बढ़ती हुई नज़र आयी थी। भयंकर अंधेरा। वह चीज़ लालटेन थी या और कोई चीज़ थी, समझ पाना मुश्किल था।

सुरेश ने कहा, चलो हम लोग चलें। लेकिन रोशनी रुक-रुककर फिर ऊपर उठती है। और फिर एकदम से कहां गायब हो जाती है, पता नहीं चलता।

मैंने कहा, इससे हमें क्या फ़र्क पड़ता है? हम लोग वेताल के मंदिर तक

चलेंगे। वहां से आगे सीधे उतर चलेंगे। चाहे वहां जो भी हो, चिंता किसे है ?

उसके बाद कई दिन गुज़र गये, ज्वाला दीखी ही नहीं थी। खास कर अंधेरी रातों में हम लोग उसे इस उम्मीद से देखने के लिए जाते कि अब तो वह दिखायी देगी। इस प्रयास में काफ़ी दिन गुज़र गये, लेकिन कुछ भी घटित नहीं हुआ। लेकिन हम भी तो कहां इतने गंभीर थे। बस यूं ही कभी मन-बहलाव के लिए या थोड़ी-सी हलचल पैदा करने की गरज से टीले पर चले आते।

अंधेरी रात थी। हम वेताल के मंदिर पर काफ़ी देर तक बैठे रहे थे। भयंकर ठंड थी। लेकिन उठने को मन नहीं कर रहा था। पर जब नीचे उतरे, आधी रात हो चुकी थी। ठंड से कुड़कुड़ाते हम लोग सड़क पर पहुंच गये थे। पुलिस के जवानों ने हमें टोका।

एक ने हमें डांटा था और कुछ सवाल किये थे।

सुरेश ने कहा, शट-अप।

तब जवान ने कहा, मां-बहनों की गालियां कोई हमें दे दे, परवाह नहीं। लेकिन शटअप-वटअप हम लोग बिलकुल बरदाश्त नहीं कर सकते। थाने चलो।

मैंने कहा, अजी हम लोग इस कॉलेज के विद्यार्थी हैं। होस्टल पर रहते हैं। पढ़ाई से ऊब गये थे, इसलिए टीले पर चले आये थे।

दूसरे ने कहा, कॉलेज के विद्यार्थी ? बहनचोद कॉलेज के स्टुडेंट क्या ऐसे दलिद्दर होते हैं ? देखा तुम्हारा यह भेस। चलो मडुवो, थाने चलो, हम छोड़ेंगे नहीं।

लेकिन सुरेश भी कुछ कम नहीं था। उसने पुलिस के जवानों को ठेठ ठाठ की खूब गालियां दी थीं। दोनों में काफ़ी तू-तू, मैं-मैं हुई थी। हम लोग रात भर हवालात में रहे।

सुरेश लगातार बड़बड़ा रहा था। उसने उन ऊंघने वाले जवानों को बहुत ज्यादा परेशान किया। फिर हम दोनों में बहस शुरू हुई—

> हर सरकार का अपना एक पुलिस का महकमा हुआ करता।
>
> अब आप पूछेंगे, सरकार किसे कहते हैं ? पुलिस से तात्पर्य ?
>
> तो जनाब पुलिस यानी वह सज्जन जो आधी निकर पहनकर सरे आम सड़क पर घूमता रहता और हाथ में डंडा लेकर चोरों को पकड़ने का काम करता।
>
> लगता है, पुलिस को मूलतः राष्ट्र में शांति बनाए रखने में बहुत रुचि होगी, वरना सिर्फ अस्सी-नब्बे रुपये माहवार में कौन आदमी आधी निकर पहनकर चोरों को पकड़ने का काम करेगा ?

अब सरकार से तात्पर्य सुनिए। तो हर देश की अपनी एक-एक सरकार हुआ करती।

आठ-दस बूढ़े लोग इकट्ठे हो आते, मुल्क का हिसाब-किताब वगैरा देखने की तनखाह पाते।

कभी-कभी दो-चार सरकारों के बीच जंग हुआ करती।

इसका यह मतलब नहीं कि ये बूढ़े लोग खुद इस जंग में शामिल हुआ करते थे।

बल्कि ये बूढ़े पहले कोई संघर्ष छेड़ देते और फिर युवा तथा बलवान जवानों को सीमाओं पर जंग के लिए भिजवा देते। खुद लेकिन छत पर बैठकर तमाशा देखा करते।

पुलिस वालों ने कहा, भगवान की कसम, इन सालों ने रात भर हमारी नींद हराम कर दी।

सुबह इंसपेक्टर ने कहा था, उसी वक्त यह बात तुम्हारी समझ में आ जानी चाहिए थी कि ये लोग कॉलेज के विद्यार्थी हैं।

सुबह हमारे साथ एक जवान था। वह हमें प्रिंसिपल के बंगले पर ले गया था।

कॉलेज के लड़के-लड़कियों ने इसे देख लिया था। प्रिंसिपल ने हम लोगों को वार्निंग देकर उस जवान को वापस भिजवा दिया था।

रमी ने पूछा था, क्या यह सच है ?

इसमें झूठ क्या होगा ?

इतनी रात ? और वह वेताल वाला टीला है कहां ? वह तो नहीं ? वह भी नहीं ? फिर ? अच्छा, तो जो शिखर दिखायी देता है ? वही क्या ? बाऽऽपरे !

फिर रमी ने सुरेश से भी पूछा था और पड़ताल कर ली थी। उसने पूछा था, कोई सांप-पांव डंस ले तो ?

फिर वह मेरे निकट आयी और मुझसे कहा, ऐसे पागलों की तरह भटकना नहीं चाहिए।

अपनी आंखों को फैलाकर बड़ी दिलचस्पी से वह वेताल टीले की हमारी शरारतों को सुनती रही थी। उसने कहा, हम लड़कियों पर कितने बंधन लादे जाते हैं। लड़कियों का होस्टल कांजीहाऊस से क्या कम है ? एक लड़की रोज़ देर रात दीवार फांदकर लौट आती है। लेकिन हम किसी को नहीं बताते। मैं कभी आप के साथ पहाड़ी पर चली चलूं ? यूं ही मंजर देखने के लिए, क्यों ? कब ?

तुमसे यह नहीं बन पायेगा। ऊंचाई काफ़ी है। और फिर तुम्हारे फेफड़े ?

वह फिर कुछ नहीं बोली।

मैंने गलती की थी। इसके बाद से फिर कभी फेफड़ों का ज़िक्र नहीं करना है।

वेताल की पहाड़ियां जहां खत्म होती हैं, वहीं से चतु:श्रृंगी का गंदा टीला शुरू होता है। यह टीला इतना ऊंचा और भदेस है कि चतु:श्रृंगी तक पहुंचते-पहुंचते सांस फूल जाती है। लेकिन हम लोग इसी रास्ते पहाड़ चढ़ा करते। और नीचे उतरते खड़कवासला के रास्ते। एक बार चतु:श्रृंगी पहुंच गये कि बेफिक्री। फिर मौज ही मौज।

हम एक बार चतु:श्रृंगी टीला चढ़ रहे थे। सुरेश ने पूछा, आज अमावस तो नहीं है?

मैंने कहा, पता नहीं। हम लोग इसके पहले कभी वेताल पर शाम के वक्त गये नहीं थे। यहां की रातों का तो पता है, शामों का नहीं। चांद जब दीख नहीं रहा है, तो अमावस ही होनी चाहिए।

उसने कहा, तब फिर आज वह ज्वाला ज़रूर दीखेगी।

लेकिन उस शाम कोई ज्वाला नहीं दिखायी दी थी। अंधेरा लेकिन बड़ा घनघोर। पर तारों की रोशनी इतनी कि रास्ता तलाशना मुश्किल नहीं था। आकाश में खचाखच तारे। दूर से वेताल का टीला बहुत स्पष्ट। टीले पर का मंदिर कुछ अस्पष्ट।

हम टीले की तलहटी तक पहुंचे ही थे कि ऊपर मंदिर में हलकी-सी रोशनी दिखायी दी।

ऊपर पहुंचकर देखते हैं कि मंदिर में एक झलमल-दीप जल रहा है। बड़े पत्थर में खुदे इस वर्तुलाकार दीये को शुरू से हम देखते रहे थे। लेकिन इसमें इतना लबालब तेल भर के कोई इसे जलाता होगा, यह पता नहीं था।

मैंने कहा, हम लोग जब भी यहां आते रहे हैं, रात का समय रहता। इसलिए उस वक्त तक तो संभवत: दीया बुझ जाता होगा। आज हम लोग जल्दी आ गये हैं। अभी शाम हो रही है। इसलिए इसे देख पा रहे हैं। आज तो वहां एक नारियल भी रखा हुआ था। हमने नारियल फोड़ा। गरी का एक टुकड़ा वेताल को चढ़ाकर बाकी सारा खा डाला। इसमें क्या बुराई है? भगवान वेताल हमारा ही तो है। कम-से-कम मेरी इन देवताओं पर श्रद्धा है।

इस घटना के बाद जब-जब हम लोग शाम के वक्त यहां आते रहे हैं, दीया जलता मिलता। लगता, जैसे इसे अभी-अभी किसी ने जलाया है। मतलब, उसमें लबालब

तेल भरा होता था।

लेकिन इसे आखिर कौन जलाता है? यह अपने-आप तो नहीं जल पड़ता है? और फिर वेताल—देवता। यह पूजा—नींबू की फांकें, हल्दी, गुलाल, कुम-सुम—यह सब कहां से आ जाता है। कौन लाता होगा?

फिर हम लोग शाम होने के पहले ही से वहां आकर बैठने लगे थे। अंधेरा हो जाता, लेकिन दीया बारने के लिए कोई आता दिखायी नहीं दिया। अच्छा, मान लो यह अपने-आप जल उठता है तो हमारी उपस्थिति में एक बार भी ऐसा नहीं हुआ।

सुरेश ने कहा, तब फिर ज़रूर कोई टोटका होगा।

फिर हमने एक तरकीब सोची। सुरेश दीये के पास खड़ा हो गया। मैं सामने वाले टीले तक दौड़ता चला गया। यह जगह झाड़ियों से घिरी हुई थी। मैं ऐसी जगह रुक गया था जहां से मैं सुरेश को देख सकता था। फिर सुरेश ने हाथों के इशारे से मुझे और पीछे बाईं तरफ सरकने के लिए कहा। मैं उसके इशारों के मुताबिक हटता गया और रुकने का स्थान निश्चित कर लिया। वहां पत्थर रख-कर निशान लगा दिया। फिर मंदिर तक लौट आया। मैंने कहा, वहां निशान रख आया हूं। कल हम लोग छिपकर बैठ जायेंगे। देखेंगे कि आखिर दीया कौन जलाता है?

इसके बाद रोज़ शाम के वक्त हम लोग उस जगह आकर रुकते रहे थे कि कहीं कोई नज़र आ जाये।

लगातार चार-पांच दिन तक हम लोग वहां भूत की तरह सांस रोके चुपचाप बैठे रहे थे। लेकिन कोई लाभ नहीं हुआ। सारी मेहनत अकारथ गयी। जब तक मंदिर को ताकते रहते तब तक वहां कुछ भी घटित नहीं होता। लेकिन कभी थोड़ी देर के लिए गपशप में लग गये या इतिहास वाली उस बकवास में उलझ गये तो उधर से ध्यान टूट जाता। और फिर जब अचानक हमारी दृष्टि मंदिर पर मुड़ती, तो देखते कि दीया जल रहा है। फिर हम घास का मैदान पार करके दौड़े-दौड़े टीला चढ़कर मंदिर तक पहुंच जाते। दीया बराबर जल रहा होता। लबालब तेल। वही पूजा। कभी नारियल—सब-कुछ वही। जैसे सारा काम फुर-सत में किया गया था। तब हम मंदिर के चारों तरफ देख आते। घास के मैदान पर नज़र दौड़ाते। सारा अहाता सूना। शाम हो चुकी होती। अंधेरा। कोई कहीं छिपकर बैठ जाये तो कैसे पता चले? लेकिन हम लोग उस राज़ की तलाश में कोई कसर नहीं रखते। सुरेश पर तो धुन सवार रहती। वह इसे तलाशने की हर संभव कोशिश किया करता। लेकिन मैं कहता, छोड़ो इसे। हम क्यों बेकार के इस पचड़े में पड़ें?

एक बार वहां पहुंचने में हमें थोड़ी देर हो गयी थी। दीया जल ही रहा था। हमने गरी खा डाली।

हम बाहर निकल आये थे। कुछ फासले से सुरेश ने पीछे मुड़कर देखा था। उसने कहा, देखा? अभी-अभी जल रहा था। अब गायब है। बुझ गया होगा क्या?

मैंने कहा, पता नहीं बुझ गया है या नहीं? हां, दीख नहीं रहा है। संभव है, नीचे के पेड़ों आदि के कारण दीख नहीं रहा होगा। और फिर लोग काफ़ी नीचे उतर आये हैं।

उसने कहा, ऐसा है तो फिर मंदिर में अंधेरा किसलिए?

सुर्शा ने कोई बात मन में ठान ली, तो समझो शिकारी की तरह उसी के पीछे पड़ जाता है।

हम फिर से आधा फासला पार करके ऊपर लौट आये। वहां आकर देखा कि, वास्तव में दीया नहीं जल रहा था। संभव है, हवा के कारण बुझ गया होगा।

लेकिन हमेशा ऐसा क्यों नहीं होता? माचिस देखूं?

सुरेश ने दीया जलाया। उसमें काफी तेल था। बाती बड़ी करके उसने अपनी सिगरेट उसी से जला ली। मुझे शक हुआ, मूर्ति के पीछे वाले अंधेरे में कोई छिपा तो नहीं बैठा है? लेकिन डर के मारे सुरेश को मैंने यह नहीं बताया। वह स्साला मेंड। बता दूं तो आप भीतर जाकर पूरी तफतीश किये बगैर लौटेंगे नहीं।

हम फिर नीचे उतर गये।

थोड़े फासले से फिर मुड़कर देखा तो मंदिर में अंधेरा।

मैंने पूछा, बाती वगैरा सही तो थी?

सुरेश ने कहा, बेशक।

हम उसी जगह रुके रहे। देखते रहे थे कि फिर से दीया जलाने के लिए कोई आ तो नहीं रहा है। चारों तरफ घुप्प अंधेरा। पता भी तो कैसे चले?

आखिर सुरेश फिर से मंदिर की तरफ चलने को तैयार हुआ। मैंने कहा, मत जाओ। हमें क्या पड़ी है? हटाओ।

लेकिन सुरेश सुनने वाला आदमी नहीं है। मैं मंदिर से काफी फासले पर रुक गया था। सुरेश भीतर घुस गया था। उसने तीली जलायी।

और यकायक उसकी चीख मैंने सुनी। वह बाहर निकल कर भागने लगा था। मैं भी भागने लगा था—क्या बे सुर्शा, अरे क्या हुआ?

लेकिन वह कहां सुनने लगा? हम दोनों मैदान तक पहुंच गये थे। वह अब भी भाग रहा था। मुंह से उसके कोई शब्द नहीं निकल रहा था। वह यकायक

रुक गया। उसने अपने दाहिने हाथ पर बाईं हथेली दबाकर पकड़ रखी थी।

मैंने पूछा, अरे भाई क्या हुआ ? किसी ने काट तो नहीं खाया ?

माचिस जलाओ, मेरा पंजा देखो।

मैंने तीली जलायी। देखा, उसके हाथ के पंजे पर दो-तीन गहरे खरोंच थे। गनीमत, खून वगैरा नहीं था। वह बहुत ज्यादा खौफ़ खा गया था। कहने लगा, मैंने तीली जलायी, दीया जलाने ही वाला था कि मेरे हाथ पर कोई चीज़ धप्प से आ गिरी।

उसे लगा, शायद चमगादड़ होगा।

रातों में मंदिर के इन पेड़ों पर क्या टंगा होता है, इसे हमने कभी नहीं देखा था। शायद, पिशाच न चिपके बैठे हों।

उसके बाद से हमने वेताल वाला शौक छोड़ दिया था। चांदनी रातें शुरू हो गयी थीं। दीया जलना बंद हो गया था। इस मामले में दोनों सहमत थे कि इलाका निर्जन है। रात का वक्त होता है। मान लो, कुछ अनहोनी हो जाय तो सहायता के लिए कोई आने वाला नहीं है। और शहर बड़ी दूरी पर, नीचे वादी में। हमारा कुछ बुरा-भला हो जाये तो किसी को पता भी नहीं चलेगा।

आगे कई दिनों तक गुसलखाने की तरफ जाते वक्त वेताल टीले पर एक नज़र दौड़ा लेते, बस।

सीनियर का आधा सत्र पूरा हो गया था। पर अब तक कोई हादसा नहीं हुआ था। निरंतर घने बादल। फूलों से लदे गुलमोहर। वही घास जो अब तक हरी थी। अभी-अभी रुकी हुई मूसलाधार बारिश। इस बार ज़ोर की बारिश हुई थी। लगातार चार महीने खिड़की-दर-खिड़की दौड़ने वाली। वर्षा की आड़ी-तिरछी डोरियां। हमने इन दिनों कोई छाया देखी ही नहीं।

दिवाली की छुट्टियों में घर गया था। छुट्टियों में बहुत पढ़ाई करते रहे। मां ने कहा था, बाण्ठेकोबा, कुछ समय हम लोगों के लिए भी दोगे कि नहीं ?

गुणे सर ने कहा था, सांगवीकर, तुम्हारे पर्चे बहुत बढ़िया हैं। मैंने तुम्हें सत्तर दिये हैं। लेकिन तुम लिखने में बड़ी लापरवाही बरतते हो। आगे यूनिवर्सिटी के

इम्तिहान हैं, ध्यान रहे।

फिर खुद उन्होंने कहा था, मेरे यहां ऐसे ही कभी आ जाया करो, मैं तुम्हारी मदद करूंगा।

गुणे सर के यहां मैं कभी-कभार जाने लगा था। गुणे सर काफ़ी मशहूर आदमी। इसलिए मैंने उनसे संपर्क बढ़ा लिया था।

गुणे सर का एक मकान बंबई में। दूसरा पूना में। वह कहा करते, बंबई का मकान खाली नहीं करेंगे क्योंकि भविष्य में कभी सोसायटी हमारा तबादला वहां कर दे, तो ऐसा रॉयल मकान फिर से कहां मिलने वाला है ? बंबई में मकान तलाशने की मुसीबत कौन मोल लेगा ?

मैं कहता, शहरों में जगह का प्राब्लम आजकल बहुत ही मुश्किल हो गया है।

गुणे साहब के यहां सभी वस्तुओं के दो-दो सेट थे—दो-दो रेडियो—माता-पिता की दो-दो तसवीरें, बर्तन-भांड़े, चूल्हे, फर्नीचर, विशिष्ट किताबें, स्टोव आदि—बंबई का सेट बंबई में। पूना का पूना में। तीन बरस पहले आप बंबई में थे। उस वक्त पूना वाला मकान बंद था।

छुट्टियों में आप बंबई जाते और आलोचना की पुस्तकें वगैरा लिखते रहते। पुस्तकों को यहां से वहां लाने-ले जाने के लिए दो मजबूत बक्से तैयार रखे रहते। इन्हें वे अपने साथ लिये चलते। कपड़ों का भी यही हाल था। किताबों में 'हाऊ टु विन फ्रेंड्स एण्ड इंफ्लूएंस पीपल' से लेकर ज्ञानकोश तक सभी तरह की पुस्तकें थीं। मार्किट में जैसे ही कोई नयी पुस्तक आती दुकानदार गुणे साहब के यहां बंडल भेज देता। इनके यहां एक टेबल रखा रहता जिस पर यह बंडल रख दिया जाता। गुणे साहब अपनी पसंद की पुस्तकें छांट कर खरीद लेते। शेष दुकानदार वापस ले जाता। गुणे साहब के कारण मेरा कई नयी-नयी पुस्तकों से परिचय हुआ।

बंबई में गुणे साहब के भरोसे की एक नौकरानी थी। वहां के मकान की एक चाभी उसके पास रहती। जब कभी गुणे साहब का डेरा बंबई रहता, वो नौकरानी को सूचना भिजवाकर मकान की सफाई वगैरा करवा लेते। अगर कभी लंबी अवधि उधर ही बिताने की योजना बनती तो श्रीमती गुणे चार दिन पहले नौकरानी को चिट्ठी लिख देतीं। उनके यहां पहुंचने से पहले मकान की सफाई हो जाती। दूध का कार्ड तैयार रहता। नौकरानी द्वारा ऊपर के कामों के लिए एक लड़का नियुक्त कर दिया जाता। मिर्च-मसाला कूट-काटकर तैयार रहता। साबुन, तेल, ईंधन—सब तैयार। आटा-अनाज तैयार। फर्निचर आदि साफ-सुथरा।

गुणे साहब श्रीमती गुणे के साथ ज्यों ही दादर उतरते, उनकी नौकरानी

सेकंड की बोगी के सामने स्वागत के लिए खड़ी तैयार। घर पहुंचने पर रसोई के लिए केवल चूल्हा जलाना शेष रहता, और तो तमाम चीज़ें पहले ही से तैयार रहतीं।

ये सारी बातें गुणे साहब ने मुझे बतायी थीं। भोजन कर चुकने के बाद आराम से कुर्सी पर बैठे वे मुझसे बातें कर रहे थे। यह सब सुनकर मुझे बहुत अच्छा नहीं लगा था। मैं जान गया कि आप कितने सुविधा-भोगी आदमी हैं। पर इनके कोई संतान नहीं है। और आप किसी-न-किसी को भोजन पर आमंत्रित करते रहते हैं। साहित्य के क्षेत्र में वैसे काफ़ी मशहूर आदमी हैं और इनके यहां आते-जाते रहने के कारण कॉलेज-जगत में अपनी अहमियत बढ़ जाती है।

गुणे साहब के यहां, पूना के बड़े-बड़े विद्वान लोग आया करते। गुणे साहब उन्हें साहित्य के संबंध में अपने नये-नये विचार सुनाया करते। वे लोग गुणे साहब से कहते, डॉक्टर साहब, आपके ये विचार ग्रंथ रूप में पाठकों के सामने शीघ्र आने चाहिए।

लेकिन उनकी और मेरी जो पटरी बैठी शायद इसलिए, कि मैं उनसे निरंतर प्रश्न पूछता रहता, जिससे वे कुछ नया सोचने पर मजबूर हो जाते। वैसे मैंने कॉलेज लाइब्रेरी का मराठीवाला सारा सेक्शन पिछले साल ही पढ़कर पूरा कर लिया था। हां, जो पुस्तकें औसत दर्जे की थीं, उन्हें सिर्फ़ उलट-पुलट कर देख लिया था। गुणे साहब ने मुझे मराठी के पचास महत्वपूर्ण ग्रंथों की एक सूची देते हुए कहा था, इन्हें फौरन पढ़ डालो। मैं सूची की तीस पुस्तकें पहले ही पढ़ चुका था। शेष बीस मैंने आठ दिन खपाकर समाप्त कर डालीं। गुणे साहब ने कहा, शाबाश !

उनके यहां जब भी मैं जाता, जाने से पहले उनके विरोध में चर्चा करने के लिए प्रमाण जुटाकर ही जाता और उनके साथ बहस में उलझ जाता। अपने मत की पुष्टि में मैं विविध उदाहरण प्रस्तुत करता। इसलिए मुझे नये-पुराने मासिक पत्र—छोटे-मोटे लेखक-कवि आदि पढ़ने पड़ते। इस तरह तैयारी में मेरा काफ़ी समय चला गया था। लेकिन कमरे में पड़े-पड़े फालतू विचारों में उलझे रहने से तो ये परिश्रम कहीं ज्यादा अच्छे थे। पढ़ाई-वढ़ाई होती रहेगी। उसकी कौन चिंता करे ? और मान लो, इम्तिहान में फर्स्ट-क्लास नहीं आया तो कौन पहाड़ टूटने वाला था ? ज़िंदगी में परीक्षाओं का वैसे भी क्या उपयोग है ?

एक बार उन्होंने कहा, अरस्तू का काव्य-शास्त्र मराठी में अनूदित हो गया है,

अच्छा है।

पुस्तक मैंने उनसे ली। लेखक का नाम पढ़ते हुए मैंने पूछा यह गो० वि० करंदीकर कौन हैं ? वह तो नहीं, जो बुधवार पेठ में रहते हैं। डॉक्टर ? हमारी मौसी के यहां आते रहते हैं। उन्होंने कहा, न, न। यह वही विंदा करंदीकर है।

मैंने कहा, ये दो नाम क्यों ? कविता के लिए एक नाम और इस पर दूसरा।

उन्होंने कहा, कवि अपने मिजाज से ही सनकी आदमी हुआ करता है। विंदा वैसे किसी स्त्री का नाम लगता है, लोगों में कविता की रुचि बढ़ाने के लिए ऐसे नाम बड़े उपयुक्त साबित होते हैं। अब देखिये न, सुहृद चंपा, आरती, ग्रेस, सरला—इन नामों को देखकर लोग इनकी कविताओं में दिलचस्पी दिखाने लगते हैं।

गुणे साहब की यह राय सही थी।

एक बार उन्होंने कहा था, गाडगिल मराठी कहानी का सबसे महान हस्ताक्षर।

मैंने पूछा, सबसे महान ?

उन्होंने कहा, हां क्यों नहीं ? अंग्रेजी के कहानीकारों की पंक्ति में बैठ सकता है।

अंग्रेजी का संदर्भ जब भी आता, मैं बोर हो जाता। फिर भी मैंने बातचीत जारी रखी थी। असल में तो कहानी विधा बड़ी गौण विधा है।

गुणे साहब ने अपनी बात पर ज़ोर देकर कहा था, बेकार की बातें मत किया करो। कहानी में जो तीव्रता और सूक्ष्मता होती है, अन्य किसी भी विधा में यह संभव नहीं है।

उनकी यह राय पहले ही किसी एक पुस्तक में दर्ज थी।

मैंने कहा, मासिक पत्रों को जीवित रखने का 'कहानी' एक अच्छा ज़रिया है। इससे बढ़कर उसकी अहमियत नहीं है। कहानियां न हों तो बताइये मासिक पत्रों को कौन पढ़ेगा ?

गुणे साहब ने कहा, यह तो कहानी की प्रशंसा ही हुई।

मैंने कहा, आप सही कह रहे हैं। अखबार क्यों चलते हैं, चूंकि इसमें भड़कीली खबरें निकलती हैं, लोग इन्हें बहुत चाव से पढ़ते रहते हैं। यही हाल कहानी और मासिक पत्रों का है। फिर उन्होंने मेरी बात काटने के लिए चेखव का प्रमाण दिया। बहस में आखिर उनकी जीत हुई थी। फिर एक घंटा चेखव पर बहस हुई। अंग्रेजी से संबंधित चर्चा छिड़ जाती तो समझो मेरी हार निश्चित।

लेकिन मैं एक बार जीत गया था।

मैंने उनसे पूछा था, आपके आलोचना ग्रंथों में कविता पर कोई महत्वपूर्ण पुस्तक नहीं है। सही है न?

उन्होंने जवाब दिया, हां, मैं जल्दी ही लिखने वाला हूं।

गुणे साहब की एक और विशेषता थी। बंबई-पूना के कतिपय मशहूर लेखक-कवि उनके यहां आते रहते थे। इन अवसरों पर अगर मैं उनके यहां उपस्थित होता, तो वे उंगली के संकेत से अतिथियों के साथ मेरा परिचय करवा देते। कहते— यह मेरा एक मेधावी छात्र है।

लेकिन एक बार इस तरह मेरा परिचय करवा देने पर भी लेखक महाशय ने मेरी तरफ कोई ध्यान नहीं दिया। वास्तव में यह तो गुणे साहब का ही अपमान था। संभवतः उन लेखक महाशय को लगा होगा कि लड़का तो बुद्धिमान दीख नहीं रहा है। तब तो मैंने उनकी बहसों में सक्रिय हिस्सा लेने का निश्चय कर लिया था।

लेखक महोदय कह रहे थे, इधर अंग्रेज़ी कवि अन्य भाषाओं की तुलना में काफ़ी आगे हैं।

मैं चाय वगैरा लेकर तैयार बैठा ही था। फौरन बहस में टपक पड़ा। मैंने पूछा, अन्य भाषाओं से आपका तात्पर्य?

उन्होंने कहा, मतलब फ्रेंच आदि की तुलना में।

मैंने कहा, फ्रेंच की हद तक संभव हो सकता है, लेकिन जापानी और चीनी कविता के मुकाबले अंग्रेजी की प्रगति को जानने का आपके पास क्या ज़रिया है?

तब लेखक महाशय हड़बड़ा गये थे। उन्होंने कहा, मैं जितनी भाषाएं जानता हूं, उन्हीं के संबंध में मैं बात कर रहा हूं।

क्या आप फ्रेंच जानते हैं?

यह बात नहीं। पर अंग्रेजी के माध्यम से—देखो, कविता का अर्थ समझ गये, बस है।

ऐसे कैसे? एक भाषा के गीत का दूसरी भाषा में रूपांतरण क्या मूल अर्थ को सुरक्षित रख सकता है?

गीत जैसी विधा की बात बिलकुल अलग है। मैं कविता के बारे में बोल रहा हूं। गुणे साहब के साथ मेरी बहस हो रही है।

लेकिन बढ़िया कविता वही होती है जो गीत के समकक्ष होती है। देखिये, उपन्यास और क्या होता है? उपन्यास अर्थात बिगड़ा हुआ महाकाव्य, कहानी अर्थात बिगड़ी हुई गल्प। इसी तरह समकालीन कविता अर्थात बिगड़ा हुआ गीत

ही तो हुआ।

तुम्हारा यह मानना अतिवादी है। कविता में व्यक्ति मानस की सूक्ष्माति-सूक्ष्म तरंगें रूपायित होती हैं।

यह नयी कविता के बारे में सही हो सकता है। इसीलिए आप जैसे आलोचकों के लिए इन कवियों की मानसिकता पर ढेरों किताबें लिख मारना संभव हो जाता है। प्राचीन कवियों की मानसिकता पर क्या कोई किताब आप लोग लिख सकते हैं? चूंकि ज्ञानेश्वरी में कवि का मानस कहीं भी प्रत्यक्ष नहीं है। इसीलिए ज्ञानेश्वरी की पढ़ाई में पंक्तियों के अर्थ मात्र बताकर—यह बड़ा सुंदर है—इससे ज्यादा···।

खुद गुणे साहब हमें ज्ञानेश्वरी पढ़ाते हैं, इसका ध्यान आते ही मैं सहम गया था।

वैसे यह लेखक महाशय उतने बुरे नहीं थे। लेकिन आमतौर पर गुणे साहब के यहां आने वाले लोग एक से एक तिकड़मी हुआ करते।

अंग्रेज़ी काव्य पर गुणे साहब की महारत थी। इसलिए उनके साथ बहस करने वालों में कई लोग एज़रा पाउंड ने कितने कंटो लिखे हैं इसकी विशेष चर्चा किया करते।

पर इन लोगों में एक विशेष प्राणी अर्थात गोविंदा। आप गुणे साहब के निर्देशन में पी-एच० डी० कर रहे थे। आप कविता भी लिख लेते। और अच्छे स्तरीय मासिक पत्रों वगैरा में छपवाने का प्रबंध करवा लेते। फिर भी उनसे, साहित्य में सामान्य दिलचस्पी के कारण मेरी दोस्ती हो गयी थी। पर चाय मुझे ही पिलानी पड़ती थी। और फिर जनाब ऊंची किस्म की सिगरेट पिया करते थे।

हम दोनों रात चाय के लिए कहीं बाहर जा रहे थे। अपनी चप्पलों की तरफ़ संकेत करते हुए गोविंदा ने मुझसे कहा था, देखा सांगवीकर, एक चप्पल कैसी है? तो दूसरी? है कहीं मेल? भविष्य में जब प्रोफेसर बन जायेंगे, पता नहीं क्या हाल होंगे हमारे?

मैंने कहा, आखिर तुम कवि ही तो हो। कवियों के लिए वह कोई अनहोनी बात नहीं है।

कुछ ही दिनों के बाद कॉलेज के एक प्रोफेसर का एक्सिडेंट हो गया था। इसकी वजह से वे काम पर नहीं आ सकते थे। उनकी जगह फौरन गोविंदा को टेंपरेरी

तौर पर नियुक्त कर लिया गया था। इस मामले में गोविंदा और गुणे साहब की मिलीभगत थी। गोविंदा का कोई एक रिश्तेदार गुणे साहब का दोस्त। इस घटना के बाद गुणे साहब के बारे में मेरी राय अच्छी नहीं रही थी।

गोविंदा खुद को प्रोफेसर के रूप में पोज़ करने का कोई मौका नहीं गंवाता था। पर मैं उसके साथ पहले ही की तरह पेश आता रहता। अब भी कैंटीन में मैं उसके साथ बैठा चाय पीता रहता।

एक बार उसने कहा था, आजकल प्रोफेसर अपने विद्यार्थियों के साथ ठीक ढंग से पेश नहीं आते हैं। तुमने कभी मुझ जैसा अपने छात्र के साथ चाय पीने वाला प्रोफेसर देखा है ?

मैंने कहा, सचमुच तुम्हारी कोई मिसाल नहीं।

लेकिन गोविंदा उन प्रोफेसर की जो एक्सिडेंट के कारण बीमार पड़े थे पूरी तिमारदारी करता था। उन्हें जब भी ज्यादा तकलीफ होती, वह उनके घर ही रात को रुक जाता। उनकी दवा करता, शाम के वक़्त टहलने के लिए उन्हें ले जाता।

एक बार मैंने कहा, गोविंदा, इस खूसट बुड्ढे के लिए इतनी भाग-दौड़ क्यों कर रहे हो ? तुम्हारी नौकरी बनी रहे, इसलिए न ?

गोविंदा को गुस्सा आया था। उसने कहा, पगला तो नहीं गये हो ? मुझे उनसे कितना लगाव है, तुम्हें पता नहीं। विशुद्ध प्यार की खातिर मैं यह सब करता हूं।

मैंने कहा, ठीक है।

प्राध्यापक गोविंदा उबाऊ आदमी था।

आखिर एक दिन गुणे साहब और मेरे संबंधों में दरार पड़ ही गयी। बहस चल रही थी। बिलकुल क्रोध न करते हुए बड़े शांत भाव से उन्होंने मुझसे कहा था, तुम्हारा अध्ययन तो कम है, लेकिन बकवास ज्यादा। मैं चिढ़ गया था। और मैंने उनकी सारी किताबें लौटा दीं। राम-राम। बहनचोद ये खूसट लोग। विद्वान महोदय—डॉ० गुणे, एम० ए०,पी-एच० डी०। पी-एच० डी० का प्रबंध भी तो कितना वाहियात। इस प्रबंध में मराठी के आज तक के नाटककारों की मात्र तिथियां दर्ज हैं। किसने कितने नाटक लिखे हैं। इन नाटकों में गीतों तथा चरित्रों की संख्या कितनी है—इसकी जोड़ तालिकाओं से प्रबंध भरा पड़ा है। लिखी होंगी दस किताबें। कौन-सा तीर मारा ?

कहने लगे, साहित्यकार सामान्य जनों से महान होते हैं।

जिसे महान कहा जाये, पर कलम बंद नहीं हुई है—ऐसी वाणी के धनी मैंने

देखे हैं। यदि पंद्रह प्रतिशत लोग ही लिख-पढ़ सकते हैं तो बाकियों के पास कोई महानता नहीं होती ? मान लो लक्ष्मी बाई तिलक लिख-पढ़ नहीं सकती थी, तो क्या इन्हें नेहरू के मुकाबले दोयम कहा जायेगा ? दोनों के आत्मचरित देख लीजिए। पता चल ही जायेगा।

गुणे साहब ने मुझ से पूछा था, तुमने फलां-फलां फ्रेंच लेखक की किताब पढ़ी है ?

चलो हटाओ। गुणे कहाते हैं। फिर भी आलोचना के अलावा क्या लिखा है उन्होंने ? मुझे पहले ही उनकी औकात को समझ लेना चाहिए था। चलो, अच्छा ही हुआ। कम-से-कम अब तो इम्तिहान की पढ़ाई के लिए समय मिल सकेगा। जो हुआ, ठीक ही हुआ।

फिर मैं पढ़ाई में लग गया। गुणे साहब वाली झंझट जब से खत्म हुई है, तब से रोज़ शाम होस्टल के पीछे की पहाड़ियों पर टहलने चला जाता हूं। अंधेरा होते ही लौट आता हूं। फिर वही सीधे रास्तों से पहाड़ियां उतरने के बजाय टेढ़े रास्तों से उतरना शुरू हो गया था। पहले ही की तरह ठोकरें खाते, फांदते, लुढ़कते होस्टल पहुंचने का कार्यक्रम शुरू हो गया था।

एक बार लाइब्रेरी में रमी मिली थी। उसने पूछा था, मैकबेथ पर आपने कौन-सी किताबें पढ़ी हैं ?

कई पढ़ीं।

उनमें कोई खास नाम नहीं बताओगे ?

नहीं।

ठीक है। लेकिन क्यों ?

सारी पढ़ो।

यह तुमसे किसने पूछा था ?

उसके बाद रमी जो मिली भी सो पहाड़ी पर ही। उसका वही आहिस्ते-आहिस्ते चलना, बड़ा उबाऊ। मैं ऊब गया था और आगे निकल गया।

कहा, यही तो परेशानी है। मैं ऊपर तक दौड़ा-दौड़ा हो आता हूं। तुम तब तक यहीं रुकी रहो। फिर साथ-साथ नीचे उतरेंगे।

ठीक है।

उसके लहजे में—ठीक। बहुत खूब। लौट आया था। देखा, वह वहां नहीं थी।

एक बार लेटे पड़े रहने के बजाय सुबह-सुबह मैं सीधे पहाड़ी पर चला गया था। नीचे उतरते वक्त देखा कि वह एक पेड़ के नीचे बैठी थी। सुबह के समय भी काफ़ी थकी-थकी नज़र आ रही थी। मैं वहां रुक गया था।

उसने कहा, हमारा भी मन करता है कि तुम्हारी तरह चौकड़ियां भरें, दौड़ें, चलें। लेकिन अफ़सोस। हमारे फेफड़े। ट्रबल। रोज़ दवाइयां। ऊब गयी हूं।

मुझे पहले ही से इसका पता था। लेकिन इसने खुद बता दिया। लड़की कितनी महान है।

वैसे भी शायद अकेली है। हां, चेहरे पर कोई खास चमक नहीं। लेकिन सूरत-शकल से बुरी नहीं है। और चमड़ी तो बहुत ही खूबसूरत है। लंबाई मेरे लिए सही है।

उसने कहा था, मेरे साथ चलने की कोई जबरदस्ती नहीं है। मैं अकेली चली जाऊंगी।

मैंने कहा, जबरदस्ती मैं भी नहीं चाहता। पर सोचा, यूं ही तुम्हारे साथ।

उसने कहा, नहीं आप जाइये।

मैं हिला नहीं।

पर फिर उसने कहा, जाइये भी।

मैं चल पड़ा।

कुछ दिनों बाद शाम के समय रास्ते में उससे मुलाक़ात हुई थी।

किताब लौटा रही हो ?

खत्म नहीं कर पायी हूं। बढ़िया है। यह उसकी हमेशा की तरकीब। मेरी दी हुई किताबें चूंकि बढ़िया होती हैं इसलिए तो दी जाती हैं। तब इन्हें पढ़ पाना संभव न भी होता तो भी बढ़िया कहकर मुक्त तो हुआ जा सकता था।

मैंने पूछा, कहां जा रही हो ?

ब्रेड लेने, चलिए वहां तक।

चलते-चलते मैंने मेकबैथ के बहाने जन्म-मृत्यु पर बहस शुरू कर दी थी। उसने पूछा, तो शेक्सपियर ने कुल मिलाकर इतने नाटक लिखे ?

मैंने कहा, मेरी छोटी बहन की मौत हुई। इतनी छोटी उमर में किसी की मौत नहीं होनी चाहिए।

उसने कहा, मरने की वाजिब उम्र तो यही है, जो आज अपनी है।

दिन जल्दी-जल्दी गुज़र गये थे। इम्तिहान के लिहाज़ से खास पढ़ाई अब भी नहीं हुई थी। पाठ्यक्रम की किसी पुस्तक को छूने की इच्छा नहीं हो रही थी। इस स्थिति में सुरेश अगर बेताल पर चलने के लिए आग्रह करे तो कौन मना करेगा ?

बत्ती बुझाकर मैं उसके कमरे पर चला गया। वह तैयार ही बैठा था। फटे जूते पहनते हुए उसने कहा था, इन जूतों को मैं फेंक देने वाला था। लेकिन चलो, ठीक ही हुआ।

बाहर होटल में हमने थोड़ा नाश्ता कर लिया। सड़क के बिजली के खम्भे खत्म हुए। आगे घुप्प अंधेरा। उसके बाद झाड़ियां शुरू हुईं। एक तो गर्मियों के दिन और फिर पढ़ाई के कारण हमारे दिमाग गर्म हो चुके थे। इस हवा की ठंडक से हमें एकदम आराम मिला। पैरों से रौंदे जाने वाले सूखे पत्ते ज़ोर-ज़ोर से आवाज़ कर रहे थे। चतुःशृंगी पहुंचने तक सुरेश ने पढ़ाई, प्रोफेसर, किताबें, परीक्षाएं आदि को लेकर बकवास जारी रखी थी। हमने तय कर लिया था कि हमारा पहला पड़ाव सीधे चतुःशृंगी के मंदिर पर ही होगा। इसके बाद सुरेश ने यूनिवर्सिटी की आवश्यकता पर वाहियात बकवास शुरू करते हुए कहा था, आखिर यूनिवर्सिटियों की ज़रूरत ही क्या है ? और कि आगे उपाधियां लेते समय अपने सिरों पर तख्तियां टंगवाकर अपनी तसवीरें क्योंकर खिचवाते हैं ?

उसने कहा, जहां अंधेरा हो, या हवा चल रही हो, वहां सिगरेट पीने का क्या सुख है ? रोशनी हो तो हम धुएं को देख सकते हैं। धुआं दिखाई देता रहे, इसीलिए तो सिगरेट पी जाती है। तुम्हारा क्या खयाल है ? सिगरेट से अगर धुआं निकलेगा ही नहीं, तब बताओ जीने का कोई मज़ा आएगा ?

मैंने कहा, बात तो सही है। दिखायी देने पर बहुत कुछ निर्भर करता है। चाय सभी लोग पीते हैं, शायद इसलिए कि चाय का रंग मृदु और कत्थई होता है। चाय का रंग पीला या जामुनी होता, तो हम लोग उसे न पीते।

फिर उसने कहा, साला पोइटिक्स वाले पेपर की अब भी पूरी तैयारी नहीं हुई है। साला कविता की बात तो समझ में आ सकती है। लेकिन सैकड़ों लोगों की हज़ारों वाहियात बातों से कौन उलझता रहे ?

हम लोग अब चतुःशृंगी के मंदिर तक पहुंच गये थे। फिर मंदिर पार करके ऊपर वाली उस काली चट्टान पर जाकर बैठ गये। हांफ रहे थे। फिर भी सुरेश हांफता हुआ रुक-रुककर एक-एक शब्द बोल ही रहा था। सामने समूचा नगर रोशनी से लकदक। यहीं बैठे-बैठे शहर के रास्ते तथा कई स्थान साफ-साफ

देखे जा सकते थे।

मैं कुछ भी बोल नहीं रहा था—मेरा मौन तोड़ने के इरादे से सुरेश ने शुरू किया—

इन लोगों की एक विशेषता यह है कि ये अपने बल का प्रयोग करके उन आदिवासियों को जो इनके मुकाबले पहले ही से प्रगतिशील थे, जंगली करार देकर बारहखड़ी, आरोग्यशास्त्र वगैरा पढ़ाया करते। उस युग में अमेरिका के मूल रेड इंडियनों का एक विशाल भूखंड था। इस भूखंड पर यूरोप के कुछ दरिद्र बाशिंदों ने अपनी कॉलोनियां बना ली थीं। आगे धीरे-धीरे इन लोगों ने तमाम रेड इंडियनों को कत्ल करके भूखंड पर कब्ज़ा कर लिया और मालिक बन गये। इन्होंने नये-नये यंत्रों को ईजाद किया और ज़िंदगी के हर क्षेत्र में नये-नये चमत्कार कर दिखाये। सच तो यह था कि इनके मुकाबले रेड इंडियन ही ज़्यादा प्रगतिशील थे।

अब आप पूछेंगे, देश से क्या तात्पर्य है ? तो साहब, ये देश नक्शों पर अंकित हुआ करते थे। आप पूछेंगे, नक्शा क्या हुआ ? तो नक्शा, यानी एक कागज़ था। इस कागज़ पर कई लकीरें खिंची होतीं। किसी एक लकीर के इधर रहने वालों को हिंदुस्तानी कहा जाता और उधर वालों को पाकिस्तानी कहा जाता।

मैंने पूछा, देखो, चंपे की सुगंध आ रही है न ? आऽऽहा, वह देखो ऽ चंपा। फूलों से कितना लद गया है।

लेकिन सुर्शा कहां रुकने वाला था ? उसकी बकवास जारी थी—

अब देखिए, दस से सतरह तक सीधी गिनती करो तो जोड़ सात होना चाहिए। लेकिन इन लोगों की राय में दस से सतरह तक का जोड़ आठ होता।

मैंने कहा, बहनचोद बस भी करो।

फिर सुरेश ने इससे भी खतरनाक विषय छेड़ा था। उसने कहा, ऊंट और ऊंटनी का किस तरह होता है, पता है तुम्हें ? हमारे पड़ोस की एक लड़की एयर होस्टेस हो गयी है, उसका किस्सा मैंने तुम्हें बताया है ?

मैंने ऊबकर कहा, तुम्हें साले दूसरे विषय ही मालूम नहीं। बस बार-बार वही। ऐसी बातें शुरुआत में ही कुछ नयी-नयी और दिलचस्प लगती हैं। दूसरे विषय हैं कि नहीं।

फिर उसने मुझे अनेक नये कामुक जोक सुनाकर खूब हंसाया था।

मैंने कहा, उठो, अब चलें।

हम लोग चल रहे थे। नीचे वाली सड़कों की बत्तियों के कारण हमारी छायाएं धुंधली-सी पड़ रही थीं। हम लोग पहाड़ी के मध्य तक चढ़ गये थे। और फिर

बाजूवाली चट्टान पर उतर गये थे। शहर की बत्तियां पीछे ओझल हो गयी थीं। लेकिन पहाड़ी के परे रोशनी थी। इसलिए आकाश चमक रहा था।

इक्के-दुक्के नंगे पेड़। ऐन ऊपर चंद्ररेखा। चांद पतेलिया की तरह मज़ाकिया लग रहा था। सुरेश चंद्रमा को हमेशा चंद्रिका कहा करता था। पूनम के चांद को देखकर वह कहता, चंद्रिका निकली है।

उसने कहा था, सभी वस्तुएं स्त्रीलिंग होनी चाहिए। मक्खी, चींटी—ये शब्द कितने खूबसूरत हैं। लेकिन कौआ, चूहा—ये शब्द बेकार हैं। सिर्फ देखकर तुम कैसे जान लेते हो कि यह कौअी है या कि चुहिया है ? फिर बगैर सोचे-समझे कैसे कह दिया, कौआ।

चलते-चलते हम लोग थक गये थे। फिर भी कहीं रुके नहीं। सीधा रास्ता हमने टाल दिया था। अब हम लोग घास के मैदानों को रौंदते चल रहे थे। सूखी घास ज़मीन् से चिपकी बिछी हुई थी। बहुत दिनों के बाद इस तरफ आना हुआ था। इसलिए सब कुछ बदला हुआ लग रहा था। घास पर जूते पहने चलने से कहीं अपनी जगह होने का अभिमान जगता है। लेकिन चलते वक्त जूतों के नीचे होने वाली सूखी घास की आवाज़ बड़ी दिलकश होती है। इतनी कि सुरेश की बड़बड़ाहट अपने-आप बंद हो गयी थी।

चंद्रिका काफ़ी ऊपर आ चुकी थी। उसके आकार को देखकर मैंने अनुमान कर लिया कि आज षष्टी या सप्तमी ही होनी चाहिए।

घास खत्म हुई। आगे लंबी चट्टान थी। बहुत साफ़। काली। हाथों को ज़मीन पर टिका, हम वहीं बैठ गये।

यहां से बेताल का टीला कुछ अस्पष्ट-सा दिखायी दे रहा था। हम वहीं काफ़ी देर तक बैठे रहे। चांदनी इतनी धूसर थी कि अंधेरे में और उजाले में खास फ़र्क नहीं था। विशुद्ध जंगल। नाटक के मुहावरे में इसका वर्णन यों होगा—न चींटी को पनाह, न आदमी का नामोनिशान। तमाशा—सचमुच महान। जंगल की यह घनघोर रात। ऐसे समय किसी से बात करने का मन ही नहीं होता। खुदी का एहसास यहां जाता रहता है। यहां इतनी घनघोर शांति है कि मात्र अकेला व्यक्ति ही यहां टिक सकता है। रात इतनी घनघोर है कि इस चट्टान पर बैठकर केवल अकेले व्यक्ति के मन में विराट विचार पैदा हो सकते हैं। पर इस चट्टान पर अगर दो जने बैठे हों तो कुछ भी घटित नहीं होता। व्यर्थता का बोध होने लगता है।

वैसे दो इकाइयों को मिनाह कर दिया जाय तो शेष सब एक ही होता है। वह और वो दोनों रूबरू खड़े हों तो लगता है दो शत्रु तलवारें लिये रूबरू खड़े

हैं। इतने भिन्न होते हैं दोनों।

अकेला हुआ तो वह अपने-आप उस एक में विलीन हो जाता है। यह नहीं कि दोनों के दो मन होते हैं, इसलिए दोनों भिन्न होते हैं। यह कि दोनों के दो शरीर होते हैं। दो शरीरों के कारण दोनों को परस्पर अलग होने का एहसास होने लगता है।

आंखें खुली रखो तो देख सकोगे आखिर—बाहर सब-कुछ एक ही है।

तारें सिर्फ़ सफेद ही नहीं होते। चंद हरे। नीले। कुछ हलके लाल। एक तारा एकदम काला।

और चंद्रिका का वह मिटा हुआ अंश इतनी ऊंचाई पर बैठा मैं देख नहीं सकता हूं।

समूची पृथ्वी को उठाया जा सकता है, इतनी हलकी है वह। बिलकुल गेंद ही समझो। लेकिन रंगीन गेंद। गिरगिट की तरह हर ऋतु में रंग बदल लेता है।

दोनों बंदर की तरह चुपचाप बैठे हैं। टुकुर-टुकर देख रहे हैं। यह बड़ा मज़ाकिया लग रहा है।

आखिर दो पुरुष एक सीमा से आगे एक-दूसरे के निकट नहीं आ सकते। इनके लिए एक-दूसरे में प्रविष्ट हो पाना संभव नहीं होता। शरीर ने बाधाएं खड़ी कर रखी हैं।

पुरुषों के शरीर में कहीं भी कोई नाज़ुक अंश नहीं होता। सिर से लगाकर पैरों के अंगूठे के नखों तक हर चीज़ कैसी ठोस और कड़ी। फिर पीठ बहने लगती है, पेट फूलता रहता है। दिमाग हलका होने लगता है।

इस सामने वाले पेड़ को देखा? इसे संतुलन बनाये तन कर खड़े रहने के लिए किसने सिखाया? किसने सिखाया इसे इस तरह आखिर तक भूमि में गड़े रह कर अपनी चेतना को सुरक्षित रखना? इसके न कोई मां, न कोई बाप।

मेरी मां ने हमारी बड़ी बहन की पहली जचगी की थी। कितना भयंकर है? वीभत्स। पेड़ो को देखो, सीधे अपने तनों को गड़ाकर खड़े हैं। पेड़ों का ऊपर वाला अंश देख रहे हो? वास्तव में वह पेड़ कहां होता है? वह तो उसकी आंतें, फेफड़े आदि। असली पेड़ तो भूमि के भीतर होता है।

भूमि के भीतर मनुष्य की कौन-सी जड़ें हैं?

पेट की खातिर मनुष्य इस वरदान से वंचित हो गया है। क्या तुम विश्वास के साथ कह सकते हो कि यह पृथ्वी तुम्हें ठुकरायेगी नहीं? किसी ने हमें ऊपर से यूं ही नीचे छोड़ दिया है। आदेश है, यहां किराये पर रहो। यह शरीर किराये पर। सौ बरस का अनुबंध। कहीं कुछ धांधली की तो मकान खाली करना पड़ेगा। खयाल रहे इसका।

धरती पेड़ों की त्वचा होती है। रानों के बालों को उखाड़ना जितना

कठिन है, उतनी ही यह त्वचा पक्की है। इसलिए किसी पौधे को उखाड़ते समय जबरदस्ती मत करो। धीरे-धीरे प्यार से उसे ऊपर खींचते चलो। भूमि के भीतर दूर तक रिसे उसके संबंधों को धीरे-धीरे टूटते—अलग होते देखते रहो।

तुम्हारे पैरों को यह वरदान कहां ? इसलिए तुम कमरे से निकल सके और बेताल तक पहुंच गये। तुम अपने कदमों को अनायास उठा सकते हो। घास को रौंद सकते हो। चलते वक्त बगैर किसी रुकावट के पिछली टांग उठा सकते हो।

और यहां तक पहुंच जाते हो।

तुम्हें यहां से गंधर्व-किन्नरों का कोई विमान एक दिन अनायास उठा ले जायेगा।

तुम सारी धरती छान मारो, फिर भी तुम धरती के साथ अपने रिश्तों को तलाश नहीं पाओगे। इसलिए तो मछलियां जल के भीतर भिग-भिग घूमती रहती हैं। उन्हें पकड़कर बाहर की टोकरी में डाल दें तो कितनी व्याकुल हो जाती हैं ! इसलिए जो पखेरुओं के झुंड ऊंची-ऊंची उड़ानें भरते बीहड़ जंगलों को पार कर दूर निकल जाते हैं, कितने दूर निकल जाते हैं, उन्हें आसरे की ज़रूरत नहीं। उनके घर का कोई पता नहीं। लेकिन तुम्हारा घर तो यहीं है, तुम्हारा शरीर। रह लो उसी के भीतर, कोई चारा नहीं।

तुम अपने बीज बोते हो, धरती से विच्छेद करके। इसलिए उगते भी हैं भूमि से कटे, अंतराल में।

तुम्हारी तमाम इंद्रियों को अलंकारों से मंडित किया जा सकता है। सिर्फ एक के अलावा। उसके लिए तो दूसरी इंद्री ही अलंकार बन सकती है। मतलब यह कि तुम लोग अलंकारों के वास्ते एक-दूसरे से जुड़े रहते हो।

मेरी पसंद की एक भी लड़की मुझे मिली नहीं।

मुझे भी तो कहां मिली ?

अगर तुम लड़की होते, तो मैंने तुम्हें छोड़ा नहीं होता।

मैंने भी तुम्हें नहीं छोड़ा होता।

मेरे हाथ को चूमो।

लाओ।

यह नहीं, दाहिना हाथ दो।

यही। सुरेश इसी तरह अति तक पहुंच जाता है। मौका पाते ही बुरी तरह स्थिति का सफ़ाया कर देता है और खुद अलग हो जाता है। रिक्त स्थिति को फिर से पाट देता है। उसने दूर से जैसे-तैसे निरर्थकता की दरार देखी थी। किनारे पर

से। लेकिन उसने कभी खुद को पूरी तरह स्थिति के हवाले नहीं किया था।

पगडंडी से सीधे हम लोग पैदल बेताल पहुंचे। आज ज्वाला थी। भरपूर चांदनी। हम वहां पहुंच गये, फिर भी ज्वाला लुप्त नहीं हुई थी।

मंदिर के भीतर चंद मानवीय आकृतियां दिखायी दे रही थीं। मैं घबरा गया।

सुरेश ने कहा, अंदर जाना ही नहीं है क्या ?

मैंने कहा, दूर से ही देखेंगे।

लेकिन क्या पता वो मनुष्य ही हैं ? अगर पिशाच हों तो ? लेकिन पिशाच इस तरह स्थिर क्यों बैठे रहेंगे ? और हवन किसलिए ?

लेकिन मान लो वो लोग तांत्रिक हैं, कहीं हमें कुत्तों में न बदल दें।

तब तो यहां से चल देना चाहिए।

चक्कर लगाकर परली तरफ से चले चलेंगे।

घास के मैदान तक चले आने के बाद सुरेश ने कहा, तुम या मैं या कोई भी आखि़र, हम लोग कर ही क्या सकते हैं ? हमारे पास करने लायक कोई खास चीज़ है ही कहां ?

उपलब्धि ऐसी हो कि जिसकी धुन में सारी जिंदगी काट सको। आखि़र तक।

मनुष्य के अतिरिक्त हर किसी वस्तु के साथ बात करनी आनी चाहिए।

दूर चरागाह पर बड़ का एक विशाल पेड़। बड़ भयंकर लग रहा था। इसके पहले हम लोग खास कर कभी इस जगह नहीं आये थे। पेड़ का आकार भयानक रूप से दिलचस्प। दूर से ही देखा करते थे। उसके तने से सिंदूर लगे बड़े-बड़े पत्थर रखे हुए थे जिन्हें दूर से देखा जा सकता था।

विशाल घेरा। नीचे ज़मीन पर सूखी घास के पुंज। पूरे चरागाह पर सूखी घास बिछी हुई है। दूर तक ढलान, लेकिन यहीं से वह बरगद एक काले बिंदु की तरह दिखायी देता है।

बरगद के तले काला गहरा अंधेरा। आंखों पर ज़ोर दें तो छोटी-छोटी झाड़ियां वगैरा दीख सकती हैं। या बड़े-बड़े पत्थर तो नहीं ?

चलो, हम लोग इसके तले बैठें।

नहीं।

कुछ देर के लिए। यहां क्या खतरा है ?

क्यों नहीं ? अंधेरे पेड़ के नीचे क्या कुछ नहीं होगा ? कुछ भी हो सकता है ?

ठीक है। सिर्फ चक्कर लगा आने में क्या हर्ज है ? तुम एक काम करो – दायीं तरफ से चले आओ। मैं बायीं तरफ से आता हूं। परली तरफ मिलेंगे।

पर फ़र्ज़ करो, उधर हमारी मुलाक़ात ही नहीं हुई तो ?

तुम बायीं तरफ से।

तुम पहले घुसो।

मैं दायीं तरफ से घास पर चलता हुआ झाड़ियों से बचता हुआ, बरगद की जटाओं से बचता हुआ चला और सीधे एक विशाल पत्थर पर गिर पड़ा। सिंदूर लगा पत्थर। डर से कांप गया था। फिर भी खड़ा रहा। मुंह से चीख तक निकली नहीं। जैसे-तैसे खुद को संभाल लिया और उकड़ूं बैठकर टटोलता हुआ आगे बढ़ने लगा। थोड़ी दूर पर जाकर रुक गया।

पेड़ के परे जो मैंने देखा वह भयंकर था। चांदनी का कटा हुआ गोलाकार फीका पट्ट। आसमंत में। लेकिन सुरेश कहां है ? सुरेश। इस माहौल में वह मेरे निकट भी आ जाय तो दीखना मुश्किल है। मैंने उसे पुकारा था, उसने प्रत्युत्तर दिया था। वह भी मेरी ही तरह खड़ा बाईं तरफ देख रहा होगा।

इधर आओ।

उसका सफेद कुर्ता मैंने दूर से पहचान लिया, वह मेरी तरफ सरक रहा था।

यकायक हम दोनों की बीच वाली जगह पर बैठा एक घोड़ा हड़बड़ा कर उठता हुआ और भयंकर ज़ोर से हिनहिनाता, बड़ की जटाओं को चीरता पेड़ के नीचे से निकल कर घास पार करता हुआ टापों की आवाज़ करता, दूर कहीं ओझल हो गया था।

और बड़ के नीचे से सुरेश और मैं। पसीने से तर। जटाओं की मार चेहरों पर झेलकर। बाहर। दोनों पसीना-पसीना। दिशाहीन दौड़ते चले गये। पहाड़ी की चोटी पर आ पहुंचे।

यह कोई दूसरा ही मोड़ था। दिशा गलत हो गयी थी।

एहसास हो रहा था, वह काला घोड़ा अब भी चौकड़ियां भरता हुआ दौड़ा चला जा रहा है।

फिर हमने दूसरी दिशा से आगे चलना शुरू किया। पर पूना नहीं दीख रहा था। कहां है पूना ? फिर दूसरा मोड़ लिया। अब भी वही भयानक रात। लगातार चलते रहे।

जैसा अनुमान लगाया था, यह पहाड़ी इतनी छोटी नहीं है। चंद्रिका अब छिप गयी है। रोशनी सिर्फ तारों की। काफ़ी दूर चलते रहे। घास में। रास्ते के पेड़ों की निशानियां याद किये आगे बढ़े जा रहे थे। अब बेताल टीला भी ओझल हो गया था। रास्ते में चंदन के पेड़ों की कतारें। अब भी पूना दीख नहीं रहा था। किधर से नीचे उतरें ?

बस चले जा रहे थे। चले जा रहे थे। एक जगह रुक गये। और काफ़ी देर तक घास पर लेटे पड़े रहे। भूत की तरह। कोई बोल नहीं रहा था। कुछ देर बाद शांति का अनुभव हुआ, तो अपने-आप दोनों उठ गये और आगे निकल गये। अब धांधली नहीं चलेगी, दिमाग ठिकाने पर रखकर आगे बढ़ना होगा।

आगे एक वादी थी। उसे पार करना था। रास्ते में सफेद सूखी घास बिछी थी। लंबी चट्टान और पेड़ों के नीचे की सूखी पत्तियों को रौंदते हुए हम लोग ऊपर चढ़ आये थे।

देखते हैं—पूना शहर की हज़ारों बत्तियां। सब तरफ। कुछ बहुत चमक रही थीं। कुछ धुंधली। लाल-हरे जलते-बुझते विज्ञापन। दूर स्टेशन पर टिमटिमाती बत्तियों के घने पुंज, और समूची सृष्टि पर आदि से अंत तक फैला अंधकार। अब बेताल टीला दूर अस्पष्ट-सा दिखायी दे रहा था। हम लोग ऊंचाई पर। नीचे अंधेरे में पहाड़ियों के अस्पष्ट टेड़े-मेढ़े आकार। और अब हम सीधे दमकती बत्तियों के रूबरू।

हम लोग दौड़े-दौड़े नदी तक उतर आये थे। नदी के पानी में पैरों को छोड़-कर बैठ गये। खूब पानी पिया। सिरों को गर्दन तक पानी में भिगोया।

फिर सड़क पर। एक ईरानी की दूकान अभी-अभी खुली थी। जेब में जितने पैसे थे, वहां सारे-के-सारे खर्च कर डाले।

भयानक रूप से पढ़ाई शुरू कर दी थी। कोई डेढ़ महीना बचा था। किताबों पर किताबें समाप्त हो रही थीं। फिर भी पढ़ाई काबू में नहीं आ रही थी।

इस वर्ष वाले नये कमरे से प्रकृति का दृश्य इतना लुभावना नहीं था। दूर पहाड़ी की तलहटी के पास झाड़ियों का एक घना पुंज था। शेष पूरा क्षेत्र चट्टानों और शहर की गंदी एवं रुक्ष भूमि से घिरा हुआ था। तलहटी से सटे हुए कोई पचास बड़े-बड़े पेड़। पेड़ों के बीच एक छोटा-सा दुमंज़िला मकान यहीं से देखा जा सकता

था। चश्मा उतार लें तो वह मकान नहीं दीख सकता था। हां, चश्मा पहनने के बाद बड़ा खूबसूरत दीखता। गौर से देखो तो एक खिड़की खुली नजर आ सकती थी।

मैंने सोचा, इस मकान में रहनेवाला सज्जन कोई महान व्यक्ति होगा। इस मकान तक पहुंचने का निश्चय मैंने कर लिया था। वहां कुत्ता न रहे तो फिर मकान तक पहुंचने में कोई दिक्कत नहीं होगी। और एक दिन उस दिशा से निकल पड़ा। पर चलते चले जाने पर पता चला कि वैसी कोई झाड़ियां वहां नहीं थीं। इसलिए कुछ दिनों के बाद मैं अपनी खिड़की के नीचे से सीधी लकीर में चलता गया। पर उस रास्ते दूसरे ही मकान तथा झोपड़ियां मिली थीं। और मैं फिर से रास्ता भटक गया था।

इसलिए मैंने सोचा कि टीले पर चढ़कर उस मकान की जगह पक्की कर ली जाय। तब टीले की चोटी पर पहुंचा। वहां से होस्टल तो दीख ही रहा था। दिशा निश्चित की और नीचे उतरने लगा। दूर से घनी लगने वाली झाड़ियां इतनी घनी नहीं थीं। आगे चलता गया। अब मैं ऊंचे-ऊंचे पेड़ों के निकट आ पहुंचा था। तो यही थे वो पेड़। काफी घने थे। पेड़ों के भीतर घुस पड़ा। देखता हूं कि एक लंबा-चौड़ा मकान खड़ा है। लेकिन ताला बंद था।

सोचा, सज्जन कहीं बाहर गये होंगे, मैं बाहर फेंस के पास बैठ गया। लेकिन वो सज्जन आये ही नहीं। मुझे लगा, उनके लंबी-लंबी विनोदी मूछें होंगी। लेकिन अंधेरा पड़ने के बाद भी कोई आहट नहीं हुई।

फिर मैं लौट आया।

इसके बाद कभी-कभी पढ़ाई करते-करते उस मकान की तरफ़ गौर से देख लेता। लेकिन फिर से कभी उधर जाना संभव नहीं हुआ था। और अब तो इम्तिहान भी करीब आ गये थे।

दोपहर के खाने के बाद लाइब्रेरी में चला जाता। शाम को 'मद्रास' में नाश्ता वगैरा कर लेता और रात के खाने तक फिर से लाइब्रेरी। रात के खाने के बाद फिर ग्यारह बजे तक लाइब्रेरी। थोड़ी देर के लिए कमरे पर चाय के लिए। और फिर थोड़ी-सी पढ़ाई। कभी-कभी तो होटल बंद होने के समय वहां नाश्ते के के लिए पहुंचते और फिर कमरे पर आकर दो बजने तक पढ़ाई में लग जाते। एक बार फिर चाय और फिर सुबह तक पढ़ाई।

देर तक सोते रहने की आदत तो बहुत पुरानी थी। तीन-चार बरसों से यही हाल था। पर इस साल तो उसकी भी हद हो गयी थी। सूरज ऊंचा आ जाता, पर मैं सोया पड़ा रहता। वैसे उठने के लिए करीबन एक तो बज ही जाता।

कभी-कभी तो दो भी।

जैसे-जैसे इम्तिहान करीब आ रहे थे, पढ़ाई का बोझ बढ़ता जा रहा था। पहले जो कुछ पढ़ चुका था उसे भूल गया था। इसलिए फिर से उसे पढ़ना पड़ा था। जैसा सोचा था उसके मुताबिक ज़ोरदार पढ़ाई नहीं हो पायी थी। मुझे खुद पर चिढ़ आ रही थी। सुरेश ने कहा, पर्चे सुबह के समय होते हैं। तुम जल्दी उठने की—अर्थात जल्दी सो जाने की आदत डाल लो।

तब मैंने रात में दो-तीन बार चाय पीने की जो आदत थी उसे बंद कर दिया। और बारह-एक बजने से पहले ही बिस्तर पर लेटने लगा था। पर सुबह तक बिस्तर पर ही जगा पड़ा रहता। नींद कहां ? तब खुद पर चिढ़ जाता और सुबह-सुबह उठ बैठता। फौरन नहाकर सीधे लाइब्रेरी। आतंकित हो जाता और किताबों पर किताबें पढ़ता रहता। अब बताइए, इस तरह दिमागी परेशानी में कोई चीज़ नोट करना कैसे संभव था ? और दिमाग में उसे उतार लेना तो और भी मुश्किल। कंठस्थ करने का तो नाम ही मत लो। इसलिए पाठ्यक्रम की किताबों को पढ़ना बंद कर दिया। उसके बजाय अटरम-सटरम किताबें पढ़ने लगता। अब वक्त अच्छा गुज़र जाता। कभी-कभी कुर्सी पर बैठे-बैठे झपकी आ जाती। फिर काफ़ी ताज़गी महसूस होती। लगता, यही क्रम दिन में जारी रखें तो रात में नींद न आने की समस्या मिट जायेगी। लेकिन देखा कि उस रात भी नींद नहीं आयी थी। हमेशा की तरह नींद का वक्त फिर वही सुबह बना रहा। तब देर से उठना भी बंद नहीं हुआ।

दो-दो रातें इसी तरह बिना सोये गुज़ारीं। पर कोई फ़र्क नहीं पड़ा। सुबह हो चुकी थी, पर फिर भी नींद नहीं आयी। रात दस-ग्यारह बजे लेटकर देखा तब भी नींद नहीं आती। कुल मिलाकर सारी रात बेकार चली जाती। दिमाग में फालतू के विचार– छोटे बच्चों को अपनी मृत्यु के वक्त क्या एहसास होता होगा—बी० ए० के बाद—गुणे साहब क्या कह रहे थे—गोविंदा के यहां वह शादीशुदा लड़की क्यों आती रहती है—रात में भी वहीं रहती है—गोविंदा एम० ए० है लेकिन हमारे मुकाबले उसका अध्ययन बढ़िया नहीं है—हमने इस साल कितनी किताबें पढ़ी होंगी—लेकिन इम्तिहान के परचों में इतना सब-कुछ कैसे ठूंसा जाय—अभी तक व्याकरण को छुआ भी नहीं—उसे तो कंठस्थ करना पड़ता है—गुणे साहब मूर्ख हैं—गोविंदा गधा है—शिक्षा के क्षेत्र में काला बाज़ार करने वाले ये साले—और फिर गुणे साहब आलोचना लिखते हैं और गोविंदा कविता लिखता है। अभी-अभी ज्ञानेश्वर पूना आया था। उसने कहा था, कॉलेज की जिंदगी अर्थात स्वर्ग है, स्वर्ग। परमात्मा यदि मुझे कोई वर दें तो मैं होस्टल का यही कमरा मांग लूंगा—बहनचोद– सुरेश की भी तो पढ़ाई ठीक ढंग से कहां हुई है—हमने फिर भी उसके मुकाबले बहुत अच्छा अध्ययन किया

है, लेकिन इन दो-तीन प्रश्नपत्रों को तो जल्दी-जल्दी खतम कर लेना होगा—तब इसकी शुरुआत कल ही से क्यों न करें—लेकिन नहीं, इस हफ्ते शेष पांच प्रश्न-पत्रों को समाप्त कर लें फिर उन दो से भिड़ जायेंगे—अपनी वर्तनी भी तो सुधारनी है—साला क्या कोई एक झंझट है—आगे वाले सप्ताह तक यह प्रश्न-पत्र—सोलह तारीख से दूसरा—बीस तक मैकबैथ—उसके बाद उसकी आलोचना—लेकिन अभी नोट्स लेने बाकी रह ही गये हैं—इसे आखिरी सप्ताह में फटाफट पूरा कर लेंगे—तब तक जल्दी सोने की आदत भी पड़ जायेगी—सुबह उठकर फिर फटाफट रटते रहो—इम्तिहान शुरू होने के पहले वाले पखवाड़े में रटत का काम—बाकी परीक्षा मतलब डाढ़ी—फौरन निपट जायेगी—लेकिन बजे क्या हैं?—यह घड़ी टिकटिक करती ही रहती है—इसीलिए तो नींद आ नहीं रही है—बहनचोद—इसे पेटी में क्यों न बंद कर दें—अभी कर दें क्या—अभी नहीं—इस काम के लिए उठेंगे तो फिर से नींद नहीं आयेगी—साली यह बाहर वाली मर्क्यूरी बत्ती फालतू है—कमरे में इसकी रोशनी पहुंचती है—बताओ, नींद कैसे आयेगी—खिड़की बंद कर दें तो उमस होती है—सर्दियों में ठीक रहता है—ओढ़कर सो जाओ, फिर हमारे हम—चार तो बज ही गये—लोग जगने लगे हैं—इनकी घड़ियां कितने जोर से अलार्म बजाती हैं—इन आवाज़ों से क्या कभी नींद आयी है—मतलब पांच बजने के बाद ही सोना हमारे नसीब में है—और फिर उठने के लिए तो करीबन एक बज ही जायेगा।

यही क्रम हमेशा चलता रहता। जब सुबह हो जाती मैं बिस्तर पर पड़ा-पड़ा अपने हाथ-पैर पटकता रहता और बदन को आड़ा-तिरछा करते हुए तकिये पर सिर रगड़ने लगता।

साले इस सुरेश की वजह से तो यह आदत लगी थी। साला नालायक। और खुद है कि बराबर पढ़ाई में जुट जाता है। अभी-अभी कुछ दिनों पहले तक मेरे कमरे पर रात तीन बजने तक बड़बड़ाया करता था। मेरे साथ बहस के विषय कभी गंभीर नहीं हुआ करते। और जब परसों मैंने उसके साथ बहस करते हुए सिर्फ इतना ही कहा था कि शहर के स्ट्राइक करने वाले लोग बड़े बेवकूफ होते हैं। शहर के मज़दूरों तथा पोस्ट कर्मचारियों के लिए स्ट्राइक करना एक आसान बात है। उन्हें पता होता है कि उनके स्ट्राइक से शहरी लोग बहुत परेशान हो सकते हैं। इसीलिए तो इनके स्ट्राइक कामयाब हो जाते हैं। लेकिन इसके विपरीत गांव में रहने वाले दलितों-चमारों आदि को एक जून रोटी नसीब नहीं होती। वो किससे लड़ें? उनकी तनखाह कौन बढ़ायेगा? वैसे उनकी तो तनखाह होती ही कहां है? तब फिर ये लोग किससे अपनी बढ़ोतरी की मांग करें?

तो मेरी इस बात को सुनकर सुर्शा कहने लगा, पांडू, ये सब इम्तिहान के बाद।

साला सुरेश बापट।

उसने पिछले दो-तीन वर्षों की प्रश्न-पत्रिकाएं अपने पास नोट करके रखी हैं। मैंने उससे कहा था, तुम्हारे अक्षर समझ में नहीं आते। तुम मुझे पढ़कर सुनाओ। मैं लिख लेता हूं।

तो गधे का बच्चा कहने लगा, आज रात तो मैं उस सटीक 'रुक्मिणी-स्वयंवर' को पढ़कर समाप्त करने वाला हूं।

अच्छा भाई, कल ?

कल भी नहीं। चाहो तो लाइब्रेरी में जाकर लिख लो। लेकिन भैया अब काफ़ी देर हो चुकी है। अब इम्तिहान की पढ़ाई करनी है या प्रश्न-पत्रों की ?

दूसरे किसी से इम्तिहान के बारे में पूछता तो कहते, साल भर तो तुम लाइब्रेरी में पढ़ाई करते रहे थे और फिर अब हमारे पीछे क्यों पड़े हो ?

या कभी किताबों में मुझे लेखकों की कोई गलती मिल जाती और उसके बारे में सर की क्या टिप्पणी थी—इसके बारे में किसी से पूछता तो दोस्त लोग कहने लगते, तुम क्लास में क्या करते थे ? सिर्फ सुनते बैठे रहते थे। कभी नोट्स भी लिये ? अब कौन इन पुराने झमेलों को तलाशने में वक्त बरबाद करे ?

साले ये सब हरामखोर लोग हैं।

और फिर सुबह की भरपूर रोशनी फैल जाती।

अब अगर सो जाऊं तो, जागने तक तो दोपहर हो ही जायेगी। अगर यही स्थिति इम्तिहान के दौरान चलती रही तो ? इसलिए उठ जाता और सीधे मंजन वगैरा कार्यक्रम। फिर सारा दिन आलस में। खीझा-खीझा। दूसरे विद्यार्थी देखो कितने ताज़े और उत्साही हैं। और मैं पूरा पस्त। रमी भी आजकल लाइब्रेरी में पढ़ाई करने लगी थी।

सुरेश और मेरे बीच आखिर एक बार ज़ोरदार लड़ाई हुई। कारण था, यही मेरी नींद की नाज़ुक आदत।

लगातार दो रातें जाग चुकने के बाद अगली रात दिन भर की थकान के कारण जल्दी ही सो गया था।

लेकिन किसी कारण मैं बीच ही में जग गया। देखता हूं, रात के सिर्फ ग्यारह बजे हैं। वाह। मतलब हमें आज जल्दी नींद आ गयी थी।

अगर इस वक्त जागता न होता तो सुबह तक नींद न आती। और कई वर्षों के बाद जल्दी उठने का आनंद आता। पर साला यह होस्टल बड़ा बोर है। बाहर दरवाज़े पर कोई दनादन लातें चला रहा है। कितनी आवाज़ ! इसीलिए तो मेरी नींद टूट गयी।

मैं चिढ़कर कमरे के बाहर आया। पड़ोस वाले मोडक के कमरे पर सुरेश दनादन ठोकरें मार रहा था।

मैं चीखा, सुर्शा मेरी नींद तुमने खराब कर दी।

उसने रौब के साथ कहा, तो उसे मैं क्या करूं?

अब तो अपने कमरे में चले जाओ।

मोडक से मुझे अपनी डिक्शनरी लेनी है। मैं जाऊंगा नहीं। चार दिन हुए वह मुझसे ले आया था। अब तक वापस नहीं की। मुझे वह अभी इसी वक्त चाहिए।

मोडक के कमरे में खामोश अंधेरा।

सुरेश कहने लगा, इतनी लातें लगा रहा हूं फिर भी दरवाज़ा खोल नहीं रहा है। इतनी गहरी नींद इसे कैसे लगी? तुम इसे जगाकर देखो। मैं अपनी डिक्शनरी लेकर चला जाऊंगा।

मैंने कहा, मेरी डिक्शनरी ले जाओ, भाई।

तुम्हारी डिक्शनरी ऑक्सफोर्ड वाली है। उसमें गलत अर्थ दिये हुए हैं। मुझे मेरी ही डिक्शनरी चाहिए।

मैं चिढ़ गया। मैंने इसी मंजिल पर रहने वाले खान भैया को बुलवाया। खान भैया यानी बड़ा दयालु आदमी। उसने कहा, आप सब लोग बड़े आदमी हो। आपस में निपटा नहीं सकते? तब हम क्या करेंगे? यह कहकर वह चला गया।

तब मैं सुरेश से कुछ भी नहीं बोला। काफ़ी देर तक मामला इस तरह चलता रहा। दनादन। मेरी नींद तो वैसे भी उचट चुकी थी।

सुबह तक जागा बैठा रहा। आठ बजे उठकर सीधे परांजपे साहब के पास पहुंचा और सुरेश के खिलाफ़ शिकायत कर दी। उन्होंने सुरेश को पांच रुपया जुर्माना किया था। परांजपे साहब के कमरे से सुरेश सीधे मेरे कमरे पर आया था। उसने कहा, तुम्हारे कारण मुझे बेकार के पांच रुपये भरने पड़ेंगे। पांच रुपये उधार मिलेंगे?

मैंने कहा, शट अप।

उसने कहा, कल मैं उसके किवाड़ क्यों पीट रहा था, मालूम है तुम्हें? अंदर कमरे में मोडक अकेला नहीं था। उसके संग वह विजय भी सोया हुआ था। एफ़० वाई० का वह विजय। मुझे पहले ही से शक था। लेकिन कल मैंने बराबर चोरी पकड़ ली। इसलिए तो मेरा दिमाग इतना तप गया था। खैर ठीक है। पांच रुपये भर देता हूं। लेकिन आखिर यह तो पता लग ही गया कि तुम कैसे आदमी हो।

मैंने सुरेश को कमरे से बाहर निकलने के लिए कहा और धड़ाम से दरवाज़ा बंद कर लिया।

इस हादसे के बाद मुझे और भी घुटन महसूस होने लगी थी। कोई दोस्त बचा नहीं था। सब लोग अपनी-अपनी पढ़ाई में लगे थे। ये लोग अपने पुराने चंद दोस्तों से थोड़ी देर के लिए बतिया लेते और थोड़े-से मनबहलाव के बाद फिर से पढ़ाई में लग जाते। मेरे लिए कोई हीला नहीं रहा था। खाने के बाद सुरेश के कमरे पर पांच-दस मिनटों के लिए हंसी-मज़ाक जो चला करती थी, कुछ अच्छा लगता—अब वह भी समाप्त हो गया था।

इसके बावजूद मनसरीखी पढ़ाई आखिर तक नहीं हो सकी थी। वास्तव में जल्दी सो जाने की यह नयी लत मैंने बेकार ही पाल ली थी। वरना, पहले की तरह रात भर जागकर पढ़ाई करता रहता तो क्या मजाल कि पढ़ाई काबू में न आये। आठ दिन के भीतर, मतलब आठ रातों के भीतर सब-कुछ कंठस्थ करके ही छुट्टी कर ली होती। और फिर किसी से कह देते कि भैया, इम्तिहान शुरू होने से कुछ देर पहले जगा दो—बस।

लेकिन मैं हूं कि ऐन पढ़ाई के मौसम में नींद पर तजुर्बे कर रहा था। लाभ कुछ भी नहीं, उलटे अपना वक्त बरबाद कर रहा था। कुल मिलाकर पढ़ाई रही दूर।

ठंडे पानी से सिर भिगोकर देखा, गरम पानी में पैर डुबोकर फौरन सोने की कोशिश की। सोने से पहले भरपूर दूध पीकर आज़माया, गीले बदन ओढ़कर सोने की कोशिश की। सोचा, लगातार दो रातें बगैर सोये जागकर काट दें, ताकि तीसरी रात जल्दी नींद आ सके, थकान के कारण नींद जल्दी आ जाती है, इसलिए सोचा कि दिन भर इधर-उधर घूमता रहूं—यह भी आजमाया, डॉक्टर ने जो सलाह दी वह सब-कुछ किया। पर कोई फायदा नहीं हुआ। हां, नींद की गोलियां लेकिन नहीं खायीं। सारी उम्र दवाइयों को कभी छुआ नहीं, अब भी ऐसी मूर्खता नहीं करनी है—इस पर मैं अटल था। लेकिन इन परेशानियों का परिणाम यह हुआ कि मुझे चार-पांच दिन तक भयंकर बुखार हो आया।

एक सप्ताह अस्पताल में पड़ा रहा था। डॉक्टरों ने अखबार तक छूने नहीं दिया था। लेटे-लेटे छत को तकता रहा। और दिन काटे। हां, वहां खूब नींद सोया। वास्तव में मुझे अमियां नहीं खानी चाहिए थीं। बचपन में ठीक था। एकदम आठ आने की अमियां कोई खा ले तो बताइए, बीमार नहीं पड़ेंगे? तेज़ धूप पड़ी थी। रास्ते पर हरी-हरी, ताज़ी खट्टी अमियां देखीं, खूब खायीं।

इस पवित्र कॉलेज में चार वर्ष कैसे गुज़रे, जब से पूना आया हूं तब से आज

तक एक खाका बना था और अपने कारनामों को उगालता रहा। अस्पताल में समय इसी उधेड़बुन में कट गया।

तबीयत ठीक हो जाने के बाद फिर से पढ़ाई शुरू। इम्तिहान पंद्रह दिन बाद शुरू होने वाले थे। नींद वाली वही परेशानियां फिर से शुरू। सुबह के समय मन शाम जैसा उदास रहता। और शामें सुबह की तरह ताज़ा। हमारी शामें तरोताज़ा रहतीं तो दुनिया की उदास। असल में मुझ जैसे आदमी पर इस बहाने दुनिया अन्याय कर रही थी।

अब इम्तिहान को दो दिन रह गये थे। अब ध्यान आया कि नींद के ये झमेले बंद हो ही जाने चाहिए। पहला ही पेपर मैकबैथ का। किस पंक्ति का क्या संदर्भ है, आज भी हमें याद नहीं आ रहा है। संदर्भ वाला प्रश्न बड़ा वाहियात है। और वह भी कंपलसरी। सचमुच अब गंभीरता से पढ़ाई करनी ही होगी। अब तक जो पढ़ा है उसे भूल जायें और इम्तिहान के लिहाज़ से हर प्रश्न-पत्र के अहम् मुद्दों को पहली रात देख लें। बस यही करना होगा। पांडुरंगा, तुमने खूब गुल खिलाये।

अब तक जो भी पढ़ा था वह सब-का-सब एकमेक गड़बड़ हो गया। अब यह सोचते रहने के बजाय कि नींद के समय नींद नहीं आयी तो क्या करेंगे, एकदम पढ़ाई शुरू कर देना ही बुद्धिमानी थी क्योंकि अगले दिन ग्यारह बजे पेपर होता। सुबह-सुबह नींद लग जाती। नौ बजे खान भैया जगा देता। फिर दस मिनटों में स्नान वगैरा से निबट-निबटाकर हड़बड़ी में इस किताब को पढ़ो, उसके पन्ने पलट कर देख लो, उस नोटबुक को सरसरी तौर पर देख लो, गयी रात लगाये निशानों में से जितने आंख की पकड़ में आ जायें उन्हें पढ़ लो—इस तरह ग्यारह बजने में पांच मिनट पर अपने राम चकराया दिमाग साथ लिये इम्तिहान देने को निकल पड़ते।

स्कूली ज़माने में इम्तिहान के लिए जाते वक्त मैं दवात, कलम, ब्लाटिंग वगैरा चीजें सही हैं कि नहीं, इसकी पूरी जांच कर लेता था। तब मां कहा करती, बालकोबा, बाकी ठीक है, दिमाग साथ रखा है न ?

यह बहुत अच्छी बात थी। अब तो मिसाल के तौर पर दिमाग को ही भूल कर पेपर लिखने की नौबत आ पड़ी है। पेपर लिखते समय दिमाग में जबरदस्त किच-किच चला करती। निश्चित कुछ भी याद नहीं आता। निरंतर यही एक खयाल दिमाग में चलता कि हमने अब तक इतना सब जो भी पढ़ा है वह ऐन

मौके पर पेपर पर उतरेगा ही नहीं। कितना भयंकर था यह खयाल। फिर भी पर्चे करते जा रहे थे।

और फिर एक पेपर में मैंने इतना कुछ मौलिक लिख रखा था कि जांचने वाला उसे निश्चय ही बहुत अच्छे मार्क्स देगा, क्योंकि उस दिन मैं अच्छी नींद सोया था। मैंने लिखा था कि केतकर, यह सज्जन जाति के कोंकणस्थ ब्राह्मण। इनके जैसे चतुर व्यक्तियों को कला-निर्माण के पचड़े में नहीं पड़ना चाहिए। ये लोग अगर शोध-प्रबंध लिखते, तब भी इनकी वाहवाही ही होती। उनके उपन्यासों को आज जितनी प्रशंसा मिली है उसके मुकाबले कहीं ज्यादा शोहरत उन्हें मिलती। मुझे इस चतुराई के उनके अपौन्यासिक प्रमाण भी समय पर याद आ गये थे। और फिर गुणे साहब के सहवास का फायदा यह हुआ कि मैंने बीच-बीच में हैमिंगवे वगैरा अंग्रेजी उपन्यासकारों के संदर्भ लिख मारे थे।

तब से मेरा हौसला काफ़ी बढ़ गया था।

मेरा हौसला जो और बढ़ा उसका कारण यह था कि बाहर से बी०ए० करने वाले एक लड़के से मेरा परिचय हुआ। लड़का काहे का, वह तो अच्छे-खासे बाल-बच्चे वाले आदमी था। शादी वगैरा कर लेने के बाद इम्तिहान के झमेले को मोल लेने वाले ये सज्जन बातचीत में बड़े जैंटलमैन।

एक पेपर जब खतम हुआ था, मेरे बेंच पर अपनी एक टांग रखकर उन्होंने कहा था, तुमने बहुत सप्लिमेंट्स लिये हैं। मैंने तो सिर्फ एक सप्लिमेंट लिया था। फिर भी परेशान था, कि इसे कैसे खतम करूं ?

यह साहब गंजे थे। नाम खानोलकर। एक्सटर्नल बी० ए० कर रहे थे। उनके संपर्क में मेरा काफ़ी मनोरंजन होता था। वे पेपर खतम होने के बाद मुझे जबरदस्ती चाय के लिए ले चलते। वहां बड़ी नम्रता से पढ़ाई के बारे में पूछताछ किया करते। कहते, तुम मेरा मार्गदर्शन करते रहोगे तभी मेरी खैरियत है।

खानोलकर बड़े गरीब तबीयत, नर्म दिल के व्यक्ति। लेकिन उनकी छोटी-छोटी-सी बातें मुझे बड़ी विनोदपूर्ण लगतीं। और फिर पढ़ाई के बारे में जब वो कुछ बोलते, तब तो मैं अपनी हंसी नहीं रोक पाता था। विशुद्ध मनोरंजन। उदाहरण के लिए उन्होंने मुझसे पूछा था, माधव ज्यूलीयन को फर्ग्यूसन कॉलेज से निकाल दिये जाने के बाद उनका अंग्रेजी में लिखा त्यागपत्र आपने कहीं पढ़ा है ?

या राजकवि तांबे के घर बहुत गरीबी थी क्या ?

या मैथ्यू अर्नोल्ड महाशय ने संसार की तमाम रहस्यमय समस्याओं के समाधान देने का क्या ठेका ले रखा है ?

या जार्ज इलियट, टी० एस० इलियट के रिश्ते में कौन होते हैं ?

उनके हर सवाल पर मैं इतना हंसता कि मेरी थकान दूर हो जाती। दिमाग में भरी हुई किचकिच कम हो जाती।

उन्होंने मुझसे कहा था—आलोचना के पेपर की कोई तैयारी नहीं कर पाया हूं। आप कुछ बताएंगे ? वैसे मैंने थोड़ा-सा पढ़ा है। पर जब एक किताब पढ़ता हूं, तो उसे समझने के लिए और दो-तीन किताबें पढ़नी पड़ती हैं। अच्छा, इतने भर से सिलसिला कहां खतम होता है ? किसी की कुछ राय है तो किसी का कुछ मत। संक्षेप में हनुमान की पूंछ की तरह यह सिलसिला लंबा होता चला जाता है। इसलिए मैंने इसका पीछा ही छोड़ दिया।

कुल मिलाकर हर पेपर के बाद इस तरह का कार्यक्रम चलता रहता और मुझे खूब मज़ा आता।

खानोलकर ने एक बार कहा, मेरे तमाम नोट्स कल हमारी बेबी ने तितर-बितर कर डाले। उन्हें ठीक-ठाक करते-करते मैं इतना गुस्सा हो गया था कि बेबी को एक ज़ोरदार थप्पड़ जड़ दी। वह बहुत देर तक रोती रही। और उसे चुप कराने के लिए पत्नी का शोर, सो अलग। पढ़ाई कुछ ठीक नहीं हुई। फिर भी आज वैसे ठीक-ठाक लिख सका हूं।

यह बात कितनी विनोदपूर्ण होगी। मिसाल के तौर पर मस्ती करते बच्चों से हम घिरे हुए हैं। और फिर पत्नी भी है। और फिर हम वहां बैठे पढ़ाई कर रहे हों—स्थिति कितनी विनोदपूर्ण होगी !

व्याकरण के बारे में उन्होंने कहा था, मैंने सिर्फ कारक ठीक किये हैं।

मैंने पूछा, और अलंकार ?

खानोलकर ने कहा, अलंकार ? यह और क्या बला है ?

फिर मैंने उन्हें अलंकार समझाए।

उन्होंने कहा, बहनचोद क्या कमाल है ! ग्राम्यता और अतिशयोक्ति, इन्हें भी अलंकार में शामिल किया गया है। खैर पर सच मानिए, आप के कारण इतने कम समय में मेरा एक प्रश्न तैयार हो गया है। इसी तरह सहायता किया कीजिए।

एक बार आड़ी-तिरछी लकीरों के निशान लगी प्रश्नपत्रिका को मेरे सामने पटक कर उन्होंने कहा था, हमारे पाठ्यक्रम में काव्य-प्रकारों का समावेश ज़रूर है, पर उसमें वह खंड-काव्य कहां है ? फिर यह प्रश्न कैसे पूछा गया ?

मैंने कहा, कथाकाव्य को ही तो खंडकाव्य कहते हैं।

फिर उन्होंने पूछा, फिर दीर्घकाव्य और क्या होता है ?

खानोलकर हस्तलेख बहुत सुंदर था।

उन्होंने कहा, मेरी शुद्ध वर्तनी और हस्तलेख को देखकर हमारे हेडमास्टर साहब मुझे हमेशा कहा करते, खानोलकर, तुम बी० ए० कर लो। पर मराठी विषय ज़रूर लेना। उसमें तुम्हें निश्चित अच्छे मार्क्स मिलेंगे। मैं टालता रहा। लेकिन वे आग्रह करते, कहते, इसमें क्या दिक्कत है? मराठी की पढ़ाई भी कोई पढ़ाई होती है? लड़कियां भी पास हो जाती हैं। इसलिए मराठी लिया है। देखते हैं, क्या होता है? पर आपने मेरी बहुत सहायता की है। एक्सटर्नल बी० ए० करना संयोग से ही संभव हो पाता है। और फिर गृहस्थी की परेशानियां, सो अलग। और फिर नौकरी।

इन दिनों मनोरंजन का और एक हीला अर्थात रमी। पेपर खत्म होने के बाद वह दूर से इशारे से पूछती, कैसे रहा? मैं दोनों हाथ ऊपर कर देता। अगर मैं पेपर की चर्चा करता तो वह कहती, नो पोस्टमार्टम। चलो, चाय लेते हैं।

लेकिन मेरे साथ खानोलकर तो रहते ही। इसलिए मैं रमी को ना कहता। फिर हम तीनों वहीं बातें करते खड़े रहते।

रमी के ध्यान में जब यह बात आ गयी तो उसने खुद खानोलकर से कहा था, आप भी चलिए।

चाय पर रमी को किसी का साथ ज़रूरी होता। उसे इसमें आनंद आता। तब वह किसी लड़की को साथ लिये चली जाती। खानोलकर और मैं भीड़ छंट जाने के बाद कैंटीन में दाखिल होते। तब तक कैंटीन के बाहर ठहाके लगाते खड़े रहते। मैं तो खूब हंसता रहता। किसी भी बात पर। खानोलकर बोला करता और मैं हंसने को जैसे तत्पर। थकान से ऐंठा हुआ दिमाग एकदम तनाव-मुक्त हो जाता, तब फिर हंसी।

इसलिए रमी के मुकाबले ये साहब मुझे कुछ ज्यादा भाते। वे मुझे उनके घर अगली रात क्या-क्या हुआ, इसका पूरा विवरण सुनाते और बताते कि उनकी पढ़ाई ठीक ढंग से क्यों नहीं हुई और अंत में कहते, आखिर कुछ तो लिख ही डाला। कभी-कभी प्रश्नपत्र पर उंगली रखकर पूछते, क्या यह चीज़ पाठ्यक्रम में सम्मिलित है?

लेकिन एक बार रमी ने कैंटीन के लिए बहुत ही आग्रह किया था। मेरे साथ खानोलकर थे ही। रमी के चले जाने पर उन्होंने कहा था—माफ कीजिए, मुझे तुम दोनों के बीच नहीं आना चाहिए था। लेकिन कल वाले पेपर के बारे में

थोड़ा-सा पूछना था।

मैंने कहा, क्या मतलब खानोलकर साहब ? दोनों के बीच में नहीं आना चाहिए था का क्या मतलब ?

उन्होंने कहा, मतलब यह कि आप दोनों···।

मैंने कहा, गजब है खानोलकर साहब। हम लोग इश्क-विश्क करते हैं क्या ? वैसी कोई बात नहीं है। आप आते रहिए।

एक बार उन्होंने एक किस्सा सुनाया। इसमें रमी को भी आनंद आया। खानोलकर ने कहा, कल हमारे सास-ससुर आये हैं। लगभग आठ दिन ठहरने वाले हैं।

मैंने कहा, मतलब तुम्हारे इम्तिहान का कबाड़ा ही समझो।

खानोलकर ने कहा, ना, ना, अजी साहब मैंने ही उन्हें इम्तिहान तक रोक लिया है। हमारे ससुर साहब बहुत अच्छे आदमी हैं। वे मुझे, जब चाहूं रात में जगा देते हैं। और सासूजी बच्चों को संभाले रहती हैं। अब ही तो मेरी पढ़ाई अच्छी हो रही है। वैसे भी आम तौर पर हम ग्यारह-बारह बजे तक तो खींच ही लेते हैं। अगर एक बार सो गये तो फिर सुबह ही समझो। लेकिन दो-तीन घंटे की नींद वैसे काफ़ी हो जाती है। जो भी नींद होती है, उसे पर्याप्त मानकर उठ जाना चाहिए। और पढ़ाई में लग जाना चाहिए।

यह बहुत बढ़िया बात थी। वरना मुझे देखो। नींद की समस्या को लेकर मैंने पिछला महीना गंवा दिया।

एक दिन पेपर खत्म होने के बाद देखा तो खानोलकर गायब थे। मैं दरवाज़े के पास खड़ा उनका इंतज़ार कर रहा था। लग रहा है कि पेपर लिखते वक्त कोई साहब बीच ही में उठकर चले गये थे। शायद खानोलकर ही होंगे। बेचारे की पोल खुल गयी लगता है। मुझे बुरा लगा। नौकरी, घर-गृहस्थी, सास-ससुर इतनी सारी जिम्मेदारियों को संभालते हुए उन्होंने पढ़ाई करने की जो परेशानियां मोल ली थीं वे सब बेकार गयीं।

उसी दौरान रमी वहां पहुंची थी। पूछा, किसका इंतजार कर रहे हो ?

उसे लगा होगा, मैं यहां रुककर उसी का इन्तज़ार करता रहता हूं। पर उसे बुरा न लगे इसलिए मैंने कहा, और किसका ?

तब फिर हमारे साथ चाय पर क्यों नहीं चलते ?

कोई कारण नहीं। बस यूं ही। आज कौन-सा पेपर था ?

सोशोलॉजी का।

कैसा रहा ? सारे प्रश्न लिखे ? मेरे लिए तो समय कम पड़ता है। आज भी दो प्रश्न अनलिखे रह गये।

नो पोस्टमार्टम। चाय के लिए ?

चलिये।

रमी ने कस के पेपर लिखे थे। लेकिन मैंने—इस साल पूरे बाइस सौ रुपये खर्च हुए थे। इसके बावजूद भी मैंने बेवकूफी की थी।

बात यों हुई। रविवार का दिन। शाम के वक्त गड़गड़ाहट के साथ बादल घिर आये थे। कल सोमवार। आखिरी दो पेपर। परसों यहां से चल देना है। इन जगहों पर चलने-फिरने का मौका फिर से कहां मिलने वाला था ? और विदाई के दिन जैसे-जैसे करीब आते गये मैं और अधिक भावनाओं की गिरफ्त में आता गया। खूबसूरत बादलों से आसमान घिर आया था। दिन भर की उमस, बदन की चिपचिपाहट। और फिर कल वाले एक साथ दो-दो पेपरों की किताबें, नोट्स आदि की पढ़ाई के कारण वैसे भी मैं ऊब गया था। आज एकदम ठंडा-ठंडा महसूस होने लगा है।

मैं टीले पर चला आया था।

बादलों को देखकर मुझे ध्यान आया, इन दिनों गांव के लोग बुआई की तैयारी में लग गये होंगे। इधर हमने कई बरसों से बुआई देखी नहीं थी। बुआई के दिनों वहां सारा माहौल कितना खुशगवार रहता है। और यहां देखिए। शहर का आदमी ज़िंदगी कीड़ों-मकोड़ों की तरह खाने की चीज़ों को देखता हुआ व्यतीत करता है। यहां, मानवीय व्यवहारों की गिनती पैसों में होती है। मतलब यह कि यहां वालों की भात-रोटी आती कहां से हैं—गेहूं-चावल बेचने वाले परचून की दूकान से। अब बताइए भूमि से गेहूं का निकलना और परचून की दूकान से उसका निकलना, कोई फ़र्क है कि नहीं ? शहर-वासियों को क्या पता होता है कि भूमि किसे कहते हैं ? भूमि का और इनका रिश्ता ही समाप्त हो चुका है। ये लोग कोलतार की सड़कें बनवाकर भूमि को उसके नीचे गाड़ देते हैं। और उस पर जूते पहनकर चलते रहते हैं और सिमेंट में रहते हैं।

इन खयालों की उधेड़-बुन में मैं सोच ही रहा था कि मंगलवार को चलें या आराम करके बुधवार को चलें कि अचानक जबरदस्त आंधी चलने लगी। तूफानी हवा। और बीच में ज़ोरदार बूंदा-बांदी।

सोचना बंद कर दिया और दौड़ते हुए टीला पार करके नीचे उतर आया। जल्दी भाग निकलने के सारे रास्ते मुझे मालूम थे। लेकिन बारिश यकायक होने

लगी थी। भयंकर धूल। अंधड़ के कारण चश्मे के नीचे से मिट्टी आंखों में घुस गयी थी। हवा इतनी ज़ोर की थी कि नंगे पेड़ भी जड़ से हिल रहे थे। उनके नीचे खड़े रहने से क्या लाभ? नीम का पेड़ तो यहां से बहुत लंबे फासले पर था। इसलिए मैं लंबे-लंबे डग भरता हुआ होस्टल की दिशा में चलने लगा। ज़ोर की बारिश के कारण ज़मीन पर पानी बहने लगा था। मैं पूरा भीग गया। ऊनी पैंट हुई तो क्या हुआ, इतनी परेशानी किसलिए? वैसे तो भीगने वाली थी ही। कुर्ता तो कभी का पूरा भीग चुका था। तब मैंने आहिस्ता-आहिस्ता चलने का निश्चय किया। शुरू ही से पूरा बदन भीग चुका था। इसलिए नहाना तय था ही।

मैं होस्टल तक आ पहुंचा। दृश्य बड़ा विचित्र था। छोटी-छोटी खिड़कियों वाला हमारा यह विशाल होस्टल बारिश के कारण बहुत ही धुंधला दिखायी दे रहा था। हवा के कारण बौछारें लगातार जगह बदलने लगतीं जिससे कभी-कभी होस्टल कुछ स्पष्ट दिखायी पड़ता। लेकिन फिर से आड़ी-खड़ी बौछारों, पर्दों और छत पर टकराती तुषार के कारण सारा होस्टल फिर से धुंधला हो जाता।

मुझे एक अनुभव हुआ था। मुझे लगा, शाम के भयानक अंधेरे में मैं भूत हूं। वैसे भी तो हम भूत से क्या कम हैं? आसपास कहीं कोई आहट हो रही है? नहीं। चार वर्षों में हमने इस स्थान को कितना कुछ मन में पक्का कर लिया है? होस्टल में मेरे साथ प्रवेश लेने वालों में से बहुत कम लोग आज भी रह रहे हैं। यह जगह इतनी परिचित हो गयी है कि अंधेरे में भी साइकिल पर रास्ते के पत्थरों से बचकर आ-जा सकते हैं। पुराने सभी यार-दोस्त—कोई कहीं, कोई कहीं। कितने चेहरे? अनेकों। हज़ारों नाम बिना अटके गिना सकता हूं। यह वह, वह यह, वह, वह। वह भूरी आंखों वाला, यह वही काला, वह लंबा, वह अमुक गांव वाला, वह उस कक्षा में पढ़ने वाला। हजारों वारदातें। हज़ारों शरीर। हमने अनेकों लफड़े किये। सैकड़ों। मित्रों के साथ इकट्ठे चाय बनाते रहने की क्रिया अब मात्र एक घटना लगती है। जितने दिन, रातें, दोपहरें, शामें—उतनी घटनाएं। हड़बड़ी में कमरे को ताला लगाकर कॉलेज के लिए निकल पड़ना, यह भी तो मात्र एक घटना।

यह स्थान मानो अपनी मिलकियत है, इस गुमान में हम लोग यहां घूमते-फिरते रहे हैं। और अब इसे छोड़कर चल दें! अलगाव का वैसे कोई कारण नहीं है। सारी ज़िंदगी यहां क्यों नहीं रहा जा सकता? अनुबंध क्योंकर समाप्त हो जाता है? यह लाइब्रेरी और इसके आसपास की ये इमारतें—कॉलेज की वो इमारतें—इन इमारतों के भीतर हमारी ज़िंदगी के चार वर्ष समाप्त हो गये।

हमारे अपने वर्ष। इसी तरह हज़ारों व्यक्तियों के लाखों वर्ष ये इमारतें पी जाती हैं। हमारे लिए कुछ भी बचता नहीं है। इस स्थान के साथ जुड़ी घटनाओं को बार-बार याद करते रहो तो कहीं इस स्थान को आप पी सकते हैं। ये पेड़, ये कमरे, ये खिड़कियां, बेताल टीले के पीछे की चरागाहें और वहां की घुंघचियां—इन सभी से रिश्ते, स्थान को छोड़ देने से क्या अपने-आप टूट जाते हैं ? जुड़ते समय कहां पता होता है कि आखिर रिश्ते टूटने वाले होते हैं ? हां, इस स्थान से हम उखाड़े जा सकते हैं क्योंकि हमारे पैर भूमि के भीतर कहां गड़े होते हैं ? इसलिए तो हम लोग समय और भूमि के रिश्तों को जोड़ते रहते हैं। हम लोग टांगों से चलते हैं और पुराने स्थानों का हिसाब रखते हैं। यह स्थिति कितनी करुणाजनक है !

आखिर चिर है केवल स्थान। वर्षों का महत्त्व, हमारी मृत्यु के बाद क्या बचता है ? लेकिन भूत बनकर स्थानों का रिश्ता जोड़ा जा सकता है। आज की इस वर्षा में हम भीग गये हैं, सही है। लेकिन इससे परे हमारी क्या पहचान बनती है ?

हमारे शब्दों की शक्ति से क्या अभी कोई भूचाल आ सकता है जो इस समूचे स्थान को ही समाप्त कर दे ? क्या ये सारी इमारतें लुप्त हो सकेंगी और इन पर घास उग सकेगी ? नहीं। तब फिर हमारी सोच सिर्फ व्यर्थ का ही तो भार है। हमारा वजूद सत्य नहीं है। इस स्थान के पास हमारा कोई मूल्य नहीं है।

तब सारी जिंदगी यही होता रहेगा— हमारी किसी चीज़ का कोई मूल्य नहीं है।

उसके बाद मैं अपने कमरे में अजनबी की तरह दाखिल हुआ था। सूखे कपड़े पहन लिये। थोड़ी चीनी, सारी चाय की पत्ती, सारा दूध, जितना कुछ बचा था, एक पतीली में पूरा उंड़ेल कर चाय बना ली। और पूरी रात कल के अंतिम प्रश्न-पत्र की तैयारी करता रहा।

मैं आखिरी प्रश्नपत्र के सिर्फ़ दो प्रश्न हल कर सका था। मैंने टांगें पसार दीं और शांत बैठा रहा। बाकी सभी लोग गधों की तरह लिख रहे थे। घंटी बजी और मैं बाहर।

आज वाली रमी अन्तिम। कैंटीन में।

वो गंजे साहब बाद में दिखायी दिये ही नहीं। क्या उन्होंने इम्तिहान बीच ही में छोड़ दिया ?

हां।

क्लास वगैरा बढ़िया ले आओगे ? क्यों ?

जी।

इसके बाद क्या सोचा है ? एम० ए० ?

जी।

अब कहां जाने वाले हो ?

सांगवी।

तुम्हें क्या हो गया है ? पेपर ठीक नहीं था क्या ? ठीक लिखा नहीं क्या ? कितने प्रश्न किये ?

पोस्टमार्टम।

एम० ए० के बाद क्या करने जा रहे हो ? लेक्चरर ?

घर पर ही बैठने वाला हूं।

बहुत ठीक। है ना ? तुम लोगों की बात ही और है। परेशानी तो हम जैसों की। भविष्य कैसा बनेगा, हमारे हाथ इसका कोई सूत्र नहीं होता।

सही-सही रमी यही है। बिलकुल निस्तेज। वक्ष नहीं के बराबर। नारी थी बस। उसके वो फेफड़े। मूर्ति की तरह बगैर फोकस की निस्तेज पथरीली आंखें। लिखने की थकान से पस्त। साफ नाखून वाली, दोनों हाथों की उंगलियों को प्याली पर गड़ा कर चाय पीने वाली। मैं खामोश था।

पता नहीं, इसके भविष्य में क्या बदा है ? वैसे भविष्य में, मतलब लम्बे भविष्य में किसी का और क्या होता है, जो दूसरों से अलग हो, हर किसी का आगे क्या होने वाला है, मुझे पूरा पता है। पर इसे, क्या पता होना कहते हैं ? इस तरह पता हो जाने का किसी को क्या लाभ ?

मेरे इस ज्ञान का रमी को क्या लाभ ? मान लो रमी इस वक्त मुझ से पूछ ले—हम घर बसायेंगे। तो ?

तो मैं निरुत्तर। हमारे हाथ कुछ भी नहीं लगता। अच्छा तो कभी नहीं।

मैं सामान पैक कर रहा था। इम्तिहान खत्म हो जाने के बाद तमाम कापियों को रद्दी में बिकवा देने का हमारा रिवाज़ था। लेकिन अब इस विशाल ढेर को अगले साल के लिए संभालकर रखना पड़ेगा। इसके लिए मौसी के यहां जाना ज़रूरी होगा सो अलग। लेकिन फिर से बी० ए० के इम्तिहान देने जरूरी हैं क्या ? पर इसके अलावा रास्ता भी तो क्या है हमारे पास ?

हमने जो भी किया वह ठीक नहीं किया। अब पिताजी क्या कहेंगे ? और मां ? और बस्ती वाले ? अगले साल मैकबैथ कोर्स में नहीं। इतने नोट्स तैयार

किये, मेहनत बेकार गयी। मैकबैथ वाला प्रश्न कितना बढ़िया लिखा था। मैकबैथ की तरह अपने पास नींद न आने का अनुभव था। हटाओ, फेंक दो सब रद्दी में।

इतने में सुरेश आया।

मैं सामान बांध ही रहा था। उससे बात नहीं की।

उसने पूछा, पर्चे ज़ोरदार लिखे हैं न तुमने ? प्राइज़ जीतोगे ?

मैं खामोश था।

बहनचोद, सांगवीकर, तुम्हें हो क्या गया है ? मैं आज जा रहा हूं। फिल्म देखेंगे। फिर बाहर कहीं बढ़िया खाना। या पहले खाना और बाद में फिल्म ?

कुछ नहीं चाहिए। गलती मेरी ही थी। गुनाह कुबूल। कुछ भी मारो। पर पता नहीं हम फिर कब कहां मिलेंगे ? इसके बाद मैं पढ़ने-वढ़ने वाला नहीं हूं। मेरे रिश्तेदारों की एक फ़र्म है। वहां वे···।

तुम मुझे यह सब क्यों सुना रहे हो ?

तब सुरेश चला गया था।

सुरेश जैसे व्यक्ति वैसे अच्छे ही होते हैं। सुरेश जैसे लोग जब तक हमारे संपर्क में होते हैं प्यारे लगते हैं।

न हों, तो खास फ़र्क नहीं पड़ता।

मैं अपने गांव के लिए रवाना हो गया।

मैं घर पहुंच गया था।

घर पहुंचने पर मैंने एक अच्छा काम किया। बचपन की कतिपय स्मृतियां जो मेरे कपाट में सुरक्षित रखी हुई थीं उन्हें निकाल बाहर फेंक दिया। मां खेत पर चली जाती थी, और मैं इधर घर-आंगन में गोलियों का खेल खेला करता था। कभी कौड़ियों के खेल में खो जाता। लट्टू भी थे। मैं अपने खेलों में मगन रहता, इधर मां कब लौट आती और सीढ़ियों के नीचे बैठी छिपकर मुझे देखा करती, पता ही नहीं चलता। बचपन की उन तमाम वस्तुओं को मैंने यूं ही संभाल कर रखा था। आज सब फेंक दिया था। हां, दो चीज़ें बचाकर रख ली थीं, पत्थर की एक गोली और एक बड़ी देव कौड़ी। सोचा, पड़ी रहेंगी।

दिन-भर तेज़ धूप के कारण ज़मीन तप जाती और शाम को वर्षा निश्चित होती। नाज़ुक घास चारों तरफ निकल आयी थी।

अगली शाम जहां कुछ भी नहीं होता, वहां आज हरियाली बिछ जाती।

लेकिन मैं और ही तरह की चिंता से ग्रस्त था। पिताजी पहले की तरह गुस्सा नहीं हुआ करते थे। मेरे लिए यह बात बड़ी पीड़ाजनक थी। उन्होंने एक बार सिर्फ इतना ही कहा था, मैं जब तुम्हारी उम्र का था, तुम पैदा हुए थे। देख ही रहा हूं, तुम्हारा भविष्य क्या होने जा रहा है, बहुत साफ है।

मां ने कहा था, बालकोबा, तुम्हें अगर इधर ही अच्छा लगता है, तो छोड़ दो पढ़ाई। जहां भी रहो तुम खुश रहो, बस।

मां ने सच कहा था।

लेकिन मैं इधर भी तो कहां खुश था ? देर से उठते रहने के कारण घरवालों की नाराजगी। दिन-भर लेटे पड़े हैं। कभी थोड़ा पढ़ लिया। लगातार रेडियो सुन रहे हैं। रेडियो के बटन घुमाते रहो। गीत, शास्त्रीय संगीत, भावगीत, वनिता मंडल, फिल्मी कहानियां, अंग्रेज़ी-वंग्रेजी—जो-जो चलता वह सब सुन रहे हैं।

पिताजी ने कहा, इतने बड़े लड़के का घर में खाली बैठे रहना बस्ती वालों को अखरता रहता है। चाहता हूं, तुम वापस चले जाओ। शहर में कमरा न मिले तो मौसी के यहां रह लो।

मैंने कहा, मैं इम्तिहान के कुछ दिन पहले जाऊंगा। पिताजी ने कहा, नहीं। फिर पंद्रह दिन तक मैंने पिताजी से बात नहीं की। मां भी तो मेरी चिड़चिड़ाहट के कारण ऊब गयी थी। मैं छोटी-छोटी बातों को लेकर कुरकुराता रहता। मां ने कहा था, मुझसे जितना संभव है, तुम्हारे लिए करती हूं। इससे ज़्यादा मुझसे नहीं होगा। तुम्हारा यहां से चला जाना ही ठीक है। छुट्टियों की हद तक ही अच्छे लगते हो।

तब मैं घर से विदा हो गया।

चार

रोज रात जमा-खर्च लिखने की पुरानी आदत थी ही। सोचा, इसे लिखते रहने के बजाय डायरी लिखना क्या बुरा है ? कम-से-कम जमा-खर्च लिखने की आदत तो छूट जायेगी। लेकिन डायरी भी तो हर रोज लिखते रहना क्या संभव होगा ? फिर भी इसे साल भर मैंने निभाये रखा था।

पूरा साल पढ़ाई के अलावा मैं और क्या-किया करता था, इसे कुछ हद तक आज स्मरण कर सकता हूं। फिर भी चाहता हूं कि जो भी है उसे आपके सामने प्रस्तुत करूं। सो मिसाल के तौर पर मात्र डायरी।

जुलाई 1

दायरों से घिरे ये दिन भले नहीं लगते हैं। चौकोर चाहिए, बीच रास्ते चाहिए, कोने-कोने रूमाल फहराने वाले। घंटे-दर-घंटे शोर भरे अखाड़े। पठार के रास्तों को ही हो जाने दें अंधकारमय, मां सरीखे। दिन के किनारे मात्र जून के कारण भीग चुके थे। पैर मानो भूमि के भीतर रोपे हुए। जून। आदोरामतपोवनाधि-गमनम्। सब के आखिर में म्।

जुलाई 2

इरादा कर लिया जाय, तो कुछ तो जरूर घटित होता है। आज छः बजे उठ बैठा था। पर सोचा, दिन-भर क्या किया जाय ? पूरा दिन। बंद दिन। सारा दिन। तब सो गया।

जुलाई 3

बत्तियों की कतार। खंभों की पंक्तियां। दौड़ता शरीर। कौन समय, कौन गीत अपने लिए गुनगुनाता कुछ कहो मत, बोलो। डूब जाता है सब कुछ दिन ढलते ही। कुछ क्षण रुककर। मिला लो उन तमाम चीज़ों की आवाज़ों को, जिन्हें देखा है आज।

जुलाई 4

अपनी हद तक समय को तलाशता हूं मैं—मुकम्मिल। लम्हे पर शिल्प खुदे हैं मेरे रूप के। पलने में से छत पर पड़ी नज़रों ने इन्हें तराशा था तब से। उन तमाम शिलालेखों की पंक्तियां क्रमशः अस्पष्ट होती गयीं। इसी तरह मैं कहता गया। कहा, उनकी लाठियां बन गयीं। और पड़ीं अपनी पीठ पर। विजयी लखपति कोई और ही थे। हम केवल स्वामी झूठ के।

जुलाई 5

शतेषु जायते शूरः।

जुलाई 6

जनते वक्त जो मरी थी उस हमारी भेंस ने व्याकुल होकर मेरी याद की होगी। पड़ा चारा मैं उसे डाल देता था।

जुलाई 7

अपने छोर की पीड़ा को भूल कर वह मुझसे कुछ कहना चाहती थी। लेकिन उसके ओंठ कभी पहुंचे ही नहीं मेरे कानों तक। हर रोज़ यही होता रहा। इसलिए आज भी मेरी मात हो रही है।

जुलाई 8

कोई कहानी कही जा सकती है अधिकतम सौ बरसों की तो फिर कहानियां सुनाये ही क्यों ?

जुलाई 15

हर रोज़ कौन लिखता रहे ? वैसे देखा जाय तो यह सब वाहियात।

जुलाई 16

एक और छाता गुम हो गया। हर हफ्ते नये छाते की ज़रूरत पड़ने लगे तो फिर कैसे निभेगी ? पहले वाला तो मैं खुद कहीं भूल आया था। लेकिन इसे तो लगे हाथ किसी ने मार लिया। पूना में ठगों की कोई कमी नहीं। अब तीसरा छाता खरीदना है ही नहीं। किसी का चुरा लेंगे।

जुलाई 20

पूरा भीग गया हूं। किताबें भीग गयी हैं।

जुलाई 22

छाता खरीद लाया था। इस बार सैकेंडहैंड ले आया था। गुम भी हो जाय तो खास नुकसान नहीं। पर यह ज़रूर बचा रहेगा।

जुलाई 25

मधु इन मामलों को नहीं समझ सकेगा। आजकल डेढ़ सौ रुपये पाता है। आगे ो मिलेंगे, इस गणित के बूते वह समय काट रहा है। सुबह बिदा होते वक्त कह रहा था, तुम्हारे सब नखरे इसलिए हैं कि तुम्हें घर से पैसे आ जाते हैं।

जुलाई 28

मधु आया। और चला गया था। जाते वक्त उसके पास जैसे-तैसे किराये के पैसे बचे थे। मैंने उसे दस रुपये दिये। मुझे दया आयी। जो हम किसी को देते हैं वे अपने भी तो कहां होते हैं? सारा माल पिताजी का।

जुलाई 29

आखिर मैंने उसे कह ही दिया, भैयाजी, तुम्हारे पास साइकिल तो है ही। उस पर बैठे नहीं कि दौड़ने लगेगी। वह सचमुच साइकिल पर बैठकर चल दिया था।

जुलाई 30

अच्छी नींद सोकर जागा हूं, फिर भी पता नहीं इतनी थकान क्यों? रात में शरीर को इतना कौन रगड़ता रहता है?

जुलाई 31

जल्दी पहुंच सकूं इसलिए रिक्शा लिया। रास्ते में रिक्शा खराब हो गयी थी। फिर मैं पैदल चल दिया था।

अगस्त 1

आदमी के पास गोपनीय बातें बहुत थोड़ी होती हैं। हर आदमी नींद लेता है, खाता है, पीता है, पैदा होते ही पेशाब करना शुरू कर देता है, यह उसे कौन सिखाता है? जो पैदा होता है उसके माता-पिता ज़रूर होते हैं और हर आदमी सांस लेता रहता है। मतलब यह कि गोपनीय चीज़ें बहुत थोड़ी हैं।

अगस्त 2

मोतीचूर के लड्डू। सूजी के लड्डू।

अगस्त 3

उसकी इंद्रियां ईथर में अपना जाल जमाये बैठी हैं।

अगस्त 4

पुराने मित्र और पुरानी पहचानें। किसी की शादी हो गयी है, तो किसी को नौकरी मिल गयी है। क्षण-गोलों के उड़ जाने पर भी यहां गड़ी खूंटियां उखड़ती नहीं है। निरंतर फैलती चमड़ी को निकाल फेंक। ये मात्र रक्त-मांस-अस्थियों को साथ लिये कभी लुप्त नहीं होंगे, पूरे नहीं पड़ेंगे।

अगस्त 5

कांवरियां चाहो जितनी उंड़ेल दो, फिर भी रंजन (मट) भर नहीं सकता।

अगस्त 6

ठीक-ठाक दिखी इसलिए ठीक से बात की। वरना एक घंटे तक किसी लड़की से बात भी तो आखिर क्या हो?

अगस्त 7

एक विजिट के बीस रुपये।

अगस्त 9

कतिपय संकट टूट पड़े, पर कभी ढाल-तलवार खरीदी नहीं बाज़ार से।

अगस्त 10

पैरों के ऊपर वाले अवयवों की चिंता छोड़ पेट में जहर डाल लूंगा और दाग पोंछ दूंगा। कल्पना के पुल बांधूंगा। अपनी खुद की चमड़ी ओढ़े जी रहा हूं। सब-कुछ अपना ज़ाती है। हां, बीज है पिता का। पर वंश-वृद्धि के लिए यह जायज है। कल्पना की टांगों को थका दूंगा। दूसरे बापों का निर्माण करूंगा। फिर बाप, फिर पाप और यही एक बात। भक्षण-रक्षण अपने हाथ। मरना-उरना आगे वाले सोचेंगे। पूर्वजों के भाग्य अच्छे थे, उनमें नपुंसकता नहीं थी। इसलिए तो हमारे नसीब में हैं ये फेरे। मर्द बापों के कारण।

अगस्त 11

इन्हें गुमान है कि ये साहित्य लिखकर अमर हो गये। अमर साइकिल मार्ट। बहनचोद। मानो सूरज ठंडा होने के बाद भी या पृथ्वी के टुकड़े-टुकड़े हो जाने के बाद भी इनका नाम बचा रहेगा !

अगस्त 15

फटी हुई आस्तीन सीने बैठा था, तब पुराने सभी कुरतों की लाशें नज़र आयी थीं। मैंने इस लाश को भी खिड़की से बाहर फेंक दिया। नीचे बहती नदी।

अगस्त 16

बायीं हथेली की भाग्य-रेखा दायीं हथेली पर नहीं है।

अगस्त 17

वह न मिलता तो अच्छा होता। उससे मैंने कहा था, मैं एम० ए० कर रहा हूं।

अगस्त 20

मूंगफली के बराबर सुख, खेत की नाईं मेंड़, स्टेशन-सा विशाल संगीत, पूना मानो उपमा, जमुहाई के बराबर कागज़ पर लिखा ऐंद्रिय श्लोक।

अगस्त 22

चश्मे का नंबर शायद बढ़ गया है। संपूर्ण अंधापन। आकारों का अनाकारों में परिवर्तित हो जाना है। यही सीमा है, जहां से स्पर्श एवं श्रवण संवेदनों से सहज प्रतीत आकृतियां ढहना शुरू हो जाती हैं। तब फिर तप्त सुवर्ण की महानदी में आयी बाढ़ में मगरमच्छ की नाभि से खेलते रहना कोई बड़ी बात नहीं है। पूर्णत्व से घटा कर जो शेष निकला है उसे लेकर चिंता किसलिए ? आखिर इस चिंता की टेढ़ी-मेढ़ी रफतार किस सीमा तक ? अंतिम संख्या तक ही न ?

अगस्त 25

पढ़ाई शुरू कर दी है।

अगस्त 26

सांप के अंडे। हंस के अंडे। गरुड़ के अंडे।

अगस्त 30

पढ़ाई सिर्फ रातों में। दिन में लाइब्रेरी में जो हाथ लगे, पढ़ते रहो।

अगस्त 31

पढ़ा जा रहा है, समय कट रहा है।

सितंबर 1

ग म भ न से र स न ल तक।

सितंबर 2

सूत्र पाठ: ग्रेटेस्ट।

सितंबर 3

सूत्र पाठ : ग्रेटेस्ट।
वट बीज मंह साखा उपसाखा पत्रफलादि समूचा वट समायी है;
ग्रेटर : स्वदेश संबंधु त्याज्य: स्वग्राम सुबंधु त्याज्य:; संबंधियों का संबंधु: सो विशेषतां त्याज्य ॥

सितंबर 5

नींद भुला देती है। बहन-भाई, मां-बाप, मामा-मौसियां—सभी। और जाग जाने पर शरीर द्वारा फिर से इन रिश्तों के वस्त्रों से हमारा मन मंडित होने लगता है। वरना मन की हद तक तो हम सभी पूरे अनावृत। अंधेरे में कोई रिश्ता नहीं।

सितंबर 10

कागज़ बहुत सस्ता है, इसलिए लिखने वाले लिखते है। पढ़ने वाले पढ़ते हैं। एक चौकोर कागज़ की कीमत अगर एक लाख रुपये—बताइए, कौन लिखेगा? फिर भी अमीर लोग कागज़ ज़रूर खरीदेंगे। पर फिर भी दानी अमीर लोग इसे ज़रूर बेचेंगे। पर खरीदेगा कौन?

सितंबर 11

कीचड़ ने भी मेरे पैरों के नक्श उतार लिये थे। इसी शरीर के पड़ गये हैं सही-सही इसी मन पर पासे।

सितंबर 12

गर्जना करने वाले चाहे अनगिनत हों, फिर भी सुन सकता हूं मैं अकेला उनको। मुझ अकेले को मिनहा (घटा) कर दो, शेष सब एक होते हैं।

सितंबर 13

पुरानी किताबें बदल दी गयी हैं। नयी उनसे भी ज्यादा भयानक हैं। एक-एक बार तो उन्हें पढ़ ही लिया था। अब बताइए, इन पर इम्तिहान में कैसे कुछ लिखें ?

सितंबर 14

क्या यह इतना आसान है इतनी आर्द्रता भरे अक्षरों को पढ़ पाना ? पत्तों पर से भूमि पर उतर कर नीचे और नीचे गिरते जाने वाले कतरों में पड़ने वाले अक्षरों को ? धुंधले शीशे से वर्षा को देखते रहना। आसान नहीं ? मन पर उभरते हैं बौछारों के समारोह। नहीं होते कभी मिटे हुए : जो कोई पुल्लिग—जो कोई स्त्रीलिंग— जो कोई नपुंसकलिंग इन कतरों की उम्र को नकारेगा उस पुल्लिग को—उस स्त्रीलिंग को—उस नपुंसकलिंग को मैं चेतावनी दूंगा—ऐंठोगे नैठोगे पाया बरत मंवा दोगे। भीगोगे, डूबोगे, सरमांहि गऽ मरोगे।

सितंबर 15

सोचा, आज ज़रा विश्राम कर लें।

सितंबर 25

किसी द्रवीड़-आंखों की भौंहों के कटाक्ष। हवाएं समुद्र मथने वाली। किनारे खड़े ताड़ के पेड़ भूमि को सोखने वाले।

सितंबर 27

वरना मैं किसी और के साथ क्या इस तरह घुलना-मिलना चाहूंगा ? हमारे पुराने मित्र चले गये थे। सभी लोग कहीं-कहीं निकल गये थे। आज अगर वो होते तो औरों के साथ वक्तकटी पर सोचने की जरूरत ही क्या थी ? अच्छा, फिर इन्हें नाश्ता-पानी भी कराओ। फिर ये लोग हमारे साथ ठीक ढंग से घुलमिल भी नहीं सकते। कहते हैं, तुम बोर हो।

सितंबर 30

इस इम्तिहान में बैठकर भी तो क्या फायदा ? दाफाय क्या, अक्तूबर वाले ? वैसे भी तो छः महीने घर पर काटने ही पड़ेंगे। इसलिए बैठा ही न जाये, इसी में समझदारी है।

अक्तूबर 5

धैर्य, उत्साह, उमंग, चमक, जोश, ताकत, शक्ति, ताज़गी—इन शब्दों की ईजाद किसने की ?

अक्तूबर 7

चिंता छोड़, बस पढ़ाई करते रहें। किसी की छाया से भी दूर रहें।

अक्तूबर 10

ये दोनों जने कुछ भले दिखायी पड़ रहे हैं। परिचय पहले भी कभी हुआ था। लेकिन इधर उसी होटल में बैठे नज़र आते हैं, इसलिए मैं भी उनमें शरीक हो जाता हूं। दोनों के खास व्यक्तित्व हैं। उनमें एक है सिख। यह साहब तो कमाल के प्राणी हैं।

नवंबर 10

घर पर भी वही, यहां भी वही। इधर शहर में देखिये, या उधर गांव में—आदमी साले एक-से।

नवंबर 11

मुंबई की कमाठीपुरा बस्ती में सब्जी बेचने का धंधा है उसका। इसके पहले किसी मैस में काम करता था। परिचय हुआ। पता चला, रोज लगभग सौ रुपयों की सब्जी बेच लेता है। कहने लगा, शुरुआत में कुछ परेशानी हुई। लेकिन अड्डा जमा ही लिया। कहते हैं, एक बार सब्जी वाले किसी मवाली ने इसे खून की धमकी दी थी। पर इसने कहा, मैं खून से घबड़ाता नहीं हूं। मैं अपनी मिलकियत की जगह पर सोया करता हूं। हिम्मत है तो खून करके देखो। उसका खून हुआ नहीं। साला लेकिन मान लो, रात के वक्त नींद में चाकू चला दिया होता तो ? लेकिन ये लोग साले कुल मिलाकर बड़े निडर होते हैं।

नवंबर 15

यह बिलकुल आखरी विज़िट समझो। हमारा जो हश्र होगा हो जाने दो। लेकिन हम तुम्हें हर बार बीस रुपये नहीं देंगे। उसके बजाय किताबें खरीदेंगे। उसके बजाय कुछ खा-पी लेंगे।

नवंबर 16

शीर्षासन मुद्रा में बैठा हुआ एक राजा—वाह, क्या बात है !

नवंबर 17

क्यों जी, कौन-सी फिल्म देखी ? दि ग्रेटेस्ट वाहियात, ऑन दि अर्थ ।

नवंबर 20

पढ़ाई खूब !

नवंबर 21

पढ़ाई ।

नवंबर 25

पढ़ाई ।

नवंबर 27

व्याकरण की पढ़ाई ज़ोर-शोर से शुरू कर दी है । मात्रा-वृत्तों को जोर-जोर से रट रहा था । मज़ा आया ।

नवंबर 28

एक ऐसा हो जो केवल कारकों में ही बोले । और दूसरा वह जो क्रियाओं में कोई काल नहीं जोड़े ।

दिसंबर 4

फिर वही ।

दिसंबर 5

वही ।

दिसंबर 7

वही ।

दिसंबर 10

अभी इम्तिहान तीन-चार महीने दूर हैं । देखा जायेगा ।

दिसंबर 12

दस ढूंढो तो एकाध भला मिल जाता है और दो तिकड़मी ढूढ़ने की सोचो तो दस मिल जाते हैं ।

दिसंबर 14

लगातार तीन महीने । अखबारों को ध्यान से पढ़ता रहा था । लेकिन वही थकान, जैसे ताश खेलकर उठे हों । कुछ भी विशेष पल्ले नहीं पड़ता । कभी कहीं कोई

जंग छिड़ जाती है और फिर महीनों वहसें, किसी ने फलां बयान दिया, तिकड़मी नेता कुछ तो बयान देते ही रहते हैं—बस यही चलता रहता है। सच बताऊं? हर पांच-दस साल के बाद किसी से पूछकर पिछली घटनाओं को जान लें। बस, इतना काफ़ी है।

दिसंबर 15

इसे कंठस्थ करना हमसे संभव नहीं होगा। कोई कुछ भी कहता रहे। लेकिन अब तो कुछ कहने वाला भी तो कोई बचा नहीं है। पहले-पहले पिताजी गुस्सा होते रहते, अच्छा लगता था। हम अब बड़े हो गये हैं। और कारगुज़ारी, सो तो शून्य।

दिसंबर 20

आज बारह बजे नींद खुली। रोज़ की तरह वही कार्यक्रम। चाय के बाद कोई पत्रिका विज्ञापनों समेत पूरी-की-पूरी पढ़ डाली। खाना खाया और लौट आया। चार बजे तक लाइब्रेरी में बैठा पढ़ता रहा। 'लीला चरित्र' सचमुच ग्रेट है। केले के छिलकों का हाथी बनाकर श्री चक्रधर स्वामी उसे देखते रहते, यह बहुत ही ग्रेट।

इसी तरह किसी वस्तु को देखते रहने की क्षमता हम में भी आनी चाहिए। पर हम जैसे लोगों के लिए यह संभव नहीं होगा। हम ऊब जायेंगे। ऐसे महान लोगों की सारी कृतियां पढ़ लेनी चाहिए। कल पूना की सारी दुकानें छान मारीं। लेकिन 'लीला चरित्र' नहीं मिला। क्या धंधा करते हैं ये लोग, दलिद्दर! चार बजे चाय पी और कमरे पर लौट आया। सिगरेटें खत्म हो गयी थीं। इसलिए फिर एक बार नीचे हो आया था। साली बड़ी झंझट है। क्यों न चार-पांच सौ पैकेट इकट्ठे लाकर रख दें? पर क्या भरोसा, एक ही दिन में उन्हें पी न जायें? इधर गला वैसे भी निकम्मा हो गया है। सिगरेटों से ऊब गया हूं। जिन बातों से आदमी ऊब जाता है, उसे तुरंत बंद कर देना चाहिए। लेकिन और कोई शगल बचा भी तो कहां है? कहीं किसी स्कूल में नौकरी वगैरा पा लेते तो ठीक था। कम-से-कम वक्त तो कट जाता। लेकिन हम जब उठते ही हैं ग्यारह बजे, हमसे क्या बनेगी स्कूल की नौकरी? शाम को कैंटोनमेंट की सभी सड़कों पर चक्कर लगाकर स्टेशन पर आया। वहां वेटिंग रूम में तितर-बितर पड़े लोगों को एक नज़र देख लिया और संगम पुल पार करता हुआ जंगली महाराज रोड पर आ पहुंचा। मंदिर की घंटियां ज़ोर-ज़ोर से बज रही थीं। मंदिर में यूं ही घुस गया। फिर खाना खाया और उन दोनों के यहां झांक आया। ये ही। उसी टेबल पर।

दिसंबर 25

कुछ भी नहीं किया।

दिसंबर 26

कुछ भी नहीं किया। रात होटल में गपशप।

दिसंबर 28

रविवार। सारा दिन होटल में बैठा रेडियो सुनता रहा। आज जो गीत बजे, प्रायः मनपसंद निकले थे। दिमाग कुछ भारी हो गया था।

दिसंबर 30

इन दोनों के साथ यही परेशानी है कि ये किताबों पर बड़ी लंबी बहसें करते हैं। आखिर किताबों पर कितनी देर तक बात की जा सकती है? लेकिन यह अच्छा है कि बहस के साथ दूसरी बातें भी होती रहती हैं। सोच रहा हूं, इस किताब को आज रात सोने से पहले समाप्त कर दूं।

दिसंबर 31

मंडारदरे से भेंट हुई थी। पूछा, अब भी कोई पैरोडी वगैरा लिखते हो कि नहीं? उसने कहा, अरे भाई, अब कैसी पैरोडी? अब तो गृहस्थी में फंसे बैठे है। साहित्य-वाहित्य सब खत्म। अब तो ऊंची छातियां और औंधा तकिया। मंडार-दरे दि ग्रेट!

जनवरी 5

साले आज भी वहां नहीं थे। लेकिन इस तरह दूसरों पर खीभकर क्या फायदा? किसी पर अपनी जिंदगी को इतना निर्भर रखना ठीक नहीं है। समान विचारों के लोग एक जगह आ जायें तो परेशानी होती है, लेकिन समान अभिरुचि के लोग एक जगह आ जायें तो समय अच्छा कट जाता है। फिर भी यह बहुत बढ़िया बात नहीं है। कोई मिले या न मिले। अपने ढंग से खुद को सुधारते हुए ज़िंदगी जीना ज्यादा अच्छा है।

जनवरी 7

कभी यह भी संभव होगा, कभी वह भी संभव होगा। दिलकश सतरें संभव होंगी। ओठों पर रास्तों की तरह आग को निगलने का साहस जब नहीं है, तो क्यों कोई किसी को नकारेगा? सतीपति समभकर वे किसे चिता में रखने के लिए उतावले होंगे? जीने देते हैं न वे हमें? तब फिर क्योंकर किसी को कोसते फिरें? लेकिन

जब तक वहां होटल है, तब तक वो दोनों जरूर वहां हैं।

जनवरी 8

इसीलिए मुझे भूत की उंगलियां निकल आती हैं। इसीलिए मैं मां को ऐसा पत्र लिखता हूं।

जनवरी 10

उसे कितना भयंकर बुखार था, पूछो मत। पर किसी से कुछ भी नहीं बोला। यूं ही हाथ मिलाते वक्त गर्म लगा, इसलिए पता चला। वरना हमेशा की तरह बातचीत जारी थी।

जनवरी 12

भिखारी जरूरी हैं। इनके बिना अभावों की पूर्ति संभव नहीं है। साले इन शौकीन लोगों को सड़कों पर भिखारियों की मात्र उपस्थिति से ही कोफ्त होती है। क्या ये लोग इन्हें टालकर आगे नहीं निकल सकते? वास्तव में भिखारियों की संख्या में और वृद्धि होनी चाहिए। यह बात दूसरी है कि आज हमारे पास पैसे नहीं थे। लेकिन भिखारियों की सूरत से हमें कोई शर्म नहीं होती। रात में बराबर एक लारी पर गीत गाने वाला भिखारी, सचमुच ग्रेट है। क्या गीत है, वाह ऽ! इस अंधे की लाठी गयी छूट— और हो गयी कमज़ोरों से भेंट। ग्रेट।

जनवरी 13

अब तक कहा करता था, हम इम्तिहान में धोखा खा गये ज़रूर, लेकिन दूसरी उपलब्धियां क्या कम हैं? उपलब्धि। क्या उपलब्धि हुई? उपलब्धियों का ज़िक्र ही बंद कर देना चाहिए। वैसे कुछ भी उपलब्धि संभव नहीं है। जो कुछ भी प्राप्त किया होता है, उस सबको अंत में यहां छोड़कर चला जाना पड़ता है। लेकिन जिन्हें उपलब्धि कह सकते हैं, कम-से-कम कुछ चीज़ें जो हैं—जैसे पैसा, नौकरी, समाज में इज्जत-मान, पत्नी वगैरा। सच मानो, इनमें से एक भी चीज़ की कभी कोई उपलब्धि नहीं हुई है। फिर उपलब्धियों की गिनती करते रहना व्यर्थ है। इसलिए कुछ भी प्राप्त न करना ही बेहतर है।

जनवरी 15

अदृश्य नक्षत्रों का क्या कभी परिभ्रमण घटित होता है? मैंने बत्ती जला दी थी और सुबह तक डर के मारे लेटा पड़ा था। बस नींद की पिसाई करते रहो, यही अपने भाग्य में पक्का बदा है।

जनवरी 20

अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ अं अः।

जनवरी 22

समाज माज, कमल मल, अविनाश विनाश नाश।

जनवरी 25

मान लो तुम पिछले ही साल पास हो गये होते तो क्या करते ? तो एम० ए०। फिर आगे। आगे इसी तरह कोई और उपाधि वगैरा। आगे ? आगे नौकरी ? फिर शादी ? शादी वगैरा बाल-बच्चे ? फिर समाज में प्रतिष्ठा वगैरा। आगे क्या ? आगे कुछ भी नहीं। इससे तो यही अच्छा है कि जो आज गुज़र रही है, यही ठीक है। कम-से-कम तुम्हें पहले से ही इसका पता लग गया है। कभी तो यह सब करना ही होगा। इससे छुटकारा नहीं। साक्षात भगवान श्रीकृष्ण ने ही कहा है। लेकिन इसका ज्ञान आवश्यक है कि कुछ न करने का फल होता है भयंकर खाई में गिर पड़ना और विकलांग होकर ऊपर न चढ़ सकना—इस लिहाज़ से आज जैसे भी हो, बेहतर हो।

जनवरी 26

आखिरकार गोविंदा की प्रोफेसरशिप पक्की हो गयी। कोई प्रोफेसर मर गया था। गुणे साहब ने इमरजेंसी और अर्जेंसी दोनों एक साथ खयाल कर गोविंदा की नियुक्ति कर डाली। वह आज मिला था। उसी ने कहा, सांगवीकर, सर की मृत्यु का मुझे बहुत दुःख हुआ। मैंने कहा, बस करो। पंत गये, गोविंद आये। अच्छा ही हुआ। गरीब की ज़िंदगी सुधर गयी।

फरवरी 1

फरवरी आ गया है। कस के पढ़ाई शुरू कर देनी चाहिए।

फरवरी 10

पढ़ाई पूरी नहीं हो पा रही है। और फिर इस महीने के दिन हैं अट्ठाइस।

फरवरी 16

उसने लिखा है, ज़िंदगी जीने के लिए हुआ करती है। यानी कौन कहता है, ज़िंदगी मटरगश्ती के लिए है। कोई चाहे कुछ भी लिखता रहे। हमें अब इन बातों पर बिलकुल ध्यान नहीं देना चाहिए।

फरवरी 17

यहीं इसी जगह उसका नोट शायद गुम हो गया हो, वह उसे ढूंढ़ रहा था। और भी दो-तीन आदमी वहां आ गये थे और उसे ढूंढ़ने में मदद करने लगे थे। मैं भी

उनमें था। तब किसी ने कहा, भाई, जरा ठीक ढंग से अपनी जेब देख तो लो। पता चला कि नोट उसी की जेब में था। वह आदमी बहुत ही ईमानदार निकला। उसने फौरन कहा, है, जेब में है।

फरवरी 20

नये पांच कविता-संग्रह खरीद लाया था। एकाध कविता ठीक है। कुछ पंक्तियां मार्मिक लगीं। उन्हें नोट कर लिया।

फरवरी 21

दो सौ रुपये बचे हैं। फिर भी और दो सौ मंगवाने के लिए घर पर चिट्ठी लिख दी।

फरवरी 22

साला यह कौन लघु निबंध, उर्फ ललित निबंध। अब बताइये, इस पर इम्तिहान में क्या लिखें? पिछले साल बैठ जाते तो ठीक होता। वर्ष की हर नयी किताब साली सजा ही है। पर ये सजाएं भी तो कहां असरदार हैं? फांसी की सजा मिल जाये तो मुक्ति तो निश्चित है। यहां वह भी नहीं। इम्तिहान में मृत्युदंड का प्रावधान नहीं है। है तो सिर्फ सश्रम कारावास। बैठो फिर से। नयी-नयी किताबें —आखिर मृत्यु नहीं।

फरवरी 23

गुणे साहब के यहां इनसे पहले कभी परिचय हुआ था। नयी आलोचिका। आज मेरे साथ बैठी बेकार की बहस करती रही। मासिक पत्रों में बेकार की समीक्षाएं लिखती रहती है। साहित्य से यह तात्पर्य नहीं—साहित्य की यह परिभाषा सही नहीं है, साहित्य में अनुभवों की ईमानदारी जरूरी है, लगातार यही बकवास। अनुभव सच्चे हैं कि झूठे, इसका फैसला करने वाले हम कौन होते हैं? और साहित्य क्या कोई लफड़ा थोड़े ही है? या कि यह कोई वस्तु है? उपन्यास, कविता, नाटक—इन सबको भर दो एक बोरे में और कहो उसे साहित्य। खूब! आलोचकों का धंधा ही बड़ा अजीब है। उसी ने मुझे चाय पिलायी। लेकिन सुनने का काम मुझे करना पड़ा था।

फरवरी 28

मार्च शुरू हो जायेगा। पढ़ाई शुरू करनी ही होगी। अगर तुम इसके बाद पढ़ाई नहीं करोगे, तो तुम जैसा मूर्ख और कोई नहीं। होटल में उन दोनों के साथ बारह-बारह, एक-एक बजे तक गप्पें लगाना अब बंद कर देना चाहिए। पर वे लोग भी तो रोज-रोज कहां बैठते हैं? उनकी प्रतीक्षा में बेकार की सिर-दर्दी

बढ़ने लगती है। चाय पर चाय, पैकेट पर पैकेट।

मार्च 1

कुछ तो करना ही होगा। धमाका कर दें और उन्हें दिखा दें एक बार अपने बदन की राख। वरना प्रमाणित हो जायेगा कि हम मूर्ख हैं।

मार्च 5

भरी दुपहरी में टहनियों ने स्वीकार-नकार को अभिव्यक्त किया था। मैं फिर से एक बार इस सबको सत्य कहूंगा। आदि, मध्य, अंत—सबको।

मार्च 7

प्रत्येक आशिक को चाहिए कि वह अपनी प्रेमिका को मार डाले और उसकी चमड़ी की डफली बनाकर उस पर प्रेमगीत अलापे। वैसे इश्क वगैरा की बात करना बस ठीक ही है।

मार्च 8

शहर के हर आदमी के पास जिंदगी का कोई उद्देश्य जरूर होता है। बस के आने में जरा देर हुई नहीं कि साले सब-के-सब बेचैन, कुड़कुड़ाना, सरकार को गालियां —बड़े बोर हैं ये लोग। पूना में तो और भी। गांवों में यह बात अभी आ नहीं पायी है, शुक्र है। बस चाहे दो घंटे लेट हो जाये, उनका कोई नुकसान नहीं होता। और इधर ये शहरी लोग अपने चेहरों पर स्नो-पाउडर थोपे बस के इंतजार में बड़े अनुशासित ढंग से खड़े रहते है।

मार्च 10

कोई इन्हें बी० ए० की किताबें कहेगा? बेचलर आफ आर्ट!

मार्च 11

डॉ० गुणे से आखिर भेंट हो ही गयी। कहने लगे, घर पर आते रहना।

मार्च 12

मूर्ख तो नहीं हो तुम? अब भी गंभीर नहीं हो? साल गंवा दिया, फिर भी।

मार्च 13

इस मासिक पत्र को अब बंद कर देना चाहिए। साले चाहे जो छापते जा रहे हैं। इस बार तो सीधे-सीधे उत्तेजित करने वाली एक कहानी भी छपी है। और वह भी गैर-जरूरी, कलात्मक, ऊल-जलूल, तकनीकी लटकों का प्रयोग करके बात को

अप्रत्यक्ष ढंग से कहा गया है। कहते हैं नयी शैली वगैरा। इससे तो सीधे-साधे औरतों की तसवीरें छापने वाले पत्र क्या बुरे हैं ? कम-से-कम इनका दावा तो नहीं होता कि ये स्तरीय साहित्य के लिए समर्पित हैं। फिर भी इस पत्र को जारी रखना है। कुछ न सही, इसमें साने गुरुजी-फंड के लिए अनुदान देने वाले लोगों की सूची तो छपती रहती है। इसी में सुरेश का पता मिला था। सुरेश। होगा कहीं भी।

मार्च 15

यह हुआ न उपन्यास। जितना मोटा उतना ही खोखला। इश्क भी ऐसा कि उबाऊ लगे। और अंत ? अंत यह कि पट्ठा और पट्ठी शादी कर लेते हैं। अब सोचिए, इन लेखक महोदय के पचास उपन्यास कैसे होंगे ? एक बार तो इनके दर्शन करने ही चाहिए। बिलकुल सड़क पर ही उनका बंगला है। इम्तिहान की खातिर हमें वह उपन्यास पढ़ना पड़ा था। फिर भी यूं ही मनोरंजन के लिए पढ़ने वाले क्या कम होंगे ?

मार्च 16

कविता लिखने का करिश्मा केवल यही सज्जन कर सकते हैं। भावों की गिनती कर ली होगी पहले। और फिर सूची के अनुसार कविताएं लिखी होंगी। कहीं-कहीं पंक्तियों के बीच कहीं भी क्रियाओं को रख दिया गया है। शेष मुकम्मिल वाक्यों की कतारें। और पंक्तियां भी तो कैसी ? पूरी आदमकद। पन्ने के इस सिरे से उस सिरे तक जाने वाली। इन्हें पढ़ते हुए लगता है, मानो उपन्यास पढ़ रहे हैं। उबाऊ। उबाऊ। साला बिलकुल यमपुरी है। ऐसी पुस्तक पिछले वर्ष कोर्स में नहीं थी, पर हम निकले न कुलदीपक, इम्तिहान में बैठे ही नहीं।

मार्च 20

वे दोनों कमरे पर आये थे। कहा, क्यों आजकल कैफे नहीं आते हो ? मैंने कहा, तुम लोग जब वहां नहीं आते तो अकेला आदमी कितना बोर होता होगा, कभी सोचा है ? इस पर दोनों ने आपस में हाथ मिलाया था। उन्होंने कहा, भूल जाओ उसे। डू नॉट विजिट अस। इन बातों में वक्त गंवाने के लिए मैं कोई निकम्मा हूं ? चाहूं तो रोज़ जा सकता हूं। लेकिन मैंने जीने की अपने लिए एक आदत बना ली है। शेष सारे लोग मर भी जायें, हमारे जीने की शैली में कोई फ़र्क नहीं पड़ना चाहिए। लेकिन यह बात इन्हें समझाकर लाभ ही क्या है ? पर आज उनके आग्रह पर ग्यारह बजे तक बैठा रहा था। काफ़ी अंतराल के बाद ऐसी गपशप। इसलिए समय बरबाद होने का दुख नहीं हुआ था। लेकिन आइंदा

इस तरह रातें नहीं गंवानी हैं।

मार्च 25

पढ़ाई पूरी होने को है। बीच-बीच में चीज़ों को कंठस्थ भी किया करता हूं। लेकिन ज्यादा संभव नहीं होता। पड़ोस की खिड़की पर अंदर की विचित्र छायाएं नज़र आयी थीं। कुछ देर के लिए इन्हें देखने से सुख हुआ। लेकिन यह ठीक नहीं है। मकान-मालिक ने कहा था, पिछले महीने बिजली का बिल बढ़ गया था। तुम रात में पढ़ाई करते हो और दिन में सोते रहते हो। उसका लड़का मेरा दोस्त है, इसलिए चल जाता है। वरना यह ठीक नहीं है।

मार्च 30

इम्तिहान के लिए आठ ही दिन शेष। गंदा इम्तिहान खत्म हुआ कि समझो मुक्त हो गये। कम-से-कम एम० ए० के लिए इतना गंदा पाठ्यक्रम नहीं होगा।

अप्रैल 15

कोई बी० ए० कर लेता है, यानी क्या होता है ? तो साहब, चार वर्ष चलने वाले इम्तिहानों के पहले-पहले चार-छ: महीने गंभीरता से पढ़ाई कर लेता है। बाकी बचे महीनों का ? तो सिर्फ़ क्लास में जाकर बैठा करो। इश्क करो, नोट्स लेते रहो और इन्हें इम्तिहानों के पंद्रह-बीस दिन पूर्व तैयार रखो। पूरा ढकोसला। इम्तिहान अभी शुरू होकर चार दिन भी नहीं हुए है कि मैं ऊब गया हूं और हिम्मत हार गया हूं। यह ठीक नहीं है। वैसे अब तक पेपर बुरे नहीं रहे। पर लगता है, दिमाग ही कहीं सरक गया है। पढ़ने में मन नहीं लग रहा है। कल लिखते समय उंगलियां शायद काम न करें। अब सो जाना चाहिए। और कल उठकर सीधे अलका फिल्म हाउस में 'सडनली लास्ट समर' देख लिया जाय। फालतू लफड़े नहीं।

अप्रैल 16

सही में हम गधे निकले। एक वर्ष के लिए बेकार की चिंता मोल ली। पाठ्यक्रम की किताबें होंगी वाहियात। हमसे मतलब ? यह सही है कि इन्हें देखकर ऊब जाता था। लेकिन लेखकों के बारे में लगाव पैदा करना क्या हमारी जिम्मेदारी है ? जैसे भी हो, बीस-पच्चीस पन्ने लिख मारते। यह तो आसान है। मराठी-अंग्रेजी की सारी किताबें मनचाही कैसे हो सकती हैं ? गधा। गधा। गधा।

अप्रैल 17

इम्तिहान के एकाध महीना पूर्व पढ़ाई का मूड पैदा करने में क्या दिक्कत है ? लेकिन नहीं । बस सोचते रहे—यह कौन बड़ी बात है—सहज लिख मारेंगे—यह लेखक तो साला वज्र मूर्ख है---इस पर इतनी मेहनत करने की ज़रूरत नहीं—इस तरह । और फिर हज़ारों लफ़ड़ों में ध्यान अटका पड़ा है । इम्तिहान में पंद्रह दिन रह गये और हम हैं कि संगीत की महफिल में चले गये । वैसी महफिल फिर से कहां संभव थी ? दो-तीन राग ही सुने, पर मन हरा हो गया था । सुबह घर लौट रहा था, चारों तरफ कोहरा छाया था । अब देखिये, यही वक्त क्यों चुना प्रकृति ने, जो इतना कोहरा कि सड़कों की बत्तियां छिप गयी थीं । ऐसे माहौल में क्यों न लगे कि संगीत आत्मा की वाणी है ! आत्मा । बहनचोद आत्मा । फिर वही आत्मा । ऐन मौका साधकर फिर-फिर मृत्यु के विचार टपक पड़ते हैं । वैसे इसमें कोई खास फ़र्क नहीं पड़ता, लेकिन बार-बार वह एक-सूत्रता । कम-से-कम इम्तिहान के दिनों में तो इन मरियल विचारों को पास फटकने नहीं दिया जाना चाहिए । इम्तिहान खतम हो जायें, चाय पी लें और सारा दिन चैन से मृत्यु पर विचार करते रहें । अभी क्या पड़ी है ? और पूनावालों को तो ज्ञानार्जन का बड़ा शौक । कृष्णमूर्ति के व्याख्यानों के लिए गर्मियों के अलावा कोई दूसरा समय नहीं था क्या ? ऐन परीक्षा के दिनों में । आठ दिन । दिवाली की छुट्टियां कमरे में लेटे-लेटे गुज़ार दीं । फिर मटरगश्ती करते रहे । उन दिनों कोई कार्यक्रम आयोजित नहीं करेंगे ये लोग । पता नहीं क्यों, हमने इस तिकड़मी शहर को ही चुना ? कौन जाने, और कितने साल यहां गुज़ारने होंगे ?

अप्रैल 20

यह पहले ही तय होगा कि हम क्या होने जा रहे हैं । तब फिर आज माथापच्ची किसलिए ? अच्छा यही होगा कि आज फिर एक बार दोपहर 'सडनली लास्ट समर' और शाम 'लिजेंड ऑफ दि लास्ट' देख ली जायें । छः घंटे तो कट गये । बाकी समय उधर कहीं बाहर भविष्य को लेकर सोचने में गुज़ार देंगे । भविष्य यानी कब तक का भविष्य ? भविष्य, वैसे कुछ भी नहीं होता । खैर, इस पर कल सोचेंगे । शांति से ।

अप्रैल 22

मोरोपंत —1729-1794

सोरेन कीर्केगार्द—1813-1855

फ्योदोर मिखिलोविच दोस्तोयव्स्की—1821-1891

फ्रेडरिख नीत्शे—1844-1900

हरिनारायण आपटे—8 मार्च 1864 से 3 मार्च 1919
हमारे दादाजी—1868 से 1918
वो दोनों—

पहला 7 फरवरी 1935 से आज तक
दूसरे का भाई—5 मई 1936 से आज तक
स्वयं—5 मई 1938 से आज तक।

अप्रैल 25

घर पर अभी कोई खबर नहीं करवायी है। इम्तिहान अब भी चल ही रहे हैं। पर अब यहां रुके किसलिए ? घर जाना ही ठीक है। और जायें भी तो कहां जायें ? आखिर घर अपना ही तो है।

फिर मैं सांगवी से मुंबई चला आया था।

इस दुनिया में हर किसी का एक मित्र तो मुंबई में जरूर चाहिए। और फिर इस मित्र की आर्थिक स्थिति भी अच्छी होनी चाहिए। मधु पूना जब भी आता तो मुझसे कहता, तुम बंबई महज़ शौक के लिए क्यों नहीं आते ? मुझे लगता, वह मेरे यहां रुकता है, इसलिए औपचारिकता के लिए ऐसा कहता होगा। लेकिन यह सही नहीं था।

मैंने उसे सांगवी से अपनी स्थिति का संकेत करते हुए एक खत लिखा था। तुरंत जवाब आया कि तुम किराये-भर के पैसे जुटा लो और सीधे भायखला पहुंच जाओ। शेष मिलने पर।

मेरे पास जितना भी पैसा था, साथ लेकर मैं भायखला उतर गया।

उसने लिखा था कि दस बजे मैं तुझे घड़ी वाले टॉवर के नीचे मिलता हूं। अगर यह संभव नहीं हो सका तो तुम फलां-फलां स्कूल में आ जाओ।

मैं पहुंचा था तब आठ ही बजे थे। सुबह-सुबह मुंबई बहुत ही उत्साहपूर्ण थी। मुझे अच्छा नहीं लगा। मैं जिस बेंच पर बैठा था उसी पर हम्माल मेरी तरफ टांगें पसारे लेटा था। मैं खिसकते-खिसकते बेंच के सिरे तक सरक आया था। तब तो उस हम्माल ने अपनी टांगों को थोड़ा और सीधा कर लिया और आराम से सो गया। मैं वहां से उठ गया। तब उसने यह देखकर कि पूरा बेंच खाली हो गया है, पूरी टांगें पसार दीं।

दस बजे मधु पहुंच ही गया।

उसने कहा, लाल-लाल आइस-फ्रूट खाने वाली उस लड़की को देखा ? पूरी डंडी मुंह में ठूंस लेती है। फिर से बाहर निकाल लेती है। आऽहा !

मैंने कहा, मुझे नौकरी दिला दो।

उसने कहा, यह क्या मांगवी है?

फिर मधु ने अपना स्कूल दिखाया था। कहने लगा, पांच बजे तक अब तुम मुक्त हो, चाहे जो करो।

मैंने पूछा, मतलब क्या करूं?

उसने कहा, जो मर्ज़ी हो।

फिर मैं मुंबई में इधर-उधर टहलता रहा।

एक पान वाला गुस्से में अपने भाई को पीट रहा था—एक रुपये में चार आना कम? चार आना? फोकट भर्ती की मुंबई में—और उसे बेतहाशा पीट रहा था।

मुझे एक पॉलिश वाले ने अच्छा बेवकूफ बनाया था।

इसलिए मैं कुछ रुआंसा हो गया था और मधु के स्कूल लौट आया। पांच बजे तक स्टाफ-रूम में बैठा रहा था। वहां मुटल्ली औरतें आपस में गप्पे हांक रही थीं। एक औरत दूसरी से कह रही थी, तुम जैसी नटखट तो तुम ही हो। उनमें एक-दो जरूर खूबसूरत थीं।

पांच बजे मधु और मैं महालक्ष्मी पर उसके कमरे पर चले आये थे। मैंने कहा, मधु मैं घर से पैसे मंगाने वाला नहीं हूं। लेकिन इस बार मैं पूरी तैयारी से इम्तिहान देने वाला हूं। मार्च तक तो नौकरी करके पढ़ाई करनी है।

उसने कहा, पढ़ाई-वढ़ाई छोड़ो। पहले नौकरी की बात सोचो। मेरी स्थिति देख रहे हो न? दो साल हो गये, इंटर छूट गया। हिंदी की सनद पर यहां पढ़ाता हूं। लेकिन एक्सटर्नल बी० ए० में हिंदी लेकर पास होना मुश्किल होता है। इसलिए या तो नौकरी कर लो या सीधे घर से पैसे मंगवाते रहो, और केवल इम्तिहान के ही पीछे पड़ो।

उसकी यह राय ठीक नहीं थी। मैंने कहा, तुम मेरे लिए नौकरी ढूंढ सकते हो तो देखो, बाकी मैं देख लूंगा।

नौकरी तुम्हें मिल जायेगी। लेकिन फिर इम्तिहान तुमसे हो नहीं पायेगा।

इम्तिहान मैं देख लूंगा। मेरी पढ़ाई हो चुकी है। मैं इम्तिहान में बैठा नहीं था बस, और कुछ नहीं। मेरे लिए नौकरी ढूंढ़ते हो क्या?

तब तो तुम घर से कुछ और पैसे मंगवा ही लो। अरे, बी० ए० फेल वालों को बहुत ज्यादा तनखा नहीं मिलती। बेकार की माथापच्ची क्यों कर रहे हो?

उस दिन इतना ही हुआ। तब से मैंने मधु का पीछा छोड़ दिया।

दूसरे दिन ढंग के कपड़े पहनकर मैं एक वज़नदार रिश्तेदार के यहां पहुंचा। यह

थे हमारे चचेरे मामाजी ! मतलब, सगे चचेरे मामा। आप नौकरियां दिलवाने में माहिर हैं। इसलिए मुझे नौकरी मिलने के बारे में कोई शक नहीं था। हां, यह सोचकर जाना ज़रूरी है कि नौकरी क्यों करनी है। मामीजी घर पर ही थीं। उन्होंने कहा, इधर क्यों नहीं रुके ?

मैंने कहा, तुम्हारे ही यहां ठहरने वाला था, लेकिन एक मित्र ने आग्रह किया था। मैंने सोचा, क्यों न इन्हीं के पास नौकरी का जिक्र छेड़ें ? मतलब, शाम को मामाजी के लौट आने पर बात आसान हो जायेगी।

मैंने पूछा, मामाजी कब आते हैं ?

उन्होंने कहा, वो छः बजे आते हैं।

मामीजी निश्चित समझ गयी होंगी कि मैं उनके यहां नौकरी के सिलसिले में आया था। फिर भी उन्होंने पूछा, इनसे कोई तुम्हारा काम है क्या ?

मैंने कहा, कुछ नहीं। यूं ही पूछा।

दोपहर में मामीजी ने मुझे कंपनी देने के लिए मेरे ही उम्र के एक लड़के को बुलवा लिया था। उसका चेहरा इतना क्रूर था कि लगा, यह भी मेरी ही तरह निकम्मा है।

मैंने पूछा, तुम क्या करते हो ?

कुछ भी नहीं करता।

फिर उसने सारी कायनात के बारे में अपनी राय मुझे बतायी थी—नौकरियां करके और पैसे कमा कर संतोष मिलेगा, इसकी क्या गारंटी है ? इससे तो अच्छा यह है कि यूं ही इधर-उधर घूमते रहें। हर शाम पिताजी की गालियां सुनते रहें और अखबार देखते सारा दिन काट दें।

उसने कहा था, मैं ज्यादा पढ़ता-वढ़ता नहीं हूं। लेकिन जो भी पढ़ता हूं, गंभीर चीज़ें पढ़ता हूं।

उसने ताल्सताय पूरा पढ़ लिया था।

बहस के इरादे से मैंने उससे पूछा, मैंने तो सिर्फ 'वॉर एंड पीस' पढ़ा है।

तुमने इसका संक्षिप्त संस्करण पढ़ा होगा।

तुमने क्या उनके सभी उपन्यासों के मूल संस्करण पढ़े हैं ?

बेशक।

तब मैंने उसके साथ ज़्यादा बहस नहीं की। पर सोचा, इस ढंग के अध्ययन के लिए आदमी को या तो बेकार होना चाहिए या फिर बहुत ज्यादा जीवट वाला होना चाहिए।

शाम को मामाजी घर आये।

हमने भोजन कर लिया था। फिर भी नौकरी के बारे में कैसे बात छेड़ें, समझ नहीं आ रहा था।

उन्होंने सोचा होगा, शायद मैं उन्हीं के यहां सोने वाला हूं इसलिए मेरे सोने का इंतज़ाम कर दिया गया था। सुबह दस बजे से पहले हम उठने से रहे, इसलिए क्यों न अभी बात छेड़ दें और उन्हें मुक्त कर दें ? इसलिए मैंने घबराते हुए मुख्य विषय का जिक्र छेड़ा।

सारी बातचीत दबे सुरों में चलती है। मामाजी ने शुरू करते हुए कहा, तुम्हें और नौकरी ? किसलिए ?

मैंने कहा, मुफ़्त का पैसा खर्च करते-करते मैं ऊब गया हूं। मैं अनुभव प्राप्त करना चाहता हूं।

यह नोबल स्पिरिट तुम्हारे लिए ठीक नहीं है। अमेरिका में ठीक है। हम गरीबों के लिए जहां नौकरियां मिलना मुश्किल है, वहां तुम जैसे लोग नौकरियों के लिए परेशान रहते हैं, तो बड़ा आश्चर्य होता है। तुम्हें तो चाहिए कि बाप-दादाओं का पैसा खर्च करते रहो, और आराम से जिंदगी गुज़ारो। परीक्षाएं देते रहो। एकाध बार असफल भी रहो तो सात बार कोशिश करो। विदेश हो आओ—यह क्या पागलपन है।

मैंने कहा, मुझे नौकरी चाहिए। इसी पहली तारीख से।

आखिर उन्होंने कहा, अरे भाई, लेकिन इतनी जल्दी भी क्या है ? फिर भी मैं कोशिश करता हूं कि तुम्हें कम परिश्रम की नौकरी मिले। नौकरी दिलवाना मेरे हाथ में है। एकाध महीना रुक जाओ।

बाद में उन्होंने मुझसे पूछा, कि तुम्हें सुबह की शिफ्ट पसंद है या शाम की, बंदरगाह पर चलेगी या उसके किसी दफ्तर में ? फिर कहा, अगले महीने तुम्हें फिर एक बार यहां आना होगा। मेरा असिस्टेंट इंटरव्यू लिया करता है। इंटरव्यू होने पर एक महीना बाद या फिर उसके अगले महीने निश्चित रूप से तुम इधर ही आ जाओ। फिर नौकरी पक्की समझो। अब क्या पूना जा रहे हो ?

मैं वहां से चल दिया और दस बजे मधु के यहां चला आया। उसे सब बताया। अब मेरी नौकरी पक्की थी। मार्च तक नौकरी करेंगे और अप्रैल में धड़ल्ले से इम्तिहान। इस भूमि पर मैंने उस रात पूरे साल का कार्यक्रम बैठा लिया था।

सुबह जब मैं उठा, तब तक मधु निकल चुका था। पूरा दिन मैंने घुमक्कड़ी में काट दिया।

मुझे एक-दो रिश्तेदारों के यहां जाना था। लेकिन दोपहर हो गयी थी। सोचा, इस वक्त उनके यहां जाना ठीक नहीं है, इसलिए अपने गांव के डॉक्टर से मिलने के लिए मैं जे० जे० अस्पताल चला गया।

अनेक विभागों में उसकी पूछताछ करते-करते जब थक गया तो आखिरकार उसका पता लग ही गया। उसका नाम बताने पर मुझे भीतर जाने की इजाज़त

मिली। भीतर कतार से खाटें बिछी थीं। उन पर मरीज़ खामोश लेटे पड़े थे। वॉर्ड में भीतर दूर तक जाने के बाद डॉक्टर दिखायी दिया। किसी पेशेंट को औंधा लिटाकर और दो-तीन डॉक्टरों के साथ वह बहस कर रहा था। भीतर वॉर्ड में इतनी उमस थी कि मैं फौरन बाहर चला आया था।

बाहर पड़ी एक बेंच पर मैं टांगें पसार कर बैठ गया।

बायीं तरफ एक लंबी कतार देखी। एक-एक आदमी आगे की तरफ बढ़ता और हाथ में पकड़ी परची को खिड़की से अंदर सरका देता। भीतर खिड़की में कौन बैठा था, और क्या काम करता होगा, पता लगना मुश्किल था। पहले नंबर पर पहुंचा आदमी पीली परची अंदर बढ़ा देता था। काफ़ी देर के बाद खिड़की के मुंह से पंद्रह-बीस पुड़ियां, बोतल वगैरा उसकी हथेली पर रख दी जाती। तब पीछे वाला आदमी आगे खिसकता।

मेरा ध्यान बायीं तरफ के कमरे पर था, जिसमें हमारा डॉक्टर बैठा था। भीतर से कोई बाहर निकलता, दरवाज़ा खुलता और अपने-आप बंद हो जाता। हमारे वाला डॉक्टर अब भी बाहर नहीं आया था।

कतार पर और कमरे पर एक साथ अपनी नज़रें गड़ायें रहने के कारण मेरी आंखें दर्द करने लगी थीं।

अच्छा था कि हॉल काफी ऊंचा था। लंबा-चौड़ा। माहौल में चहल-पहल थी। टांगों का आगे-पीछे होते रहना। जूतों की आवाज़ों के कारण हॉल इतना डरावना लग रहा था कि मेरी इच्छा हुई कि ज़ोर-से कूऽक···की आवाज़ लगायें, देखें कैसे सुनायी देगा? मरियल किस्म की इस खुसर-पुसर के कारण ही शायद भीतर के सारे मरीज़ मर जाते रहे होंगे।

टेढ़ा मोड़ लेकर भी वह कतार पहले ही की तरह उतनी ही लंबी बनी रही थी। उसमें से एक-एक आदमी तो कम हो ही रहा था। पर नया आदमी कहां से जुड़ जाता था, पता नहीं चल सका।

लेकिन उस वक्त मेरा ध्यान दस-बारह साल की छरहरे बदन की शांत किस्म की एक लड़की पर टिका था। कतार आगे बढ़ रही थी, इसका पता इसीलिए चल रहा था।

लड़की कतार के टेढ़े मोड़ के पास कहीं ओझल हो गयी थी।

फिर काफी देर तक उसका वह हरे रंग वाला ढीला स्कूली फ्राक सिर्फ दिखायी दे रहा था। अब आठ-दस लोगों के बाद नंबर लगने ही वाला था। लेकिन पीछे कतार पहले की तरह उतनी ही लंबी थी।

लड़की अकेली नहीं आयी थी। एक आदमी जो उसका बाप या मामा या और कोई भी हो सकता था लगातार उसके करीब आता और कुछ बतिया कर वहां से निकल जाता। कभी सामने वाले बेंच पर आकर बैठ जाता, फिर इधर-

उधर टहलता हुआ दीवार पर लगी तसवीरें वगैरा देखता रहता। फिर लड़की तक जाकर लौट आता। यह आदमी जो उसका बाप या मामा या और कोई था, लड़की की तरह ही काला और स्मार्ट था। दोनों के कपड़े सस्ते किस्म के थे। उस आदमी ने पुराना पालिश किया जूता पहन रखा था। पतली टांगों वाली लड़की के छोटे-छोटे पैरों में प्लास्टिक की चप्पल थी। आदमी के हाथ में रजिस्टरनुमा कोई बहुत बड़ी फाइल या और कोई चीज थी।

जैसे-जैसे कतार आगे बढ़ती गयी लड़की उस टेढ़े मोड़ तक पहुंच गयी। उसके गाल और गर्दन पर बालिश्त भर लंबा सफेद दाग दिखायी दिया। तब से मैंने अपनी नज़रें उस पर पक्की गड़ा दी थीं।

आगे सरकते-सरकते लड़की मेरी बायीं तरफ बिलकुल मुझसे दो कदम की दूरी पर पहुंच गयी थी। अब वह सीधी खड़ी थी। उसकी दृष्टि खाली-खाली थी।

उसका मामा या बाप अब उसके करीब, बिलकुल करीब जाकर खड़ा हो गया था। सब-कुछ देख रहा था। लड़की अब खिड़की के बिलकुल निकट पहुंच चुकी थी। उसका बाप वहां आया, लड़की को धकेलकर उसके नंबर पर खुद खड़ा हो गया।

लड़की कतार से हटकर एक तरफ अटेंशन की मुद्रा में खड़ी हो गयी। उनका नंबर आ गया था। आदमी ने परची अंदर कर दी। लड़की फिर से खिड़की के पास नहीं आयी। उधर ही खड़ी रही थी। उसने सिर्फ़ एक बार अपना हाथ उठा कर नाक खुजायी थी और फिर से नीचे उसे झूल जाने दिया था।

दवाई की पुड़िया लेकर वह मेरे सामने आकर खड़ा हो गया था। पुड़ियें को रूमाल में लपेटकर उधर खड़ी लड़की को उसने इशारा किया था। अब लड़की कतार को छोड़कर वहां आ गयी थी।

वे दोनों वहां से चल दिये थे।

इस दौरान आदमी के पास की रजिस्टरनुमा फाइल से कागज़ का एक छोटा टुकड़ा फ़र्श पर गिर पड़ा था। आदमी का उधर ध्यान नहीं था। मैंने अपनी टांगें समेट लीं। लड़की धीरे से झुकी और उसने कागज़ उठाकर आदमी के हाथ में थमा दिया। वह उस आदमी के पीछे-पीछे हॉल के बाहर निकल गयी।

उसके चले जाने के बाद कतार की तरफ देखने का मेरा मन नहीं हो रहा था। पूरी कतार पहले ही की तरह खचाखच भरी हुई। जिस पर ध्यान केंद्रित हो, ऐसा एक भी विशिष्ट आदमी उसमें अब नहीं था। मैं इतना थक चुका था कि लगा, अपना डॉक्टर दोस्त अगर ना ही मिले तो अच्छा है। इस सोच में मैंने यूं ही भीतर झांका तो देखा कि सामने वाली टेबिल के पास तीन-चार डॉक्टर खड़े गपशप कर रहे हैं। मुझे देखते ही हमारे वाले डॉक्टर ने कहा, हॅलो, मीट माई फ्रेंड्स। फिर वह मुझे डॉक्टरों वाले साफ-सुथरे कैंटीन में ले गया और वहां खूब

नाश्ता करवाया। उसने पूछा, ब्रांडी वगैरा का मन हो तो प्रबंध हो जायेगा।

उसके बाद मैं मधु के कमरे पर चला आया। मधु और मैं समुद्र के किनारे टहलने चले गये। समुद्र में आत्महत्या कर लेना कितना खूबसूरत होगा!

मधु ने कहा, मछलियां खा लेती होंगी।

लेकिन हवा के मुकाबले पानी की मौत ज्यादा खूबसूरत।

हम वहां काफ़ी देर तक बैठे रहे। मधु को किसी ट्यूशन को जाना था। मैं ट्रेन से सीधे कमरे पर लौट आया।

गाड़ी में भीड़ नहीं थी। मेरी बगल में गंदे किस्म का एक आदमी बैठा हुआ था। अपनी थैली मे उसने नयी शीशी निकाली। शीशी पर लिखा नाम, उसका रंग वगैरा काफ़ी गौर से देखते रहने के बाद उसने मेरी तरफ यों देखा—जैसे मैं अब तक उसकी तरफ बड़ी उत्सुकता से देखता रहा हूं। फिर उसने शीशी खोली। थोड़ा-सा इतर अपने रूमाल पर लगाया। शीशी बंद कर दी। रूमाल को सूंघकर फिर मे मेरी तरफ बिलकुल पहले की तरह देखा। उसने एक बार और शीशी खोली और अंगूठे पर उसे औंधा किया। मेरी तरफ अंगूठा बढ़ा कर मेरी हथेली के पीछे थोड़ा-सा मला। उसने कहा, इत्र बढ़िया है। फिर वह अगले स्टेशन पर उतर गया था।

आगे वाली सीट पर बैठे एक आदमी के निकट की जेब में किसी अभिनेत्री की खूबसूरत तसवीर थी।

मैं महालक्ष्मी स्टेशन उतरा। स्टेशन से बाहर निकल आया। वहां टोपी पहने एक आदमी ने मुझसे पूछा था, तुम्हारे पास पांच-दस पैसे होंगे? कुछ आगे निकल जाने के बाद मेरे ध्यान में यह बात आयी। फुटकर पैसे गिनता हुआ मैं पीछे मुड़ा था। जेब से चवन्नी निकाली और उस आदमी को ढूंढ़ने लगा। तब तक वह गायब हो गया था। भीड़ में टोपी वाला एक भी आदमी नहीं था। मैं भीड़ को चीरता हुआ बाहर निकल आया, पर वह नहीं मिला।

तब मैंने चवन्नी की भेल खरीदी। पैदल मधु के कमरे पर पहुंच गया। बिस्तर पर लेट गया। सोचा, ज़िंदगी में कुछ भी दम नहीं है।

पैसों का महत्व आज पता चल रहा है। इससे पहले कभी पैसे के कारण झुंझलाहट नहीं हुई थी। क्योंकि पैसा पास रहता। पैसा पास रहते हमने इस बीसवीं शती को भोगा है। बिना पैसों के रहने की नौबत हम पर कभी नहीं आयी। इसलिए तो इस साल अब नौकरी करनी ही है। लेकिन नौकरी मिलने के लिए अभी दो

महीने पड़े हैं। तब तक क्या करें ? पूना चले जायें। पर तब तक भी तो पैसा चाहिए। है न परेशानी ?

कम-से-कम डेढ़ सौ रुपये तो ज़रूरी हैं। मौसी के यहां बिलकुल नहीं रहना। डढ़ सौ मधु के पास से मिलने मुश्किल हैं। कल एक रिश्तेदार के यहां जाना है, क्यों न उन्हीं से मांग लें ?

मधु आया और फौरन सो गया। उसने पूछा, खाना कहां खाया ?

मैंने कहा, फोर्ट में।

दूसरे दिन दोपहर तक सोता रहा था। उठा। समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करें ? यहां आया हूं, तब से स्नान नहीं। सुबह-सुबह यहां का पानी चला जाता है।

मधु ने बालटी भर कर रखी थी। मुंह वगैरा धोया और तेज़ धूप में महालक्ष्मी स्टेशन चला गया। कोई गाड़ी नही थी। काफ़ी उमस थी। टी-स्टॉल का एक आदमी मेरी तरफ पीठ किये खड़ा था। मैंने चाय पी और पैसे प्लेट में डाल दिये। प्लेट को उसने उस स्थिति में हाथ बढ़ाकर उठाकर रख दिया था। एक अपाहिज बुढ़िया भीख मांग रही थी। बिलकुल मेरी टांगों के पास। किसी को भ्रम हो सकता था कि वहां कोई भीख का नाटक खेला जा रहा था।

काफ़ी देर के बाद कोई गाड़ी आती हुई दिखायी दी थी। मैं चढ़ने के लिए तैयार था। पर गाड़ी वहां बिना रुके खड्-खड् आवाज़ करके आगे निकल गयी थी। चलती गाड़ी में खड़े लोगों ने उस अपाहिज बुढ़िया और मेरा प्रसंग करीब से देखा होगा। गाड़ी चल दी। मैं और बुढ़िया फिर बच गये थे।

अपने रिश्तेदार से मैंने पैसे मांगे। तकदीर अच्छी थी, शनिवार के कारण वे घर पर ही मिल गये थे। मैं मांगने वाला था डेढ़ सौ। लेकिन मुंह से अचानक निकल गया, चार सौ। उन्होंने तुरंत चार सौ रुपये दे दिये। मैंने कहा, मैंने अभी-अभी खाना खा लिया है। और फौरन मधु के यहां चला आया।

रास्ते में भरपेट खाना खाया।

मधु अब भी घर पहुंचा नहीं था। वैसे मुझे मधु के यहां दो-तीन दिन तक सोते पड़े रहने के अलावा और करना ही क्या था ? मधु रात को जब भी आता, फौरन सो जाता। अकसर मैं ही बातें करता रहता और वह सो जाता। और फिर धीरे-धीरे मधु के प्रति मेरे मन में तिरस्कार पैदा हो गया था। उसने कहा था, शनिवार-रविवार छुट्टी के दिन हम खूब सैर करेंगे। पर उसे आने के लिए अभी दो-एक घंटे बाकी थे। तब मैंने अपनी पेटी भर ली। मधु को मैंने कोई चिट्ठी नहीं

लिखी। ताला बंद करके चाबी कमरे में डाल दी और पूना के लिए चल दिया था।

डेढ़-दो महीने के बाद पूना का अभिनंदन करने का अवसर मिल रहा था। मैं खुश था। वैसे पूना यानी कोई पैराडाइज़ तो नहीं है। कुछ लोगों के लिए वह ऐसा हो सकता है। लेकिन इन दो महीनों में मैंने सचमुच शैतान की तरह पढ़ाई की थी। बंबई में एक बार नौकरी में फंस गया तो फिर पढ़ाई के लिए इतना समय नहीं मिल सकेगा। इसलिए सोचा, यही मौका है, सब-कुछ पूरा कर लेना चाहिए। इसलिए मैंने इम्तिहान का पाठ्यक्रम खरीद लिया था। बदली हुई सारी किताबें तुरंत ले आया। एक पखवाड़े में, रातों में जागकर इन्हें पढ़ कर खत्म कर लिया। दिन में लाइब्रेरी में चला जाता। ज़रूरी नोट्स फटाफट बना लिये थे।

लेकिन अब भी मुंबई से कोई चिट्ठी नहीं थी। चिंता होने लगी थी।

आख़िर दो चिट्ठियां मिलीं।

पहली घर से कि तुम्हारा यही पता भी तो सही है न? बिना सोचे-समझे तुम निकल गये। यह अच्छा नहीं हुआ। हमारा तुम पर कितना प्यार है, इसे तुम समझ नहीं सकोगे। पिछले दो महीने हमारे लिए बहुत ही बुरे रहे। गांव में किसी को पता न लगे, इसलिए हम खामोश थे। और तुम्हारी चिट्ठी का चोरी-छिपे इंतज़ार कर रहे थे। मामा साहब की चिट्ठी आयी तब कहीं तुम्हारी कुशलता का पता चला। तुम उनके पास नौकरी के लिए क्यों गये? वैसे तुम्हें नौकरी की क्या ज़रूरत है? तुम्हें पैसों के लिए हमने कभी परेशान किया था क्या? इंगले साहब के पास से तुम्हें लेकिन इतने पैसे लेने नहीं चाहिए थे। उनके चार सौ रुपये हमने भेज दिये हैं। तुम्हें ज़रूरत हो तो सूचित करो। तुम्हारा पता यही है न? हमने लंबी-लंबी चिट्ठियां अलग-अलग पतों पर भेजीं। थक गये पर कोई लाभ नहीं हुआ, इसलिए यह छोटी-सी चिट्ठी लिखी है।

दूसरी चिट्ठी मामा जी की—कि तुम्हारे लिए नौकरी ढूंढ़ कर रखी थी। लेकिन तुम्हारे पिताजी ने हमें ही दोष दिया और आगाह किया है कि उसे नौकरी-वौकरी के फंदे में मत फांसिये।

इसके बाद महीने तक खामोश बैठा रहा।

एक बार सड़क पर नाना और मौसी से अचानक भेंट हो गयी थी। उन्होंने भरी सड़क पर मुझे आड़े-हाथों लिया था। तुम पूना कब आये? रहते कहां हो? एकाध दफे हमारे यहां नहीं आ सकते थे? तुम्हारे माता-पिता ने लंबी-लंबी चिट्ठियां

लिखकर हम ही को दोष दिया है कि हम तुम्हारी तरफ ध्यान नहीं देते । इसी शहर में तुम लोग रहते हो, फिर भी हमारे लड़के को अच्छे संस्कार नहीं दे सके ? अब बताओ, क्या तुम बच्चे हो जो इस तरह पेश आते हो ? बेवकूफ हो। तुम्हारे हमारे यहां न आने से हमारा कोई नुकसान नहीं । जो आयेगा उसके लिए घर है, जो चला जाय उसके लिए दर है। तुम आवारा हो । तुम जैसी औलाद हमारे वंश में छप्पन पुश्तों में कभी पैदा नहीं हुई थी। और फिर जेबों में सिगरेट का पैकिट लिये मटरगश्ती करते रहते हो।

मतलब, कुल मिलाकर नौकरी वाली बात हवा में रह गयी थी। अपने से सब-कुछ जमने वाला नहीं है । जहां-तहां घर बाधा बनकर खड़ा हो जाता है। यह हमारे पैर पूरी तरह घर में फंस गये हैं। इकलौते जो ठहरे।

इसके बाद नियमित रूप से डॉक्टर के यहां जाने लगा था। इंजेक्शन लेने लगा था। डॉक्टर ने कहा, एक साल में तुम्हें ठीक किये देता हूं। लेकिन ट्रीटमेंट रेगुलर लेनी पड़ेगी। मैंने सभी लफड़ों को एक तरफ कर दिया और हर मंगलवार डॉक्टर के यहां जाने लगा था। दवाई बराबर ले रहा था। डॉक्टर को दिखाकर बाहर निकलता और नीचे शाही होटल में नाश्ता वगैरा कर लेता और बैठा रेकॉर्ड्स सुनता रहता। वेटरों को भारी टिप देने लगा था। मैंने कहा, हटाओ सब बातों को। जान सुखी तो सब सुखी।

लेकिन इस तरह ऐश करना भी हमारे लिए कहां आसान था ? देर तक सोते रहने की आदत बरकरार थी। और फिर जो भी कर रहा था सब औरों के लिए ही तो कर रहा था। अपने लिए इसमें क्या था, इस पर काफ़ी सोचा पर कोई उत्तर नहीं मिल रहा था।

तब फिर क्या किया जाये ? यह देश ही भिखारी है। यहां युवाओं के करने के लिए कुछ भी नहीं है। सारा माहौल बूढ़ा है। यहां के नवयुवक बिलकुल मेरी तरह हैं। लगता है, यहां जल्दी-जल्दी बूढ़े हो जायें तभी कोई तसल्ली संभव है। युवा चेतना वगैरा के लफड़ों में पड़े नहीं कि समझो परेशानी शुरू। मतलब यह कि हम बिलकुल उचित मुल्क में पैदा हुए हैं।

सारी दुनिया भिखारी है। यहां सिर्फ एक विचार चला आ रहा है कि युवकों को कुछ तो करना चाहिए। लेकिन कर-करा के जो हाथ आता है वह सिवा बुढ़ापे के और कुछ होता ही नहीं।

पिछली छुट्टियों में सोचा था कि परीक्षा-वरीक्षा कुछ नहीं करनी है। किसी घेरे में फंसना नहीं है। घुटन होते ही वृत्त को तोड़ देना ज़रूरी है।

लेकिन ये सारे इरादे भुला देने पड़े थे। आज फिर यूनिवर्सिटी की उस फालतू डिग्री के लिए इस साल को भी खूंटी पर लटका देना पड़ रहा है।

फिर भी मैंने पूरा वर्ष ऐश करते गुज़ार दिया था। पढ़ाई करनी नहीं है।

अब तो मनचाहा सब-कुछ करते रहना है। सैर, मटरगश्ती, होटलों में चार-चार घंटे बैठे रहना, मन हुआ तब फिल्में, कभी अकेले तो कभी पै को साथ लेकर माथेरान, महाबलेश्वर की सैर।

पै मेरा नया दोस्त। लॉज पर मेरे बगल वाले कमरे में रहता है। तीन सौ रुपये तनखा पाता है। पूरे खर्च कर डालता है। ढंग के कपड़े, वक्त पर खाना-पीना, नियम से संगीत की क्लास और मेरे साथ सैर के लिए तैयार। इन बातों में कोई बुराई तो नहीं है। हमसे मित्र की तरह पेश आता है न ? और क्या चाहिए ? पै जैसे लोगों से पूरा समाज अगर भरा हो तो किसी को किसी से तकलीफ की गुंजाइश ही नहीं रहेगी।

पै की एक बात बुरी थी। वह था वेश्याबाज़। इस संबंध में मैंने उससे कभी कुछ नहीं कहा। उसका कमरा जब भी बंद रहता, मैंने कभी दस्तक नहीं दी। रात-बेरात ज़ीना चढ़ते वक्त मैं उसके साथ किसी लड़की को उतरते देख भी लेता, तब भी उधर ध्यान नहीं देता। बस उसे हैलो करता और सीधे ऊपर अपने कमरे में।

पै हर रोज़ नयी-नयी लड़कियां ले आता। एक बार तो मैंने देखा कि मेरे साथ कभी पढ़ने वाली अच्छे घर की एक लड़की उसके साथ थी।

हां, एक बार मैं पै पर उखड़ गया था।

रात के कोई दस बजे होंगे। मैं कमरे पर आया था। दरवाज़ा खोला। इतने में पै जीना चढ़कर ऊपर आया था। उसके पीछे-पीछे दो लड़कियां। दोनों कमसिन और खूबसूरत थीं। पै मुझ तक चला आया था। लेकिन वे दोनों नीचे सीढ़ियों पर रुकी रही थीं।

पै ने कहा, सांगवीकर, प्लीज़ एक बात करो। वह दूसरी, लाल स्कर्ट वाली है ना— बॉब वाली नहीं, दूसरी—उसे तुम अपने कमरे पर लेकर बैठो। मैं एक को भीतर ले जाता हूं।

पै, क्या मतलब है तुम्हारा ?

ओ भाई, वह बॉबी आने के लिए तैयार है। लेकिन दूसरी कहती है, कि तब तक मैं क्या करूं ? इसलिए मैं चाहता हूं कि तुम थोड़ी देर के लिए उसे अपने कमरे में बैठाये रखो। कुछ भी करो।

नो। सॉरी पै !

और मैं कमरे में घुस गया। मैंने भीतर से दरवाज़ा बंद कर लिया। दोनों लड़कियां बड़ी उत्सुकता से हमारी तरफ देख रही थीं। मैंने पै का शिकार गंवा दिया था। उसने इन स्कूली लड़कियों को बड़े प्रयासों से हासिल किया था। लेकिन ये दोनों लड़कियां इतनी शर्मीली थीं कि एक-दूसरी को छोड़कर अकेली जाना नहीं चाह रही थीं।

बाद में रात को पैं ने मुझसे कहा, सांगवीकर तुम्हारी बात भो सही थी। पर कुछ भी कहो, तुम आखिर खूब मिले।

बुंदी सभी मायनों में मुकम्मिल नारी। रंग, चेहरा, उंगलिया, आंखें, छाती, गर्दन—पूरी नारी। सालिम।

उसी ने कहा था, मैं तुम्हें जानती हूं वगैरा। हम फलां-फलां जगह पहली बार मिले थे वगैरा। देशपांडे आजकल दिल्ली में है वगैरा। तुम्हारे बारे में कितनी कुछ ग्रेट राय है उसकी वगैरा।

मैंने कहा, देशपांडे बिलकुल बुद्धू है।

उसने कहा, बिलकुल सही।

फिर उसी ने कहा, कहां जा रहे हो?

मैंने कहा, अब जब इतनी देर 'ज्ञानेश्वरी' पढ़ ली है तो चाय तो बहुत ज़रूरी है।

मेरे सिर्फ पूछ लेने पर वह मेरे साथ चली आयी थी।

उसे एक लत थी, लगातार बड़बड़ाती रहती। मुझे लगा, उसे कोई श्रोता चाहिए होता है। इसलिए तो यह हमारे पीछे पड़ी हुई है। कई बार मैं कंटीन में अकेला बैठा रहता, वह मुझे पकड़ लेती। लेकिन वैसे भी इसकी यही खूबी थी। कुल मिलाकर उसके कारण मैं कभी ऊबा नहीं था। उसके पास नये-नये किस्सों का स्टॉक भरा पड़ा रहता। परसों फलां राजनीतिक नेता ने क्या कहा था, उसके बाद उस नेता की प्राइवेट बातें शुरू। अमुक पुस्तक आपको कैसी लगी? फिल्मों के बारे में तो पूछो नहीं। उसे अपने भाई से फिल्म का पास मिल जाता। कभी दो पास मिल जाते तो वह मुझे चलने के लिए कहती। लेकिन मैं यह कहकर उड़ा देता कि मैंने तो यह फिल्म पहले ही देखी है। और फिर उस फिल्म को बाद में अकेला ही देख आता।

बुंदी ने उसकी नज़र में किसी बहुत अच्छी फिल्म का ज़िक्र किया था। कहने लगी, तुम ज़रूर देख आओ। किसी घर में बच्चों को भूतों ने पछाड़ लिया है। बच्चे बड़े शरारती। बच्चों की टीचर भूतों को ढूंढ़ निकालती है। छत पर उसे पहले एक अस्पष्ट-सा भूत नज़र आता है। कोट पहना हुआ, चौकोर चेहरे वाला। ऊपर परिंदों की भीड़ और सूर्य की तेज धूप के कारण उसकी आंखें चुंधिया जाती हैं। भूत बहुत ही धूमिल। तब टीचर दौड़ी-दौड़ी छत पर पहुंची। देखती क्या है कि सैकड़ों कबूतर और उनकी आवाज़ें सुनायी दे रही हैं। यह शोर तो बहुत ही खूबसूरत है। तुम ज़रूर देखो।

बाद से मैंने यह फिल्म देखी थी। उस शॉट की तरफ ही मेरा ध्यान था। कब आता है, देखता रहा था। बुंदी का वर्णन बिलकुल सही-सही था। वह दृश्य तो निहायत खूबसूरत था।

उसके बाद एक बार फिर बुंदी मिली थी। लेकिन फिल्म के बारे में कुछ भी नहीं बोली। अब की बार बिलकुल नयी बात।

सांगवीकर, कल है न, बड़ा मज़ा आया। नीचे वाली मंज़िल पर मकान-मालिक का नान्या नामी एक बंदर है। मैं कॉलेज जा रही थी। मैंने मज़ाक के तौर पर साइकिल की चाभी बंदर के सामने कर दी। बंदर लपका और उसने मुझसे चाभी छीन ली और उसे निगल गया। मुझे लगा, अब चाभी गयी। अब कॉलेज पैदल जाने की नौबत थी। बाबू मेरी साइकिल चाभी वाले के पास ले गया। मकान-मालिक जब लौट आया हम नान्या के बारे में उसके साथ उलझ गये थे। मालिक ने कहा, एक ब्रेड का टुकड़ा लाइये। उन्होंने ब्रेड नान्या को दिखायी और कहा, नान्या चाभी निकालो। तब नान्या ने फौरन मुंह के भीतर दूर से चाभी निकालकर ज़मीन पर रख दी और ब्रेड खाने लगा। अब हमारे पास साइकिल की दो चाभियां हैं।

इस तरह की अटरम-सटरम बातें करते रहने का बुंदी को बड़ा शौक।

एक बार उसने कहा, मैं आज दो पास ले आयी हूं। आज हमें फिल्म देखने चलना ही है।

मैंने ना कही।

उसने कहा, तब फिर टहलने के लिए कहीं दूर वगैरा?

मैंने ना कही।

गरदन तिरछी करके उसने कहा, आज हवा कितनी सुहानी है!

मैंने कहा, हां!

फिर चला जाय? क्या खयाल है?

मैं उसके तमाम नखरे देख ही रहा था। मैंने सिगरेट सुलगायी।

मेरे कान के पास अपने ओंठ लाकर उसने धीरे से कहा, अब बस भी करो।

तब मैंने सिगरेट सीधी पकड़ी और उसके हाथ पर एक ज़ोरदार चरका दिया।

सिगरेट की राख को मलते हुए उसने कहा, यू ब्रूट!

पास खड़े लोग यह सब देख ही रहे थे। मुझे लगा, इसके हाथों हमारी पिटाई निश्चित है। लेकिन टेबल पर रखी अपनी चाभी लेकर वह चुपचाप निकल गयी थी।

उसके बाद मैं कमरे पर चला आया था। सारा बदन कैसा भारी-भारी लग रहा था। लेकिन बुंदी जितनी भली थी, मैं कुछ ज्यादा ही शरारती बल्कि शैतान। बुंदी के प्रसंग समाप्त हो गये थे।

इस वर्ष मेरा एक खास शौक यह था कि जब भी पुराना कोई मित्र मिलता, कहामुनी करके उसे हड़का देता। पुराने तमाम मित्र बड़े भदेस। एक पुराना मित्र मिला था। नौकरी मिलने की खुशी में मुझे चाय पर बुला रहा था। मैंने कहा, चाय-वाय कुछ नहीं चाहिए। ऑफ़िस में ग्यारह से लेकर छः तक यह आदमी क्या करता होगा ? काम था, एक कापी में लिखे हिसाब की दूसरी कापियों में सही-सही नकल हुई है कि नहीं, इसकी जांच करना। फिर नकल सही है तो अपने दस्तखत करना। आगे यही काम जारी। बताइए, ऐसे बाबू लोग हमारे मित्र भी हों तो क्या लाभ ?

एक से मैंने कहा था, कमरे पर आओ। बातें करेंगे। सच पूछो तो मेरी इच्छा नहीं है कि तुम आओ, लेकिन यूं ही सभ्यता की खातिर मैंने यह कहा है।

इसलिए वे सब लोग जो मुझसे हमेशा एक फालतू सवाल पूछते—आजकल क्या कर रहे हो—इधर मिलने हमेशा के लिए समाप्त हो गये थे। ज्यादा-से-ज्यादा मिलने वालों से सिर्फ नमस्कार करना पड़ेगा। बाकी उन्हें टालना सहज ही संभव हो सकेगा। अकेला मैं मित्र के नाते पर्याप्त है। उसके साथ ये झंझटें नहीं, कि गांव कौन-सा है, कौन भाषा बोलते हो, कितनी पढ़ाई हुई, पढ़ाई करते हो कि नहीं, आगे क्या सोचा है, किस क्षेत्र में स्कोप है—ये सवाल खत्म। शहरों में यही तो स्वीट लाइफ है। लॉज पर पड़ोसी है न ? तो फिर मित्र के अलावा उसे कुछ नहीं होना चाहिए। बाकी फालतू के झमेलों में कोई क्यों पड़े ?

इसके विपरीत तांबे जब भी मिलता है, पुरानी यादें दोहराता रहता है। ऊब जाता हूं। अपनी कविताएं भी दिखाता रहता है। अपने कमरे में बुलवाकर उन्हें पढ़कर भी सुनाता है। अपनी उस डायरी को जिसमें हर चीज़ के साथ विशेषण लगा हुआ है—'अमर', मुझे पढ़कर सुनाता है : वह अमर संध्या, वह अमर होस्टल अब भी याद आता है, वहां की वह अमर रातें।

साला, वास्तव में इसी की डायरी देखकर मैंने अपनी लेखनी बंद कर दी थी। खुद का चेहरा आईने में देखने वाले किसी रंगरूट की तरह खूबसूरत शब्दों की पंक्तियां जोड़ते बैठो। दिन भर क्या-क्या करते रहे, इसे रात में याद करके लिखते रहो।

लेकिन मैं यह सब सह लेता हूं। कम-से-कम तांबे को तो सहना ही होगा। औरों की तरह तांबे को टाल नहीं सकता। उस लिहाज़ से सुरेश भी ठीक है। लेकिन वह इतना ही ठीक है, बस। जब से गया है, कोई चिट्ठी नहीं। यहां आकर भी मुझसे मिला नहीं। अच्छा ही हुआ। सुना, अकेले तांबे से मिला था। पर उससे मेरे बारे में कोई पूछताछ नहीं की।

वास्तव में यह हमारा दुर्भाग्य ही है कि ये लोग हम जैसे सैकड़ों हमउम्र बच्चों को कॉलेज में या और कहीं अटकाकर खुद मुक्त हो जाते हैं। फिर चाहे

कोई खुद को अपनी औक़ात में जमा पाये, न पाये। ऐसी स्थिति में परिणाम निश्चित था कि हमारे उस तिकड़मी मित्र देसाई जैसा कोई जो कहा करता था कि वह बी०ए०, एल-एल० बी० करने वाला है, अब सड़कों पर घूमता नज़र आता है। और उस ज़माने में खाने पर बुलाकर साहित्य पर मौलिक चर्चा करने वाला देशपांडे कभी पूना टपक पड़ा तो समझो, हमें फिर से खाने पर ज़रूर बुलायेगा। इसके मुकाबले वह दोनों क्या बुरे हैं? इधर जब हमारे मित्रों के अभाव में वहुत बुरे हाल हैं, ये लोग रात ग्यारह बजे तक साथ नहीं छोड़ते हैं। इनमें सरदारजी का तो कोई मुकाबला नहीं। कपूर ज़िंदाबाद।

लेकिन यह सब सिर्फ फरवरी तक चलता रहा था। वैसे भी मैं इस मटरगश्ती से कभी का ऊब गया हूं। और अपने-आप पढ़ाई में जुट गया हूं। मुझे एहसास हो रहा था कि हम उसी एक इम्तिहान को कई बार दे रहे है। लगा, इस बार भी उसी को आज़मा कर देखना है। लेकिन अबकी बार सभी पेपर्स करने हैं। इम्तिहान के बारे में बिलकुल चिंता नहीं करनी है। इन बातों को लेकर चिंता करते रहें तो समझो धोखा खा ही गये। इसलिए अब की बार उन टाइम-टेबुलों को लेकर बिल्कुल विचार नहीं करना है—किस दिन कौन-सा पेपर है, किस दिन किस पेपर की तैयारी करनी है—वगैरा। जैसा भी संभव होगा, आगे बढ़ते रहना है। बकौल पिताजी, पत्थर हाथ में पकड़ रखा है ना? उसे कभी उछालना ही तो है। तब फिर पशोपेश किसलिए? इसे ध्यान में रखकर अमल करना है।

इम्तिहान के दिनों किसी रात मैंने प्रश्न तैयार कर लिया था। और अचानक मैं ऊब गया था। कमरे के बाहर चला आया था। बाहर अंधेरा और भी ज्यादा उबाऊ। पास ही होटल में रेडियो पर दोनों साइड वाले रेकॉर्ड पर कोई गीत बज रहा था। वह कहती, मुझे छोड़कर मत जाना। या इसी तरह कुछ। तब वह कहता, मुझे छोड़ के मत जाना। फिर दोनों मिलकर कहते, मुझे छोड़ के मत जाना। या ऐसे ही कुछ। तब मैं फौरन कमरे पर लौट आया और लेटे-लेटे फिर पढ़ने लगा था।

मां मैट्रिक की पढ़ाई के दौरान चाय बनाकर दिया करती थी। उन स्मृतियों को फिर से ताज़ा करने की इच्छा हुई थी। मां चाय बहुत बढ़िया बनाती है। उस ज़माने का हमारा वह पुराना मकान कितना अच्छा था। ग्यारह-बारह बजे तक मां की एक नींद पूरी हो जाती। तब वह मेरे लिए चाय बनाती। कई बार तो चाय की पतीली चूल्हे पर पड़ी रहती और वह बैठी-बैठी झपकियां लेती रहती। दृश्य बड़ा मज़ाकिया रहता। तब तक मैं प्याली साफ़ करके उसके सामने रख देता। तब मैट्रिक की पढ़ाई।

इस सोच में मैं घनघोर सो गया था। किताब पर रखी उंगली वहीं रखी रह गयी थी।

बत्ती रात-भर जलती रही। सुबह उठने पर मैंने उसे बुझाया। सुबह के वातावरण की आहट हुई तब मैं फिर से चैन से सो गया।

इम्तिहान को लेकर इस बार बिलकुल परेशान नहीं था। तीन घंटे तक जो कुछ भी लिखना था, शांति से लिखा था। लॉज पर लौट आने पर मार्क्स की गिनती बिलकुल नहीं की। नो पोस्टमार्टम। नो रमी। इस बार ढूंढ़कर भी खानोलकर जैसा कोई आदमी नहीं मिला था। उनके जैसे बहुत कम लोग इम्तिहान में बैठते होंगे। मैं इस बार खुशकिस्मत था। इस बार मेरा सीट-नंबर बीच की जगह पर पड़ा था।

इसके पहले मेरे नंबर विचित्र जगहों पर आते रहे थे। एक बार सबसे आगे वाली कतार के कोने में नंबर पड़ा था। सामने एक बड़ी दीवार। दायीं तरफ भी दीवार। मुझे लगा, आगे वाली उस दीवार पर क्या अपना सिर पटक दें?

एक बार खिड़की व पास वाली आड़ी बेंच पर नंबर पड़ा था। दोपहर चार की तेज़ धूप सीधे मुझ पर। इम्तिहान अप्रैल में। दिमाग तड़क जाता। खिड़की बंद करवाएं तो हवा बंद। सारा दिन गर्म पसीने से लथपथ। बायीं तरफ के बेंच पर बैठा हुआ चश्मे वाला लड़का लगातार मेरी तरफ देख तो नहीं रहा है—चश्मे के चमकने वाले शीशे के कारण मुझे यही एहसास होता रहा था। लेकिन अपने पर्चे लिखना छोड़कर वह मेरी तरफ क्योंकर देखेगा? इसी उधेड़बुन में मैं आखिर तक अपने पर्चे ठीक ढंग से नहीं कर सका था। मैं रुक-रुककर जब भी उसकी तरफ देखता, वह बड़ी शांति से अपना पर्चा लिखता हुआ दिखायी देता। फिर भी कुल मिलाकर मैं स्थिर नहीं बन सका था।

पिछली बार तो मेरे बिलकुल सामने वाली सीट पर एक शादी-शुदा मुटल्ली लड़की का नंबर था। इम्तिहान के दिनों में बाल-वाल धोने के लिए उसे वक्त वगैरा मिला नहीं होगा, या उसके पति के ध्यान में यह बात नहीं आयी होगी, इसलिए उसके घने बालों में भयंकर उग्र पसीने की गंध आ रही थी।

लेकिन इस बार खड़ी कतारों की बीच वाली कतार में नंबर पड़ा था। कोई गंध नहीं और न कोई दीवार। फिर भी उमस गजब की थी। इसलिए मैंने सरे-आम कुर्ता उतार लिया था। और बनियान पहने ही दोपहर के पेपर लिखे थे।

तब कोई हंसा था। उनके लिए मैं नया जो था। मेरा-उनका क्या परिचय? और फिर अजंता की गुफाओं में पुलकेशी या पता नहीं कौन सम्राट अपने दरबार में खुले आम नंगे बदन बैठा है जबकि उसके दरबार में विदेशी वकील भी हैं। पैंट में कुर्ता वगैरा ठूंसकर अप्रैल की दोपहर में तीन बजे कौन पर्चे लिखेगा? लिखने वाले खुशी से लिखते रहे।

इम्तिहान खत्म हुए। हमने सोचा, अब यह वाला इम्तिहान आखिरी होगा। इस बार चाहे पास हों चाहे फेल, यह बिलकुल आखिरी। इस इरादे से हमने

बरसों से चली आयी इम्तिहानों की इस साढ़ेसाती को समाप्त कर दिया था। अब हमें अपनी पूरी ज़िंदगी घर पर ही काटनी है। फिर से पूना का नाम भी नहीं लेना है और हम पूना छोड़कर निकल पड़े।

अब मैं स्थायी रूप से घर की तरफ निकल पड़ा था।

पांच

फिर मैं घर चला आया।

सबसे छोटी लड़की नली को अपने पास लेते हुए पिताजी मुझ से कहने लगे, इसकी जगह अगर लड़का होता तो तुम जैसे घर-डुबाऊ लड़के में हम लोगों की जान क्यों अटकी पड़ी रहती ?

मां ने कहा, अपने यहां हर रोज़ वैसे भी पंद्रह-बीस लोगों का ज्यादा खाना बनता ही है। पेट का जना क्या ज्यादा है ? हां, तुम्हारा यह बड़बड़ाना मुझ से बर्दाश्त नहीं होगा।

दादी ने कहा, पांडोबा ! तुम इतने बरसों से क्या पढ़ रहे हो ? मेरी समझ में कुछ भी नहीं आता। आखिर तुम क्या बनकर आये हो ?

नौकरों ने पूछा, अब की बार क्या इधर ही रहना है ?

मैंने सोचा, इन लोगों को जितना नज़रअंदाज़ किया जाय, उतना ही ठीक है।

कोई आदमी मेरी खिल्ली उड़ाने के इरादे से सवाल करता, तो मैं जवाब देता, उधर रोज़ भात और चपाती के सिवा कुछ नहीं मिलता। हमें रोटी चाहिए। रोटी वहां कहां ?

या यों कहता—साले शहरी लोग दूसरी या तीसरी मंज़िलों पर रहते हैं। बताओ, ऐसे पूना शहर में कौन रहना पसंद करेगा ?

मुझे गुमसुम बैठा देखकर कभी मां कहती, उधर मेहमान लोग अकेले बैठे हैं और तुम इधर ?

वहां बैठकर भी तो क्या करूं ?

तब मां कहती—उनसे इधर-उधर की बातें करो। कोई बहस करो। कुछ नहीं हो, तो अपने नाखून काटते बैठे रहो। देखा, कितने बढ़ गये हैं ?

हमारे गांव का एक वायरमैन बिजली की तार से चिपककर मर गया था। भला आदमी था। इसलिए ठेकेदार ने उसकी लाश को यहां सांगवी पहुंचा दिया था।

पिताजी ने कहा था, देखा। कितनी बड़ी बात है। करेगा तुम्हारे लिए कोई ऐसा काम ?

उन्होंने फिर कहा था, बारह हजार प्रति साल के हिसाब से तुम पर लगे खर्च का हिसाब किया जाय तो जो परिणाम निकलेगा वह होगा मात्र ज़ीरो।

नली को अभी-अभी स्कूल में दाखिल करवाया था। खाली बैठे रहने की आदत पड़ी थी, इसलिए स्कूल जाना उसे डरावना लगता। घबरायी हुई स्थिति में वह स्कूल जाने की तैयारी करती।

और फिर उसकी क्लास में पढ़ने वाली दो-एक शरारती लड़कियां उसे परेशान किया करतीं। उसकी टीचर भी कभी उन लड़कियों को फटकारती नहीं थी।

पहले-पहले उसे स्कूल पहुंचाने का काम मेरे ज़िम्मे था। स्कूल के बाहर नीम का एक चौरा है। वहां मैं खड़ा हो जाता, वह स्कूल में दाखिल हुई कि मैं लौट आता।

एक बार लड़कियां अभी भीतर घुस रही थीं, वह मेरे साथ चौरे के पास रुक गयी थी। मैं खड़ा था। वह चौरे पर बैठ गयी। उसने अपने बस्ते में से एक कापी निकाली। किताबें निकालीं। पाटी नीचे रख कर उस पर उन्हें रख दिया। बस्ता झटक कर खाली किया। नीचे गिरे पेंसिल के टुकड़ों को किताब पर रखा। खाली बस्ता एक तरफ बिछाया। उस पर हाथों को पटकते हुए मुझसे कहा, अब बैठो।

मैंने बैठते हुए कहा, क्यों नलिनी बाई, आज क्या इरादे हैं ?

उसने अपनी जेब से एक खुबानी निकाली और अपने मुंह में डाल ली। मुझ से कहा, अभी स्कूल लगा नहीं है। तब तक तुम और मैं यहां बैठ लेंगे। जब घंटी बजेगी, तुम घर चले जाना। मैं भीतर चली जाऊंगी।

मैंने कहा, बहनजी, अब समय ही कितना बचा है ?

फिर उसने यूं ही इधर-उधर नज़रें घुमायीं और मुंह में रखी खुबानी खा डाली। खुबानी का बीज नीचे रख दिया और छोटा पत्थर ढूंढने लगी। मैंने कहा, तुम ठीक से तोड़ नहीं सकोगी। लाओ, मुझे दो।

फिर मैंने पत्थर उठाया और ज़ोर से बीज पर दे मारा। बीज कहां उड़ गया, पता नहीं चला। तब मैं उस बीज को ढूंढ़ने लगा।

उसने कहा, दादा, एक बार उड़ा बीज फिर से मिलता नहीं है। रुको, मैं दूसरा बीज देती हूं।

फिर उसने इधर-उधर देखते हुए जेब से दूसरी खुबानी निकाली। अपनी आंखें फैलाकर उसने उसे झट से मुंह में दबा दिया। और लार से भरा बीज मेरे हाथ में रख दिया।

इस बार मैंने बीज को दो उंगलियों के बीच पकड़कर उस पर ज़ोर से पत्थर दे मारा था। चोट ज़ोर से पड़ी थी। बादाम-बीज के टुकड़े-टुकड़े हो गये।

फिर उसने टुकड़े चुने और फिर उन्हें ज़बान पर रखकर चबा लिया। मैं

शर्मिंदा था।

मैंने कहा, कोई और खुबानी है ?

उसने कहा, एक है।

मैंने कहा, लाओ, ठीक से तोड़े देता हूं।

लेकिन उसने कहा, अभी नहीं। आधी छुट्टी में।

फिर उसने अपने बस्ते को ढंग से भर लिया और दौड़ी-दौड़ी स्कूल के दरवाज़े से ओझल हो गयी।

मैंने कहा, बहना, इसमें से किसी की मुक्ति नहीं है। आदत बना लो। आगे कई बरस इससे मुक्ति नहीं।

यह रही नली।

इससे बड़ी थी जाई। बड़ी मुंहफट। मेरी और उसकी बिलकुल नहीं पटती। बारिश हो रही थी। स्कूल से लिवा लेने के लिए छाता लिये मैं स्कूल के गेट पर रुका खड़ा था। लेकिन वह कहीं दीख नहीं रही थी। थोड़ी देर इंतज़ार करके मैं घर लौट आया था। देखता हूं कि वह सिर्फ़ निकर पहने भीगे कपड़ों को निचोड़कर सुखा रही थी। मैंने कहा, तुम कहां गुम हो गयी थीं, पगली ?

उसने कहा, बेकार के सभ्य न बनो—मैंने तुम्हें देख लिया था। लेकिन मैं तुम्हें टालना चाहती थी, इसलिए दूर से निकल गयी। वरना सहेलियों ने कहा होता, क्यों आजकल तुम्हारा दादा तुम्हें छाते लाकर देता है क्या ?

उसे एक ही गाली आती थी, हमेशा इसी का प्रयोग करती—बेकार के सभ्य न बनो। मैंने पूछा, स्कूल में तुम्हारी पढ़ाई चलती है या वही बड़बड़ाहट ? तो बकौल उसके—मैं बेकार का सभ्य बन रहा हूं। मां कभी कहती है, पहले मंजन क्यों नहीं करती ? तो बकौल उसके—मां बेकार की सभ्य बनती है, और वह सीधे गुसलखाने में भाग जाती। कभी दादी ने कहा, यह लड़की आजकल बड़ी शरारती हो गयी है। तो इसका जवाब—दादी बेकार की सभ्य बनती हैं।

जाई से बड़ी थी मनी।

मनी से बड़ी सुमी। सुमी की शादी हो चुकी है। वह नागपुर रहती है। वह बड़ी समझदार निकली, बाद में कभी अपने मायके आयी ही नहीं थी।

लेकिन कभी-कभी लंबी चिट्ठियां लिखती रहती हैं। चिट्ठियों में यही होता कि उधर उसे काफ़ी परिश्रम करना पड़ता है। कि बड़ी परेशान रहती है। कोई अच्छा नौकर नहीं मिलता। जो भी मिलता है, वह आखिर लुच्चा निकलता है।

आखिर उसके पति ने एक नौकर ढूंढ़ ही लिया था। पर वह करीब-करीब पागल था। कोई काम ठीक ढंग से नहीं करता था। पीपे से बोतल में तेल भरते वक्त कुप्पी को बोतल पर औंधा रख देता। और छोटी नली से तेल उंड़ेलने की कोशिश करता। एक बार उसे घी ले आने के लिए भेजा था, तो आप बर्तन ले जाना भूल गये थे, इसलिए अपनी टोपी में घी ले आये थे। उसकी ये पागल हरकतें चार-पांच महीने चलती रहीं। फिर एक रोज़ वह मेज़ की दराज़ से चार सौ रुपये, घड़ी और कोट चुराकर भाग गया था।

सुमी से बड़ा मैं।

पिताजी ने इधर कई लफड़े शुरू कर दिये थे। मतलब, चुनाव वगैरा।

एक बार चुनाव में विरोधी दल का पलड़ा कुछ भारी हो गया था। तब उनके यार-दोस्तों ने उन्हें सलाह दी थी, कि शराब का पीपा खोलिए। फिर देखते हैं, हमारा पलड़ा कैसे भारी नहीं होता ?

पिताजी ने कहा, यह हमसे नहीं होगा और फिर हम लोग वारकरी हैं।

फिर वोटों की गिनती हुई। पिताजी को बहुत कम वोट मिले थे। हां, डिपाजिट बच गया था। विरोधी दल बहुत अधिक वोटों से जीत गया था। उसी वक्त उसी जगह सब के सामने पिताजी ने कहा था, देखिए, आखिर ये लोग चुनाव जीत ही गये न ? मैंने पहले ही कहा था, डिपाजिट बचाने के लिए शराब पर खर्च करने की कोई ज़रूरत नहीं है।

रेडियो पर नियमित रूप से बुधवार-रविवार वे कीर्तन सुना करते, सो ठीक। लेकिन एक बार अहिंसा विषय पर कीर्तन चल रहा था। मैंने ऊबकर कहा, क्या किसी के लिए इतनी अहिंसा संभव है तो उन्होंने रेडियो की आवाज़ और ऊंची कर दी।

एक बार उन्होंने मुझसे कहा था, भैंस को दोहना कब सीखोगे ? चलो, तुम्हें सिखाये देते हैं।

मैंने भैंस के थनों को मक्खन वगैरा चुपड़ा। थनों को ज़ोर-ज़ोर से खींचता रहा, पर दूध कुछ निकल नहीं रहा था।

आखिर मैं उठ गया। मैंने कहा, हटाओ, बहुत ही लिजलिजा लगता है।

इस पर उन्होंने कहा था—अबे, सबसे पहले भैंस पर ही तो प्रैक्टिस करनी पड़ती है।

एक बार हमारे खेत से पंप का कुछ सामान कोई चुरा ले गया था।

तलाश हुई। आखिर नया सामान मंगवाना पड़ा था, तब कहीं पानी शुरू हुआ।

उस वक्त कोई अपरिचित आदमी हमारे यहां आया था। उसने कहा, महाजन साहब, आपका सामान मैं पकड़वा देता हूं। कोई दो सौ रुपये खर्च पड़ेगा। काम

बन जायेगा।

पिताजी ने काफ़ी विचार किया और उससे कहा, हमने नया सामान खरीद लिया है। पांच सौ रुपये वैसे भी खर्च हो चुके हैं। चोरी का सामान तुम अपने पास ही रखे रहो। नया सामान चुरा मत लेना, बस।

देखो जी, इन्हें चाय पिला दो।

मैं उस आदमी को सामने वाले होटल में ले गया और चाय पिलायी।

उसके बाद पड़ोसी खेतों से चोरियां होती रहीं। लेकिन हमारे खेत से कोई चोरी नहीं हुई।

हमारी मूंगफलियां एक मारवाड़ी की मिल में भेजी जाती थीं। एक बार उस मारवाड़ी का दिवाला निकल गया। और हमारे गांव के बहुत-से किसानों का उस पर निकलने वाला पैसा अटक गया। तब लोगों ने कानून का सहारा लेकर उसकी मिल और मिल के अहाते में बने उसके बंगले पर धावा बोल दिया और चीज़ें उठाकर ले आये थे।

पिताजी ने इस लूट में छोटी-मोटी चीज़ों को नज़र-अंदाज़ किया। उन्होंने तिजोरीनुमा एक बड़ी अलमारी हथिया ली थी। किराये के ट्रक पर लदवाकर वे उसे घर ले आये थे।

पिताजी खुश थे। उन्होंने लोगों से कहा, सालो, तुम लोग मिल के चक्कों को उठा लाये हो, उसका कोल्हू बनाने जा रहे हो ? चीज़ हो तो हम जैसी।

इस अलमारी में एक बड़ा आईना लगा हुआ था। काफ़ी दराज़ें भी थीं। हम लोग इनमें कपड़े, गहने वगैरा रखने लगे थे।

पिताजी पूछते, क्यों, इसे यहीं रहने दें या उस कोने में कैसी रहेगी ? बाहर जाने से पहले वे उस आइने में देखकर टोपी पहना करते थे। फिर बाहर निकल जाते।

लेकिन यह सिलसिला आठ दिन से ज्यादा नहीं चला। क्योंकि बाद में एक वकील ने उन्हें गोपनीय खबर भेजी कि अलमारी मारवाड़ी की पत्नी के नाम पर लिखी हुई है। इसलिए समन जारी होने से पहले उसे लौटा दो।

तब अलमारी को फौरन खाली करना पड़ा था और उसी रात किराये के ट्रक पर लादकर मारवाड़ी की मिल में पहुंचाना पड़ा था।

बस्ती के हर मसले पर पिताजी की राय पूछी जाती है, क्योंकि वे किसी को भी स्पष्ट सलाह नहीं देते थे।

मान लो अगर किसी ने किसी दूसरे को धोखा दिया हो, तो आप दोनों पक्षों को फटकारेंगे और कहेंगे, देखो भाई, आप लोग आपस में बैठकर फैसला कर लो।

खेती के झगड़ों में लोगों में हाथा-पाई हो जाती और लोग उनके पास मशविरे के लिए आते तो आप कड़ककर उन्हें कहते, सालो, ज़रा-सी ज़मीन के

टुकड़े के लिए एक-दूसरे के सिर फोड़ते रहते हो। इससे तो अपना दिमाग चलाओ और अपने हिस्से के टुकड़े पर परिश्रम करके और ज़मीन खरीद लो तो कहीं अच्छा है।

हां, उनकी यह वाली राय मुझे कुछ पसंद आयी थी।

कुछ दिनों पहले तक हमारे घर कर्ज लेने वालों की काफ़ी भीड़ हुआ करती थी। लेकिन जब से हमारा झगड़ू नौकर चला गया था, यह सब खत्म हो गया था।

आज सौ रुपये ले जाओ और अगले महीने उसके सवा-सौ लौटा दो—बस यही ज़बानी हिसाब था। फिर भी गरजमंद लोगों की कमी नहीं थी। कई बार तो ये लोग पिताजी के पैर पकड़कर उनकी मिन्नतें करते, पर वे कर्ज़ा देने से इंकार कर देते।

पिताजी कहा करते थे, यह सब-कुछ मैं उपकार की भावना से किया करता हूं। दो महीने से ज्यादा अवधि हो जाती तो झगड़ू उस कर्ज़दार को अपने कब्जे में कर लेता।

इसलिए झगड़ू के चले जाने के बाद पिताजी का बहुत नुकसान हुआ था। यह शख्स दूसरों के लिए चाहे जितना बैरी हो, अपने मालिक के लिए बहुत ही ईमानदार सेवक था। पर अपनी सनक के कारण पूरा बरबाद हो गया था।

झगड़ू एक बार में आठ रोटियां खा जाता। मां उसको उसकी मौजूदगी में कहती, तू तो मेरा बैरी है।

इसका किसी कर्ज़दार के यहां जाकर दस्तक देना काफ़ी था। समझो, पैसा अपने-आप निकल आता।

लेकिन झगड़ू को वैसे किसी की बात में रुचि नहीं थी। हां, तमाशा उसकी कमज़ोरी थी। पास-पड़ोस के किसी भी गांव में तमाशा चलता तो झगड़ू सारा काम-धाम छोड़ वहां चला जाता।

उसके मां-बाप थे। लेकिन झगड़ू हमारे ही गोयठे में रहता था।

और फिर हमारे बुध्या सांड का सारा बंदोबस्त इसी के जिम्मे था। हां, इजाज़त पिताजी की जरूरी थी।

लोग अपनी गाय लेकर आते। सामने वाले खंभे से उसे बांधकर पिताजी से पूछते, इसे हरी करवाना है।

बचपन में मां-बहनों वगैरा के सामने यह दृश्य मुझे बड़ा अश्लील लगता।

हर गाय वाला झगड़ू को प्रत्येक क्रिया के बदले दो सेर ज्वार देता। इसके अलावा पिताजी से तीस रुपया माहवार मिलता सो अलग। झगड़ू की इतनी ही कमाई थी। पर सारे-के-सारे तीस रुपये वह सट्टे पर लगा देता था। सिर्फ़ सांड पर अपना निर्वाह कर लेता।

एक बार अचानक उसका आंकड़ा लगा और डेढ़-हज़ार रुपये उसे मिले। तब पिताजी ने कहा था, अब तक कभी मैंने तुम्हें कुछ कहा है ? लेकिन अब कहे देता हूं, यह पैसा सट्टे पर नहीं लगेगा। इसमें से सिर्फ सौ रुपये तुम रख लो। शेष मैं कर्ज़ पर लगवा देता हूं। दो साल के बाद ब्याज समेत तुम्हारा पैसा तुम्हें लौटा दूंगा।

वे सौ रुपये झगड़ू सट्टे में हार गया था। ब्याज में लगा पैसा बढ़कर चार हज़ार तक पहुंच गया। तब पिताजी ने झगड़ू से कहा, तुम्हें एक खेत दिलवा देते हैं। पहाड़ों में हुआ तो क्या हुआ ? हमारी खेती भी तो वहां तक फैली हुई है। कुछ नहीं तो बाजरा तो निकल ही आयेगा।

तब झगड़ू ने अपनी खेती पर बड़ा परिश्रम किया। बस्ती में उसकी इज्जत बढ़ी। छः बीघा ज़मीन का वह मालिक था। उसके लिए रिश्ता आया था। उसकी शादी हुई। उसके संतान भी हुई और एक दिन झगड़ू यकायक बस्ती से गायब हो गया था।

किसी ने कहा, उसे हमने झेली-फुली के खेत में गवलन गाते हुए देखा था। किसी ने कहा, उसे हमने जेजूरी के मेले में देखा था।

अब रहा खेत का निपटारा। उसके माता-पिता ने पिताजी से कहा, खेत को हमारे नाम कर दीजिए।

पिताजी ने कहा, खेत पर झगड़ू की पत्नी की मिलकियत होगी। उसकी लड़की जब बड़ी हो जायगी, तब लड़की का नाम चढ़वा दिया जायेगा।

उसके माता-पिता ने कहा था, यह लड़की झगड़ू की औलाद नहीं है।

झगड़ू की पत्नी ने कहा था, यह झगड़ू की ही है।

फिर पिताजी ने अखबार में झगड़ू को लौट आने की अपील निकलवायी थी। एक वर्ष बीत गया, पर वह नहीं आया। वह क्योंकर अखबार पढ़ता ? सच्चाई यह थी कि उसे अपनी जायदाद की कोई चिंता नहीं थी।

तब पिताजी ने टेनेंसी कानून के तहत उसका खेत अपने नाम करवा लिया था।

उन्होंने कहा था, खेत के मामले में वैसे झगड़ू का सिर्फ दो हज़ार ही लगा है। पर वह चाहे जब भी लौट आये हम उसके चार हज़ार के कर्जदार हैं।

झगड़ू वाला यह मामला उस वक्त चल रहा था जब मैं दूसरी बार बी० ए० का इम्तिहान दे रहा था।

उसके बाद कुछ दिन पहले फूफी के यहां इंदौर हो आया था। फूफी ने मुझसे कहा, अरे हमारे यहां वाला वह झगड़ू नौकर अभी थोड़े दिन हुए यहां आया था। मैंने यह सोचकर कि अपने गांव का आदमी है, उसे खाना खिलाया। उसका हुलिया कुछ ठीक नहीं दीख रहा था। उसने बिटिया को मिठाई के लिए एकदम पांच

रुपये दिये और फिर चल दिया। मैंने उससे पूछा, इतने क्यों? उसने जवाब दिया, बाई जी, कल हमारा एक बड़ा सट्टा लग गया था। उसके बाद से वह कभी नहीं आया। मैंने भी उसे फिर से आने के लिए नहीं कहा।

तब झगड़ू का पता करवाने के इरादे से देवी वाले मेले में मैं घूम आया था। जुआरिओं के तमाम अड्डे छान मारे थे। लेकिन झगड़ू का कहीं कोई पता नहीं मिला।

मेरे कपड़े आदि देखकर लोग आपस में खुसर-पुसर करने लगे थे। मैं उनसे पूछ रहा था, क्या आप लोगों ने सांगवी का कोई झगड़ू नाम का तगड़ा आदमी यहां कभी देखा है?

एक ने कहा, भाई साहब, अड्डे वाला कौन आपको बतायेगा? आप उस झगड़ू को गिरफ़्तार करना चाह रहे हैं तो खुद कोशिश कीजिये।

मैंने कहा, भैया, मैं पुलिस-वुलिस का आदमी नहीं हूं। हमारे पास झगड़ू का चार-हज़ार रुपया पड़ा हुआ है। उसका पैसा उसे वापस करना है।

लेकिन आखिर तक झगड़ू का पता नहीं लगा। गांव लौट आने पर मैंने उसकी पत्नी को बतलाया। तब उसने कहा, तब मेरी जूतियां साथ ले जाते तो अच्छा होता।

वैसे हमारे गांव में ऐसे कई लोग होंगे, जिनके चले जाने के बाद उनका अब तक कोई पता नहीं चला था। गांव में एक मुहावरा प्रचलित था। लोग कहते, जो एक बार सांगवी छोड़कर चला गया, वह लौटकर नहीं आता है। और जो सांगवी आ गया, वह कभी वापस जाता नहीं है।

बस्ती के बाहर खुली जगह में सुनाट बाबू का एक होटल था। बस्ती का एकमेव होटल, क्योंकि कोई दूसरा होटल यहां चल नहीं सकता था। मान लो कभी चलने लगे, तो सुनाट उस होटल वाले को धमकी देता कि उसका होटल उस रात उखाड़ दिया जायेगा।

यह जनाब सन पैंतीस में बस्ती में मटरगश्ती करते घूमा करते थे। घरवालों ने तब इसे जबरदस्ती फौज में भरती करवा दिया था। बाद में वह आज़ाद हिंद सेना में दाखिल हुआ था। इसके पास दस-पांच तमगे आज भी रखे हैं। वह उन्हें इन्हें विशेष प्रसंगों या चुनावों आदि के अवसर पर लगा लेता है।

इसका होटल सिर्फ़ शराबियों और सटोरियों के बूते चलता था। फिर भी सुनाट उन लोगों से कहता रहता कि शराब बुरी चीज़ है और सट्टा भी बुरी चीज़ है। शराब पीकर जो आदमी सट्टा खेलता है वह तो और भी बुरा होता है। पैसा ही उड़ाने की मस्ती हो तो यहां क्या धरा है? इसके लिए तो बुरहाणपुर से बेहतर और कोई जगह नहीं है।

सौ रुपयों की पूंजी ज्यों ही जमा हो जाती, सुनाट बुरहाणपुर चला जाता।

उसकी गैरहजिरी में उसका लड़का राधो दस रुपये महीने किराये पर होटल अपने कब्जे में कर लेता था। सुनाट लौट आता और बेटे से दस रुपये वसूल लेता।

तब राधो बुरहाणपुर चला जाता। पर राधो के लौट आने की अवधि निश्चित नहीं होती थी। क्योंकि लौट आने पर इसकी कोई गारंटी नहीं होती कि होटल उसे किराये पर मिलेगा। क्योंकि होटल छोड़ना-न-छोड़ना सुनाट के सौ रुपये जमा होने पर निर्भर था।

वैसे पिता-पुत्र के संबंध बुरे नहीं थे। कभी सुनाट दूसरे गांव जाता तो राधो को दो-चार रुपये उधार जरूर दे जाता।

एक बार राधो बुरहाणपुर गया था। पर इस बार वह फिर से सांगवी लौटकर नहीं आया था।

इधर सुनाट के पास सौ रुपये जमा हो गये थे। वह इतना उतावला हो गया था कि केवल एकाध सप्ताह और इंतजार संभव था। इससे ज्यादा नहीं था।

लेकिन इधर उसके पास दो सौ रुपये जमा हो चुके थे, तब भी राधो लौट कर नहीं आया था।

तब सुनाट को क्रोध आया। उसने होटल को ताला लगा दिया, और बुरहाण-पुर चला गया।

बुरहाणपुर आने पर उसे पता चला कि सांप्रदायिक दंगों में राधो को मुसलमान जानकर लोगों ने उसका कत्ल कर दिया था।

सुनाट ने कहा, यह साली महमद की औलाद। खैर छोड़ो। हम भी तो कहां विशुद्ध हिंदू हैं? लेकिन समझ नहीं आता, राधो क्योंकर मुसलमान बन गया?

खोजबीन करने पर उसे पता चला कि दंगों के दौरान सारे मुसलमान किसी एक मकान में सुरक्षा के लिए घुसकर बैठ गये थे। इनमें राधो भी था।

तब सुनाट उन लोगों से मिला था। उनसे उसने दोस्ती कर ली और राधो के बारे में सारी जानकारी हासिल की थी। पता चला कि राधो किसी मुसलमान स्त्री के पीछे पड़ा हुआ था। एक दिन उस स्त्री के एक हिंदु गाहक के साथ-साथ राधो की छीना-झपटी हुई थी। लोग जमा हो गये थे। राधो ने कहा था, यह मेरी बीवी है। तब लोगों ने झगड़ा मिटवाया और स्त्री पर राधो के हक को स्वीकार किया था।

सुनाट उस स्त्री के घर पहुंचा था। तब यह कहकर कि मैं भी आजाद हिंद फौज का आदमी हूं, वहां जमे लोगों को मारपीट करके स्त्री को छुड़वा लाया था।

पूंजी का रौब, सांगवी की शोहरत और बरमा देश की वारदातों के बल पर

उसने उस स्त्री को प्रभावित कर लिया था। उसने कहा, अब तुम मेरी बहू हो। चलो, हमारे साथ चलो।

उसके बाद सुनाट जैनुल को साथ लिये सांगवी चला आया था।

ससुर और बहू बड़े चैन से इकट्ठे रह सकते थे, लेकिन इसी दौरान गांव में किसी ने नया होटल खोल दिया था।

सुनाट ने कहा था, घर में बहू है वरना इस आदमी की अच्छी मरम्मत करके उसके होटल को उखाड़ फेंक देता।

वैसे भी हमारी बस्ती में दो-दो होटलों का एक साथ चलना मुश्किल था। और फिर जैनुल इतनी खूबसूरत थी कि सुनाट के होटल में आनेवाले शराबी और सटोरिये उसके साथ आये दिन झगड़ा-फ़साद करने लगे थे। यह सब चलता रहा था, फिर भी सुनाट जैनुल के सामने अपनी प्रतिष्ठा बघारता रहता। यही कारण था कि वह पहले की तरह अपने विरोधियों के साथ उलझता नहीं था। परिणाम यह हुआ कि उसकी ग्राहकी कम होने लगी थी।

किसी ने कहा था, जैनुल अकेली भाग गयी है। किसी और ने कहा था, दोनों इकट्ठे भाग गये हैं। लेकिन जाते वक्त सुनाट ने बस्ती वालों से संबोधित करके सिर्फ इतना ही कहा था कि सांगवी वालों को आदमी की कोई कदर नहीं है।

बस्ती के इस मैदान में एक बात अच्छी है। यहाँ जितने भी लोग आते-जाते हैं सबकी राय एक-सी होती है। यहां बहुमत या अल्प-संख्यक जैसा कोई झमेला नहीं। मतलब यह कि शराब पीने वाले सारे-के-सारे ज़रूरी नहीं कि सटोरिये हों। फिर भी सारे-के-सारे एक ही होटल में जायेंगे। पान खायेंगे तो सिर्फ बालू के ठेले पर ही।

इस मैदान में ग्राम-पंचायत की तरफ से एक लालटेन लगवायी गयी है। पर यह इन लोगों की सुविधा के लिए नहीं है। बल्कि किसी सरकारी अफसर को यह बताने के लिए कि टट्टी जाने वालों को इससे सुविधा होती है।

एक बार हमारी बस्ती का निरीक्षण करने के लिए चार अमेरिकन काश्तकार सांगवी आये थे।

जब भी ऐसा कोई प्रसंग आता है तो बस्ती के लोग इकट्ठे हो आने से कतराते हैं।

तब सारे अहाते की सफाई की जाती है।

ये अमेरिकन मुआयना करने लगे थे। उन्होंने पूछा कि बस्ती से इतनी दूर इस लालटेन का क्या प्रयोजन है?

मैं पढ़ा-लिखा था, इसलिए मुझे उन लोगों के साथ बस्ती में घूमना पड़ा था।

किसी एक गली से हम गुज़र रहे थे। हमने देखा कि कोई शराबी नशे में घुत

अपने मकान के दरवाज़े को ताकत लगाकर खोलने की कोशिश कर रहा था, पर दरवाज़ा खुल नहीं रहा था। वे चारों अमेरिकन रुक गये और दृश्य को ताकने लगे थे।

आखिर भीतर से एक महिला बाहर आयी थी, और उसने शराबी से कहा, पगले, इसे बाहर की तरफ धकेलने के बजाय भीतर क्यों धकेल रहे हो ?

तब दरवाज़ा खुला और वह अंदर दाखिल हो गया था।

इस पर अमेरिकन ने कहा, गनीमत है कि तुम्हारे स्टेट में फिर भी प्रोहिबिशन है।

कुछ लोग इन अमेरिकनों को शौच के लिए दूर मैदान में ले गये थे।

जाते समय उनमें से एक ने कहा था, कहां ले जा रहे हो ? ठीक नहीं है।

पर लौटते वक्त दूसरे तीनों ने कहा था, यह हायजिनिक नहीं है।

तब लखू सेठ ने कहा था, साहब, इसके लिए तो आपके यहां से मदद आनी चाहिए।

यह सारी बहस अंग्रेजी में हो रही थी। मैंने लेकिन अपने मन में मराठी में कहा था, अमेरिकन हुए तो क्या हुआ, आखिर हैं तो किसान। इन्होंने बस्ती की कुछ तसवीरें ली थीं। काफ़ी देर तक सवाल पूछते रहे थे और जानकारी ले रहे थे। उन्होंने पूछा था, गांव में आप जैसे पढ़े-लिखे लोग हैं, क्या यहां कोई ड्रामैटिक्स या लिटरेरी एक्टीविटी वगैरा नहीं चलती ? हमने उन्हें रेडियो के बारे में बताया था। दूसरी चीज़ें क्या बताते ? इनके सामने लहानू और धुलक्या की कला का ज़िक्र करना बेकार था।

धुलक्या नाथपंथी कलाकार था। दिन भर गाय-भैंसें चराता। इसका एक तगड़ा भैंसा था। वह कहा करता था, यह भैंसा मेरी खेती ही समझो। धुलक्या रोज़ सुबह आरतियां गाता हुआ बस्ती में घूमा करता था। लोग उसे आटा देते। यह उसकी कमाई का एक और ज़रिया था। इसको गोरखनाथ की नयी-नयी कथाएं याद थीं। अवसर मिलने पर मैं उसे कुछ ज्यादा आटा दे दिया करता था। इस लिए मुझ पर वह ज्यादा ही खुश था। मुझे नयी-नयी कथाएं आदि सुनाता था। उसने मुझे चंद कहावतें सुनायी थीं—

ठेंगवा व्हशील दुधू पेशील,
उच्चा व्हशील माटी खाशील।

(ठिगने को दूध मिलता है। लंबे को धूल खानी पड़ती है। अर्थात, नम्रता का फल मीठा होता है, अभिमान मनुष्य को धूल में मिला देता है।)

अथवा

चंद्रसूर्याला झोप गेली लागून,
झोंप घेतली कोठ जाऊन।

(चांद और सूरज को नींद आ गयी थी। पता नहीं कहां सोये थे ये लोग।)

या चार-छः घंटे चलने वाली कोई कहानी सुनाता था, जैसे—

एक था किसान। उसके कोई संतान नहीं थी। बहुत कोशिश की, पर संतान नहीं हुई। पत्नी ने कहा, किसी पंडित को पूछते क्यों नहीं? फिर किसान गया ब्राह्मण के यहां। कहने लगा, महाराज मेरी पत्नी की कोख फल नहीं रही है। बताइये, मैं क्या उपाय करूं? ब्राह्मण ने कहा, कल दक्षिणा लेकर आओ तो उपाय बताऊं। शास्त्रों में उपाय ढूंढ़ना पड़ेगा। किसान घर लौट आया। पत्नी ने पूछा, क्या बताया? पति ने कहा, कहा कल बतायेंगे। (यह सिलसिला कई बार दोहराया जाता) दूसरे दिन किसान ब्राह्मण के यहां पहुंचा, दक्षिणा रखी, पूछा, क्या लिखा है शास्त्र में महाराज? ब्राह्मण ने कहा, शास्त्रों में लिखा है कि मंदिर बनवाओ और पूजा करो। तब किसान घर लौट आया। किसान ने मंदिर बनवाया और पूजा शुरू कर दी।

लेकिन संतान नहीं हुई। तब किसान-पत्नी ने कहा, फिर से पंडित जी से ठीक-ठाक पूछकर आइये। (यह सिलसिला कई बार) तब किसान ब्राह्मण के यहां गया। और अपनी बात कही। ब्राह्मण ने कहा, पगले, मंदिर में कौन-से देवता है? देवता की प्रतिष्ठापना की है? किसान ने कहा, पंडितजी, मैंने सिर्फ मंदिर बनवाया है। कोई देवता नहीं है। ब्राह्मण ने कहा, कल दक्षिणा लेते आओ। शास्त्र देखकर फिर बताऊंगा। यह सिलसिला फिर कई बार चला। अंत में ब्राह्मण ने कहा, निपूतों के लिए तो एक ही देवता कहा गया है—तुलसी। तुम मंदिर में तुलसी की स्थापना करो। और नित्य तुलसी की पूजा करो। तब किसान ने तुलसी की स्थापना की और पूजा शुरू कर दी। लेकिन फिर भी उसे संतान नहीं हुई थी। एक दिन तुलसी के सामने दीपक बारने के लिए उसकी पत्नी मंदिर में गयी थी। उसने देखा कि वहां एक चूहा तुलसी के पेड़ को कुतर रहा था। पति से उसने कहा, देखो फिर पंडित जी के पास जाओ, ठीक-ठाक पूछकर आओ। तब किसान फिर वहां गया। ब्राह्मण ने कहा, अब जब भी आओ दक्षिणा लेते आया करो। नहीं तो कहानी लंबी होती जायेगी। किसान ने कहा, ठीक है। पर पंडित जी यह तो बताइये, शास्त्र में क्या लिखा है? ब्राह्मण ने कहा, समझते नहीं हो, देवताओं में किसकी अधिक प्रतिष्ठा है, चूहे की। साक्षात् गणेश भगवान का वाहक जो है। तुम चूहे को खूब खिलाओ-पिलाओ। उसकी सेवा करो। तब किसान घर आया। उसने घर का सारा अनाज छितराकर रख दिया। घर में चूहे बढ़ गये थे। लेकिन एक दिन बिल्ली वहां आयी और चूहे को दबोच ले गयी। तब फिर पत्नी ने किसान को पंडित जी के यहां भेजा। कई चक्कर लगाने के बाद किसान को पंडित जी मिले। किसान की बात सुनकर ब्राह्मण ने अपना सिर ठोकते हुए कहा था, समझते

क्यों नहीं ? देवताओं में बड़ा देवता तो बिल्ली ही है। अरे भाई, बिल्ली की उपासना करो। उसे खूब दूध पिलाओ। तब किसान बिल्ली को गाय का दूध पिलाने लगा था। फिर भी उसके संतान नहीं हुई थी। एक दिन एक कुत्ता बिल्ली पर लपका और उसने बिल्ली की गर्दन पकड़ ली थी। पत्नी ने कहा, हे भगवान यह ऐसा ही चलता रहा तो हमारे संतान कैसे होगी ? आप फिर से पंडित के यहां जाओ। ठीक-ठीक पूछो कि शास्त्रों में क्या लिखा है ? फिर किसान ब्राह्मण के यहां गया। ब्राह्मण ने कहा, अरे भाई कहानी लंबी होती जा रही है। समझते क्यों नहीं ? तुम्हें क्यों नहीं पहचान हो पा रही है सच्चे देवता की ? सही बताऊं ? कुत्ता ही तो महान देवता है। कुत्ता। अर्थात् खंडोरामा। तुम कुत्ते की सेवा करो। तब से किसान ने कुत्ते को दूध-दही खिलाना शुरू कर दिया था। एक दिन दोपहर के समय किसान की पत्नी ने किसान के लिए खाना बांधकर तैयार रखा था। खाना खेत पर पहुंचाना था। पत्नी पानी ले आने के लिए घड़ा लिये कुएं पर गयी थी। इस बीच इधर खंडोरामा ने रोटियों का सफाया कर डाला। पत्नी लौटकर आयी। देखा कि सारी रोटियां कुत्ते ने खा डाली हैं। यह सोचकर कि पति उधर खेत में भूखा बैठा इंतजार कर रहा होगा, उसे कुत्ते पर भयंकर क्रोध आया। उसने पानी से भरा मटका कुत्ते पर जोर से दे मारा। कुत्ता मर गया। तब वह घबरा गयी थी। रोने लगी। यह क्या हुआ ? साक्षात् भगवान की हत्या कर डाली मैंने। इसलिए उसने अपने सारे कपड़े उतार लिये और कोने में छिपी बैठी रोती रही। इधर किसान भूख के मारे तड़प रहा था। अब तक पत्नी नहीं आयी थी। उसको गुस्सा आया। उसने डंडा उठाया और घर चला आया। तब देखता क्या है कि पत्नी नंगी बैठी मुसमुसा रही है। फिर वही सिलसिला···वगैरा। किसान फिर ब्राह्मण के यहां···वगैरा। तब ब्राह्मण ने कहा था, अरे भाई, समझते क्यों नहीं ? निपूतों के लिए पत्नी के अलावा और कौन देवता महान होगा ? पत्नी ही तो सबमें श्रेष्ठ देवता है। उसकी पूजा करो।

तब किसान घर लौट आया था। इधर पत्नी अब भी नंगे बदन छिपकर बैठी हुई थी। किसान ने पूजा की तैयारी शुरू कर दी थी। वह गुलाल ले आया। अबीर ले आया। कपूर ले आया। अगरबत्ती ले आया। इस बार पत्नी यह पूछने का साहस नहीं जुटा पायी थी कि शास्त्रों में क्या लिखा था। उसने कुछ भी नहीं पूछा। उसी हालत में बैठी रही थी। कांप रही थी। तब किसान ने उसे उसी हालत में जमीन पर लिटा दिया था। और उसके बदन पर गुलाल मला। मांग में, कपाल पर, नाक में, नाभि में, योनि में, नीचे पैरों के अंगूठे तक सारा बदन गुलाल से भर दिया। अबीर लगाया। कपूर जलाया। अगरबत्ती ठूंस दी। हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। कहने लगा, हे माता, सच्ची देवता तुम ही हो। तुम यदि प्रसन्न हो जाओगी, मुझे मनचाही वस्तु मिलते देर नहीं लगेगी। इस तरह पूजा का यही

क्रम आगे रोज चलता रहा था। अब बताओ, आखिरकार निपूतों के लिए सही देवता कौन हुई ? तो धुलक्या मुझे इसी तरह कोई और कहानी सुनाया करता था।

कहानी चलती रहती ; कभी किसान दक्षिणा भूल जाता है। कभी पत्नी अपनी कथा काफ़ी देर तक सुनाती रहती है। कभी खुद धुलक्या रुक जाता और कहने लगता, बाकी कल।

महारवाडा में हर अमावस को लहानू भगत की महफिलें हुआ करती थीं। मैं अपने नौकर के साथ कभी-कभी वहां चला जाता। रात भर वही गायन चला करता था। मेरे लिए यह अच्छा ही था।

आकाशधरतरी न पहावे मेरुपर्वत
राराइ वढें पांखरूं न मिले एक हो क्षणांत ऽऽ
ऐका कौंडण्यपूर नगरी ऽऽ
राजा शशांगार राज्य करी ऽऽऽ हो ऽ हो हो ऽ जी।

(आकाश या धरती पर मेरु पर्वत नहीं दिखायी देता है। राई के समान छोटा पक्षी अब फौरन मिलने वाला नहीं है। सुनिए, एक कहानी सुनाता हूं। कौंडन्यपुर नगरी में शशांगार राजा राज्य करता था)

फिर सुबह होने तक शशांगार राजा की कथा चलती थी। कथा की मुजावंती रानी को उसका लड़का अनजाने प्यार करने लगता है। इस प्रसंग के विवरण में रात पूरी हो जाती है। सुबह होने पर लहानू कहता, कथा का आगे वाला हिस्सा आगे वाली अमावस्या को। अभी मुझे बकरियां चराने पहाड़ियों पर जाना है। मैं मंडली को कभी-कभी चाय के लिए एक रुपया दे दिया करता था। दस आने का गुड़, छः आने की चाय की पत्ती और बकरी का दूध। ऐसी बढ़िया चाय के बाद गाने और सुनने में सही जोश भरता था।

तनाची झोंपड़ी हिला ठुपीसा आधार,
गगनी फिरे धार तिला देवाचा शेजार।

(तन रूपी झोंपड़ी जिसे लकड़ी के डंडे का आधार है। गगन में उड़ने वाली चील को भगवान का पास नसीब होता है)

मेरी यह पसंद थी। इसलिए ऐसी 'बही' (लिखत) सुनने में मुझे खूब आनंद आता। पर लहानू को तो वही कोनाल माता का गीत बड़ा पसंद था। वह वही सुनाया करता—

माझ्या कानोलच्याऽ मयात, माहया बहिनाच्याऽऽमयात
तढ़ी ह्यदीचं बन, माय, ह्यदीचं बन ऽऽ

याची सावली घन्नाघोर ऽ, मायचं लागलं तढी मन ऽऽ
माह्या कानोलच्या ऽऽ मयांत, माझ्या बहिनाच्या ऽऽ मयांत ऽऽ
तढी कुंकवाचं बन, माय कुंकवाचं बन ऽऽ
अन याची सांवली घन्नाघोर ऽऽऽ
मायचं रमलं तढी मन ऽऽऽ मायचं रमलं तढी मन।

(माता के खेत में, मेरी बहन के खेत में हल्दी के पेड़ उगे हैं जिसकी घनी छाया में मेरा मन वहां लग गया है। मेरी बहन के खेत में कुंकुम के पेड़ हैं जिसकी घनी छाया में मेरा मन लग गया है।)

इसी क्रम में गुलाल, खजूर और बादाम के पेड़ों का ज़िक्र होता था।

कभी धुलक्या कहता, मेरे मुकाबले लहानू को कुछ भी नहीं आता।

तब लहानू कहता, तब फिर हो जाय भिड़ंत।

फिर धुलक्या कहता, हम तुम्हारी उस मरी माता के उस पार नहीं आयेंगे। महफ़िल करनी है तो इधर चले आओ बस्ती में।

तब लहानू कहता, नहीं मर्ज़ी हो तो इधर महारवाड़ा में तुम्हें आना पड़ेगा।

एक बार लोगों ने दोनों को मना लिया था और बस्ती के बाहर मिली-जुली महफ़िल लगी थी। धुलक्या को हार खानी पड़ी थी। उसकी बड़ी हंसी हुई थी। धुलक्या के गीत बड़े शास्त्रोक्त किस्म के थे। लोगों को तो मज़ा आया था लहानू की चीज़ों में। और फिर लहानू डफली बजाकर गीत छेड़ता था। धुलक्या के अभिमान को ठेस लगी थी। आखिर उसने एक ज़ोरदार 'बही' पेश की थी—

अरे मायलेकी रे नित्य भांडती सवती परमानं ऽऽ हो ऽऽ
त्या मायनं रे लोक देली काढून,
अन जवाई ठेवला सासूनं हो ऽ हो ऽ रे ऽऽ जी

(मां और बेटी आपस में ऐसा झगड़ा करती हैं जैसे एक-दूसरे की सौत हों। तब मां ने लड़की को घर से निकाल दिया और जंवाई को अपने पास रख लिया था।)

महफ़िल एकदम खुश थी। पर लहानू कहां चुपचाप सहने वाला था, उसने धुलक्या पर नया वार किया था।

हो ऽऽ नागेलच्या रे पानावरती कलगीचा चुना हो ऽ
बायको बायतीन नवरा तान्हा ऽ
हा-यात घाली नेला राना ऽ
अन लाभ मारी पाजला भाना हो ऽ हो रे जी ऽ

(नागली के पत्तों पर कलगी का चूना लग गया था। पत्नी ने नन्हें पति को जन्म दिया था। पिटारी में सुलाकर वह उसे खेत में ले गयी थी…।)

कुछ दिन इन महफ़िलों में मुझे मज़ा आता रहा था। लेकिन अंत में इसे भी तो पुराना होना ही था। हर बार नया कहां से पैदा होगा? मुझे लगा, ये सारी बहियां और कथाएं कभी तो समाप्त होनी ही हैं। तब फिर और नया क्या सुनने को मिलने वाला था? मतलब, फिर वही रेडियो।

हां, धुलक्या वाले उस हेले की बात तो अधूरी ही रह गयी। पोला का त्योहार करीब था। इन दिनों बस्ती के बाहर वाले मैदान में भराली जाति के खानाबदोश रुके हुए थे। बचपन से मेरे मन में इन लोगों के बारे में बड़ा कुतूहल रहा है। मैं सोचता रहता कि क्यों ये लोग कंबल ओढ़े हाथ में लालटेन लिये रातों में चक्कर लगाते हैं? दादी मेरा समाधान करते हुए कहती कि ये लोग चोरों के चोर होते हैं। ये लोग रातों में घूमते हैं। डंडा पटकते हुए किसी एक पंक्ति को भद्दे सुर में दोहराते बस्ती की निगरानी किया करते हैं। पता नहीं, इनका उद्देश्य और भी कुछ होता है?

'हे ऽ ऽ ऽ और हे ऽ ऽ ऽ उस बंजी के बैल लौट आये ऽ ऽ ऽ जी ऽ ऽ ऽ' इस तरह की पंक्ति वैसे भी भयानक होती है। और फिर इसे कोई बेसुरे लहजे में आलापता रहे तो और भी भयानक लगती है। हम लोग सुबह-सुबह तीन-चार बजे मीठी नींद सो रहे होते हैं, तब किसी भराली को कंबल ओढ़े रास्ते से घूमता हुआ देख लेना भी डरावना होता है। इधर ये लोग बहुत कम आते हैं। मेरे बचपन में इन लोगों की बहुत ज्यादा आवा-जाई थी। इन लोगों की बस्तियां सातपुड़ा की पहाड़ियों में हैं। पर ये खानाबदोश लोग वर्ष के करीबन आठ महीने घुमक्कड़ी करते रहते हैं। जहां भी इनका डेरा लगता है, पूरे लवाजमे के साथ ये लोग अपना अड्डा जमाते हैं। भारी-भरकम स्त्रियां, काले-काले बच्चे, मुर्गियां, गधे, घोड़े और कुत्तों का झुंड।

पीछे एक बार बस्ती वालों ने इन्हें दस रुपये देकर बस्ती के लावारिस कुत्तों को मरवा दिया था। इनके कुत्ते एक खास दिशा से बस्ती की गलियों में एक कतार में दाखिल हुए थे। दस कुत्तों के दस्ते के पीछे एक डंडाधारी भराली चल रहा था। बस्ती के लावारिस कुत्तों का पीछा करके इन्होंने उन्हें एक दिशा में कर लिया था। और फिर इनके कुत्तों ने बस्ती वाले कुत्तों पर धावा बोल दिया था। इस हमले में खानाबदोशों के चार-पांच कुत्ते मरे होंगे, बस। बस्ती के एक पागल कुत्ते ने उनके किसी कुत्ते को काट खाया था। तब उन्होंने अपने वाले उस कुत्ते को डंडे से मार डाला था।

इस हादसे के बाद बस्ती में कुछ दिनों तक शांति बनी रही थी। वरना हालत तो यह थी कि रात में नींद लेना मुश्किल हो जाता था। कोई एक कुत्ता उधर से गुर्राता था। तब दूसरी दिशा से दो-तीन कुत्ते उसके जवाब में ज़ोर-ज़ोर से भौंकते थे। फिर कहीं से आठ-दस और जमा हो जाते थे। भौंकते-भौंकते सारे

कुत्ते एक जगह आ जाते थे। उनमें से कुछ भयानक सुर में रिरियाते रहते। बचपन में मुझे किसी ने बताया था कि कुत्ते तब रोते हैं, जब उन्हें यह दिखायी देता है कि यमराज उनके प्राण लिये जा रहे हैं। इसलिए इनके रोने की आवाज़ कानों पर पड़ते ही मुझे दहशत होने लगती और मैं फौरन सो जाता। लेकिन इधर जैसे-जैसे बड़ा हो रहा हूं नींद गायब होती जा रही है। इसका क्या इलाज करें ?

हां, तो इन भरालियों के पास सफेद रंग का एक कमसिन हेला था। अड्डे पर हमेशा बंधा खड़ा रहता। इसकी चारों टांगें खूंटों से बंधी रहती। एक बार हेले को लेकर धुलक्या और इन खानाबदोशों में कहा-सुनी हो गयी थी। धुलक्या ने कहा, जब से इनका हेला यहां आया है, मेरा धंधा ठप हो गया है। भराली ने कहा था, किस गुमान में हो ? हमारे हेले की नस्ल ऐसी-वैसी नहीं है मंसूर की खान है पक्की। बस्ती की भैंसें याद करेंगी। तब दो-चार लोगों ने दोनों को उकसाया था। तब यह हुआ कि पोले के अवसर पर दोनों के हेलों की परीक्षा की जाये। वैसे धुलक्या का हेला भयंकर तगड़ा था। इसके मुकाबले भराली वाला समझो बिलकुल बच्चू ही था। लेकिन उसका दम-खम किसी क़दर कम नहीं था। और फिर उसकी मजबूत टांगे और नोकदार सींग। कपाल पर लंबे-लंबे बाल।

पोले के दिन बस्ती में मुनादी करा दी गयी थी। धुलक्या और भराली दोनों ने बस्ती के लोगों को बुलावा दिया था।

धुलक्या अपने हाथी के समान चमकीले काले, लाल आंखों वाले हेले को बड़ी शान के साथ मैदान में ले आया था। हेले के कपाल पर गुलाल छिड़का हुआ था। बाजे बज रहे थे। धुलक्या के हेले का रोब देखकर गांव वालों ने कहा था, भराली के सफेद पिल्ले की अब कोई खैर नहीं, देखना गोबर कर देगा। चोंथ उठाने के लिए कोई तैयार रहो, भाई !

लेकिन जब नदी में बंधे उस छोटे हेले को छोड़ा गया, उसकी चाल देखकर लोगों को लगा कि यह भी कुछ कम नहीं है।

धुलक्या ने सटोरियों को उस दिन पैसा इधर इनाम में लगवाने के लिए कह रखा था।

हम तीनों-चारों मित्र पेड़ पर चढ़कर बैठ गये थे। नीचे खड़े हमारे नौकर पोपट ने कहा था, क्यों पांडू तात्या, घबरा तो नहीं गये ?

एक शराबी झूमता हुआ धुलक्या के हेले के पास आया था। हेले की पीठ पर हाथ फेर कर कहने लगा—वाऽ वाऽ बढ़े चलो। लोगों ने शराबी को वहां से हटाते हुए कहा, क्यों शामत तो नहीं आयी ? फिर भी शराबी उसी अंदाज़ में आगे बढ़ता गया था।

दोनों हेले अपने खुरों से मैदान की रेत को उछाल रहे थे। एक-दूसरे के

निकट आने लगे थे।

हमें लगा, इस भिड़ंत में सबसे पहले दोनों के सींग टूटेंगे।

लेकिन पता नहीं धुलक्या के हेले को क्या हुआ, वह छोटे हेले के करीब गया, उसका कपाल सूंघा और फौरन पीछे मुड़कर भाग खड़ा हुआ।

मतलब, हम लोगों का पेड़ पर बैठना बेकार गया समझो।

धुलक्या अपने हेले के पीछे दौड़ा था। और सब लोग सारा दिन हंसते रहे थे। ऐसी भिड़ंत किसी ने कभी नहीं देखी होगी।

पोपट ने हमें हेलों के कई किस्से सुनाये थे। उसने कहा, एक बार हमारी एक दुधारू भैंस घर से भाग गयी थी। और किसी एक डोह में फंस कर बैठ गयी थी। वैसे गढ़े में पानी ज्यादा नहीं था। लेकिन कीचड़ खूब गहरा था। अब उस साली भैंस को बाहर कैसे निकालें? जैसे-तैसे हम लोग गढ़े में उतरे थे और उसको रस्सियों से बांधा। खेंचा, पर रस्सियां फिसल गयीं···टूट गयी थीं। भैंस बाहर नहीं आ रही थी। हमने उसके कटरे को उसके सामने खड़ा किया। फिर भी वह टस से मस नहीं हुई। उसको बाहर निकालना ज़रूरी था। हमें शाम के दूध की चिंता जो थी। तब किसी ने एक तरकीब ढूंढ़ निकाली। कहा, एक तगड़ा हेला ले आओ। तब फिर हमने उस हेले को भीतर छोड़ा। हेला ज्यों ही भैंस के निकट पहुंचा, तपाक से भैंस खड़ी हो गयी। और दोनों डोह के बाहर निकल आये।

आगे पोपट ने कहा था, अच्छा हुआ दुधारी थी। इसीलिए तो फौरन बाहर निकल आयी थी। अगर दुधारी नहीं होती तो पता नहीं कितनी परेशानी होती?

पोपट का हर किस्सा मौलिक होता है। एक बार हमने उससे पूछा था कि गर्मियों में दिन बड़े क्यों होते हैं और सर्दियों में क्यों छोटे होते हैं? वजह बताओगे।

तब उसने जवाब दिया था, यह तो शास्त्र के अनुसार चलता है। परंपरा से यही होता रहा है।

बस्ती में एक और खास ढंग का आदमी रहता है। यह शख्स पागल है। लोग इसे जयहिंद नाम स पुकारते हैं। जयहिंद अपने हाथ में हमेशा एक गुलदस्ता लिये घूमता रहता है। उसका अपना एक घर है। लेकिन वह कभी भी इस घर में नहीं होता। बस्ती के बाहर वाले मैदान में निरंतर घूमता रहता है।

ऐन जवानी में जब कि वह लगभग मेरी उम्र का होगा, उसको यह परेशानी शुरू हुई थी।

वैसे जयहिंद रात के वक्त कभी यात्रा नहीं करता था। पर एक दिन जब अंधेरी चौदस की रात थी, शहर से उसे अपने गांव आना पड़ा था। शहर ही में काफ़ी रात हो गयी थी। पर लोगों ने उसे यात्रा के लिए मना नहीं किया था। इसने भी किसी से इस बारे में कोई पूछताछ नहीं की थी।

रास्ता चलते-चलते वह टोकरया खेत तक पहुंचा था। यहां से आगे अचानक रास्ता जैसे गायब हो गया था। बावड़ी के ऊपर घने पेड़ थे। आगे रास्ते का कोई निशान नहीं था। इसलिए वह रास्ते की तलाश में इधर-उधर भटकता रहा था।

इस स्थान के बारे में लोगों में धारणा थी कि वह भूतहा जगह है। यहीं जयहिंद भटकता हुआ कुएं के पास आ पहुंचा था।

वहां उसने देखा कि एक आदमी कुएं के किनारे खड़ा है।

वह था भूत।

भूत ने कहा, तुम्हारे बाप ने एक बार मेरा घोड़ा छीन लिया था, उसे मुझे लौटा दो।

उसके बाद जयहिंद इसी इलाके में घूमता रहा था। लोगों ने उसे खेतों में भटकते हुआ ढूंढ़ लिया था। वे उसे घर ले आये थे। उसे तेज बुखार हो रहा था।

जयहिंद ने अपनी मां से पूछा, मेरे बापू के पास क्या कोई घोड़ा था ?

मां ने कहा, हां।

और इसकी घिग्गी बंध गयी थी।

इसके बाद से जयहिंद जंगलों में निरंतर भटकने लगा था। तब उसकी मां या पत्नी उसे ढूंढ़कर घर ले आते। ये लोग उसे खाना खिलाते। पर फिर से वह घर से भाग जाता और भटकता रहता।

भटकते रहने के कारण जयहिंद की टांगें लहुलूहान हो जातीं। मां अपने बेटे की स्थिति को देखते-देखते एक दिन पीड़ा से मर गयी थी।

बाद में कुछ लोगों ने जयहिंद को एक घोड़ा दिलवा दिया था। जयहिंद ने घोड़े की पूजा की और उसे कुएं पर ले गया।

वहां भूत हाजिर था। भूत ने कहा, यह मेरा घोड़ा नहीं है। क्योंकि ज्यों ही यह तुम्हारे हाथ से छूट जायेगा, रुकेगा नहीं। भाग खड़ा होगा।

और ऐसा ही हुआ। घोड़ा उसके हाथों से छूट गया और चौकड़ियां भरता, धूल उड़ाता, दूर गायब हो गया था। तब जयहिंद ने भूत से पूछा, बताओ तुम्हारा घोड़ा मुझे कहां मिलेगा ?

भूत ने कहा, यह सवाल तुम अपने बाप से जाकर पूछो।

तब वह उस जगह की तलाश में भटकता रहा जहां उसके बाप की चिता जलायी गयी थी। उसकी पत्नी बहुत डर गयी थी। वह बस्ती के लोगों से जयहिंद के इलाज के बारे में पूछने लगी थी। जयहिंद अपनी पत्नी के अतिरिक्त और किसी से बात नहीं करता था।

किसी ने कहा, इसके बाप की अस्थियां तापी में बहा दी गयी थीं। जाने

कहां चली गयी हों। इसके बाप की चिता कहां जली थी, किसको उस जगह का पता होगा ?

आखिरकार उसकी पत्नी के रिश्तेदार किसी एक कँकाड़ी ओझा को बुला ले आये थे।

ओझा ने कहा, मैं इसका पक्का बंदोबस्त किये देता हूं।

फिर रात भर मंत्र फूंके जा रहे थे। ओझा ने जयहिंद को खूब घुमवाया। उसने जयहिंद के पास रखी जरूरी चीज़-वस्तु हथिया ली थी। उसने जयहिंद से कहा, देखना, अगली अमावस की रात को मैं तुम्हें पूरी तरह ठीक कर दूंगा।

अमावस की रात आयी। जयहिंद और ओझा उस कुएं पर पहुंचे थे।

ओझा ने कहा, कुएं में उतर जाओ।

जयहिंद ने कहा, कुएं में भूत है।

ओझा ने कहा, यह मेरा आदेश है। उतर जाओ कुएं में।

फिर जयहिंद कुएं में कूद पड़ा था।

ओझा ने कहा, डुबकी लगाओ और तल से सात कंकड़ ऊपर ले आओ।

जयहिंद ने ऐसा ही किया और सात कंकड़ ऊपर फेंके।

ओझा ने कहा, अब मैं क्रम से एक-एक कंकड़ पर मंत्र फूंककर उसे कुएं में फेंक दूंगा। उसके बाद मैं चला जाऊंगा। अगर भूत आ जाये तो तुम उसको चुनौती दो। कहो, या तो इन कंकड़ों को खा जाओ, नहीं तो कुएं का सारा पानी पी जाओ।

ओझा ने कंकड़ों को भीतर फेंका और खुद वहाँ से चला गया।

उसके बाद क्या घटित हुआ था, किसी को पता नहीं चला था।

एक बार खुद जयहिंद ने किसी से सिर्फ इतना ही कहा था कि कुएं पर जब भूत आया था, मैं सोया हुआ था। किसी दूसरे को जयहिंद ने कहा था कि खुद मैंने भूत को खूब गालियां दीं और उसे वहां से बुलवाया था। भूत वहां आया था। उसने मुझसे कहा था कि मैं ही तुम्हारा बाप हूं। मेरे मरने के बाद तुम लोगों ने मेरे घोड़े को भूखा क्यों मरने दिया ?

लेकिन सुबह लोग जब वहां आये थे, उन्होंने देखा कि कुएं में बहुत कम पानी था। और जयहिंद कुएं में खड़ा था। लोगों ने उसे ऊपर निकाल लिया।

इस घटना के बाद उसने किसी को कोई तकलीफ नहीं दी थी। लेकिन तब से उसकी पत्नी घर छोड़ कहीं भाग गयी थी। फिलहाल उसके घर में कोई नहीं रहता। कभी-कभी वह खुद घर में चला आता है। चूहों के कारण मकान में मिट्टी के ढेर पड़े रहते हैं। जयहिंद इनकी सफ़ाई करता और फिर बाहर चला जाता है।

पिताजी को किसी ने जाकर खबर दे दी थी कि इधर मैं कुछ ऐरे-गैरे लोगों में उठने-बैठने लगा हूं।

पिताजी ने उन लोगों से कहा, अब वह कोई गंवार नहीं रहा है। अपना बुरा-भला समझने की अक्ल उसके पास है।

लेकिन मुझसे उन्होंने कहा था, तुम चाहो जिसके साथ मेल-जोल बढ़ा सकते हो। लेकिन याद रहे, अगर कहीं ज़रा भी शरारत हो गयी तो फिर मैं उन सबके सामने तुम्हारी मरम्मत करने से चूकूंगा नहीं।

उन्होंने बस्ती के तमाम निकम्मे लोगों को, अपने नौकरों को और अन्य मेल-जोल वाले लोगों को स्पष्ट चेतावनी दी थी कि उसे अगर तुम लोगों ने ज़रा भी बुरा शौक लगाया तो ध्यान रहे, मुझसे बुरा और कोई नहीं होगा।

तब से कुछ खास लोग मुझसे मिलने-जुलने से कतराते रहे थे। कभी इन लोगों के साथ गप्पों का सिलसिला चलता और रंग जम जाता तो ये लोग रुक जाते और मुझसे कहते, सेठ साहब, यह कंपनी तुम्हारे लायक नहीं है। आप घर चले जाइए। तब पिताजी पर मुझे बहुत चिढ़ हो गयी थी। समय पक्षियों की तरह तेज गति से आगे निकला जा रहा था। मैं अकेला घर में बैठा क्या करूं, कुछ समझ नहीं आ रहा था।

पिताजी एक साथ स्वार्थ और परमार्थ दोनों चीज़ें हासिल करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने मुझे कारोबार में ट्रेंड करने के इरादे से इधर कई नये झमेले शुरू किये थे। शुरुआत में मैं सौंपे गये कामों को सही ढंग से पूरा कर लेता था। लेकिन हमेशा किसी काम को सही ढंग से पूरा कर पाना मेरे बस की बात नहीं है।

पिताजी ने एक नया काम शुरू किया था। उन्होंने सल्फेट का कोटा लिया था। गर्मियां शुरू होने से पहले पिताजी नागपुर चले जाते और वहां से सल्फेट के ट्रक ले आते। मेरा काम सिर्फ़ इन बोरों का हिसाब-किताब रखना था। बारिश के दिनों में सल्फेट की मांग शुरू हो जाती तब उन दिनों तो मुझे ज़रा भी फुरसत नहीं मिलती थी। पिताजी मुझे पूरा व्यवहार समझा देते थे। बता देते थे कि किस-किस को माल उधार देना है, किसको सस्ते भाव में देना है और किससे ड्योढ़ा वसूल करना है। पड़ोस की बस्तियों से लोग बैलगाड़ियां लेकर आते। हमसे सल्फेट खरीदते। लोग अपनी मांग दर्ज करवाते और पैसा देकर निकल जाते। जैसे-जैसे इन लोगों की बैलगाड़ियां माल ले जाने के लिए दूकान के सामने आतीं, मैं गोदाम खुलवाता और नौकर के हाथ माल भिजवा देता। हर शाम आय-व्यय का सारा ब्यौरा पिताजी के सामने प्रस्तुत करता।

वास्तव में इस धंधे में पैसों की जैसे बारिश होती है। लेकिन बस्ती में कई वर्ष से जैसे यह धारणा पक्की हो गयी थी कि, इसे सिर्फ़ पिताजी ही कर सकते

हैं। हम बस्ती के व्यापारियों को नागपुर के भाव में सल्फेट बेचते। इसलिए चंद अमीर लोग कहते थे कि ऐसे झमेलों को संभालने के लिए उनके जैसा लड़का है कहां हमारे पास? कुछ लोग यह सोचकर कि इनसे कौन संबंध बिगाड़े, इस धंधे में नहीं पड़े थे।

लेकिन आखिरकार एक शख्स ने चुनौती स्वीकार कर ली थी। कहने लगा, ये लोग हमसे ड्योढ़ा भाव वसूलते हैं। अब देखता हूं, उनका धंधा कैसे चलता है?

यह शख्स पिताजी से पहले नागपुर पहुंच गया था। उसने व्यापारी से सांठ-गांठ कर ली। और पहली खेप के रूप में दो ट्रक भरवाकर नागपुर से चल पड़ा था। रास्ते में कहीं-कहीं दो-तीन लोग आगे वाली ट्रक में यह कहकर कि उन्हें बीच में उतरना है सवार हो गये थे। आधा रास्ता कट गया था। दोपहर के समय आगे वाला ट्रक एक नाले में अचानक रुक गया। पीछे वाले ट्रक में वही सख्स बैठा था। पीछे से इन लोगों ने ज़ोर-ज़ोर से भोंपू बजाया, पर सामने वाला ट्रक वहीं रुका खड़ा था।

तब ड्राइवर ने उस शख्स से कहा, देखना, ज़रा मामला क्या है?

वह शख्स नीचे उतरा और आगे वाले ट्रक के पास जाकर खड़ा हो गया। देखता क्या है कि उस ट्रक में बैठे हुए वे तीनों मुसाफ़िर नीचे उतर गये थे। उनके हाथों में छुरे थे। वे कह रहे थे, ट्रक का सारा माल हमारा है।

तब वह शख्स चुपचाप सांगवी लौट आया था।

किसी ने कहा था, अजी साहब जो रोग हमारे बस का नहीं है, उसे क्यों पाले कोई? किसी ने कहा था, इस मामले में हमारे पिताजी का हाथ है।

खैर छोड़िये इन चीज़ों को, हमें इससे कोई मतलब नहीं।

आगे कई दिनों तक पुलिस का चक्कर चलता रहा। इस दौरान उस शख्स को नागपुर के व्यापारी की चिट्ठी मिली थी कि वह अपनी शेष खेप कब उठा रहा है? आख़िरकार वह शख्स हमारी दूकान से फिर से सल्फेट खरीदने लगा था।

तालुके के गांव में हम लोगों का एक बड़ा सहकारी बैंक है। चुनावों में हमेशा या तो हमारे गांव की जीत होती है या आस-पास के आठ-दस देहात इकट्ठे हो जायें तो उनकी होती है। हमारी बस्ती के लोगों ने इस बैंक के सौ-सौ रुपयों के पांच सौ शेअर खरीद लिये हैं। मतदाताओं की इतनी संख्या और किसी बस्ती में नहीं हो सकी थी। इसलिए डायरेक्टर के पद के लिए हमारा आदमी निश्चित रूप से जीत जाता है। किसी एक चुनाव में पड़ोस के गांव वालों ने एका

कर लिया और सांगवी का रौब धूल में मिला दिया। वरना तो सांगवी का नंबर पक्का समझो।

पिछले तीन-चार बरसों से पिताजी ही डायरेक्टर हैं। वैसे देखा जाय तो डायरेक्टर बन जाने से कोई विशेष लाभ नहीं होता। हां, एक लाभ ज़रूर है कि हर शनिवार बैंक की मीटिंग के लिए पिताजी को लिवा लेने एक मोटरकार सांगवी आती रहती। और फिर शहर में डायरेक्टर के ठहरने के लिए एक कमरा रखा रहता, सो अलग। इस कमरे की चाभी पिताजी अपने पास रखे रहते। जब भी कोई भला आदमी बाज़ार-हाट करने या फिल्म देखने शहर जाता, उसके ठहरने का प्रबंध इसी कमरे में किया जाता। इसलिए चाभी मांगने वालों की भीड़ कभी कम नहीं होती थी। मैं उन्हें चाभी दिया करता और उनसे कहता, कि भैया कल ज़रूर लौटा देना। इस कमरे में चार-पांच लोगों से अधिक समा नहीं सकते थे। लेकिन कभी-कभी वहां बाज़ार वाले दिन बीस लोग मुकाम कर लेते। किसी दूसरे देहात का कोई आदमी वहां जगह मांगे तो हमारे लोग उसे कहते, आगे वाले इलेक्शन में अपना ज़ोर लगाइए।

हर शनिवार को दोपहर के वक्त हमारे यहां पांच-छह जने गाड़ी की प्रतीक्षा में खड़े रहते। गाड़ी आयी कि पिताजी छाता लिये डोलते-डालते गाड़ी में जाकर बैठ जाते। फिर वे जिसे बुलाते उसे उनके पास बैठा लिया जाता। इसी तरह दो-तीन लोग उनके साथ पीछे की सीट पर बैठ जाते। बाकी लोग सामने वाली सीट पर ड्राइवर के अगल-बगल जैसे-तैसे बैठ जाते। कभी बहुत भीड़ हो जाती तो हमारा बैंदू ड्राइवर चिढ़ जाता था। गाड़ी के नीचे उतर जाता और कहता, ले जाइए, आप ले जाइए गाड़ी आगे।

तब पिताजी भीड़ करने वालों से संबोधित होकर कहते, तुम नीचे उतर जाओ। शहर में आज तुम्हारा क्या काम है जी? ठीक है, बैठो। और तुम। फिल्म देखने? कौन-सी फिल्म है? मराठी है? तब बैठ जाओ। और तुम जी? आगे वाले शनिवार का सौदा नहीं किया जा सकता? चलो जी, चलो। बैंदू, मारो गाड़ी। ये लोग तुम्हें चाय पिलायेंगे। अरे भाई हम सब लोग कोऑपरेटिव बैंक हैं।

फिर रास्ते में हंसी-मज़ाक चलती। मीटिंग खत्म करके पिताजी अगले दिन उसी अंदाज़ में छाता लिये लौट आते।

कभी ऐसा भी होता कि किसी शनिवार कार आ नहीं पाती। तब प्रतीक्षा में खड़े लोगों से पिताजी कहा करते, आज मीटिंग नहीं है। एक बार एक आदमी ने कहा था, ऐसे-कैसे, हर शनिवार मीटिंग तो होनी ही चाहिए। बैंक की आगामी जनरल मीटिंग में प्रस्ताव रखना ही होगा। वरना बैंक सही ढंग से कैसे चलेगा? हमारी बात छोड़िए। हम फिर भी एस० टी० से चल सकते हैं।

वैसे भी इस बस्ती का पुरुष वर्ग बड़ा बेफिक्र है। महिलाओं की नहीं कहते। उनके बारे में हमें पता नहीं है। गरीब हो या अमीर, सारी महिलाओं को खूब परिश्रम करना पड़ता है। मेरी मां इसकी गवाह है। दिन में पचास बार चाय बनाओ, सुबह उठते ही मथनी हाथ में। लड़कियों की चोटी-कंघी करो। और रसोई। यहां रसोई का मतलब होता है, गाड़ी-भर रोटियां और फिर खाने वालों में हर किसी की पसंद अलग। मेहमानों की आवा-जाई के क्या कहने ! उनके लिए अलग से खाना बनाओ। और इतना सब करके भी शर्त यह कि चेहरे पर कोई शिकन नहीं आनी चाहिए। चेहरा हमेशा मुस्कराता हुआ रहे। दोपहर हुई कि खेतों में चक्कर लगाना पड़ता है। शाम को फिर से चूल्हा। और फिर देर रात तक जूठे बर्तनों से भिड़ते रहो। कभी दादी के साथ कहा-सुनी हो जाती है तो घर के काम और भी तेज होने लगते। दादी जब तक सोती नहीं, निरंतर बड़बड़ाया करती। वह कामों का ज़िम्मा लगा दिया करती है। यह चीज़ वहीं रहने दो, ये रोटियां उस खेत में भिजवाओ, ये वाली सब्ज़ी उस बगीचे में, इस नौकर को अभी खाना दो, दूसरा जो बैठा हो उसे कोई काम कहो। हमारी किसानी क्या छोटी थी ? दादी मुझसे कहती रहती, तुम्हारी दादी ज़िंदा है सो ठीक है। मज़दूरों पर निगरानी का काम अपने-आप हो जाता है। तुम्हारे बाप को तो महाजनी से कहां फुरसत है, और तुम्हारा इस घर में होना-न होना बराबर है। घर में एक और औरत ज़रूरी है। यह कितना भयानक है कि आप शादी कर के किसी लड़की को घर इसलिए ले आ रहे हैं कि तुम्हें एक नौकरानी की ज़रूरत है। परिवार के लोगों ने मुझे बहुत सताया है।

एक बार एक लड़की जो मेरी मां के पीहर से रिश्ते में थी बस्ती में किसी शादी के बहाने हमारे घर आयी हुई थी। मां ने उसे यूं ही रोक लिया था। तब से मैं सिर्फ खाने के वक्त घर में भीतर आने लगा था। और फिर मां ने लड़की को मेरे बारे में बता दिया था कि मैं जैसा भी हूं, कतई बुरा नहीं हूं। इसलिए तब से मैं खाना खाते वक्त ढंग से बात करने लगा था। मैंने सप्ताह भर में सिर्फ एक बार उस लड़की के साथ बात की थी। शाम के वक्त मैं छत पर बैठा हुआ था। मां ने उसे छत पर पानी छिड़कने के लिए कहा था। इसलिए वह पानी की बालटी लिये जीना चढ़कर ऊपर आयी थी। ऊपर और कोई नहीं था। मुझे शर्म लग रही थी। मन-ही-मन मैं प्रतीक्षा करता रहा कि मेरी कोई बहन ऊपर जल्दी आ जाये, और मैं वहां से प्रकृति की शोभा वगैरा देखने लगा था। ऊपर आसमान खूबसूरत है।

उसने कहा था, आज हम सब लोग छत पर खाना खायेंगे।

लड़कियां कितनी ढीठ होती हैं।

मैंने पूछा, सब लोग, मतलब कौन ?

उसने कहा, मतलब सभी।

फिर वह निर्भय होकर पानी छिड़कने लगी थी। उसने इसका खास ध्यान रखा था कि पानी मुझ पर न पड़े। मैंने उसकी तरफ देखा था। वह अपनी गर्दन नीचे किये मुस्करा रही थी। वह कोई चीज़ चूस रही थी। हां तो, यही वह लड़की है जिसे मुझको दिखाने के लिए बुलाया गया था।

तब मैंने उसके बारे में कुछ जानना चाहा।

उसने कहा, आप एक बार हमारे गांव आये थे, तब मैंने आपको पहली बार देखा था। मेरी मां ने आपको चाय पर बुलाने के लिए मुझे भेजा था। मैं आपको बुलाने आयी थी। पर पता चला कि आप सुबह-सुबह जल्दी रवाना हो गये थे।

मैंने कहा, अच्छा यह बात थी।

तब मन-ही-मन कोई ऐसा वाक्य ढूंढ़ रहा था जिससे अपना रोब उस पर पड़े।

लेकिन उसने फट से दूसरा सवाल किया। कहा, तब आपने उसके बाद क्या किया ?

मैंने कहा, उसके बाद मतलब कहां ?

उसने कहा, आप हमारे गांव आये थे न, उसके बाद।

मैंने कहा, उसके बाद मैं फिर से पूना चला गया था।

उसने कहा, तब आपने नौकरी के बारे में कुछ तो किया था न ?

तुम्हें यह किसने बताया ?

आपकी सभी बातें हमें पता हैं।

मां ने उसे यह सब बताया होगा।

उसने फिर दोहराया, आपकी सभी बातें हमें पता है, पूछो कोई बात ?

मैंने कहा, सभी बातें कैसे पता हो सकती हैं ?

उसने कहा, बिलकुल सारी-की-सारी।

मैंने कहा, यह कैसे संभव है ?

उसने कहा, पूछिये तो सही।

मैंने कहा, तो बताओ, मैं अपने कमरे पर क्या-क्या किया करता था ?

इस पर वह खिलखिलाकर हंस पड़ी थी। मैंने देखा कि उसका एक दांत सड़ गया था। खैर, यह कोई खास बात नहीं थी। वैसे हमारे भी तो दांत कहां अच्छे हैं ?

फिर अपनी कमर पर हाथ रखते हुए उसने कहा, कमरे पर और क्या करोगे ? पढ़ाई। क्यों ?

मैंने जान लिया कि लड़की बड़ी चंपक है। यह तो उपन्यास भी पढ़ती होगी।

और फिर रसिक भी होनी चाहिए।

इस हादसे के कोई चार दिन बाद उसने मुझसे मेरे इम्तिहानों के मामलों के बारे में सवाल किये थे। और यह कहते हुए उसे बिलकुल संकोच नहीं था कि हमने आपकी तरह कभी नहीं किया।

कहने लगी, आगे पढ़ाई क्यों बंद कर दी ?

इसके बाद कभी-कभी वह मुझसे बात करती रही थी।

एक बार दोपहर के वक्त उसने मां को एक गीत सुनाया था।

संक्षेप में आशय यह था कि हम शादी कर लें।

इन्हीं दिनों अपने बगीचे में मैंने एक दृश्य देखा था। बगीचे के कुएं के पास कुछ लोग थोड़ी देर के लिए रुके थे। ये थे अंबा माता के भगत। इनके ऊंचे-ऊंचे टोप थे जिन पर कौड़ियां लगी थीं। हर आदमी के पास कपड़े का एक बड़ा थैला था, जिसे वह पीठ पर लादे सफर करता था। इस थैले में छोटी-छोटी कई पोटलियां बंधी रहतीं। किसी में ज्वार। किसी में उड़द। किसी में आटा। किसी में मिर्च-मसाला वगैरा। शाम का खाना बनाकर आगे निकलने के इरादे से वे लोग यहां रुके थे। मैं कुएं की लकड़ी की पाटी पर बैठा उनका रसोई करना देख रहा था।

ये तीन लोग थे। इनमें से एक चूल्हे के पास खामोश बैठा हुआ था। दूसरा हर थैले से बराबर-बराबर सामान निकाल कर रसोई में लगा था। तीसरा पानी तथा ईंधन ले आया था। यह सारा काम इतना चुपचाप चल रहा था कि निश्चित रूप से इसमें मज़ा आना चाहिए था। बगीचे के दो-तीन कुत्ते वहीं गर्दन टिकाए लेटे पड़े थे।

पिठला (बेसन से बना सालन) जैसी कोई चीज़ बनी थी। मैंने उनसे कहा, केले के पत्ते ले लो। चाहो तो प्याज़ उखाड़ लो, उधर लगे हैं।

जो आदमी खाली बैठा था, वह प्याज लाने के लिए चल दिया था। उसके लौट आने से पहले ही उन दोनों ने अपने पत्तों पर खाना परोस लिया और खाने लगे। वह प्याज लेकर लौट आया था। पर किसी ने उससे प्याज़ नहीं मांगा। उसने खुद अपना खाना ले लिया और चुपचाप खाने लगा था। किसी ने भी कुत्तों को कुछ नहीं डाला।

खाना खा चुकने के बाद उन्होंने उस जगह की सफाई की और सामान थैलों में भरकर उनके सहारे वहीं सुस्ता गये थे। फिर बीड़ियों के कश लगाते-लगाते उन्होंने आपस में झगड़ा छेड़ लिया था। उनकी बातें डांगी बोली में हो रही थीं। बात इतनी बढ़ गयी कि वे एक-दूसरे पर हमला करने पर उतारू हो गये थे।

फिर वे दोनों तीसरे वाले पर टूट पड़े थे। दोनों ने उसकी लातों, घूसों से बड़ी मरम्मत की थी। फिर दोनों अपने थैले उठाकर आगे चल दिये थे। तीसरा

उठा, अपना थैला उठाया और उनके पीछे-पीछे चुपचाप चल दिया था। वे लोग दूर निकल गये थे। मैंने कहा, हे भगवान, मुश्किल है। दिन-रात बस्ती-दर-बस्ती घुमक्कड़ी करते रहो। कोई ज़मीन अपनी नहीं। कोई जायदाद नहीं। अपनी कोई मिलकियत नहीं। कंधे पर थैला लादे ज़िंदगी को खेंचते रहो।

मैं घर चला आया और खाना खा लिया।

चार-पांच दिन के बाद वह लड़की चली गयी थी। मैंने मां से कहा, यह लड़की अपने घर में नहीं चलेगी। मां ने कहा, यह न सही, कोई और देख लो। लेकिन अब जल्दी तय कर लो।

मैंने कहा, यहां से जाते वक्त उसको पीड़ा हुई होगी। उसने मन-ही-मन सोचा होगा कि भविष्य में इस घर की हर चीज़ पर उसका अधिकार होगा। और फिर उसने अपने भविष्य को लेकर नये-नये मनसूबे बांधे होंगे। शायद सोचा होगा कि यहां का वह आटे का पुराना डिब्बा बदल देगी। फिर निराश हो गयी होगी, जब उसे पता लग गया होगा कि वह इस घर से नाता-रिश्ता जोड़ने जा रही थी लेकिन सफल नहीं हुई। मुझे उस पर दया आयी थी।

मां को खुशी हुई थी। उसने पूछा, तब उन लोगों के घर क्या संदेशा भेजें?

मेरी तो ना पक्की थी। सोचा, उस लड़की के माता-पिता को कितना बुरा लगेगा। वे सोचेंगे कि हमारी लड़की से ही गलती हुई होगी। यह तो और भी बुरी बात थी।

मां ने कहा, तुम्हारी ना है ना, फिर उसकी स्थिति को लेकर परेशान होने की कोई ज़रूरत नहीं।

मां ने कहा, लड़कियां सभी बातों की अभ्यस्त होती हैं।

लड़कियां। तो लड़कियां अच्छी ही होती हैं।

हम लोगों की भी एक टोली बनी हुई है। शहरों में चार-छः वर्ष गुज़ार चुकने के बाद अब अपने घर किसी बहाने व्यस्त रहने वाले लोगों की कतार में अंतिम क्रम मेरा था।

हममें सबसे बुज़ुर्ग था, लाल जी (असली नाम नन्दलाल)। अगर कोई लड़का पढ़ाई अधूरी छोड़कर गांव चला आता और कुछ दिन बड़ा बेचैन बना रहता, तो समझ लो कि लोग उसका फौरन कोई नया नाम धर कर देते थे। अब बताइये, जब लोग किसी को नये नाम से ही पुकारने लगें तो क्या मजाल है कि वह लड़का कोई शरारत करे। अब देखिए, 'लालजी' नाम से जाना जानेवाला कोई लड़का कभी कोई शरारत कर सकेगा? हमारी टोली के कुछ लोगों के नये नाम थे दामु अण्णा, सोरम्या, दगड़ू सेठ वगैरा। मुझको अब तक इस तरह की कोई उपाधि नहीं मिली थी। पर कभी-कभी लोग मुझे पांडू तात्या कहकर

पुकारने लगे थे।

लोगों का खयाल है कि ये साले सभी-के-सभी बड़े सुखी जीव हैं। पर सच मानिए, हम सारे-के-सारे कमाल के बेचैन हैं। हम लोग मन-ही-मन खुद को बचाते जा रहे हैं। सोचते रहते कि बराबरी के दोस्त हमसे कितने आगे गये और हम हैं कि यहीं बैठे हैं। आगे निकल गये, मतलब कहां ? मैं सोच रहा हूं, जैसे कोई चौकड़ियां भरता आगे दौड़ा जा रहा है और हम एक ही स्थान पर चैन से बैठकर उसे देख रहे हैं। आगे निकल जाने का बस यही मतलब था।

लेकिन हमारी टोली के सभी लोग एक बात से संतुष्ट हैं। जो आगे जा रहे हैं, उन्हें शौक से जाने दें। आखिर आगे जाने वाले हर किसी के पीछे कोई तो होता ही है। पीछे छूटने वालों को चाहिए कि वे एक जगह आ जायें ताकि उन्हें भी पता चले कि उनके पीछे छूटने वाला भी एक और बड़ा समाज है।

पढ़ाई के दौरान बस्ती के लोगों से मैं कभी घुल-मिल नहीं सका था। लेकिन जब से इधर रह रहा हूं, एक बात समझ आ गयी है कि हमें अपने भेदभाव भुला देने होंगे। सब लोगों को चाहिए कि वे बालू की दूकान पर इकट्ठे जमा होते रहें। वैसे भी घर में बैठे-बैठे क्या करेंगे ?

इसके विपरीत खुद को महान समझने वाला लालजी जैसा कोई लड़का यह भ्रम पाले रहे कि उसके पिताजी की मृत्यु हो गयी वरना एअर फोर्स की इतनी अच्छी नौकरी छोड़कर वह यहां क्योंकर निठल्ला बैठा रहता, ठीक नहीं है।

स्कूली पढ़ाई के दौरान सिर में चक्कर वगैरा आ जाने के कारण दामु अण्णा ने (असली नाम दादो मुरलीधर) पढ़ाई छोड़ दी थी और अब निठल्ला बैठा हुआ था। इस स्तर पर लालजी और दामु अण्णा में कोई फ़र्क नहीं है।

लखू सेठ (असली नाम लक्ष्मी कांत) अपनी वकालत न चलने के कारण परेशान होकर यहां चला आया था और पिताजी का कारोबार संभालने लगा था। फिर गांव वालों को मुफ़्त में कानूनी सलाह दिया करता है।

भौंह सिकुड़ने के अलावा और कोई बात मुझमें विशिष्ट नहीं है, जिससे कि हम दोनों में भेद किया जा सके। इसलिए आपसी विभेदों को भूले बिना हम लोग अपने घरों में चैन से नहीं बैठ सकते थे।

हां, हम सभी का एक दोष ज़रूर था। वह यह कि पहले-पहले हम सभी लोग बेहद कुढ़ा करते थे। चार हज़ार मकानों की यह बस्ती हमें निहायत छोटी लगती। यहां का हर मकान हमें बौना लगता था।

मेरे अतिरिक्त टोली के सभी लोग अपनी जगह व्यस्त हैं। हम सब लोग शाम के वक्त बालू (असली नाम बाली राम) के पान के ठेले पर जमा हो जाते हैं। इसके अलावा टोली के कोई विशेष सामूहिक उद्योग नहीं है। हां, कभी पार्टी, कभी पहाड़ों पर रामकुंड में स्नान, कभी किसी के यहां चाय पर—बीच-बीच

में यह सब चलता रहता था। लेकिन इसके पीछे बस इतना ही भाव रहता कि चलो वक्त अच्छा कट जाता है। बस और कोई बात नहीं।

लेकिन जब भी पुरानी यादें जाग उठती हैं, तब हमारा अभिमान जाग जाता है और हम एक-दूसरे से सवाल किये बिना नहीं रह सकते—हम भी तो कहीं किसी से कम हैं ?—पर फिर मन कहता है कि भैया आखिर फंस तो गये हैं, पर लोगों के सामने और क्या कहेंगे ?

एक बार इन लोगों ने मेरी खासी फ़जीहत की थी।

स्कूली ज़माने का मेरा एक दोस्त डॉक्टर हो गया था। आगे की पढ़ाई के लिए वह इंग्लैंड जाने वाला था। उसकी विदाई में गांव वालों ने एक सत्कार-समारोह अयोजित किया था। डॉक्टर और मैं बचपन के दोस्त थे। उसके यहां जगह कम पड़ती थी, इसलिए वह हमारे घर आकर पढ़ाई किया करता। हमारे पुराने संबंधों को ध्यान में रखते हुए या और कोई कारण होगा, पता नहीं क्यों समारोह में डॉक्टर की कुर्सी की बगल में मेरे लिए भी एक कुर्सी रखी गयी थी। मुझे वहां बैठने पर मजबूर किया गया था। ये सब लोग नीचे बैठकर मेरी फ़जीहत होती देखने के लिए उतावले थे।

चन्द शब्द बोलने वालों ने अपने भाषणों में डॉक्टर की खूब प्रशंसा की थी।

मैं भी बोला था। मैंने कहा था, बचपन में आप पढ़ाई करते-करते सो जाते थे, मैं इन्हें जगाता था और फिर से पढ़ाई में लगवा देता था। मेरी यह बात सभी श्रोताओं को बड़ी पसंद आयी थी।

लेकिन एक पेंशनर साहब जो कुछ बोल गये थे वह मुझे बहुत अखरा था।

उन्होंने कहा, उच्च शिक्षा के लिए मात्र विद्वत्ता पर्याप्त नहीं होती। उसके साथ लगन भी तो चाहिए। आप देखिए, हमारे डॉक्टर साहब के पुराने बाल मित्र पांडु तात्या थे। दोनों की आर्थिक स्थितियों में कितना अंतर है, आप जानते ही हैं। मुझे सिर्फ़ इतना ही कहना है कि मात्र पैसों के बल पर आदमी आगे नहीं बढ़ सकता।

एक ने कहा, मैं रोज़ अखबार पढ़ता रहता हूं। हमारा क्षेत्र दिन-ब-दिन विकास की यात्रा में आगे बढ़ता जा रहा है। विश्व में हमारे क्षेत्र का नाम रोशन हो रहा है।

दूसरे ने कहा, हमारी बस्ती के कई लोग उच्च शिक्षा प्राप्त कर चुके हैं। फिर भी उनमें से खेती को महत्त्व देने वालों की संख्या कुछ कम नहीं है। और फिर आपको पता होगा, इस बार हमारे यहां का एक लड़का मैट्रिक के इम्तिहान में बोर्ड में दसवें नंबर पर आया है। हमारी इच्छा है कि लौटकर आने के बाद

डॉक्टर साहब अपना दवाखाना यहीं खोलें।

किसी और ने कहा, यही वजह है कि हमारा देश अजेय बना रहेगा।

ये डॉक्टर महोदय थे कि विदेश गये और शादी करके वहीं ही बस गये थे। इधर एक चिट्ठी भी नहीं डाली।

पर इस घटना के बाद मैं फिर से इसी तरह कुर्सी पर नहीं बैठा था।

हम टोली वालों में हर एक के पास अपनी चलती घड़ी के साहसपूर्ण कारनामें मौजूद थे। इनमें गिरधर अपवाद था। वह स्कूल में हमारे साथ पढ़ता था, पर उसका जैसे कोई वजूद न हो, वह इतना कटा-कटा रहता। उसने दो-तीन वर्ष तक अजमेर में कोई नौकरी की थी। उन दिनों उसके पिताजी उसे निरंतर चिट्ठियां भेजकर चेतावनी देते कि तुम्हारे पांच भाई हैं, इसे मत भूलो। गिरधर इससे पूरा ऊब गया था।

पर इधर उसने यकायक नौकरी छोड़ दी थी और वह घर चला आया था। इसकी वजह उसने किसी को नहीं बतायी थी। उसने इतना ही कहा था कि हम कोई काम करने वाले नहीं हैं। उसका यही एक साहसपूर्ण कारनामा था कि वह अब हमेशा के लिए घर बैठ गया था।

वह अपने घर से फूटी कौड़ी भी नहीं लेता था। इसलिए हमारी टोली में वह कभी-कभी आया करता था। पार्टी देना हममें से किसी को भी मुश्किल नहीं था। इसलिए गिरधर यह कहते हुए कि भैया हम तुम लोगों में कैसे आयें, हम लोगों से मिक्स नहीं होता था। फिर भी सबके मुकाबले वह मेरे साथ ठीक ढंग से पेश आता था।

पूजा-पाठ का उसे निहायत शौक।

पिताजी से दो जोड़े पट्टे वाले कपड़े का कुर्त्ता-पायजामा के अलावा वह और कुछ नहीं मांगता था। नंगा रह नहीं सकता, इसलिए कपड़े मांग रहा हूं। पिताजी से कपड़े मांगने की उसकी यही शैली थी। और फिर गिरधर स्वामी अपने नये जोड़े की गंध छोड़ते हुए विजयादशमी के दिन मेरे साथ सीमोल्लंघन के लिए आया करते थे।

उसकी दिनचर्या यूं थी। सुबह जल्दी नींद खुल जाती, फिर भी बिस्तर पर लेटे पड़े रहना। मां चाय पर बुलाती, तब चाय पीते-पीते मां की डांट चुपचाप सुनते रहना। उसके छोटे भाई भी उसे गालियां बकते रहते थे। लेकिन आप हैं कि हाथी की तरह सबको सहते चले जा रहे हैं, बिलकुल खामोश। फिर किसी के बगीचे में जाकर कुएं पर स्नान करना। अपने कपड़े खुद धोना। उनके सूखने तक वहीं इधर-उधर वक्तगुज़ारी करते रहना। गिरधर का कुत्ता हमेशा उसके साथ

रहता। गिरधर का एक शौक था। अपने कुत्ते के साथ वह पेड़ पर चढ़ता, कुत्ते को पेड़ की गिलहरियों के पीछे दौड़ाता और खुद नीचे उतर जाता। कुत्ता पेड़ से नीचे गिर जाता, तब फिर हंसता रहता। कपड़ों को बार-बार छू कर देखते रहना कि अभी गीले तो नहीं हैं। फिर कुत्ते से वही खिलवाड़ दोहराता। उसके बाद धुले कपड़ों को सिर पर रखे आप आगे, पीछे-पीछे कुत्ता, इस तरह घर चले आना। खाने पर फिर मां की डांट। भोजन के बाद जहां भी जगह मिले दरी बिछाकर शाम तक लोट-पोट करते रहना। शाम को मेरे यहां आना और चाय अगर मिल जाये तो चुपचाप पी लेना। फिर मेरे साथ टहलने के लिए। रात के खाने के समय पिताजी की गालियों को चुपचाप सुनते रहना। मेरी ही तरह इसे भी भात और चपाती से नफ़रत थी। उसके बाद देर रात तक बस्ती की विशिष्ट मंडली में जाकर बैठे रहना। हमारी टोली में गिरधर सिर्फ़ सुनने का काम किया करता था। गलती से भी उसने कभी किसी से मज़ाक नहीं किया था।

एक दिन कोई एक शराबी इसे बिना वजह ज़ोर-ज़ोर से पीट रहा था। गिरधर ने सिर्फ उससे इतना ही कहा था कि तुम लोगों को जो मज़ा शराब पीने पर आता है, हमें बिना पिये ही आ जाता है। शराबी उसे ज़ोर-ज़ोर से पीटे जा रहा था और आप हैं कि चुपचाप खड़े थे। शराबी थककर जब रुक गया तो गिरधर ने उससे पूछा, मन भर गया या और कुछ बाकी है? फिर उसने गोबर का एक बड़ा चोंथ उठाया और शराबी के मुंह पर दे मारा था। तब वहां खड़े लोगों ने शराबी पर गोबर फेंक-फेंककर उसे ख़ूब परेशान किया था।

गिरधर मुझसे कहता, पूरे दिन में एक कार्यक्रम मुझे सबसे अच्छा लगता है—दोपहर के वक्त भोजन के बाद लोट-पोट करते रहना। और एक कार्यक्रम सबसे बुरा लगता है—शाम के वक्त तुम्हारे साथ टहलने के लिए हो लेना। वह हमारी टोली में मुझ अकेले को ही चाहता था। क्योंकि और कोई उसकी बकवास सुनने के लिए तैयार नहीं था। वैसे गिरधर खुद के बारे में बहुत कम बोलता था।

गिरधर स्वामी के मुकाबले ज्यादा दिलचस्प व्यक्ति था। सोरम्या (मूलनाम सोनू) डीलडौल से भारी-भरकम। बस्ती का अति निरुपद्रवी जीव। हर किसी की सहायता के लिए जब चाहो तैयार रहता। माली हालत ठीक नहीं थी। लेकिन हम लोगों के साथ मिलने-जुलने में गिरधर की तरह वह कभी कतराता नहीं था। पर अगर कोई उसका ज़रा भी अपमान करने की कोशिश करता, तो समझो उसकी पिटाई निश्चित थी।

इसकी एक पुरानी आदत थी। इधर मंदिर में कीर्तन-भजन चल रहा हो, यह बाहर निकल आता और लोगों के जूते तितर-बितर करके चला जाता। किसी को पता न लगे, इसका ख़याल वह ज़रूर रखता। कीर्तन खत्म होने पर लोग बाहर आते। जूते बदल जाते। कोई कहता, यह हमारा नहीं, वह देखें, यह

भी नहीं, वह उधर वाला होगा, वगैरा खुसर-फुसर चलती रहती। आखिर तंग आकर सब यह कहकर निकल जाते कि कल सुबह आकर ढूंढ़ लेंगे। लेकिन चंद लोगों को जूतों की उसी वक्त ज़रूरत होती। वे रुक जाते। लेकिन जो पांच-दस लोग नींद की वजह से कीर्तन अधूरा छोड़कर चले गये थे, उनके कारण जूते कभी के बदल चुके होते थे। तो बताइये, सही जूते मिलने कैसे सम्भव थे ?

शरारत करते समय वह एक बार रंगे हाथ पकड़ा गया था। तब से लोगों ने उसे सोरम्या कहना शुरू कर दिया था।

उसकी यह पुरानी आदत अब तक कायम थी।

इसकी एक और आदत थी। गर्मियों के दिनों में रात के वक्त लोग बाहर सोये पड़े रहते थे। सोरम्या गली-गली घूमता और नींद में सोये पड़े लोगों के सोने के ढंग को निहारता और अपना मनोरंजन किया करता था।

बचपन में इस शरारती लड़के ने अपने टीचर को स्लेट फेंककर मारी थी और स्कूल से भाग गया था। तब से अब तक आवारागर्दी में लगा हुआ था। वैसे स्कूल के सभी लड़के मटरगश्ती करते ही रहते थे। पर सोरम्या के माता-पिता को लगता कि गरीबों के लड़कों को ऐसा नहीं करना चाहिए।

शादी करने का इसका मन ज़रूर था। पर यह अब तक सम्भव नहीं हो सका था। क्योंकि उसकी शर्त थी कि उसकी पत्नी देखने-सुनने में किसी अभिनेत्री जैसी होनी चाहिए।

एक बार उसके लिए कोई रिश्ता आया था। लड़की देखने का कार्यक्रम था। लड़की चाय लिये आयी थी। उसे देखते ही इसने ज़ोर-ज़ोर से ठहाके लगाने शुरू कर दिये थे। आवाज़ सुनकर परिवार के तमाम लोग जमा हो गये थे।

मैंने उससे पूछा, कि मैंने जो सुना है, क्या वह सच है ?

तो उसने कहा, तुम्हें मेरे पिताजी ने ज़रूर बताया होगा। साले ये लोग मेरे बारे में गलत-सलत अफवाहें फैलाते रहते हैं। हां, मैं हंसा ज़रूर था। तुम ही बताओ, बीवी कहीं ऐसी होती है ? यार, तुम्हें उस लड़की को देखना चाहिए था। मैं पागल थोड़ा ही हूं जो यूं ही हंसता रहूं। लड़की, बिलकुल पहलवान ही समझो। हुलिया इतना भयानक था कि मैं अपने-आपको रोक नहीं सका। यह कह कर उसने फिर से ठहाका लगाया।

सोरम्या हमेशा कड़क प्रेस किये कपड़े पहना करता था। बस्ती के नाई से वह अपनी हजामत कभी नहीं बनवाता था। शहर जाने वाले किसी ट्रक या कार से आसपास के किसी शहर चला जाता और यह काम कर आता।

इसे फिल्मों का बहुत शौक। शहरों के बारे में भयंकर आकर्षण। वह कहता, हमें तुम्हारी तरह पांच-पांच वर्षों तक शहरों में रहने का कहां अवसर मिला है ? इसलिए कभी दो दिन भी शहर में रहने को मिल जाये, तो ऐश क्यों न कर लें ?

कभी आइस्क्रीम खा ली, कभी फल वगैरा खा लिये। यहां अपने भाग्य में चटनी-रोटी तो हमेशा के लिए लिख रखी है। इन शब्दों में देहातों के प्रति वह अपना तिरस्कार-भाव प्रकट करता था।

शहर से लौटकर हमें वह कभी बालू की दुकान पर मिलता तो कहता, आज खिचड़ी खाकर आया हूं। तीन-चार महीनों के बाद मौका हाथ लगा है।

लेकिन घर हो या बाहर, उसकी शरारतों की कोई सीमा नहीं थी।

एक बार उसने अपने किसी परिचित को चाय के लिए घर बुलवाया था। मां ने कहा, घर में चीनी नहीं है। वैसे भी घर में चीनी नहीं थी। मेहमान को बैठने के लिए कहकर सोरम्या बाहर चला गया था। कहीं से पैसा पैदा किया और गुड़ लेकर लौट आया।

घरवालों ने कहा, इतने-से गुड़ में तो सिर्फ़ दो प्याली चाय बनेगी। घर में दस बच्चे हैं, क्या वे मुंह ताकते रहेंगे?

छोटा मकान। इसलिए मेहमानों के सामने अपने परिवार का अपमान हो सकता है, इतना-भर समझने की अक्ल हमारे पास नहीं थी।

उसने कहा, और तुम लोग जब चाय पीते रहते हो, मेरे लिए कभी निकालकर रखी है?

इस बीच अतिथि खुद वहां से चल दिये थे। सोरम्या का गुस्सा और तेज़ हो गया। तैश में आकर उसने सारा गुड़ खा डाला और लातें मार-मारकर चूल्हा तोड़ डाला था।

सोरम्या के पिता भी वैसे लल्लू किस्म के व्यक्ति थे। उन्होंने खुद यह क़िस्सा हम लोगों को सुनाया था। कहने लगे, एक साथ इकट्ठे पचास केले खाने वाला हमारा घिनौना सोरम्या।

सोरम्या ने कहा था, अरे भाई पचास की क्या बात कर रहे हो? हम तो एक साथ साठ खा जायें। लेकिन पिताजी हमारे बारे में बड़ी गलतफ़हमियां फैलाते रहते हैं।

अपनी बेइज्जती के लिए परिवार के लोग ज़िम्मेदार हैं, इसे वह अब पूरी तरह जान गया था। लेकिन वैसे देखा जाये तो इन मामलों में गलती किसी की नहीं है। सोरम्या वैसे भी बेवकूफ किस्म का आदमी था। और फिर उसकी शक्ति का वैसे भी कोई उपयोग नहीं था। एक बार तो इसने दूसरे गांव वाले किसी भले आदमी को चोर जानकर खूब पीटा था।

फिर भी लखू सेठ के साथ इसकी खासी पटरी बैठती है।

एक बार लखू सेठ किसी व्यापारी से पैसा वसूल करने के इरादे से यह सोचकर कि चलो हट्टा-कट्टा आदमी साथ रहे तो लाभ ही होगा, सोरम्या को अपने साथ ले गया था। उस व्यापारी के पास लखू सेठ का पैसा अटका पड़ा था।

व्यापारी की स्थिति वास्तव में बड़ी खराब चल रही थी। सोरम्या और लखू सेठ उसके घर काफ़ी देर तक प्रतीक्षा करते बैठे रहे थे। पता चला कि व्यापारी कहीं बाहर गया हुआ है। इसलिए इंतज़ार करना ज़रूरी था। आखिर नौकर ने मालिक के आने की खबर दी और इनके लिए पानी ले आया। नौकर अंदर चल दिया था और व्यापारी भीतर दाखिल हुआ था। उसका सिर मुंडा हुआ था। सोरम्या ने व्यापारी का यह रूप देखा और वह खुद को रोक नहीं पाया। वह ज़ोर-ज़ोर से हंसने लगा था। इस वक्त वह पानी पी रहा था। ज़ोर-ज़ोर से हंसते रहने के कारण पानी उसकी नाक और मुंह से निकलने लगा था। सांस लेने में परेशानी होने लगी और घबराहट-सी होने लगी थी। घर के लोग दौड़े-दौड़े आये और पूछताछ करने लगे, तुम्हें क्या हुआ ?

कुछ दिनों बाद सोरम्या ने हमें इस हादसे की जो वजह बतायी थी, बड़ी मौलिक वजह थी। कहने लगा, साला हम लोग उसके घर प्रतीक्षा में बैठे-बैठे थक गये थे। और जब वह आया तो अपना सिर मुंडाकर किसी गरीब की तरह दरवाज़े पर खड़ा था। अब बताओ इस तरह का आदमी लखू सेठ को क्या पैसा देने वाला था ?

लखू सेठ ने कहा, आइंदा से सोरम्या को किसी महत्त्वपूर्ण काम के लिए साथ ले जाना झक मारने के बराबर है।

आप कभी उदास हो जाते तो शहर जाने वाले किसी ट्रक या कार को पकड़ लेते और शहर चले जाते। वहां फिर इत्र खरीदा जाता। बाल बनवाये जाते। जूतों पर पॉलिश करवायी जाती। होटल में बैठकर वेटरों पर रौब झाड़ने में मज़ा लिया जाता। फिर ऊंचे दर्जे के टिकटों पर फिल्म देख लेता था। और मज़े की बात यह कि अपने सारे कारनामों को मिर्च-मसाला लगाकर हमें सुनाया करता था। हमें सब बताने का कुल आशय इतना ही कि हम समझें कि वह निपट गंवार नहीं है और शहरों में ऐश कर सकता है।

आप दिमाग के एकदम गर्म हैं, परिवार के किसी भी आदमी की बात सह नहीं सकते। कभी-कभी अपने बड़े भाई और पिता पर हाथ उठाते उसे संकोच नहीं होता था। कभी इसके घर से रोने-धोने की आवाज़ें आ रही हों तो लोग समझ जाते कि सोरम्या ने आज ज़रूर पचास रुपयों की मांग की होगी।

इसे इकट्ठे पचास ही चाहिए होते हैं। एक बार इतने मिल जायें, फिर चार-पांच महीने झंझट नहीं। और फिर एक रुपया मांगो या पचास, फसाद तो खड़ा होता ही है। इसलिए वह इकट्ठे पचास मांग लेता है।

एक दिन पिताजी ने कहा, तुम मेरी जान भी ले लो, आज तुम्हें पचास रुपये

नहीं मिलेंगे।

तब उसने कहा, ठीक है, हम तुम्हारी जान ही लेंगे।

तब पिता ने फौरन पैसे निकालकर दे दिये।

वैसे परिवार वालों को इसमें मज़ा आता है। उन्हें इसका पता होता है कि उसे पैसा देना ही पड़ेगा। पर फिर भी ये लोग बखेड़ा खड़ा करते ही रहते हैं।

एक बार उसका भाई कहीं गायब हो गया था। सारी बस्ती छान मारी पर उसका पता नहीं चल सका, क्योंकि वह अपने घर में ही छिपा बैठा था।

तब सोरम्या ने दो-चार पड़ोसियों को बुलाया और उनसे कहा, देखिये, मुझ जैसे आदमी को चार-पांच महीनों में एक बार पचास रुपये देना इन्हें अखरता है। मैं आप लोगों की गवाही से इस पेटी को तोड़कर सिर्फ़ पचास रुपये निकाल लेता हूं। मुझे ज्यादा नहीं चाहिए। पर आप देखिये, ये लोग ज़रूर कहेंगे कि मैंने सौ निकाले हैं। और आप लोग भी बेवकूफ की तरह उनकी हां में हां मिलाते रहते हैं। इसीलिए मैंने आज आप लोगों को यहां बुलाया है।

तब उसने पेटी के पिछले हिस्से से ढक्कन को उखाड़ लिया और उसमें से सिर्फ़ पचास रुपये निकाल लिये।

वैसे घर की निरंतर कहा-सुनी से न तो यह ऊबा था और न घरवाले इससे ऊबे थे। क्योंकि फसल के चार महीनों में चार आदमियों का काम वह निपट अकेला कर लेता था। लेकिन इसके बाद घर में फसाद शुरू हो जाता।

एक बार किसी ने उससे वादा किया था, कि उसे वह एस० टी० में कंडक्टर की नौकरी दिलवा देगा। सोरम्या को लगा, चलो, इस बहाने शहर में रहने मिलेगा। इसलिए उसने मारपीट करके घर वालों से दो सौ रुपये लिये और धुलिया जाकर इंटरव्यू वगैरा दे आया था। खुश था। सोचा, नौकरी पक्की है। दो महीने बीत गये, पर उधर से कोई खबर नहीं आयी थी। तब सोरम्या ने उस आदमी को चिट्ठी लिखी और पूछा कि तुम्हें नौकरी के लिए जो सौ रुपये दिये थे, वे फोकट के तो नहीं थे। उस आदमी को गुस्सा आया। उसने जवाब दिया। लिखा कि गधे तुम्हें मैं अब तक दो चिट्ठियां लिख चुका हूं, मेरे एक भी पत्र का जवाब नहीं मिला। इसके आगे नौकरी की उम्मीद मत करना। तब फिर घर में मारपीट शुरू हुई थी।

उसके भाई ने कहा, तुम्हारी चिट्ठियां संभालकर रखने के लिए क्या हम तुम्हारे नौकर हैं?

सोरम्या ने हमसे कहा, साले सब-के-सब मेरी बुराई चाहते हैं। तुम ही सोचो, धुलियावाले महाशय को कितना बुरा लगा होगा?

सोरम्या के पिताजी ने दूसरे गांव के किसी परिचित व्यक्ति को कुछ पैसा उधार दिया था। पर उन्होंने उसे जतला दिया था कि पैसा चाहे जब लौटा देना,

लेकिन सोरम्या को मत देना।

सोरम्या को इसका पता चल गया था।

उसने कहा, मुझे इन लोगों का पैसा नहीं चाहिए। पर मैं जरूर देख लूंगा कि वह आदमी पैसा मुझे कैसे नहीं देता ?

तब से सोरम्या उस आदमी के पास निरंतर जाता रहा और उससे पैसा मांगता रहा था।

वह आदमी तंग आ गया। उसने सोचा, इनसे पैसा लेकर कहां आफ़त मोल ले ली ? इसलिए उसने फौरन इंतज़ाम करके पैसा सोरम्या के घर भेज दिया और सोरम्या के घर चिट्ठी लिखी कि मैं कहीं भाग तो नहीं जाने वाला था।

घर के लोगों को बड़ा अचंभा हुआ। आखिर सारा मामला खुद सोरम्या ने अपने पिता को बता दिया था।

सोरम्या फिर से जब उस आदमी के यहां गया था, उसने कहा, पैसे तुम्हारे घर भेज दिये हैं। अगर आइंदा कभी हमारी दहलीज पर पांव रखा तो देख लेना।

सोरम्या ने कहा, तुम लोगों ने भारी भूल की है। पैसा सिर्फ मुझको ही देना चाहिए था। मैंने इस बार सोचा था कि सारा पैसा बगैर खर्च किये घर वालों को ही दूंगा।

सोरम्या को काफ़ी दुख हुआ था। उसने खुद सारी बातें घरवालों को बतायी थीं।

घरवालों ने उससे कहा, तुम ऐसे पूत हो जो घर की आबरू धूल में मिला रहे हो।

उसने जवाब दिया, तुम लोगों की आबरू है ही कहां ? हां, मेरी जो भी इज्जत लोग किया करते थे, उसे तुम लोगों ने धूल में मिला दिया।

हम दोस्तों से उसने कहा, तुम ही बताओ, उस आदमी को कितना बुरा लगा होगा जो मैं उसके यहां बार-बार पैसा मांगने के लिए चक्कर लगाया करता था। मेरी समझ में नहीं आता कि घर वालों के साथ आखिर मैं कैसे पेश आऊं ?

जब हम लोगों का कहीं और मन नहीं लगता है, सोरम्या का साथ हमें अच्छा लगता है। पर गिरधर स्वामी को सोरम्या का साथ ज्यादा पसंद नहीं है। गिरधर कहता है, यह आदमी बिलकुल निष्क्रिय है। इससे कुछ करते नहीं बन सकता। क्योंकि इसे अब भी अपने घर के प्रति लगाव है।

गिरधर को जहां जाने में बड़ी खुशी होती थी, वह जगह थी चक्रधर मास्टर का घर। हममें से कोई भी इस मास्टर को नहीं चाहता था। कभी हम लोग चक्रधर मास्टर के घर जाते और सीट पर बैठने को होते कि वह कहते, तुम लोग

पता नहीं कहां-कहां ज़मीन पर बैठते रहते हो मेरी चादर गंदी कर दोगे। यह कपड़ा बिछा लो, फिर बैठो।

या कभी पानी पीने के लिए कोई बर्तन उठाया नहीं कि वे कहने लगते, उसे मत छुओ। वह मेरे लिए अलग रखा है। दूसरा उठा लो।

अब बताइये, ऐसे आदमी के यहां कौन जाना पसंद करेगा ?

लेकिन गिरधर वहां घंटों बैठा रहता है। इसी सफ़ाई के चक्कर के कारण मास्टर का अपनी पत्नी के साथ एक बार झगड़ा हो गया था। तब से वह मास्टर को छोड़कर चली गयी थी।

ये महाशय बहरे थे, इसलिए किसी से ज्यादा बातें करना टालते रहते थे।

इधर उसके तीनों भाई मुंबई में कहीं नौकरी करते हैं। इसके पिताजी बचपन में ही मर गये थे। बड़े भाई ने तीनों-चारों बहनों की शादियां करवा दीं। यह सोचकर कि अब कर्तव्य पूरा हो गया है, उसने मुंबई का रास्ता पकड़ लिया था। अब बचे और तीन जो मास्टर के साथ निरंतर झगड़ा करते रहते थे।

इतने पर भी मां को अपने बड़े बेटे से बहुत ज़्यादा लगाव था। वह कहती थी, पति मर गये। लेकिन उनके बाद बड़े ने पिता की सारी ज़िम्मेदारी संभाल ली और फ़र्ज़ अदा किया।

तब छोटे तीनों कहते, शादियां यूं ही थोड़े निपट गयीं। सारे खेत उसने बेच डाले और हमारे लिए सिर्फ़ उस मकान को छोड़ खुद बंबई चला गया हूं। बस मकान की देखभाल करते रहो।

कुछ दिनों बाद दूसरा भाई भी मुंबई चला गया था। शुरुआत के कुछ दिन वह छोटे भाइयों की फीस के लिए पांच-दस रुपये माहवार भेजता रहा था। कुछ दिनों बाद पैसा भेजना बंद हो गया। तब वे दोनों उसे कोसने लगे थे। अब लड़ पड़ने के लिए निशाना बना था चक्रधर मास्टर और इन सबकी बातों को सुनने के लिए बची थी अकेली मां।

जवाब में चक्रधर अपने भाइयों को मां-बहन की गालियां बकता रहता है। तब मां गुस्सा होकर कहने लगती है, मुए, उनकी मां तुम्हारी कौन हुई ? फिर तो वह और भी गालियां बकने लगता है।

उसने अपनी ज़िंदगी में कई झमेले किये थे। परचून की दूकान चलायी। ड्राइविंग सीखी और कुछ दिनों तक ट्रकें दौड़ाता रहा था। उसके बाद दो साल ट्रेनिंग पूरी करके मास्टर बन गया था। और इधर आजकल घड़ी-साजी करता है।

फिर भी खुद ही कहता है कि घड़ी-साजी जैसा थर्ड क्लास काम और कोई नहीं होगा। साले ये देहाती गंवार लोग। इन्हें अपनी घड़ियों को चाभी देना भी नहीं आता। बार-बार ठीक करनी पड़ती हैं। पैसा वक्त पर कभी देंगे नहीं।

अगर कुछ कहने जाओ तो कुत्तों की तरह पैसा फेंककर निकल जायेंगे।

लोग अपनी सहूलियत के लिए घड़ियां इसी के पास देते हैं। जब बस्ती में काम हो जाता है, तो क्योंकर कोई बाहर जायगा ? कभी कोई बहुत पुरानी घड़ी इसके पास ठीक करने के लिए आती है तो यह साहब बिलकुल तोड़-ताड़ देंगे। और लौटाते हुए कहेंगे कि यह ठीक नहीं हो सकती।

जब कभी मां के साथ उसका झगड़ा शुरू हो जाता, वह काम करते-करते घड़ी को ज़मीन पर ज़ोर से पटक देता और कहता, अभी-अभी कहीं घड़ी की मिस्टेक मिल रही थी कि बीच में तुम टपक पड़ीं। पता नहीं किस मुहूरत में इस कमीने धंधे में पड़ गया हूं ? इसे छोड़कर दूसरा धंधा ढूंढ़ना ज़रूरी है, वरना खैर नहीं।

मास्टर ज़मीन पर घड़ी को पटक देता है, खाट पर गिर पड़ता है और अपनी टांगें पसार देता है। फिर सिरहाने तकिया खिसका कर आसमान की तरफ ताकता हुआ सारे संसार को गालियां बकने लगता है। उसे इस स्थिति में देखकर गिरधर को बड़ा मज़ा आता है।

मास्टर का मकान इतना पुराना है कि कभी भी ढह सकता है। वह कहा करता, अच्छा हो जो यह मकान हम लोगों के ऊपर ढह पड़े। लेकिन बरसात का मौसम आने पर खुद खपरैल ठीक करने में लग जाता।

चक्रधर और उसकी मां भूत की तरह घर में मंडराते रहते थे। वह अपनी मां को हद दर्जे के कष्ट देता था। दिन-भर कोसना चालू रहता। कहता, खाना बनाने से पहले तुम अपने हाथ साफ किये थे ? सब्जी के पतीले पर ढक्कन था ? मेरी चादर सूखने के लिए कहां डाली ? टट्टी जाते वक्त कौन-सी चप्पल ले गयी थी ? मिट्टी से बरतन क्यों मांजे ? उसे राख से साफ करो। बरतन के लिए आंगन की मिट्टी खोद लेती हो और उसी गढ़े में रात में पेशाब करती हो ? पानी छानने के लिए अपनी साड़ी का कपड़ा इस्तेमाल मत किया करो। हज़ारों बातें सुनाता। कहीं ज़रा भी गंदगी दिखायी पड़े, उसका माथा ठनक जाता था, और फिर कभी मटका फोड़ देता या थाली फेंक देता।

मां रोती-बिलखती फिर से चीज़ों को ठीक करके उसकी खातिर सारी सफाई किया करती थी। कहती, यह मेरा बेटा न हुआ, बैरी है। इनका तमाशा देखने के लिए लोग कभी जमा हो जाते, तब मां उनसे कहती, यहां क्या तुम्हारी मां-बहनें नाच रही हैं जो देखने आये हो ? चलो, निकल जाओ यहां से।

मास्टर के यहां एक गाय थी। दिन-भर चरने के लिए बाहर रहती। पर दूसरे ढोरों की तरह शाम को अपने गोयठे में सीधे लौटकर नहीं आती थी। तब फिर बूढ़ी मां लकड़ी लिये उसे तलाशने निकल जाती और उसे पकड़कर घर ले आती थी। मां के कष्टों पर चक्रधर को बड़ा तरस आता और वह अपनी भड़ास

खूंटे से बंधी गाय पर निकालता। गाय को डंडे से पीटता हुआ वह कहता, साली जायगी फिर से ? भटकेगी ? गाय ज़ोर-ज़ोर से रंभाती रहती और वह उसकी पिटाई करता रहता।

एक दिन गाय पर वह इतना चिढ़ गया था कि उसने इसे कसाई को बेच डाला। तब उसकी मां को उस पर बहुत गुस्सा आया। वह उसे ज़ोर-ज़ोर से बुरा-भला कहने लगी। उसका चीखना-चिल्लाना सुनकर दो-चार पड़ोसी वहां जमा हो गये थे। उन्होंने चक्रधर की अच्छी पिटाई की।

गाय के चले जाने के बाद मां का तो एक हीला ही जैसे समाप्त हो गया था। पहले कम-से-कम चारा-पानी, दूध, गोबर वगैरा कामों में समय तो कट ही जाता था। लेकिन वह भी नहीं रहा। अब सिर्फ़ लिपाई-पुताई के लिए गोबर के बहाने दूसरों के घर जाने का मौका मिलता, बस। बस इतना ही वक्त कट जाता। फिर बचा समय वह दहलीज पर बैठी रहती और सड़क की चहल-पहल को निहारने में काट देती। मां को वहां बैठा देखकर चक्रधर घड़ी पर टिकी आंखों को ऊपर उठाता और उससे कहता, ए बुढ़िया, तुम वहां इस तरह बैठी रहती हो तो मुझे लगता है अब सारा खेल खत्म हो गया है। हमें अब कुछ भी करने की ज़रूरत नहीं है।

तब मां कुछ देर के लिए घर में आकर बैठ जाता या फिर पड़ोसी के यहां जाकर उसके बारे में शिकायत किया करती। तब मास्टर भीतर से चीखकर कहता, अपनी जान क्यों नहीं दे देती ?

गिरधर मुझसे पूछता, पांडोबा, अब बताओ, कहां तुम्हारा सोरम्या और कहां हमारा श्री चक्रधर !

वैसे मैं अब पक्का देहाती बन गया हूं, फिर भी गांवों में ज़िंदगी गुज़ारने का मतलब है ढोरों की तरह जीना।

सच पूछो तो इन देहातियों को किसी से कुछ भी लगाव नहीं होता है। सामने पड़ने वाला दिन आगे ठेलना है, बस इतना ही जानते हैं ये लोग। और फिर इनका विश्वास है कि जो कुछ हो रहा है, अच्छाई के लिए ही हो रहा है। अमीर कुछ करता है तो ये कहेंगे, उसके पास पैसा है, सो तो वह करेगा ही। और अगर कोई गरीब निठल्ला बैठा है, तो ये कहेंगे, दलिद्दर लोग इसके अलावा और कर भी क्या सकते हैं ? आज की ज़रूरतों के अलावा और किसी चीज़ का इनके लिए कोई मतलब नहीं होता। कपड़े नहीं हैं तो यहां का आदमी नंगे बदन घूमता रहेगा, पर इसे उसकी कोई शर्म नहीं होती। पैसा फूंकने वाला भी तो उतना ही बेहया होता है।

शहरों में भी बेहया पशुओं की कोई कमी नहीं है। लेकिन सवाल यह नहीं है। शहरों में कुछ ज्ञानी लोग तो मिल ही जाते हैं। इसके विपरीत यहां एक भी काम ऐसा नहीं होता जिससे ज्ञान में कोई बढ़ोत्तरी हो सके। यहां वक्तगुज़ारी और कला-मनोरंजन का कोई तालमेल नहीं है। शहरों में नाटक-सिनेमा जैसे मनोरंजन के साधन कम नहीं हैं। संभव है, शहर के लोग अपने घरों में सोने के लिए जगह की कमी नाट्यशालाओं में बैठकर पूरी कर लेते हैं। लेकिन कम-से कम वक्तगुज़ारी तो बढ़िया ढंग से हो जाती है।

बहुत पहले मनोरंजन की चीज़ें यहां गांवों में भी हुआ करती थीं। मतलब यह कि हमारे बचपन में यहां बीसियों भिखारी, टिंगरी वाले, बही गायक, पोवाड़ा (वीरगाथा) गायक, मरी माता के भगत आदि—कई लोग आते रहते थे।

एक भिखारी तो बहुत ही दिलचस्प था।

वह हमसे पूछता, पूछो तो भला मेरा नाम।

हम – क्या नाम है तुम्हारा ?

वह—मेरा नाम घास की जूरी। या छत्रपति शिवाजी बीड़ी।

एक और भिखारी था।

एक बार उसने कहा था, मैं पिछले पंद्रह दिनों में इधर क्यों नहीं आ सका, पता है ? सुनो, मैं एक मकान में चुपचाप घुस गया था। और वहां रखी एक पेटी में छिपकर बैठ गया। रात होती कि मैं पेटी से बाहर निकल आता। और मक्खन-घी पर हाथ साफ करके फिर से पेटी में दुबक कर बैठ जाता। पर एक दिन मालकिन को राज़ का पता चल गया। मैं पेटी में बैठा हुआ था। उसने बाहर से ताला लगा दिया। दो दिन तक भीतर भूखे पड़े रहने के कारण मेरी हालत बहुत बुरी हो गयी थी। लगा, अब मैं बच नहीं सकता। तब मैंने पेटी समेत खुद को दरवाज़े के बाहर खिसका लिया और सड़क पर चलने लगा। पेटी की यात्रा कई गांवों से आगे गुज़रती रही। पर लोग बड़े हरामी निकले। किसी ने पेटी का ढक्कन नहीं खोला। पर जब मेरी पेटी यहां तुम्हारे गांव पहुंची, यहां के लोगों ने पेटी खोल दी। इसलिए कहता हूं, सांगवी जैसा कोई भला गांव मैंने नहीं देखा। हम अब यहीं रह लेंगे।

तो साहब आजकल यह बात नहीं रही। कभी कोई भगत अगर चला आये तो लोग कहते हैं, चलो अच्छा हुआ, तुम आ गये। मज़दूरों की वैसे भी कमी है। चलो खेत पर। हमारे बचपन में नौटंकी भी हुआ करती थी।

इधर हर चीज़ अर्थ की धुरी पर घूमती है। ये लोग दो ही काम करते हैं-- अपने बच्चों की पढ़ाई का इंतज़ाम कर देंगे और अड्डे बनाकर गप्पे हांकते रहेंगे। इसके अलावा इनका सारा सोच पैसे के इर्द-गिर्द घूमता रहेगा।

मैं कम-से-कम कुछ तो पढ़ता रहता हूं। पर समझ में नहीं आता, ये लोग

अपना सारा समय बड़े चैन से कैसे काट लेते हैं ? वैसे देखा जाय तो परिश्रम और बड़ी लगन के साथ काश्तकारी करते रहना भी वक्त गुज़ारने का कोई कम बढ़िया साधन नहीं है। ये लोग वर्ष भर के प्राकृतिक क्रम के साहसी होते हैं। इन्हें पता होता है कि हमारे ही हाथों बोया हुआ बीज धूप और पानी सोखकर धीरे-धीरे छोटी-छोटी दो पत्तियों में उभरता हुआ कैसे बड़ा हो जाता है। विकास की इस प्रक्रिया को ये लोग प्रतिदिन, प्रति पखवाड़ा, प्रति वर्ष देखा करते हैं। फसल अभी पकी नहीं है, फिर भी उसके मध्य खड़ा कोई किसान उसे देखने वालों के लिए एक महान अनुभव देता है। इसी किसान की अंजुलि से निकल मुट्ठी-मुट्ठी बीज अब हरे-भरे पौधों में बदल गया है। बढ़ती फ़सल की साझेदारी में उसका सारा समय बीत जाता है। गोड़ाई चल रही है। खुरपी से ज्वार या कपास के सभी छोटे-छोटे पौधों को उसके आस-पास उगी घनी घास से मुक्त किया जा रहा है। कतारों में खुरपी चल रही है। समां बहुत खुशगवार है। खुरपी चलाने वाला एक सिरे से दूसरे सिरे की मेंढ़ तक आगे बढ़ता जा रहा है। बीच-बीच में रुककर पीछे मुड़कर साफ की हुई कतार को देख रहे हैं।

और यह क्रम शाम तक चलता रहता है।

पर मुझे इस काम की खास जानकारी नहीं है।

हां, मैंने खुद आम का एक पेड़ बोया था जो आज मेरी लंबाई के बराबर बड़ा हो गया है। मैं सिर्फ़ एक काम कर सकता हूं। खेत पर चक्कर लगा आता हूं। मज़दूर लोग ठीक ढंग से काम कर रहे हैं या नहीं, इसकी निगरानी करके घर लौट जाता हूं। मुझसे बहुत झूठ नहीं बोला जाता। सच बताऊं, दादाजी के बाद पिताजी ने किसानी के सारे काम किये हैं। पर हम केवल निगरानी कर सकते थे। इससे अधिक कुछ नहीं।

लेकिन यार-दोस्त कहा करते, कुछ दिन और निकल जाने दो। अपने-आप सब ठीक हो जायगा। बोरियत होगी, सही है, लेकिन उसे होने ही क्यों दिया जाय ?

इस मामले में गोमाजी सुनार बड़ा समझदार आदमी है। अकेला जीव है। अंधा होने के कारण कहीं गिर-पड़ जाता है। इसलिए उसके घुटनों पर हमेशा कोई-न-कोई ज़ख्म या फोड़ा ज़रूर होता है। ज़ख्म पर मक्खियां लगातार भिन-भिनाती रहती हैं। वह इस कारण दिन भर परेशान रहता है। तब वह बरामदे में बैठा एक काम करता रहता है। ज़ख्म पर बैठी मक्खियों के झुंड को पकड़ने के लिए अपने दोनों हाथ धीरे-धीरे घुटनों तक बढ़ाता है और एकदम झपट्टा मार कर मक्खियों को मुट्ठी में पकड़ लेता है। अब यह देखने के लिए या कि आवाज़ सुनने के लिए कि मक्खियां सचमुच पकड़ी भी गयी हैं, वह अपनी मुट्ठी कान तक ले आता है। मुट्ठी में दबी मक्खियों की आवाज़ सुनकर उन्हें 'मरो' कहकर गाली

देता है और मुट्ठी खोल देता है।

लेकिन गोमाजी के मुकाबले मंदिर वाले गूंगे ओंकार बाबा का तरीका ज्यादा अच्छा है। बुढ़ापे के कारण बाबा की गर्दन लगातार हां-ना किया करती है। वे ओंठों से राम नाम बुदबुदाते रहते हैं। इस तरह सारी ज़िंदगी गर्दन हिलाकर और राम नाम की रटंत लगाकर बड़ी शांति से कट सकती है। कोई परेशानी नहीं।

गांव वालों के पास समय काटने के बड़े विचित्र तरीके हुआ करते हैं। इनमें तापीराम का तरीका तो बहुत ही भयानक था। कोढ़ के कारण बिलकुल नाकारा बन गया था। उसके नाक और मुंह में कीड़े पड़ गये थे। उंगलियां झड़कर सिर्फ़ ठूंठ रह गये थे। तब भी वह जीवित था। हमारे खेत के रास्ते पर उसकी झोंपड़ी पड़ती थी। तापीराम वहां चौपाले पर झूला झूलता रहता था। चौपाले की पाटी ज़मीन से बहुत कम ऊंची थी। उस पर बैठने वाले का पैर अगर ज़रा भी नीचे लटक जाये तो समझो, फ़र्श पर टकरा कर उसमें खरोंच आ सकती थी। तापीराम के लिए यही लंबाई सही थी। क्योंकि वह ज़मीन पर रेंगता-घिसटता उस पर बैठ जाता था। झूले पर बैठने के लिए उसे बहुत कष्ट उठाने पड़ते थे। एक बार बैठ गये कि झूला इधर-से-उधर और उधर-से-इधर हिलने लगता था। रास्ते से गुज़रते हुए किसी आदमी को देखकर तापीराम अपने लूले हाथों को ऊपर उठाता और कहता—रामराम।

उसकी इस रामनामी से मैं तो ऊब गया था क्योंकि, वह हज़ारों बातें पूछता रहता—बस्ती के क्या हालचाल हैं, फलां आदमी, हमने सुना है मर गया है, क्या यह सही है? वगैरा। तब तक मुझे सड़क पर खड़ा रहना पड़ता था और इस भयानक पशु की तरफ देखना पड़ता था। और वह है कि झूले पर इधर से-उधर और उधर-से-इधर। मुझे झूले के साथ अपनी गर्दन को इधर-से-उधर घुमाना पड़ता था, सो अलग।

उसका सारा जिस्म सड़ गया था। दृश्य इतना विद्रूप था कि देखते ही मैं डर से कांपने लगता था। तापीराम के लड़के-बच्चे इधर गांव आते भी, पर उससे कम ही मिलने आते थे। मिलते भी तो दूर से।

तापीराम का चचेरा भाई जो उसकी खेती की आमदनी खाता था, तापीराम के लिए कढ़ी-भात भेजा करता था। तापीराम पशु की तरह खाने पर टूट पड़ता था। एक बुढ़िया इसके लिए झंझर में पानी भर देती थी और झोंपड़ी में खाना रखकर चली जाती थी।

कभी रात के वक्त झूले पर बैठा वह जब खाना खा रहा होता तो, बड़ा भयानक दिखायी देता था। उसकी ज़िंदगी में कुछ भी घटित नहीं होता था। मतलब, कुछ भी नहीं।

फिर भी अचरज यह कि तापीराम से सटकर गपशप करने वाले भी तो कुछ लोग थे। मुझसे यह कभी संभव नहीं हो सका था। इसमें क्या हर्ज है ? इधर यह सवाल मैं अपने-आपसे पूछने लगा था। सोचा, एक बार ज़रूर उसके बिलकुल निकट सटकर बैठना है और उसकी नाक के लाल छेदों को देखना है।

लेकिन तापीराम ने एक दिन आत्महत्या कर ली थी। मेरी इच्छा पूरी नहीं हो सकी थी। उसने पास की एक बावड़ी में कूदकर अपनी जान दे दी थी। मानो वह बस्ती वालों से बदला लेना चाह रहा था। उसे ऊपर निकालने के लिए कोई तैयार नहीं हो रहा था। लाश सारी रात पानी में पड़ी रही।

आखिर बस्ती ही के दो-तीन महार मित्रों ने कहा, भाई ! हमारा भाई हमारे लिए बोझ नहीं है।

लाश उठाते वक्त मांस के लोथड़े लटक कर टूट रहे थे, भीतर हड्डी दिखायी पड़ रही थी। उन लोगों ने जैसे टुकड़े-टुकड़े लाश को इकट्ठा कर लिया और उसे ऊपर ले आये थे।

सच पूछो तो तापाराम को देखते रहने के कारण मुझे पूना के वे दिन याद आते जब मैं अपने बदन पर पाउडर वगैरा छिड़कता था, कितना उबाऊ काम था वह। वास्तव में जीतेजी सड़ी हुई चमड़ी कितनी जबरदस्त चीज़ होती है।

तापीराम का काम तमाम हो गया था। उसकी झोंपड़ी जला दी गयी थी। तब से मैंने रात-बेरात उस रास्ते गुज़रना बंद कर दिया था। मैंने उसे खूब देखा था। उसका हुलिया मेरे दिमाग में पक्का बैठ गया था। वैसे उसका भूत मेरा क्या बिगाड़ लेगा, फिर भी खतरा क्यों मोल लें ?

मैं भूतों की भाषा को एक बार तो ज़रूर सुनना चाहता हूं। गिरधर कहा करता था कि यह भाषा हम जैसों की समझ में नहीं आ सकती। और तो और, हम जैसे नालायक लोगों को भूत जैसी अलौकिक एवं भयानक चीज नज़र ही क्योंकर आएगी ? गिरधर की यह राय मुझे मंजूर नहीं थी। मैंने सोचा, कभी मैं खेत की तरफ रात के वक्त जा रहा होऊंगा, तापीराम का भूत मुझसे कहेगा, तुम कहते रहे थे कि तुम कभी तो मेरे बिलकुल निकट आकर बैठोगे। पर तुम्हारा इरादा पूरा होते-होते रह गया, सारा खेल समाप्त हो गया।

तब मैं उसे क्या जवाब दूंगा ? वैसे देखा जाय तो तापीराम जैसा आदमी इस भावना को पाले जीता रहा था कि स्वस्थ लोगों का इसके प्रति ज़रूर कोई दायित्व होता है। इसलिए हम जैसे आदमी निरंतर क्रोधित, निरंतर संतप्त, निरंतर भूखे होते हैं। तब बताइए, हम पर इनका हमला क्यों नहीं होगा ? और फिर हमने भूतों के बारे में बहुत सुन रखा था। सोचा, भूत को देखते ही अपने दिल की धड़कन बंद हो जायेगी।

हमारे खेत में मुंजोबा (यज्ञोपवीत के बाद, लेकिन विवाह से पहले ही जिस

लड़के की मृत्यु हो जाती है वह मुंजा भूत बन जाता है) का एक मंदिर है। उसे हमारी परदादी ने बनवाया था। जब भी इधर से गुज़रता हूं, मुंजोबा को प्रणाम किया करता हूं।

हमारे परदादा की आत्मा एक बार पड़ोस वाली किसी स्त्री के अंग में संचार कर गयी थी। परदादी को पता चला तो वह उस मठ में जाकर बैठ गयी। आरती वगैरा हो जाने के बाद परदादाजी बोलने लगे थे। परदादी को उन पर क्रोध आया। उसने कहा, अरे बुढ्ढे, मरते वक्त तुम्हें मैंने गंगाजल पिलाया, पुत्र की गोद में तुम्हारे प्राण गये, ढेर सारी तुलसी की लकड़ियों पर तुम्हें अग्नि दी। तुम्हारी अस्थियों को सात नदियों में बहाया। हर साल श्राद्ध-पखवाड़े में तुम्हें काक-बलि मिलती है। बताओ, तुम्हारी कौन-सी इच्छा पीछे छूट गयी है?

तब भूत-लगी स्त्री परदादी पर झपट पड़ी थी और परदादी से कहने लगी, तुझे शर्म नहीं आती अपने पति से तू-तू करके बोल रही है!

फिर परदादाजी की मांग के अनुसार परदादी ने आटे के पीर बनाये थे। तापी नदी पर उनका तर्पण किया था। नदी से थिरकते निकले शालिग्रामों को थाली में रखकर उनका जुलूस निकाला। उन्हें खेत ले आयी थी और उन पर इस मंदिर को बनवाया था। वहीं पीपल का पेड़ भी लगाया था।

यह सारा किस्सा मुझे मेरी दादी ने सुनाया था। हमारे परदादा वैसे बड़े धार्मिक किस्म के आदमी थे। पर लोग कहते हैं कि एक बार दो व्यापारी ऊंट पर बैठकर उनके यहां आये थे, तब उनमें से एक के साथ सांठ-गांठ करके परदादाजी ने दूसरे का खून कर दिया था और उसका आधा धन हथिया लिया था।

लेकिन हमें इससे क्या लेना-देना है? हम अपनी जगह सुरक्षित रहें, बस। वास्तव में हमारे परदादा ने अकाल के दौरान अपना पेट काट-काट कर एक-एक पसेरी अनाज के बदले एक-एक खेत खरीदा था। तब फिर मुंजोबा के मंदिर की दीवारों पर मत्था टेककर प्रणाम कर लेने में अपना क्या नुकसान है? पिताजी को पता है कि यह पीपल के कारण अहाते में फसल ठीक नहीं आ सकती, फिर भी पेड़ को काट डालने की वे इजाज़त नहीं देते थे।

कुछ दिन पहले सांप के डसने से एक महार की मृत्यु हो गयी थी। मरते-मरते उसने कहा था, मेरे पूर्व-जन्म में यह पेड़ मुझसे बलि चाहता था, सो इसने उसे ले लिया है।

कुल मिलाकर धरम-करम के बिना आदमी की ज़िंदगी सुरक्षित नहीं रह सकती। इसीलिए तो मैं दादी के संग चांगदेव के मेले पैदल हो आया था। पूनम थी। मैंने तापी के सर्द पानी में डुबकियां लगायी थीं। मैंने सोचा था, मुझे हिंदुस्तान के सभी तीर्थ-स्थलों को एक-एक करके देख ही लेना है।

आपके और हमारे दुख सच पूछो तो मानसिक ही अधिक हैं। सही-सही शारीरिक दुख मनुष्यों को कम ही होते हैं।

एक मरियल-सी जिंदा गाय को किसी ने बस्ती के बाहर वाले मैदान में लाकर छोड़ दिया था। वह लंगड़ी थी। और फिर बूढ़ी। तब बताइए, उसे कौन घर में रखेगा ? चारा-पानी की तलाश में वह लंगड़ाते-लंगड़ाते चलती रहती। इसी हालत में कई दिन गुज़र गये थे। उसे हमेशा इसी हालत में देखने की आदत-सी पड़ गयी थी, इसलिए आजकल उस पर खास ध्यान भी नहीं जाता था। चरने के बहाने वह किसी खेत में चली जाती तो खेत वाले उसकी खूब पिटाई करते और उसे भगा देते थे। इस स्थिति में मेरा उस पर ध्यान चला जाता।

पर इधर गर्मियों के दिन हैं। जब हरी घास की एक पत्ती भी नहीं दिखायी देती, वह बेचारी क्योंकर इधर-उधर भटकती रहेगी ?

इन दिनों वह एक पेड़ के नीचे बैठी रहती थी। टहलने के लिए जाने वाला मेरा और गिरधर का यही रास्ता था। उस गाय को देखकर मुझे लगता, इसे पानी पिलाना चाहिए। पर आसपास कहीं कोई कुआं नहीं था, वरना हम लोग कुछ तो प्रयास करते। पर सोचा, कौन घर से बालटी ले आये, फिर रस्सी लानी पड़ेगी, फिर कुएं से पानी खेंचना पड़ेगा, फिर उस तक पहुंचाना पड़ेगा। अब बताओ, इतनी सारी आफत कौन मोल लेगा ? और एक दिन की बात थोड़े ही है ? अच्छा यह कर भी लें, तब भी सिर्फ़ पानी पिलाने से बात थोड़े ही बनने वाली थी।

फिर भी मैं एक बार उसके निकट गया था। मैंने देखा, उसकी पीठ पर ज़ख्म के कारण बहुत बड़ा छेद हो गया था। मैं उसके करीब कुछ और खिसक आया था। ज़ख्म के अंदर से मक्खियों का झुंड भिनभिनाता हुआ ऊपर उठ आया था। पता नहीं, ज़ख्म में कितनी मक्खियां घुस गयी थीं ?

अपनी पूंछ को पीठ पर पटक-पटक कर वह थक गयी होगी। अब तो उसकी पूंछ भी हिल नहीं पा रही थी। बहुत ही कमज़ोर हो गयी थी। सिर्फ़ आंखें और कान हिलते दिखायी देते थे।

वह हमारी तरफ़ सिर्फ देखा करती थी। बगैर गर्दन हिलाये। फटी-फटी आंखें हम पर गड़ाये।

लगता है, कौओं ने इसकी पीठ कुरेद डाली होगी।

हमें मृत्यु के बारे में कभी कोई खास डर नहीं लगता है। पर जब आप पीड़ा और मृत्यु के संबंधों को अपनी आंखों से देखने लगते हो तो बताइए, आपको कैसे चैन आयेगा ? हां, गिरधर जैसे लोगों को कुछ नहीं होता। ये लोग साले इस भ्रम में रहते हैं कि उन्हें मृत्यु से परे के जगत की पहचान है। और यहां मैं देख रहा हूं, गाय की पीठ के उस लालसुर्ख छेद को।

शरीर और मन वैसे अलग-अलग कहां हैं ? वैसे आत्मा वगैरा भी कोई चीज है जरूर। पर शर्त यह है कि बहस गाय की जीवित आंखें और उसके ज़ख्म में घुसने वाली मक्खियों का ज़िक्र किये बिना पूरी नहीं होनी चाहिए। पर ये लोग हैं कि इन ठोस बातों को किसी परिंदे की तरह पीछे छोड़ एकदम आत्मा वगैरा की बातें शुरू कर देते हैं। शरीर की पीड़ाएं क्या मन की नहीं होतीं ? पर कुछ लोग भावनात्मक प्रभाव में शारीरिक पीड़ाओं को भुलाकर मानसिक पीड़ाओं को महत्व देते हैं। और कुछ तो शारीरिक पीड़ाओं को यह सोचकर नज़रअंदाज़ कर देते हैं कि शारीरिक पीड़ाएं परमात्मा की ओर से उन्हें मिला दंड है।

तापीराम आखिर तक यही कह रहा था कि उसे पिछले जन्म का कर्ज अदा करना ही था।

अब यदि आप गिरधर से पूछें कि ठीक है, मान लिया कि दुख आत्मा को होता है, पर आत्मा को होने वाली पीड़ा भी तो मन को ही होती है कि नहीं ? उदाहरण--क्या इस वक्त इस गाय की आत्मा को दुख नहीं हो रहा है ?

तब उसने कहा, यह हमें क्या पता ? इसे तो मात्र गाय ही जान सकती है।

इधर मैं जगन बाबा के बगीचे तक टहलने की खातिर जाता रहता था। वहां जगन बाबा के पास थोड़ी देर रुक जाता था। अगर वे बस्ती में आने वाले हों तो उन्हीं के साथ बातें करते घर लौट आया करता था। बाबा मुझे गन्ना वगैरा चूसने के लिए देते थे। पर सुनने का काफ़ी काम मुझे करना पड़ता था।

हमारी बस्ती के ये एक ऐसे बूढ़े सज्जन थे जिनका वहां होना-न होना बराबर था। उनका अपनी किसानी की तरफ़ बहुत ही कम ध्यान था। इसलिए जगन बाबा बस्ती वालों के मज़ाक का विषय बने हुए थे। पर जगन बाबा कार्तिकी का मेला कभी चूकने नहीं देते थे। किसी भी कीमत पर वे मेले पहुंच ही जाते थे। इधर फिर ज्वार की फसल को परिंदे साफ कर दें या सिंचाई के अभाव में बैंगन के पौधे सूख जायें तो भी उन्हें कोई परवाह नहीं थी। उनके लड़के पढ़े-लिखे थे और अच्छे ओहदों पर काम कर रहे थे। इसलिए उन्हें पता था कि कभी तो गांव की खेती बेचनी ही पड़ेगी। तब क्यों बेकार परिश्रम करें ? अब बताइए, नौकरों के भरोसे खेती करना कभी फायदेमंद हुआ है ?

और फिर जगन बाबा जब भी कुछ बोलते होते, उसमें कहीं कोई तालमेल नहीं होता था।

कुछ दिन पहले वे अपने एक लड़के के यहां दिल्ली होकर आये थे। तब किसी ने पूछा था, कैसी रही दिल्ली ?

तो---क्या बतायें वहां बहू, पोते-पोतियां, घर में लगातार हिंदी। कहीं कोई पड़ोसी वगैरा के यहां आना-जाना नहीं। निरंतर घर में। फिर आस-पास अकेला। जमना जी, गंगाजी, मथुरा, उधर क्या है ? सांगवी जैसा आनन्द नहीं है !

उन्हें इस तरह बोलते हुए सुनने की मुझे काफी आदत हो चुकी थी। आप बस गन्ना चूसते रहिए और उन्हें सुनते रहिए। लेकिन धीरे-धीरे मेरी समझ में यह बात आने लगी कि जगन बाबा की बातें ऊत-पटांग नहीं हैं। उनमें जरूर कोई सार होता था। हां, उन्हें कोई लंबा विषय मिल जाना चाहिए। तब तो उसमें बड़ा मजा लेते हैं। उन्होंने शुरू किया था। तो—देखिये अलमारी खोल कर चूड़ियां, आदि बाहर फेंकना। वैसे इसमें कोई जंतर-मंतर वगैरा नहीं। नयी पीढ़ी के उस लड़के से मैंने कहा कि तुम्हारा इस पर विश्वास नहीं है न ! फिर भी बच्चे तुम्हारी इज्जत बिलकुल नहीं करते हैं। पर मैंने यूं ही कहा, थोड़ा-सा मैं सचमुच गुस्से में आया था। लेकिन बेचारे खेल दिखाते हैं, तब सिर्फ उसे देखने के लिए। लेकिन मैंने कह ही दिया कि तुम लोग जो कुछ करते हो, मतलब मान लो कि दो दूनी चार, इस पर मान लो सिर्फ मेरा ही नहीं, तुम्हारा भी या किसी और का विश्वास नहीं कि दो दूनी चार ही होता है, तो मेरा तीसरे नंबर वाला लड़का बैंक में क्या काम करता है ? यह एक उदाहरण। तुम हंसोगे, लेकिन असली उदाहरण, सच-सच कह दें, तो··· ।

तब मैंने कहा, जगन बाबा, आखिर यह कहां तक चलेगा ? पहरेदारी, टहल-दारी, अब कहां रही ? पहरेदारी, टहलदारी वगैरा कहां रही है अब ? मंदिर में शहनाई भी अब कहां बजती हैं ? भिकू के चले जाने के बाद उसके बच्चे भी अब नौकरियों की तलाश में लगे हुए हैं। कुछ दिनों के बाद धोबी भी चला जायेगा। फिर कुम्हार भी। पोलेx के लिए अब मिट्टी के बैल कौन बनायेगा ? मतलब यह, सब समाप्त हो जायेगा। तब —

लेकिन सवाल है अगली पीढ़ी का, उसे जैसा बनना है, बन जायेगी। देखो, नयी पीढ़ी की बात तुम करते हो, लेकिन पुरानी पीढ़ी कहां समाप्त होती है ? हमारी आंखों के सामने। अपना वो कुलू बाबा, वो चौधरी और जमना, उसकी सात लड़कियां भी···रंभी, सुभी, चंबी···निरंतर उनके झगड़े···सीढ़ियों पर एक के सामने दूसरी बैठकर जूंए निकालना···इसमें से क्या बचा है ! धान भरा घर अब चूहों से भरा।···देखो, उनमें जो रंभी थी··उसकी जीभ नाक को छू सकती थी।···हम पुरानी पीढ़ी के लोग भी धार्मिक हैं, यह अच्छा है। इसलिए तो हलवाई का पूरा कुनबा, जो प्लेग वाले साल में भी अमीर था, उसका होना नाम का हमारी उम्र का लड़का। पागल हो जाने के बाद मंदिर की छत पर रात-

x : महाराष्ट्र का एक त्योहार है जिस दिन किसान अपने बैलों को नहला-धुला, सजा-संवार कर उनकी पूजा करते हैं, और शाम के समय उन्हें हनुमानजी के मंदिर ले जाते हैं। जिनके यहां बैल नहीं होते वे मिट्टी के बैल गढ़कर यह रस्म पूरी करते हैं।

रात भर बैठा रहता था। मां-बाप घर में कोई नहीं, फिर हर रोज आंगन में पानी डालकर कीचड़ कर देना, लेकिन बोलने वाला कौन ? हमने कहा, कुएं से रोज इतना पानी खींचते हो, पर व्यर्थ, इससे तो रोज मंदिर की सफाई किया करो। लेकिन सुना नहीं। बहुत बुरी मौत मरा। लेकिन उससे भी बुरी मौत थी नारायण पुजारी की। वैसे देखा जाये तो मारुती कोई आसान देवता नहीं। मारुती की मन्नत मानने के बावजूद उसका इकलौता लड़का मर गया। मारुती की आंखें भी मरी माता ने ले लीं। हमें गुस्सा आया। लेकिन क्या करें ? पंडितों के ग्रंथ तो संस्कृत में और ज्योतिष का ज्ञान भी बहुत गहरा। इस हालत में कोई समझदार आदमी उसे क्या ज्ञान दे सकता है ?

उसके सीने पर जो पत्थर रखे थे, उन्हें वह रात-रात भर संस्कृत में चीख-चीख कर निकालता था। बेचारा चीखता-चीखता ही मारुती के सामने लुढ़क कर मर गया। इस तरह की मौत भला किसे मिलती हैं ? मुद्दा यह है कि पुरानी पीढ़ी ने इतना कुछ देखा है और अब हमारी पीढ़ी क्या करती है ? 'अरी चिड़िया आ जा मेरे आंगन में, ले जा मुट्ठी भर धान।' लेकिन मैं कुछ बोलना नहीं चाहता। इसके आगे, पुरानी पीढ़ी और नयी पीढ़ी के बारे में।

छह

देखते-देखते यह वर्ष बीत गया था। इस दौरान गांव में दंवरी (अनाज और भूसा अलग करने) की मशीन के अलावा और कोई नयी चीज़ नहीं आयी थी। वैसे किसी नयी चीज़ का आना यहां मुश्किल ही है। उलटे यहां के युवा लड़के शहरों में चले जाते हैं। बच जाते हैं केवल गोमाजी सुनार और मुझ जैसे लोग। मेरा सारा समय बड़ी खुशहाली में गुजरा था। इधर फिर एक बार हमारी शादी का ज़ोर-दार प्रयास किया गया था। हम जैसे लोगों को भी तो पत्नी मिल ही जाती है। यह बड़ी अच्छी बात है। वरना खूबसूरत स्त्री की प्राप्ति के लिए द्वंद्व युद्ध वगैरा कौन करे? यह प्रथा अब बंद हो गयी, सो अच्छा ही हुआ। वैसे विवाह कितनी बढ़िया प्रथा हुआ करती है। किसने भला इसकी ईजाद की होगी? और यह भी बड़ी अच्छी खुशफहमी है कि ज़मीन-जायदाद भी पूर्व-जन्म के पुण्य कर्म का फल होती है। इसके लिए हमें कोई प्रयास नहीं करने पड़ते हैं। फिर भी सुंदर पत्नी मिल ही जाती है। वैसे जो भी मिल जाती है वह अच्छी ही होती है। पर कुल मिलाकर अविवाहित रहकर गृहस्थी को कोसने वाले लोग उल्लू ही होते हैं। असल में उनकी शादी नहीं हुई होती है, इसीलिए तो। विवाह के बाद जिनके बच्चे हो जाते हैं, उन मां-बाप की तो बात ही न पूछो। वे तो और भी उल्लू के पट्ठे होते हैं। जिनकी भरपूर संतानें हैं, उन मां-बापों के चेहरे देखिये। बस देखते ही बनता है। खुद को गुनाहगार जानकर अपनी संतानों से पेश आने वाले माता-पिता कुछ समझदार तो होते हैं, इनके अतिरिक्त शेष सभी बिलकुल नालायक होते हैं।

मैंने मां से कहा, तुम्हारे एक पुत्र-रत्न है। तुम लोग सीधे स्वर्ग पहुंच जाओगे। हमारी फिक्र तुम्हें नहीं करनी है।

पिताजी से कहा, कोई ऐसी लड़की ढूंढ़ो जिसके कोई संतान वगैरा हो ही नहीं।

मां घबरा गयी थी। लेकिन पिताजी को अच्छा लगा था।

मुझे ऐसा कोई अनुभव नहीं है कि जिसे आध्यात्मिक वगैरा कहा जाय। लेकिन मैं यह मानता हूं कि आत्मा अमर होती है। हां, गिरधर धीरे-धीरे मेरी हर बात को अविश्वास की निगाह से देखने लगा था। इधर पहले की तरह वह मेरे यहां बहुत कम आने लगा था। पर हम दोनों टहलने के लिए साथ-साथ

जाते थे। गिरधर के लिए बस एक ही काम मुख्य रह गया था, वह था देव-पूजा। हम दोनों टहलने के लिए निकल पड़ते। रास्ते में मैं उसके साथ मठ में ज़रूर चला जाता था। भीतर उसकी पूजा चलती रहती और इधर मैं बाहर कुछ साधु-संन्यासियों के साथ गपशप में लग जाता था।

मठ में दस-पंद्रह दिन के लिए कोई महंत आये हुए थे। वे किसी से बात नहीं करते थे। पर हम लोगों ने धीरे-धीरे उनका मौन तोड़ दिया था। पहले-पहले वे इक्का-दुक्का शब्द बोला करते। मतलब, उनसे पूछा जाय कि आपका नाम क्या है? तो कहते, बंबास बाबा। कहां के रहने वाले हो? तो हाथ से इशारा करके बताते—वहां के। गिरधर के वहां पहुंचने तक मैं बाबा की तरफ और बाबा मेरी तरफ देखते रहते। माला का एक-एक मनका फेरते हुए। हां, मेरे आज तक के कारनामों की फेहरिस्त को उन्होंने बड़ी खुशी-खुशी सुना था।

एक बार उन्होंने गिरधर से कहा था, तुम जो कुछ कर रहे हो, सही नहीं है।

एक बार गिरधर ने उनसे कहा था, यह अमीर घर का लड़का है। मैं गरीब हूं। लेकिन दोनों बेचैन रहते हैं। मतलब यह हुआ कि गरीबी और अमीरी में बिलकुल भेद नहीं है।

उन्होंने कहा, इसे आखिर किसी बात में तो दिलचस्पी है। इसके विपरीत तुम्हें किसी भी चीज़ में रुचि नहीं है। इस फर्क को छोड़ दो तो दोनों समान रूप से बेचैन हो। जन्म के आधार पर विकसित भेदों को भेद नहीं कहा जा सकता। हां, आप चाहो तो भेद पैदा करने के लिए किसी भी चीज़ का आधार ले सकते हो। पर शर्त यह है कि भेद का आधार जन्म जैसी कोई नगण्य चीज़ नहीं होनी चाहिए।

मैंने कहा, मुझे किसी भी चीज़ में रुचि नहीं है। आपने मुझे गलत समझा है।

तब बंबास बाबा कुछ नहीं बोले थे।

दूसरे दिन गिरधर ने फिर से वही विषय छेड़ा था—बाबाजी, मैं पूजा करता हूं, पर इसमें भी मुझे कहीं कोई अर्थ नज़र नहीं आता है। पांडुरंग तो कभी पूजा करता ही नहीं है। फिर भी उसमें और मुझमें कोई फ़र्क नहीं है।

बंबास बाबा ने कहा, पूजा कर लेने के बाद तुम ऐसा कहते हो, जबकि यह तो पूजा ही नहीं करता है। तुम्हारी समस्या दूसरी है। तुम अभी ऊबे नहीं हो। यह ऊब गया है।

मैंने कहा, यह मंज़ूर। मैं ऊब गया हूं।

गिरधर ने पूछा, आपका अपना क्या अनुभव है ? आज की बात छोड़िये, पहले कभी ?

उन्होंने कहा, इधर मैं भी ऊब गया हूं। लेकिन इसके पहले कभी ऊबा नहीं था। इधर यह स्थिति पैदा हुई है।

उन्होंने मुझसे पूछा, तुम्हें इसके पहले कभी ऐसा भी अनुभव हुआ है, जब तुम ऊबे न हो ?

मैंने पूछा, किस संबंध में ?

तब बंबास बाबा कुछ नहीं बोले थे।

दो-तीन दिन के बाद बंबास बाबा ने हमसे एक प्रश्न पूछा, इस संसार में कौन-सी वस्तु पूर्णतः नवीन है ?

मैं इस पर सोचता रहा। पूर्णतः, मतलब पूर्णतया नवीन वस्तु। कौन वस्तु पूर्णतया नवीन हो सकती है ? पृथ्वी भी तो पुरानी ही है ? वनस्पति तो और भी पुरानी है। वह तो बीज से उत्पन्न होती है। बीज भी तो पुराना ही होता हैं। तब फिर पशु-पक्षी, मनुष्य इनके बीज भी तो पुराने ही होते हैं। नवजात शिशु भी तो बना-बनाया ही पैदा होता है। तब फिर नवीन क्या है ?

लेकिन मैं कुछ बोला नहीं। क्योंकि बंबास बाबा ने मेरी तरफ ध्यान नहीं दिया था।

गिरधर ने कहा, और वस्तुओं की बात छोड़ दो, कम-से-कम वे वस्तुएं जिन्हें परमात्मा ने पैदा किया है, सारी-की-सारी पुरानी ही हैं।

बाबाजी ने कहा, मनुष्य को भगवान ने ही पैदा किया है, तब फिर मनुष्य की हर चीज़ क्या पुरानी हुई ?

गिरधर ने कहा, मनुष्य को भगवान ने पैदा किया है, यह मंज़ूर। पर हां, मुझे आपके प्रश्न का उत्तर मिल गया है। परमात्मा अर्थात इस संसार की नित्य नूतन वस्तु है।

बाबा ने कहा, फिर से ठीक सोचकर कल आना।

दूसरे दिन गिरधर ने पूजा नहीं की। वह वैसे ही बाबाजी के पास जाकर बैठ

गया था।

बाबा ने कहा, पहले पूजा निपटाकर फिर इधर आओ।

गिरधर ने कहा, सुबह कर चुका हूं। दोपहर देर तक करता रहा। अब करने की इच्छा नहीं हो रही है।

बाबा ने कहा, ना, पहले पूजा।

तब पूजा निपटाकर गिरधर बाबा के पास चला आया। उसने कहा, परमात्मा ही केवल नित्य नूतन वस्तु है।

बाबा ने कहा, वह तो पुरानों से भी पुराना है।

गिरधर ने कहा, मानता हूं कि मनुष्य को परमात्मा ने पैदा किया है, फिर भी वह हर आदमी को तो पैदा नहीं करता। परमात्मा के द्वारा नियुक्त कुछ शक्तियां बीज के माध्यम से निर्मिति के इस व्यापार को पूरा करती हैं।

बाबा ने कहा, बीजों का तो उसी ने निर्माण किया है, ठीक है। लेकिन परमात्मा मनुष्य को अर्थात मनुष्य के प्राणों का भी निर्माण करता है। तुम लोगों ने गलती की। प्राण किसी दूसरी शक्ति की प्रेरणा से संचालित नहीं होता। स्वयं परमात्मा ही है जो प्राण के सभी क्रिया-कलापों को संचालित करता है। परमात्मा ने स्वयं को, देवी-देवताओं और पिशाच आदि योनियों को भी निर्मित किया है। इसे मानते हो तो फिर आगे बहस करो।

गिरधर ने कहा, मुझे यह मान्य है। लेकिन मेरा मुद्दा यह नहीं है। मैं पूछता हूं, परमात्मा के लिए यह कैसे संभव है कि वह प्रत्येक मनुष्य के प्राणों को निर्मित करे ? इसमें कोई शक नहीं कि सृष्टि के स्तर पर मनुष्य प्राणी कीट-पतंगों, पशु-पक्षियों के मुकाबले तो श्रेष्ठ है ही, पर वह देवताओं, राक्षसों आदि गणों में भी श्रेष्ठ है। यही क्यों, वह परमात्मा से भी श्रेष्ठ है।

अब बाबाजी को बड़ा क्रोध आया था।

गिरधर फिर भी रुका नहीं -- परमात्मा ने स्वयं का निर्माण किया भी है, इसका कोई निश्चित प्रमाण नहीं है। उसे भी तो निर्माण करने वाला और कोई महापरमेश्वर होगा। पर एक बात सच है कि मनुष्य को अर्थात मनुष्य के बीज को निर्मित करके परमात्मा ने ज़रूर धोखा खाया है। क्योंकि चाहे तो कोई भी मनुष्य परमात्मा के अस्तित्व को ही नकार सकता है।

बंबास बाबा ने कहा, केवल अज्ञानी ही यह कर सकता है।

गिरधर ने कहा, फिर तो किसी ज्ञानी को ढूंढ़ना असंभव है। हमारी संस्कृति ने ज्ञान को निर्मित किया है। पर छोड़िये इसे। ज्ञान-अज्ञान की बात छोड़िये। परमात्मा के अस्तित्व को बिलकुल नकारने वाले लोग भी तो उसके अस्तित्व को लेकर पहले काफ़ी सोचते रहने के बाद ही तो वैसा फैसला देते हैं। पर कुछ लोग जरूर ऐसे मिलेंगे जो परमात्मा के वजूद से इंकार करते हैं। इनमें

जंगली लोग भी हैं और हम जैसे भी हैं। और फिर आत्महत्या करने वाला व्यक्ति परमात्मा द्वारा नियुक्त शक्तियों अर्थात मृत्यु आदि की सत्ता के खिलाफ़ बगावत करके उन्हीं को अपना गुलाम बना देता है। कम-से-कम इस घड़ी मृत्यु को आमंत्रित करने वाले लोग बताये जा सकते हैं। परमात्मा मनुष्य के मुकाबले सामर्थ्यवान है, इसलिए वह मनुष्यों पर अलग-अलग प्रकार की योनियों को आरोपित कर उन्हें बांध देता है। लेकिन फिर भी वह मनुष्य ही है जो परमात्मा के खिलाफ़ निरंतर बगावत करता हुआ प्राप्त स्थितियों को भोगता रहता है। अच्छा, इन लोगों की बात छोड़ दीजिये। पर क्या यह सही नहीं है कि खुद मनुष्य परमात्मा के सामर्थ्य को भी अपनी कल्पना के बल पर आजमाया करता है? मनुष्य की कल्पना-शक्ति पर परमात्मा की हुकूमत चल नहीं सकती। मान लिया कि देवताओं को अमरत्व प्राप्त होता है, पर मनुष्य के प्राणों को भी तो एक तरह की अमरता मिली हुई है। मनुष्यों के बीजों को चाहे नष्ट कर दिया जाय, तब भी उसके प्राण नष्ट नहीं होंगे। वह उतना ही अमर है जितना परमात्मा। पीड़ाओं को सहने के लिए वह तैयार है। इसके अलावा मनुष्य इतना स्वतंत्र है कि वह साक्षात् परमात्मा को हर युग में, और एक ही ज़िंदगी में हर लमहे नयी-नयी दृष्टियों और नये-नये रूपों में देख सकता है। वास्तव में परमात्मा की अपेक्षा मनुष्य ही श्रेष्ठ है। क्योंकि उसने किसी और को निर्मित करके धोखा नहीं खाया है।

बंबास बाबा केवल हंसे थे। उन्होंने कहा, मेरे प्रश्न का उत्तर मुझे नहीं मिला है।

गिरधर ने कहा, परमात्मा ही केवल नवीन वस्तु हो सकती है।

तब बाबा खामोश हो गये थे।

मैंने गिरधर से कहा, तुम्हारा कहना बिलकुल सही है।

दूसरे दिन बाबा ने कहा, ठीक है। आप और हम आखिर मनुष्य ही तो हैं। इस लिए परमात्मा के बारे में मनुष्य की सोच को लेकर तुमने जो भी कहा है, वह बिलकुल सही है। पर ध्यान रहे, इसी बिन्दु से परमात्मा के बारे में सोच की शुरुआत होती है। लेकिन इस शुरुआत से परे निकल जाना संभव नहीं हो पाता। स्वयं भगवान श्रीकृष्ण इससे आगे नहीं बढ़ सके थे। खैर, इतनी शुरुआत भी कोई कम नहीं है। लेकिन आगे धीरे-धीरे परमात्मा भी पुरानी वस्तु लगने लगती है। इसलिए मैं कहता हूं, परमात्मा के संबंध में अपने तईं तुम खुद फैसला कर लो। हां, मैं केवल तुम्हें नयी वस्तु बता सकता हूं। नवीन वस्तु अर्थात केवल मृत्यु। यह इतनी ताज़ा और नवीन होता है कि इसका अनुभव ग्रहण करते-करते

ग्रहणकर्त्ता समाप्त हो जाता है। शायद इसीलिए यह वस्तु नयी बनी रहती है। मानव जीवन में घटित होने वाली सिर्फ दो ही चीजें हैं—जन्म और मृत्यु। इनमें से जन्म का अनुभव मनुष्य को नहीं हो सकता। तब फिर शेष रह जाती है दूसरी चीज। केवल यही घटित होती है। मृत्यु सिर्फ हमारी होती है, हमारे अलावा हम और किसी को इसे नहीं देते। स्वयं के लिए यही एकमेव नवीन वस्तु होती है।

गिरधर भीतर से कांप गया था।

तब बाबा खामोश हो गये थे।

दूसरे दिन गिरधर को मैंने एक सुझाव दिया कि मृत्यु के बाद भी तो हम लोग अनुभवों को ग्रहण ही किया करते हैं। मौत के बाद मृत्यु कहां नयी बनी रहती है?

गिरधर ने शाम को यह बात बाबा को बतायी थी।

मैं केवल सुनता रहा था।

बंवास बाबा ने कहा, मृत्यु और मृत्यु के बाद जो दूसरा जन्म शुरू होता है उन दोनों के बीच में अंतराल होगा—उस हद तक मृत्यु पुरानी कही जा सकती है। क्योंकि एक बार परमात्मा की आज्ञा से कहो या तुम्हारी राय में जबरदस्ती कहो—जो भी हो—एक बार मनुष्य पैदा हो गया, वह मृत्यु को भूल ही जाता है, क्योंकि उसका प्राण इतना अज्ञानी होता है इसलिए आगे के जन्मों की बात करना बेकार है। और फिर जन्म हमेशा दूसरों के साथ घटित होने वाली वस्तु है। इसे मैं स्पष्ट कर ही चुका हूं। हम सिर्फ़ इतना ही सोचें कि क्या ऐसा कोई अंतराल हो सकता है जिसके आधार पर मृत्यु को पुराना बताया जा सके? मृत्यु के बाद दूसरा जन्म लेने तक जिस अंतराल का हम अनुमान लगाते हैं, वह वास्तव में शून्य होता है। मृत्यु के बाद किसी भी अंतराल का हमारा ज्ञान समाप्त हो जाता है।

इस पर मैं कुछ कहने जा रहा था। लेकिन खामोश रहा।

गिरधर ने कहा, मृत्यु हो जाने के बाद मृत्यु को पुरानी चीज मानने के लिए आवश्यक अंतराल का अस्तित्व संभव है।

बाबा ने कहा, उसका अस्तित्व निःसंदेह है। लेकिन मानना कहां से आया? मृत्यु के बाद ज्ञानेंद्रियों का क्या मतलब रहा? जिस अंतराल के रहते जहां प्राण के पास हरकत के लिए हाथ-पैर नहीं है, भूख के लिए पेट नहीं है, नींद के लिए पीठ नहीं है, वहां उस अंतराल का ज्ञान कैसे संभव है? खैर, इसे भी छोड़ो। मृत्यु के बाद अगर आप एक लाख वर्ष तक अवकाश में घूमते रहें, चिरंजीव बन जायें, तब भी वहां के लाख वर्ष किसी क्षण से ज्यादा बड़े नहीं होते। आपको

क्या लगता है ?

अब अंधेरा हो गया था। इसलिए बाबा और भी ज्यादा विचित्र लग रहे थे।

हम इससे सहमत नहीं हैं। मृत्यु के बाद पैदा होने वाली स्थिति में मृत्यु अर्थात दूसरी तरह का जन्म ही तो है। इसलिए तुम लोग जिसे आज मृत्यु कहते हो, अंतराल के जीवों के लिए वह जन्म के समान कहा जायेगा।

तब बाबा मुझसे संबोधित होकर कहने लगे, तुम्हें क्या लगता है ?

मैंने कहा, आपकी बात मुझे ज्यादा अच्छी लगती है।

तब बाबा खामोश हो गये थे।

दूसरे दिन जब मैं मठ में गया था, पता लगा कि गिरधर और बंबास बाबा कभी के टहलने चले गये थे।

मैंने खुद से कहा, तुम्हारा ज्ञान इसी अर्थ में स्वतंत्र है कि तुम औरों के विचारों को सही कहो। मतलब यह कि, पांडुरंग महाराज बड़े बुरे हाल हैं तुम्हारे। तुम्हारे पास कोई ज्ञान नहीं है। जो भी कुछ है उसकी प्राप्ति के लिए भी सालों खप गये। तुम्हारी गति चींटी के रास्ते और इन लोगों का विहंग मार्ग। तुम आहिस्ते-आहिस्ते ऊपर चढ़ रहे हो। तब तक ये लोग दूसरे वृक्ष पर उड़ान भर जाते हैं। कैसे निभेगी तुम्हारी ?

उसके बाद बंबास बाबा मठ छोड़ कहीं निकल गये थे।

गिरधर आये दिन नये-नये बाबाओं को पकड़ने लगा था। जब भी कोई साधु मारुती के मंदिर में डेरा डालता तो वह वहां पहुंच जाता।

एक बार झालनाथ नामी साधु से गिरधर की भेंट हुई थी। साधु ने गिरधर को कोई जादू करके दिखाया था। गिरधर के मन में जो बात आती, झालनाथ उसे पहचान लेता था।

आखिर झालनाथ ने कहा था, बेटा, इस बार तुम्हारे मन में जो बात आयी है वह बहुत बुरी है। मैं तुम्हें अपना शिष्य नहीं बनाऊंगा। लेकिन बेटा, मेरी बात सुनो, मात्र प्राणों के चक्र में फंसे न रहो। यह चक्र बहुत बुरा है। इसके बाहर निकल आओ। अखिल संसार पर अवलंबित रहो। स्वयं को किसी से बांध मत लेना।

गिरधर ने कहा, मेरे मन में ऐसी कोई बात नहीं आयी थी।

कुछ दिन के बाद किसी मेले में उसकी ठणठण गोपाल बैरागी से मुलाकात हुई थी। गिरधर ने कहा था कि उससे मिलने वाला यह पहला महान व्यक्ति था।

गिरधर ने बैरागी से पूछा था, पर महाराज, आप इस तरह भीख मांगते क्यों घूमते हैं ?

उसने कहा, इन सब लोगों के पास जो भी है वह सब हमारा ही है। देने वालों के मुकाबले मांगने वाला महान होता हैं। हम तो जबरदस्ती मांगेंगे। तिस पर दाता की इच्छा, उसका धर्म उसके पास।

ठणठण गोपाल ने कहा कि मेरे पास इतनी शक्ति है कि मैं इस पूरी भीड़ को ज़मीन में गाड़ सकता हूं।

पर गिरधर ने उसे उस मेले को गाड़ देने के लिए नहीं कहा था।

गिरधर ने मुझसे कहा, साला हज़ार ढूंढ़ों तो एकाध सही मिल पाता है। पर यह प्रमाण भी कुछ कम नहीं है।

इसके बाद कई दिनों तक गिरधर चुपचाप बैठा रहा था।

तब यकायक गांव में खबर फैली थी कि गिरधर घर छोड़ कहीं भाग गया।

उसके बारे में मुझे कोई जानकारी हो सकती है, इस खयाल से उसके पिता जी मेरे पास आये थे।

उन्होंने पास-पड़ोस के कुएं छान मारे थे।

मैंने कहा, वह और सब कुछ कर सकता है, लेकिन यह नहीं करेगा। इसके लिए सिर्फ आप लोग ही जिम्मेदार हैं, सो बात नहीं है। समझो, उसने भट मार्ग स्वीकार कर लिया है और वह महात्मा बन चुका है। लेकिन आप लोगों ने उस पर जुल्म किये। चाय की उसकी ख्वाहिश भी आप लोग पूरी नहीं कर सकते थे। वह कहा करता था, हमारा घर सिर्फ धन पर चलने वाली चीज़ है। आप लोगों की राय में वह आदमी घर में रहने लायक नहीं है जो घर में कोई चीज़ लाकर नहीं दे सकता। इसलिए कहता हूं, वह चला गया सो ठीक ही हुआ।

गिरधर के चले जाने के बाद मेरी दिनचर्या में कमाल का व्यवधान आ गया था। वैसे वह बहुत कम बोला करता था। लेकिन कभी-कभार महान बात कह देता।

वह कहा करता था—हर आदमी को साठ-सत्तर रुपयों में गुज़ारा करना आना ही चाहिए। दरअसल संसार के प्रत्येक व्यक्ति की इससे ज्यादा आय होनी ही नहीं चाहिए। और हर परिवार के पास एक कमरे के अलावा दूसरा नहीं होना चाहिए।

इधर घर पर रहना दिन-ब-दिन उसके लिए मुश्किल हो रहा था। लेकिन इसके बारे में उसने किसी से कोई जिक्र नहीं किया था। हां, निठल्ले बैठे रहने का व्रत उसने आखिर तक निभाया था। घर वालों की बातें सुनते रहने की उसे जबरदस्त आदत हो गयी थी।

लेकिन मुझे इस बात का दुख था कि अंतिम दिनों में मैं उसके साथ ठीक ढंग से पेश नहीं आया था। वजह यह थी कि उसके माता-पिता उनके घर की स्थिति का बड़ा लाचार वर्णन मेरे सामने करने लगे थे। कहते—इसे कहो कि कुछ काम करे, तुम्हारा कहा वह ज़रूर मानता है।

मैंने बड़े प्रयासों से उसे समझाया था कि भैया, कुछ तो काम करो। खाली लोट-पोट करते रहना ठीक नहीं है। इतना तो खयाल रखो कि मां-बाप जब खून-पसीना एक कर रहे हों और तुम हो कि बेशरम की तरह घर लेटे पड़े रहते हो, यह ठीक नहीं है।

एक बार तो मैं उस पर बहुत ही चिढ़ गया था। मैंने उससे कहा था कि जीवन-कर्म विहित ही होता है। स्वयं भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन से यही कहा है वगैरा।

तब उसने कहा था, जनाब आप कोई श्री कृष्ण नहीं हो, और न मैं अर्जुन। और हमें कोई युद्ध भी नहीं करना है। इसलिए कहता हूं, तुम चुप रहो तो अच्छा है।

हालांकि उसके और मेरे बीच की यह कोई अंतिम बातचीत नहीं थी।

लेकिन उसके बाद से मैं स्वयं उसे टालता रहा था। एक बार दोपहर की तेज धूप में वह मुझे मेरी खिड़की से दिखायी दिया था। उसके पीछे-पीछे उसका कुत्ता जमीन सूंघता चला जा रहा था। फिर गिरधर खिड़की के एक कोने से दूसरे कोने तक चलता गया था। उसी तरह पीछे-पीछे उसका कुत्ता।

एक बार और उसकी मुझसे तब मुलाकात हुई थी, जब मैं शाम के वक्त टहलकर घर लौट रहा था। अंधेरे में सामने से गिरधर ही आ रहा था। उसने मुझसे कहा, चलो फिर लौट चलो, थोड़ा टहल आयें।

मैंने कहा, न।

तब वह अकेला चला गया था।

बस यह आखिरी मुलाकात।

उसके बाद मैंने यह खबर सुनी।

और मैं दहल गया था।

तब मैंने खूब सोचा था।

आखिरी बार उसने मुझसे कहा था, चलो, सो मुझे जाना चाहिए था।

संभव है, वह हमें कोई प्रचंड बात बताता। उस जैसे लोग हमारे निकट आकर बिछुड़ जाते हैं, पर खेद, हमें इन लोगों का मूल्य पता नहीं होता।

हमारी अपनी जिंदगी में क्या कम बोरियत है, लेकिन सब बांझ।

जिस प्रकार किसी मकान में दीप जल रहा हो, तो खिड़कियों-दरवाजों और झरोखों से रोशनी बाहर निकलती है और हमें उस मकान में दीपक के होने का ज्ञान होता है, उसी प्रकार हर महान व्यक्ति के व्यवहार तथा बातचीत से इसी तरह की कोई रोशनी दिखायी देनी ही चाहिए। वरना समझ लो कि उस मकान में दीपक नहीं है।

ऐसा व्यक्ति उल्लू है।

तब से मैं माता-पिता से, बस्ती के इज्जतदार लोगों से कहने लगा था कि आप लोग जो-जो कहें वह सब मुझे स्वीकार है।

जब भी किसी ने जो भी कहा, मैंने कहा, जी हां। मुझे सब मंजूर है। मैं अमल करूंगा।

उन्होंने सवाल पूछे और मैंने जी हां···जी हां···कहा।

मिसाल के तौर पर हर हालत में ये लोग हमें अपने खूंटों पर लाकर जरूर बांधेंगे। तब क्यों न पहले ही से खूंटों के सामने लाकर खड़े हो जायें। या मान लो हमसे कोई उलटी-सीधी बात हो भी जाये तो ये लोग हमारा पक्का बंदोबस्त किये बिना थोड़े ही रहेंगे। आपके लिए इंकार करने की उम्मीद भी नहीं बचेगी। मिसाल के तौर पर ये सब बातें गिरधर वगैरा जैसे लोगों के बूते की बात हो सकती है। दुनिया में पहले से ही ताकवतर चीजें पैदा की जा चुकी हैं ताकि हम जैसों को आसानी से इस्तेमाल किया जा सके। इसलिए तो उनके लिए सब-कुछ एकदम आसान हो जाता है। और तो और, कानून की ईजाद किसने की? बल्कि ज्यादा सही होगा, किसके लिए की? भाषा की ईजाद में सबसे बड़ा हिस्सा किसका रहा है? बल्कि किसके लिए? कुछ नहीं तो मकान किसने बनाया? विवाहों का रिवाज किसने चलाया? सामान्यतया किसके लिए?

हम वह सब करने को तैयार हैं। वे जो-जो काम वगैरा कहेंगे, वे सब। अब तक की इतनी उम्र इसी ढंग से, मिसाल के लिए, आखिर गुजारी ही है न! और ध्यान रहे, आगे भी इसी तरह गुजारने का घमंड वगैरा हमारे पास जरूर है। हम किसी और के 'वगैरा वर्ष' चुराने वाले हैं नहीं। या किसी के बाप का पैसा ज़ाया करने का कोई इरादा भी नहीं है। कुछ लोग कहते हैं, उम्र ज़ाया की। पर मिसाल के लिए यह सही नहीं है। भविष्य में और भी अनेकों वर्ष बचे

पड़े हैं। मिसाल के तौर पर, हम चाहे कितनी भी देर सोते रहें, वर्ष अपनी जगह सही-सलामत होते ही हैं। या फिर चाहे हम जैसे भी पेश आते रहें, कोई फर्क नहीं पड़ता। हर एक के हिस्से आये वर्ष मुकम्मिल तौर पर सुरक्षित बचे रहते हैं। उन्हें अर्जित वगैरा नहीं किया जा सकता। इसलिए उन्हें गंवा देने की बात मिसाल के तौर पर इतनी सही नहीं है। यह कहना कि वर्ष बहुत ज़ाया गये, मिसाल के लिए बिलकुल गलत है। अर्थात बिलकुल सही है।

मुद्रक : मॉडर्न प्रिन्टर्स, के-30, नवीन शाहदरा दिल्ली-110032 द्वारा मुद्रित